RNI/MPHIN/2013/61414

ज्ञान-विज्ञान विमुक्तये
UGC Care Listed

ISSN 2278-0327
Peer Reviewed
Refereed Journal

ज्योतिर्वेद - प्रस्थानम्

संस्कृत वाङ्मय की शोधपत्रिका - संस्कृत छात्रों की मार्गदर्शिका

एकादश वर्ष, द्वितीय अंक

मई - जून 2022

आज़ादी का
अमृत महोत्सव

International day of yoga
21st June
Yoga for Harmony & Peace

Bharatiya Jyotisham
भारतीय ज्योतिषम्

₹ 30

ISSN 2278 - 0327

RNI/MPHIN/2013/61414
UGC Care Listed

Bi - Monthly
Peer Reviewed
Refereed Journal

Bharatiya Jyotisham
पर्येति भावयन् लोकान्

ज्योतिर्वेद-प्रस्थानम्

संस्कृत वाङ्मय की शोधपत्रिका-संस्कृत छात्रों की मार्गदर्शिका

प्रधान सम्पादक

प्रो. पी.वी.बी. सुब्रह्मण्यम्

कार्यकारी सम्पादक

अविनाश उपाध्याय

सम्पादक

डॉ. रोहित पचौरी

डॉ. रविन्द्र प्रसाद उनियाल

ज्ञान सहयोग

पिडपर्ति पूर्णय्या विज्ञान ट्रष्ट चैन्नै

Jyotirveda-Prasthanam is printed & published by
Smt P V N B Srilakshmi
on behalf of
Bharatiya jyotisham
L-108, Sant Asharam Nagar Phase - 3, Laharpur, Bhopal - 462043
Editor - DR. ROHIT PACHORI*

ISSN 2278 - 0327

पुनरीक्षण समिति

प्रो. विद्यानन्द झा
पूर्वप्राचार्य-केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
भोपाल परिसर, भोपाल

प्रो. क्षेत्रवासी पण्डा
अध्यक्ष-तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति विभाग
बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. भारतभूषण मिश्र
निदेशक- केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
क.जे.सौमेया विद्यापीठ, मुम्बई

प्रो. हंसधर झा
अध्यक्ष - ज्योतिषविभाग
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, भोपाल परिसर

प्रो. सनन्दन कुमार त्रिपाठी
अध्यक्ष - साहित्यविभाग
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, भोपाल परिसर

प्रो. श्रीगोविन्द पाण्डेय
आचार्य- शिक्षाशास्त्रविभाग
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, भोपाल परिसर

डॉ. अशोक थपलियाल
अध्यक्ष - वास्तुविभाग
श्रीलालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रकाशक

भारतीय ज्योतिषम्

एल - 108, **संत आशाराम नगर,**
फेज - 3, **लहारपुर,**
भोपाल - 462043, **मध्यप्रदेश**
Web : www.bharatiyajyotisham.com
E.mail : bharatiyajyotisham@gmail.com
Mob : 9752529724, 9039804102

सम्पादकीय

इन दिनों चर्चा जेम्स वेब से प्राप्त चित्रों पर हो रही है। स्वाभाविक बात है कि नंगे आंखों से नीला सा दिखने वाले आकाश गर्भ में असंख्य विश्व छिपे हुए हैं। वेद इनका वर्णन बिना थके करता है और उस वैदिक वर्णन को समझने के लिये एक जीवन पर्याप्त नहीं लगता है। जेम्स वेब से विश्व की एक झलक मात्र सामने आयी है। उसी एक झलक पर तो मानव विस्मयीभूत तथा अचम्भित हो रहा है। आविष्कार जितने प्रभावशाली होंगे उतना ही प्रभाव वैदिक ज्ञान का होगा। अर्थात् प्रत्येक वैज्ञानिक आविष्कार किसी न किसी वैदिक वचन के लिये प्रमाण के रूप में ही सामने आया, आ रहा है और आयेगा।

यह गतिविधि वर्तमान में प्रचलित भारतीय ज्ञान परम्परा नामक चिन्तन को और समृद्ध करने वाला है तथा इस क्षेत्र में अध्ययन व शोध की अपार सम्भावनायें है। किन्तु इस पुरोगति के अनुरूप पुरोगति संस्कृत क्षेत्र में नहीं हो पा रही है। स्वतन्त्ररूप से इस बात को आविष्कृत करने में व तार्किक रूप से वैदिक विषय वर्तमान विज्ञान से कई मील आगे है यह समझाने में संस्कृत शोधकर्ता आज भी सफलता की प्रतीक्षा में है।

आत्मविश्वास में न्यूनता भी इसका कारण हो सकता है अथवा प्राक्कल्पना में दुर्बलता। प्राक्कल्पना यदि भौतिक सम्भावनाओं को ध्यान में रखकर करते हैं तो वैदिक चिन्तन तक पहुँचना स्वप्न मात्र ही होगा। आज के समय में संस्कृत क्षेत्र में शोध के लिये समर्पित किये जाने वाली प्राक्कल्पनाएँ कतई वैदिक चिन्तन को वैज्ञानिक सिद्ध करने व वर्तमान विज्ञान के समकक्ष स्थापित करने में सफल नहीं हो सकती हैं।

अर्थात् प्राथमिकता चिन्तन विधि को बदलने को देना है। चिन्तन विधि भारतीय व वैदिक होने पर अवश्य ही विश्वान्तराल से सम्बन्धित यात्रा तक प्राक्कल्पना जा सकती है। अधिकांश शास्त्र वचनों को आज के समय में या तो प्राचीन माना जाता है व कल्पना मात्र। अपनी दृष्टि से जो असम्भव लगता है उसका वर्णन कहीं भी आवें उसको आज के संस्कृतज्ञ बिना किसी संकोच या कालयापन के ही कल्पित वचसा सिद्ध करता है। इस सत्य को समझने का प्रयास करना तथा इस प्रकार की प्रवृत्ति को दूर करना वैदिक विकास के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

पत्रिका से सम्बन्धित सभी पद अवैतनिक है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों से प्रकाशक को सहमत होना अनिवार्य नहीं है। किसी भी प्रकार के विवाद का समाधान भोपाल न्यायालय से ही स्वीकार्य है। शोधलेख आमन्त्रित है। पूर्वप्रकाशित लेख अनुमत नहीं है। लेख से सम्बन्धित विवादों का दायित्व लेखक का ही होगा। लेख को स्वीकार व अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार प्रकाशक को है।

ISSN 2278 - 0327

विषय-सूची

क्र.	लेख विषय	लेखक	पृ.सं.
1.	सामाजिक परिवर्तन में उच्च शिक्षा की भूमिका	डॉ. हरेन्द्र कुमार	05
2.	प्रकृति के संवाहक घटकों में पर्यावरणीय सञ्चेतना (किरातार्जुनीयम् के सन्दर्भ में)	शिखा	08
3.	भीष्मचरितम् महाकाव्यम् में सामाजिक व्यवस्था	तृप्ति शर्मा, डॉ. संध्या कुमारी	12
4.	विश्वगुणादर्शचम्पू में ध्वनि-तत्त्व : एक अनुशीलन	अंकिता त्रिपाठी	15
5.	कोरोना काल में लॉकडाउन का श्रमिकों पर प्रभाव	डॉ. हरिन्द्र कुमार	19
6.	नई शिक्षा नीति का समाज पर प्रभाव	डॉ. इति अधिकारी	25
7.	चाक में चित्रित स्त्री का संघर्ष	डॉ. राम किशोर यादव	28
8.	चित्रा मुद्गल के उपन्यास गिलिगडु में वृद्ध जीवन का यथार्थ	डॉ. कल्पना सिंह, नेहा माथुर	32
9.	संस्कृत एवं आधुनिक समाज	डॉ. ज्योति शर्मा	36
10.	कवि निराला के काव्य में प्रगतिशील स्वरूप	दर्शना	41
11.	'हल्दीघाटी' में स्वातन्त्र्य चेतना	डॉ. शौकीना देवी	45
12.	प्रवासी हिन्दी कहानी और मानवीय मूल्य	कविता, जितेंद्र शर्मा	47
13.	गांधी के सपनों का स्वच्छ एवं समर्थ भारत	कमल किशोर कंडावरिया	50
14.	उपेंद्रनाथ 'अश्क' के उपन्यासों में नारी-प्रतिष्ठा चिंतन	ओमवीर	54
15.	मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में अभिव्यक्त स्त्री की पीड़ा	डॉ. राम किशोर यादव	56
16.	कबीर के काव्य का अनुभूति-पक्ष	ईन्दु रानी	61
17.	'बिसात पर जुगनू' उपन्यास में चित्रित सामाजिक समस्याएं	पूजा	64
18.	बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ योजना : एक मूल्यांकन	गीता, प्रो. विष्णु भगवान	67
19.	असमिया लेखिका इंदिरा गोस्वामी की कहानी 'वंशवेल' का विश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ. शुभी भसीन	71
20.	21वीं सदी के उपन्यासों में झलकता वृद्धों का दर्द	मीनाक्षी	73
21.	द्विवेदी युगीन कविता के विभिन्न आयाम	मोनिका	76
22.	आफताब-ए-सितार उस्ताद विलायत खाँ और सितार	सुरेन्द्र कुमार	80
23.	पंकज सुबीर के उपन्यास 'अकाल में उत्सव' में 'कर्ज से ग्रस्त किसान'	स्वीटी	82
24.	हिन्दी साहित्य और ललित निबंध का विवेचन	नवीना	85
25.	मैथिलीशरण गुप्त की नारी दृष्टि : साकेत, यशोधरा और विष्णुप्रिया के संदर्भ में	सुनील कुमार	87
26.	वास्तुशास्त्र में वेध स्वरूप	डॉ. मृत्युञ्जय कुमार तिवारी	90
27.	डॉ. उर्मिला अग्रवाल के नाटक 'स्वप्न पुरुष' में हमसफर के चयन में कशमकश	सीमा देवी	93
28.	'सूखा बरगद' उपन्यास में चित्रित समाज पर राजनीति प्रभाव	पुष्पा	95
29.	हरिशंकर परसाई की रचनाओं में सामाजिक यथार्थ	राधेश्याम यादव	98
30.	'अछूत' उपन्यास में दलित चेतना का अध्ययन	सुमन	101
31.	मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'फरिश्ते निकले' में चित्रित नारी समस्याएँ	सन्तोष	104
32.	रहस्यवाद के विविध आयाम	डॉ. सत्यमुदिता स्नेही	107
33.	सिद्ध सिद्धांत पद्धति में चक्र की अवधारणा : एक विमर्श	निधि शुक्ला	110
34.	विद्यया विन्दतेऽमृतम्	डॉ. जी. एल. पाटीदार	113
35.	म.प्र. एवं केन्द्रीय बोर्ड के विद्यार्थियों के जीवनमूल्यों के विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाओं का अध्ययन	नीतू जैन, डॉ. वीरेन्द्र	116

ISSN 2278 - 0327

36. तरुकथा (लघुकाव्य) में शरद् ऋतु का वर्णन	रंजेश्वर झा	122
37. आधुनिक युग में नरेंद्र कोहली कृत 'सेतु-भंजन' उपन्यास में रामसेतु की प्रमाणिकता	वीरेंद्र	125
38. महर्षि कणाद का वैशेषिक दर्शन एक अध्ययन	प्रियंगम जी झा	127
39. प्रेमचंद द्वारा रचित उपन्यास निर्मला की प्रासंगिकता	रितु रानी	130
40. महर्षि कपिल एवं उनका सांख्यदर्श	संगम जी झा	132
41. संस्कृत साहित्य में सृष्टिक्रम	डॉ. सौरभ, डॉ. प्रवीण बाला	135
42. राही मासूम रजा के उपन्यास 'आधा गाँव' में निरूपित समाज	कमलेश	137
43. भारतेन्दु के प्रमुख नाटकों में हास्य-व्यंग्य	डॉ. वीणा गांधी	139
44. सतत और व्यापक मूल्यांकन के प्रति माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की अभिवृत्ति का अध्ययन	अभिषेक दुबे, डॉ. नीता सिंह	142
45. गुरू जाम्भोजी की सांस्कृतिक चेतना की प्रासंगिकता	किरण मयी	147
46. अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन	अनिता सिंह, डॉ. माधवी पांडे	149
47. महिलाओं पर घरेलू हिंसा, उसके कारण एवं निदान	किरण देवी	153
48. स्वामी विवेकानन्द के दर्शन में शांति शिक्षा के तथ्यों का अध्ययन तथा शैक्षिक जगत में प्रासंगिकता	बृजभूषण राय, डॉ. आशीष कुमार बाजपेयी	156
49. हरियाणा में फसल प्रतिरूप में बदलाव	मनीषा	160
50. जगदीश चंद्र कृत 'धरती धन न अपना' उपन्यास का आलोचनात्मक विवेचन	सुमित कुमार	165
51. प्रत्याहार का दार्शनिक पक्ष : एक विवेचनात्मक अध्ययन	नम्रता चौहान, चंचल सूर्यवंशी, निशा सैनी	167
52. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि पर उनमें व्याप्त तनाव के प्रभाव का अध्ययन	राकेश कुमार, प्रो., (डॉ.) मोहन सिंह पंवार	170
53. जैनदर्शन में निमित्त-नैमित्तिक और उपादान-उपादेय संबंध	प्रतीति जैन	173
54. शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन	श्यामल कुमार यादव, प्रो., (डॉ.) मोहन सिंह पंवार	176
55. सांख्यदर्शन में सत्कार्यवाद सिद्धान्त	वीरेन्द्र कुमार त्रिपाठी	179
56. समाजोत्थान में राम काव्य की भूमिका एक सांगीतिक अध्ययन	राकेश	180
57. पूर्व माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन	सत्यम शर्मा, डॉ. एन.के. कौशिक	183
58. इंटर्नशिप कार्यक्रम के प्रति शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन	संगीता, सुनीता गोदियाल	188
59. महिलाओं के पी०सी०ओ०डी० रोग पर योग के प्रभाव का अध्ययन	अर्चना दुबे, प्रो.(डॉ०) सरस्वती काला	194
60. संस्कृत व्याकरण पढ़ने की सरल विधि	डॉ. प्रज्ञा	200
61. मीडिया में दिव्यांग की प्रस्तुति : मानव अधिकार के संदर्भ में	डॉ. यशार्थ मंजुल, डॉ. हिमांशु शेखर झा	203
62. भारतीय संस्कृति में योग परम्परा का इतिहास-एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	विनय कुमार भारती, डॉ. लीना झा	210
63. भारत में मानवाधिकारों व सामाजिक न्याय की स्थिति : दलितों के सन्दर्भ में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ. जितेन्द्र कुमार	216
64. श्रीमद्भगवद्गीता का अभिप्रेरणात्मक पक्ष :(नेतृत्व वर्ग के संदर्भ में)	कुलदीप	221
65. शिवस्तोत्रों का दार्शनिक विवेचन	ताहसीन फातिमा	223
66. महाभारत में वास्तु : एक अध्ययन	सोनाली	225
67. आर्षार्वाचीन सन्तान साधनोपायों की समीक्षा	विकास शर्मा	227

ISSN 2278 - 0327

सामाजिक परिवर्तन में उच्च शिक्षा की भूमिका

डॉ. हरेन्द्र कुमार
असि०प्रो० एवं अध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग
जे०एस०हिन्दू (पी०जी०) कालिज, अमरोहा

''सा विद्या या शास्ति, सा विद्या या विमुक्तये''

अर्थात् जो हमें अनुशासित करती है वह विद्या है जो हमें मुक्ति प्रदान करती है वह विद्या है। इस प्रकार स्पष्ट है कि शिक्षा ऐसा प्रकाश पुंज है जो व्यक्ति को अन्धकार से मुक्त कर प्रकाश की ओर अग्रसर करती है, जिससे व्यक्ति ज्ञान के आधार पर समस्त प्रकार के भेदभाव को समाप्त कर समभाव की कल्पना को साकार करने का प्रयास करता है। शिक्षा एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है जो समाजीकरण का माध्यम होने के साथ-साथ शोषण की मुक्ति का साधन भी है। शिक्षा का आज के ज्ञान केन्द्रित एवं नियन्त्रित दौर में व्यक्ति एवं समाज के विकास से गहरा रिश्ता है क्योंकि शिक्षा ही वह अवयव है जिसके द्वारा व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र की प्रगति के द्वार खुलते हैं। शिक्षा न केवल व्यक्ति समूह को जागरूक करने का कार्य करती है बल्कि शिक्षा के माध्यम से ही व्यक्तियों में चेतना का विकास होता है। इसी कारण वह सामाजिक कुरीतियों, असमानता एवं अंधविश्वासों के विरुद्ध खड़ा होकर एक स्वस्थ्य समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में योगदान देता है। वास्तव में शिक्षा सशक्तिकरण का सबसे सशक्त माध्यम है। एक राष्ट्र के सर्वांगीण विकास एवं जनमानस के जीविकापार्जन के सतत उपार्जन में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान होता हैं।

उच्च शिक्षा का आशय सामान्य रूप से सबको दी जाने वाली शिक्षा से ऊपर किसी विशेष विषय या विषयों में विशेष, विशद या सूक्ष्म शिक्षा से है। यह शिक्षा के उस स्तर का नाम है जो विश्वविद्यालयों, व्यावसायिक विश्वविद्यालयों एवं प्रौद्योगिकी संस्थानों के माध्यम से दी जाती है। उच्च शिक्षा की ऐतिहासिक परम्परा पर नजर दौड़ाने पर हम पाते है कि भारतीय परिप्रेक्ष्य में शिक्षा के इस स्वरूप में व्यापकता थी और हमारा देश इसी विशदता के साथ इतिहास में प्रतिष्ठित रहा। शिक्षा के केन्द्र गुरूकुलों की यह विशेषता थी कि उनमें प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा शिक्षाध्यापक प्रणाली से संचालित होती थी। सबसे ऊपर के छात्र अपने से नीचे वर्ग के छात्रों को पढ़ाते थे। यद्यपि शिक्षा के इस स्तर पर ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों का ही अधिकार था फिर भी नित्यधर्म, स्वच्छता, शील और शिष्टाचार की शिक्षा प्रत्येक वर्ग के छात्रों को दी जाती थी। शिक्षा के केन्द्र रूपी इन गुरूकुलों में नीतिशास्त्र, इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र, दण्डनीति, सैन्यशास्त्र, अर्थशास्त्र, धनुर्वेद तथा आयुर्वेद आदि विषयों पर उच्चतम शिक्षा दी जाती थी। जब छात्र सब विधाओं में पूर्णत: पारंगत हो जाते थे तभी वे स्नातक माने जाते थे।

स्वतन्त्रता के बाद संविधान में विश्लेषित भारत के लोकतान्त्रिक, न्यायपूर्ण, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय स्वरूप को उच्च शिक्षा ने ही सुदृढ़ किया है। संविधान की इसी संकल्पना के कारण ही जनमानस के बीच स्वतन्त्रता, समानता एवं भाईचारे की भावना का विकास सतत हो रहा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् से ही इस भारत ने अपनी साक्षरता एवं उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति की है। गुरू-शिष्य की परम्परा वाला यह देश आज उच्च शिक्षा के सन्दर्भ में विश्व में अमेरिका व चीन के बाद तीसरी बड़ी शक्ति के रूप में विराजमान है। एक अध्ययन के अनुसार दुनिया में हर चौथा स्नातक भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली का उत्पाद है। आज भारतीय उच्च शिक्षा व्यवस्था अपने विशाल स्वरूप एवं सर्वोत्तम ज्ञान के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध है। आज हमारा देश अपने स्तर को ज्ञान आधारित व्यवस्था के रूप में स्थापित करने पर बल दे रहा है। ऐसी परिस्थिति में उच्च शिक्षा का लक्ष्य ऐसे विचारों एवं नवाचारों के विकास के लिए एक प्रगतिशील केन्द्र स्थापित करने से है जिसके माध्यम से जनमानस को बौद्धिक स्तर पर सुदृढ़ करने के साथ देश के सामाजिक एवं आर्थिक विकास की गतिशीलता प्रदान की जा सकें।

उच्च शिक्षा नई खोजों, नये ज्ञान एवं उद्यमशीलता का आधार है। इसी के कारण व्यक्ति के साथ-साथ देश के विकास एवं समृद्धि की शुरूआत होती है। अत: देश ने अपनी उच्च शिक्षा के स्वरूप का सृजन ऐसी अवधारणा के रूप में करना प्रारम्भ कर दिया जो समाज, मानवीय मूल्यों के साथ-साथ आर्थिक पहलुओं के हिसाब से भी प्रासंगिक है। समस्या के समाधान की गुणवत्ता एवं कलात्मक सोच, अभ्यास के माध्यम से सीखने की प्रवृत्ति और आत्मविश्वास के साथ अपनी बात को बढ़ावा देने की आवश्यकता आज की उच्च शिक्षा के प्रमुख आधार है। इसी कारण भारतीय उच्च शिक्षा का ढाँचा एवं व्यवस्था काफी विकसित है और मानवीय रचनात्मक एवं बौद्धिक पहलुओं से जुड़ी लगभग समस्त विधाओं कला, मानविकी, गणितीय, प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञान, इंजीनियरिंग तकनीक, चिकित्सा, कृषि शिक्षा, वाणिज्य और प्रबन्धन, संगीत तथा राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं आदि में शिक्षण-प्रशिक्षण की सुविधा भारतीय उच्च शिक्षा में विद्यमान है।

आजादी से पूर्व एवं बाद के प्रारम्भिक वर्षों में इस सामाजिक

तथ्य से शायद ही कोई व्यक्ति अनभिज्ञ होगा कि हमारे देश के सामाजिक ढाँचे में विद्यमान कुछ जातियों एवं वर्गों का प्रभुत्व सम्पूर्ण संसाधनों पर था। इस प्रभुत्व के कारण ये जातियां समाज की अन्य जातियों यथा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति और अति पिछड़े वर्ग की अपेक्षा अधिक सुविधा सम्पन्न थी। इसी कारण हमारे देश में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति और अति पिछड़े वर्ग के लोग अन्य वर्गों के सापेक्ष अत्यन्त वंचित, शोषित एवं गरीब थे। इस सामाजिक व्यवस्था को संज्ञान में रखकर संविधान निर्माताओं ने एक ऐसे संविधान का निर्माण किया जिसने अपेक्षाकृत संसाधन विहीन एवं वंचित और शोषित समूहों विशेषकर अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिए उनके पारम्परिक स्वरूप पर आधारित तथा भौगोलिक रूप से सामाजिक अलगाव के कारण विशेष सुरक्षा एवं सकारात्मक उपायों का प्रावधान किया। संविधान के माध्यम से केन्द्र एवं राज्य सरकारों ने समय-समय पर इन वंचित एवं सुविधा विहीन वर्गों के कल्याण के लिए भेदभाव रहित समाज बनाने तथा शोषण से मुक्ति प्रदान करने हेतु कानूनों का निर्माण किया जिसके कारण इन वर्गों के लोगों को छुआछूत जैसी सामाजिक बुराई से मुक्ति प्राप्त हुयी साथ ही पुनर्वास, शिक्षा एवं रोजगार के सम्बन्ध में इन्हें आरक्षण प्रदान करने के प्रावधान किये गये, जिससे इनमें सामाजिक एवं आर्थिक समानता स्थापित हो सके।

हाल ही के वर्षों में संविधान सम्मत कानूनों एवं नियमों का लाभ उठाकर अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वर्गों में एक पढ़ी-लिखी मध्य वर्ग की पीढ़ी का अभ्युदय हुआ। इस उदित नये समाज के तथ्य ने यह सिद्ध किया कि कठोर सामाजिक ढाँचे के भीतर बदलाव लाने में शिक्षा एवं रोजगार ने सकारात्मक भूमिका का निर्वाह किया जिससे समाज का यह वंचित समूह अन्य वर्गों के समानान्तर खड़ा हो सका है। बेशक यह सत्य ही है कि उच्च शिक्षा एवं सरकारी नौकरियों में आरक्षण का प्रावधान भारत में आजादी के बाद अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के बीच एक नये मध्य वर्ग के निर्माण का प्रमुख साधन बना। उच्च शिक्षा सम्बन्धी किये गये प्रावधानों के कारण अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोगों की पहली पीढ़ी के ज्यादा से ज्यादा छात्रों को सामाजिक बदलाव सम्बन्धी बाधा पार करने की प्रेरणा प्राप्त हुई। इस बदलाव के कारण उनका सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जैसे मोर्चे पर सशक्तीकरण हुआ। इस सशक्तीकरण ने शैक्षणिक एवं सामाजिक स्तर पर व्यापक प्रभाव डाला। सरकार प्रदत्त योजनाओं एवं नीतियों ने अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के लोगों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए सशक्त बनाया और उच्च शिक्षा के कारण उन्हें अपनी सामाजिक एवं राजनीतिक हैसियत को सुधारने और उसे स्थायी बनाने में मदद प्राप्त हुई। इस कारण उन्होंने अपने लिए शिक्षा प्राप्त करने के नये अवसरों की तलाश शुरू कर दी।

वास्तव में सामाजिक सशक्तीकरण की इस प्रक्रिया ने समाज के वंचित एवं कमजोर समूहों के लोगों में यह असर डाला कि उन्होंने रोजगार के लिए अच्छी और प्रासंगिक उच्च शिक्षा की आशाओं को पालना शुरू कर दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के बीच साक्षरता का स्तर पहले की अपेक्षा बढ़ने लगा और आज ड्राप आउट जैसी समस्या में कमी लायी है। आज इन वर्गों के लोगों में प्राथमिक से माध्यमिक एवं माध्यमिक से उच्च शिक्षा की तरफ अग्रसर होने के परिणामों में व्यापक सुधार हुआ है।

सामाजिक एवं आर्थिक सम्पन्नता के स्तर ने उच्च शिक्षा में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की सहभागिता को बढ़ाया है जिसके कारण इन वर्गों के लोगों के जीवन स्तर में सुधार हुआ और इनकी सामाजिक एवं आर्थिक हैसियत भी बढ़ गयी है। पिछले पन्द्रह सालों में उच्च शिक्षा में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के सकल नामांकन अनुपात में आशातीत सुधार हुआ। जहाँ एक ओर 2005-06 में यह आँकड़ा 6.6 प्रतिशत था, वही यह स्तर 2018-19 में बढ़कर 15.13 प्रतिशत हो गया। सरकारी नीतियों में इस सम्बन्ध में जोर देने के कारण इन दरों में 1999-2000 से सतत सुधार देखने में मिल रहा है। नई सहस्राब्दी के पहले दशक में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में संस्थानों के निर्माण का कार्य तीव्रगति से सम्पन्न हुआ जिसमें अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के छात्रों का सकल नामांकन अनुपात 5.09 प्रतिशत से बढ़कर लगभग 20.19 प्रतिशत हो गया। यह आशातीत वृद्धि सिर्फ आरक्षण के नियमों के कारण हुयी।

2000 से 2015 के दौरान उच्च शिक्षा में यद्यपि सभी समूहों की भागीदारी बढ़ी लेकिन अनुसूचित जाति का स्तर ज्यादा तीव्र रहा जिसमें इस वर्ग की महिलाओं की वृद्धि ज्यादा हुयी। उदाहरणस्वरूप 2005-06 में अनुसूचित जाति की महिलाओं का 6.4 प्रतिशत और अनुसूचित जनजाति की महिलाओं का 4.7 प्रतिशत से बढ़कर 2014-15 में क्रमश: 18.2 प्रतिशत व 12.3 प्रतिशत की वृद्धि उच्च शिक्षा सम्बन्धी संस्थानों में दर्ज की गयी।

सामाजिक रूप से वंचित समूह के इन लोगों की उच्च शिक्षा सम्बन्धी यह सहभागिता इन समूहों के सामाजिक और आर्थिक सशक्तीकरण के लिए शिक्षा की आवश्यकता को लेकर एक नई जागरूकता का संकेत है। इसका यह अर्थ भी है कि उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों के स्तर को अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोगों ने देखा और अनुभव किया कि अपने सामाजिक व आर्थिक स्तर में बदलाव लाने का विकल्प उच्च शिक्षा ही है। क्योंकि उच्च शिक्षा प्राप्त लोग ही सामाजिक सशक्तीकरण की प्रक्रिया से जुड़े थे। आज अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के छात्र/छात्रायें सिविल सेवाओं में सर्वोच्च स्तर पर नये मुकाम प्राप्त कर रहे हैं और इंजीनियरिंग, चिकित्सा, कानून तथा विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में शिक्षण

जैसे व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में भी सहभागिता का स्तर बदल रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप हाल के वर्षों में इन जातियों के पेशेवर कामकाजी प्रोफाइल एवं मध्य वर्गीय ढाँचे में भी बदलाव आया है।

यद्यपि यह तथ्य भी प्रमाणिक है कि चतुर्थ श्रेणी की सरकारी एवं प्राइवेट स्तर के क्षेत्रों की नौकरियों में ज्यादातर अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोगों की संख्या है। इसका कारण शायद जल्द स्कूल छोड़कर रोजगार प्राप्त करने की लालसा भी हो सकती है फिर भी निचले स्तर, पारम्परिक कामकाज से उच्च स्तर पर बढ़ने व आधुनिक कार्यशैली को अपनाने के कारण अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग के लोगों में काफी सामाजिक परिवर्तन हुये है। उदारीकरण के इस दौर में इन वर्गों के लोगों में ज्यादा से ज्यादा व्यावसायिक उच्च शिक्षा एवं रोजगार प्राप्त करने की प्रवृत्ति के कारण विदेश जाने के स्तर में भी वृद्धि हुयी है और अपने मेजबान देशों में वे प्रवासी समूह भी बना रहे है। यह वंचितों एवं शोषित वर्गों द्वारा प्राप्त किया गया जबरदस्त सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तीकरण है।

इतना स्तरीय बदलाव आने बावजूद भी वर्तमान समय में इन वर्गों के विरुद्ध अत्याचार शोधन और भेदभाव के मामले संज्ञान में आते रहते हैं जो सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तीकरण के स्तर को कमजोर कर देते हैं। इसके साथ ही कई अन्य चितायें भी स्पष्ट है। सामाजिक रूप से वंचित समूहों पर उच्च शिक्षा के निजीकरण का प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। दरअसल निजीकरण की इस प्रक्रिया ने वंचित समूहों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने की संभावनाओं को सीमित कर दिया है। इसके दो आधार उभरकर आते हैं। पहला यह है कि वर्ष 2000 के बाद उच्च शिक्षा में निजी पेशेवरों की बढ़ोत्तरी हुयी है और वंचित समूहों के एक बड़े भाग तक इसकी पहुँच नहीं है क्योंकि इन संस्थानों में आरक्षण का प्रावधान नहीं है जिस कारण उच्च शिक्षा में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के सदस्यों की अधिकांश सहभागिता सामान्य शिक्षा तक ही सीमित हो गयी जिससे रोजगार की संभावनायें भी कम रह गयी।

दूसरी बात यह है कि निजी क्षेत्र की नौकरियों में आरक्षण का प्रावधान नहीं है, जहाँ बड़े पैमाने पर रोजगार के अवसर सृजित है। इस परिस्थिति में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के छात्र एवं छात्रायें सिर्फ शिक्षित बेरोजगार बनकर रह जा रहे हैं। इन दोनों तथ्यों ने आजादी के बाद तीव्र हुयी सामाजिक परिवर्तन की रफ्तार को धीमा करने का कार्य किया है।

इसके अतिरिक्त लैगिंक समानता का मुद्दा भी गंभीर बना हुआ है। यद्यपि उच्च शिक्षा में महिलाओं का स्तर बढ़ा है फिर भी वे पुरुषों के मुकाबले काफी पीछे है। मुख्य बात यह है कि शहरी इलाकों की वंचित समूहों की महिलाओं की स्थिति उनके ग्रामीण अंचलों में उपस्थित उनके समकक्षों के मुकाबले काफी अच्छी है। इसका अर्थ यह है कि महिलाओं का एक बड़ा वर्ग उस सामाजिक परिवर्तन का फायदा नहीं उठा सका जो उच्च शिक्षा की व्यापक उपलब्धता के आधार पर विकसित हुआ। शिक्षित लोगों से जुड़े रोजगार की स्थिति की निराशाजनक तस्वीर के बीच चिंता का एक बड़ा कारण यह भी है कि सरकारी क्षेत्र में नौकरियां लगातार कम हो रही है। उदारीकरण के बाद शुरू हुये निजीकरण के दौर ने सरकारी नौकरियों के विस्तार को रोक दिया है और निजी क्षेत्र में किसी भी प्रकार का आरक्षण न होने के कारण शिक्षित वंचित समूह के लोगों की सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तीकरण की प्रक्रिया सुस्त होने के साथ-साथ पूर्णतः रूक सी गयी है। रोजगार की सहूलियत न मिल पाने के कारण इन सामाजिक समूहों की उच्च शिक्षा में दिलचस्पी और भी कम होगी।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि पिछले कुछ दशकों में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति समाज के लोगों की सामाजिक स्थिति में काफी बदलाव आये हैं। यद्यपि अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोगों के लिए बदलाव की यह प्रक्रिया पहले से तैयार है और वे उच्च शिक्षा के महत्व को लेकर ज्यादा जागरूक हो रहे है जिससे उन्हें समतावादी उच्च शिक्षा प्रणाली एवं समाज प्राप्त करने में मदद मिलती है। इस बात में कोई संदेह नहीं कि बेहतर गुणवत्ता वाली उच्च शिक्षा की उपलब्धता एवं उसके बाद प्राप्त सुरक्षित रोजगार के अवसरों ने ऐतिहासिक रूप से हाशिए में रहे इन समूहों के लोगों को सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तीकरण का महत्वपूर्ण आयाम उपलब्ध कराया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. **सिंह, एन0के0** (2000); शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ.सं.-24
2. **श्री निवास, एम0एच0** (2002); आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, एशिया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ.सं.-135
3. **पाण्डेय, जीतेन्द्र कुमार** (2019); योजना पत्रिका, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, सितम्बर, पृ.सं.-61
4. **देवेन्द्र, किरन** (2009); समकालीन भारत में दलित चेतना, शक्ति बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, पृ.सं.-28
5. **शाइन जैकब** (2019); योजना पत्रिका, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, अगस्त, पृ.सं.-58
6. **अहमद, इम्तियाज** (2005); उच्च शिक्षा और दलित चेतना, मैकमिलन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं.-58
7. **Singh, A.K. (2013);** Dawn of Dalit, The Pioneer.
8. **कुमार, नरेन्द्र एवं राज, मनोज** (2006); पंचायतों में दलित नेतृत्व, रावत प्रकाशन, जयपुर, पृ.सं.-128
9. **श्रीनिवास, आर0एस0 एवं सुंदरेषा, डी0एस0** (2018); योजना पत्रिका, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, अगस्त, पृ.सं.-23
10. **इण्डिया टुडे,** 13 अगस्त, 2018
11. भारत, 2017 प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत **सरकार**

ISSN 2278 - 0327

प्रकृति के संवाहक घटकों में पर्यावरणीय सञ्चेतना

(किरातार्जुनीयम् के सन्दर्भ में)

शिखा

शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग

जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली

यह समस्त सृष्टि प्रकृति–चक्र को सञ्चालित करने वाले विविध प्राकृतिक घटकों से व्याप्त हैं। समस्त संस्कृत साहित्य में सृष्टि संरचना से लेकर मानव सभ्यता के विकास में प्राकृतिक तत्त्वों के योगदान के सूक्ष्म स्वरूप का विश्लेषण किया गया है। प्रकृति के पञ्च महाभूत तत्त्व सृष्टि में जीवन का संचार करते हैं तथा अन्य उपादान समिष्ट रूप में पर्यावरण एवं पारिस्थितिकीय तन्त्र के सञ्चालन में अहम् भूमिका का निर्वाह करते हैं। संस्कृत साहित्य के कवि मनुष्य की भावनाओं को समझने तथा उन्हें परखने में जितने निपुण हैं। उतने ही वे प्रकृति के रहस्यों को उद्घाटित करने में समर्थ हैं। इसीलिए पर्यावरण चिन्तन की परम्परा वैदिक साहित्य से लेकर लौकिक साहित्य तक सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। लौकिक साहित्य में पर्यावरण वर्णन की यह परम्परा रामायण, महाभारत से प्रारम्भ होकर कालिदास के काव्यों में चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुयी। यही कारण है महाकवि कालिदास से प्रभावित होकर परवर्ती कवियों ने भी पर्यावरण का बड़ा जीवन्त एवं सशक्त वर्णन किया है। पर्यावरण वर्णन की इस परम्परा में कवि भारवि ने 'किरातार्जुनीयम्' में पर्यावरण के विविध घटकों – पर्वत, नदी, वायु, वन–वृक्ष (औषधि) जीव– जन्तु , सूर्य, चन्द्र , ताप, तुषार, शरद्, हेमन्त इत्यादि ऋतुओं का यथावसर सुन्दर वर्णन किया हैं, जो कवि के सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि तथा पर्यावरण अवलोकन की अपरिमित दक्षता को दर्शाता है। प्रकृति के संवाहक घटक वे तत्त्व है, जो प्रकृति की संरचना में सहायक होने के साथ–साथ उसकी नैसर्गिक सुषमा को उत्तरोत्तर बनाये रखते हैं तथा सृष्टि के सञ्चालन में अपना योगदान देते हैं। तत्कालीन कवि पर्यावरण के सभी (जैविक एवं अजैविक) तत्वों को मानवीय भावनाओं से सम्पृक्त करके देखते थे। कवि भारवि ने भी हिमालय, उसके समीपस्थ चोटियों एवं ग्राम्य–स्थली पर्यावरणीय तत्वों को मानवीय भावनाओं से ओत–प्रोत करते हुए चित्रित किया है–

हिमालय विभिन्न प्रकार के रत्नों को धारण करते हुए गंगा, सतलज, ब्रह्मपुत्र जैसी अनेक जीवनदायिनी नदियों को भी अपनी गोद से प्रादुर्भूत करता है। ये नदियाँ भूमि के एक विस्तृत भूभाग को सिंचित करती हुयी पृथिवी पर जीवन का संचार करती है तथा अपने गर्भ में विभिन्न प्रकार के रत्नों को भी धारण करती हैं –

दधतमाकरिभिः करिभिः क्षतेः समवतारसमैरसमैस्तटैः।
विविधकामहिता महिताम्भसः स्फुटसरोजवता जवना नदीः।।[1]

हिमालय से निःसृत होने वाली यह नदियाँ अनेक रत्नों की खान हैं। नदियों में उपलब्ध विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक तत्वों से तत्कालीन नदी के समृद्धिशाली स्वरूप का प्रकटीकरण होता है। उसके जल में खिले कमलवन से जल की स्वच्छता एवं पवित्रता द्योतित होती है तथा अतितीव्र वेग अगाध जल को सूचित करता है। रत्नों एवं कमल वनों उपलब्धता से प्रतीत होता है कि तत्कालीन पर्यावरणीय तत्त्वों का अन्धाधुन्ध दोहन नहीं था। लोगों में पर्यावरण के प्रति सञ्चेतना की भावना व्याप्त थी। मनुष्य पर्यावरणीय तत्त्वों का उपयोग भोग–विलास के लिए नहीं आवश्यकतानुसार करते थे। हिमालय पर्वत पर विद्यमान सर्वाङ्ग सुन्दर प्रकृति एवं परिस्थितिकी तन्त्र का अद्भुत सन्तुलन दर्शनीय है–

विततशीकरराशिभिरुच्छितैरूपलरोधविवर्तिभिरम्बुभिः।
दधतमुन्नातसानुसमुद्धातां धृतसितव्यजनामिव जाह्नवीम् ।।
पृथुकदम्बकदम्बराजितं ग्रंथिततमालतमालवनाकुलम् ।
लघुतुषारतुषारजलषच्युतं धृतसदानसदाननदंतिनम् ।।
व्यथितसिन्धुमनोरशनैः शनैरमरलोकवधूजघनैर्घनैः।
फणभृतामभितो विततं ततं दयितरम्यलताबकुलैः कुलैः।।[2]

हिमालय के शिखर कलकल नाद कर बहती हुयी नदियों से युक्त हैं, छोटे जलकणों से युक्त बर्फीले झरने है, ताल–तमाल एवं कदम्बादि से विद्यमान पंक्तिबद्ध वृक्षों से सम्पूर्ण वनप्रान्त सुशोभित हैं। नदियाँ कमलपुष्पों से परिलासित हैं। क्रीडा करते हुए मदमत्त हाथी है। केसर एवं लताओं से प्रेम करने करने वाले सर्पों के समूह से व्याप्त विस्तृत क्षेत्र वाला यह हिमालय पर्वत हैं, हिमालय पर्वत पर स्थित सभी पर्यावरणीय तत्त्व अत्यन्त समृद्ध एवं शुद्ध रूप में विद्यमान हैं। वहाँ पर ऐसा कोई वृक्ष नहीं जो पुष्पित न हो, ऐसा कोई शिखर नहीं जो रत्नराशियों से परिपूर्ण न हो, कन्दराएँ लतागृहों से परिपूर्ण हैं'[3]। हिमालय का समस्त वातावरण पर्यावरण के समस्त तत्त्वों से परिलासित होकर सुशोभित हो रहा था। हिमालय पर्वत अनेक प्रकार के वृक्षों, लताओं, एवं रत्नों को धारण करने के साथ ही विभिन्न प्रकार के औषधियों को भी प्रादुर्भूत करता हैं–

ग्रहविमानगणानभितो दिवं ज्वलयतौषधिजेन कृशानुना ।
मुहुरनुस्मरयन्तमनुक्षपं त्रिपुरदाहमुमापतिसेविनः।।[4]

हिमालय शिखर पर स्थित प्रदीप्त होती हुयी दिव्यौषधियाँ अपने अग्नियों के प्रकाश से स्वर्ग, चन्द्र, ग्रहों, एवं चारों दिशाओं को

प्रकाशित कर रही है। कवि विशाखदत्त ने भी 'हिमालय को दिव्यौषधियों का भण्डार कहा है'[5]। हिमालय पर प्राप्त होने वाली इन दिव्यौषधियों का प्रभाव आदिकवि वाल्मीकि वर्णित रामायण के युद्धकाण्ड में दर्शनीय है। युद्धक्षेत्र में इन्द्रजीत के द्वारा घायल लक्ष्मण के लिए जाम्बवन्त ने श्री हनुमान जी को हिमालय से मृतसञ्जीवनी, विशल्यकरणी, सुवर्णकरणी तथा सन्धानकरणी नामक चार महौषधियों को लाने का आदेश दिया था, वहाँ विद्यमान औषधियाँ अपने दिव्य प्रकाश से दसों दिशाओं को प्रकाशित करती थी।[6]

वनस्पतिजन्य औषधियों पर आधारित पर्यावरणीय संचेतना का परिचय देते हुए कवि भारवि हमें यह सन्देश देते है- वनस्पतिजन्य औषधियाँ मानव जीवन के लिए अमृततुल्य होने के साथ-साथ पर्यावरण प्रदूषण के शोधन में भी सहायक होती हैं। हिमालय क्षेत्र की पर्यावरणीय सम्पन्नता को देखकर कवि ने इसकी तुलना चेतनयुक्त समृद्धिशाली राज्य के राजा के गुणों से की हैं-

गुणसम्पदा समधिगम्य परं महिमानमत्र महिते जगताम्।
नयशालिनि श्रिय इवाधिपतौ विरमन्ति न ज्वालितुमौषधय:।।[7]

जिस प्रकार नीतिकुशल राजा की सम्पत्तियाँ (सन्धि- विग्रह) के यथावत्प्रयोग से वृद्धि को प्राप्त होती है। उसी प्रकार ही हिमालय क्षेत्र के प्रभाव से (जल, वायु, मृदा इत्यादि प्राकृतिक तत्वों के शुद्ध होने कारण) औषधियाँ सदा प्रज्जवलित होती हैं। कवि कालिदास ने भी हिमालय के शिखरों को रत्नों एवं औषधियों की प्रभा से प्रज्ज्वलित होते हुए प्रतिबिम्बित किया हैं तथा प्राकृतिक संसाधनों की प्राप्ति के लिए हिमालय की वत्स स्वरूप में परिकल्पना की है।[8]

सघन वृक्षों वाले वनों से युक्त हिमालय पर स्थित वन परितन्त्र का समृद्ध एवं सन्तुलित स्वरूप दर्शनीय है। यह विभिन्न प्रकार के जीव जन्तुओं का आश्रयस्थल रहा है। वृक्षों की सघनता के कारण यहाँ के मार्ग अत्यन्त दुर्गम हैं। यहाँ के वनों में कुररीगण नित्य शब्द करते है, वृक्ष पुष्पों से झुके हैं, जल कमल से व्याप्त है, नदियों के तट वृक्षों से युक्त शीतल जल को धारण करते हुए हथियों के ताप शान्त करने वाले हैं।[9]

कैलास की प्राकृतिक शोभा के आद्योपान्त वर्णन से यह द्योतित होता है कि इस महाकाव्य के रचना के समय वायुमण्डल के समान ही स्थलमण्डल भी पर्यावरण प्रदूषण से मुक्त एवं प्राकृतिक सुषमा से परिपूर्ण था। कैलास क्षेत्र में खिले हुए स्थलपद्यमिनियों से उड़ती हुयी परागों की अद्वितीय शोभा से सम्पूर्ण नभमण्डल अत्यन्त रमणीय प्रतीत हो रहा था -

उत्फुलस्थलननलिनीवनादमुष्मादुद्धुत: सरसिजसम्भव: पराग:।
वात्याभिर्वियति विवर्तित:समन्ता दाधत्ते कनकमयातपत्र लक्ष्मीम्।।[10]

स्थलपद्म वनों से बवंडर द्वारा उड़ाये गये कमल परागकणों के आकाश में मंडलाकार छा जाने से सम्पूर्ण नभमण्डल सोने के छत्र के समान शोभानीय प्रतीत होता है। पर्यावरणीय तत्त्वों की नैसर्गिक क्रियाओं के द्वारा उत्पन्न ऐसे रमणीय एवं मनोहारी प्राकृतिक स्वरूप के वर्णन के कारण कवि भारवि को 'कनकमयातपत्र' पद से विभूषित किया गया है।

कैलास की भूमि पर उत्पन्न हुयी दूर्वा से सम्पूर्ण स्थली सस्य-श्यामला होकर अत्यन्त रमणीयक शोभा को धारण कर रही थी -

रम्या नवद्युतिरपैति न शाद्वलेभ्य: श्यामीभवन्त्यनुदिनं नलिनीवनानि।
अस्मिन्विचित्रकुसुमस्तबकाचितानां शाखाभृतां परिणमन्ति न पल्लवानि।।[11]

कैलास पर्वत पर घास के मैदान नित्य नवीन शोभा को धारण करते थे। कमलवन प्रतिदिन हरीतिमा को धारण करते थे। विचित्र पुष्पों के गुच्छों को धारण करती हुयी शाखायें कभी पीत वर्ण की नहीं होती थी। जलाशय सदा स्वर्णिम कमलों से व्याप्त रहते थे। महाकवि कालिदास ने भी कैलास की भूमि को कल्पवृक्षों से युक्त तथा मानसरोवर को स्वर्णिम कमलों से संयुक्त बताया हैं।[12] इसके प्राकृतिक सौन्दर्य से अभिभूत अप्सराएँ नित्य यही वास करती हैं।

इन्द्रपुत्र अर्जुन के सुवर्णमय इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचने पर वहाँ स्थित सभी वृक्ष एवं वन्यजीव प्रसन्नता का अनुभव कर रहे थे- जिस प्रकार किसी आगन्तुक के आने पर गृहस्थ लोग उसका सत्कार करते है उसी प्रकार वृक्षों एवं पक्षियों ने अर्जुन का सत्कार किया-

तमनिन्द्यवन्दिन इवेन्द्रसुतं विहितालिनिकणजयध्वनय:।
पवनेरिताकुलविजिह्मशिखा जगतीरुहोऽवचकरु: कुसुमै:।।[13]

कवि भारवि ने यहाँ पर प्राकृतिक तत्वों में मानवीय भावनाओं एवं क्रियाओं का सुमधुर गुम्फन किया हैं। अर्जुन के स्वागत में मानों भ्रमर अपने गुञ्जार के माध्यम से जय-जयकार की ध्वनि कर रहे हो तथा वृक्ष अपने शाखाग्रों से पुष्प की वर्षा कर रहे हो, प्रतीत हो रहा था कि जैसे पशु- पक्षी तथा वृक्ष अर्जुन के प्रति अपना गहरा प्रेमभाव प्रकट कर रहे हो। प्रकृति सदा सहचरी की भाँति मनुष्य के दु:ख में दुखी और सुख में सुखी होती है जैसे अभिज्ञानशाकुन्तलम् में शकुन्तला की विदाई पर सभी जीव- जन्तु एवं पेड़ पौधे खिन्न हो जाते है।[14]

कमल परागों से सुगन्धित एवं जाह्नवी के तरङ्गों से शीतल वायु ने मित्रतुल्य अर्जुन का आलिङ्गन किया।[15] वन में प्रवेशोपरान्त अर्जुन ने देखा कि सभी जीव आपसी वैमनस्य भाव का परित्याग कर बन्धुत्व की भाँति प्रेमपूर्वक एक-दुसरे का रक्षण करते हुए निवास कर रहे हैं-

गतान्पशुनां सहजन्मबन्धुतां ग्रहाश्रयं प्रेम वनेषु बिभ्रत:।
ददर्श गोपानुपधेनु पाण्डव: कृतानुकारानिव गोभिराजवि।।[16]

अर्जुन ने जंगली पशुओं में बन्धुत्व की भाँति प्रेम को देखकर ऐसा अनुभव किया कि मानों गृह प्रेम को वन के जीवों ने धारण कर लिया हो। कवि भारवि ने इस महाकाव्य में यह संदेश दिया है कि मनुष्य को भी आपसी वैर का परित्याग कर सर्वजनहिताय एवं सर्वजनसुखाय की कामना करते हुए प्रेमपूर्वक रहना चाहिए। पर्वत पर स्थित सघन वनावालियों के शान्त एवं सौम्य वातावरण का स्वरूप

दर्शनीय है –

अनुसानु पुष्पितलतावितति: फलितोरुभूरुहविविभक्तवन:।
धृतिमाततान तनयस्य हरेस्तपसेऽधिवस्तुमचलामचल:।। [17]

उस पर्वत के प्रत्येक शिखर पर फल, फूल से युक्त विशाल वृक्षों वाले निर्जन वन थे। पर्वत के शान्त एवं एकान्त वातावरण ने पृथापुत्र अर्जुन के मन को तपस्या के लिए अत्यधिक उत्साहित कर दिया, साधना में लीन होने पर अर्जुन का मन हिंसक क्रोधादि दोषों से निवृत्त होकर शान्तिजनक सुख का अनुभव करने लगा।[18] अर्जुन के सद्– व्यवहारों से उत्पन्न विश्वास के कारण उस पर्वत पर विचरण करने वाले मृग शास्त्रधारी अर्जुन को देखकर प्रसन्नता का अनुभव कर रहे थे।[19] प्राय: प्रकृति के शान्त एवं सौम्य वातावरण के संसर्ग से मनुष्य के ह्रदय में व्याप्त काम, क्रोध, लोभ, मोहादि दूषित विचारों का नाश हो जाता हैं। पर्यावरणीय तत्त्वों के संसर्ग में रहने से मनुष्य के मन में उनके संरक्षण एवं सम्वर्धन के प्रति संवेदनशीलता का भाव भी जागृत हो जाता हैं।

पर्यावरण में रहने वाले जीव– जन्तु भी मनुष्य की सद्– असद् वृत्तियों को जानने में कुशल होते है। अर्जुन की अहिंसक मनोवृत्ति को जानकर प्रकृति के सभी जीव एवं पञ्चमहाभूत मित्रवत् उनकी तपश्चर्या में सहयोग कर रहे थे– शीतल वायु ने मानों ग्रीष्मकालीन सूर्य की असहनीय किरणों को सहनीय बना दिया, पुष्प तोड़ते समय विशाल वृक्षों ने नवीन कोमल पल्लव रूपी टहनियों को झुका दिया। शयन के समय पृथिवी कोमल तृणों से आच्छादित हो गयी, आकाश से गिरे हुए जलकणों ने भूमि की धूलि को शान्त कर दिया।[20] इस तरह तपस्या से कृश अर्जुन पर दयार्द्र होकर पर्यावरण के सभी तत्त्वों ने अपनी परिचर्या से अर्जुन के तपोवन को मधुवन के रूप में परिणत कर दिया। पृथापुत्र की तपस्या से प्रभावित होकर मृगों ने परस्पर विरोध का परित्याग कर दिया।[21] यहाँ कवि ने पर्यावरण तत्वों जीवों में दया, करुणा, परोपकार इत्यादि मानवीय गुणों को दर्शाया है जो कवि के पर्यावरण संरक्षण एवं उसके संचेतनत्व भाव को प्रकटित करता है।

कवि ने देवसेना के रथ के पहियों से उड़ायी गयी वर्षा जल के सदृश गँदली धुलियों से वनप्रान्त के दूषित वातावरण के स्वरूप को दर्शाया हैं –

नीरन्ध्रं पथिषु रजो रथाङ्गनूत्नं पर्यस्यन्नवसलिलारुणं वहन्ती।
आतेने वनगहनानि वाहिनी सा घर्मान्तक्षुभितजलेव जह्नुकन्या।। [22]

सघन वनप्रान्त में देवसेना के रथों के प्रवेशोपारान्त सम्पूर्ण क्षेत्र उसी प्रकार दूषित हो गया जैसे वर्षा ऋतु के कलुषित जल के बहने से गंगा के प्रवाह से समस्त वनस्थली दूषित हो जाती है। सघन वनप्रान्तों में सेना सहित प्रवेश करने से प्राकृतिक तत्त्वों के गुणवत्ता का ह्रास होता है। इसीलिए वाल्मीकि रामायण के अरण्यकाण्ड में भरत ससेना वन में प्रवेश न कर अकेले ही जाते है– जिससे वन का वातावरण दूषित न हो।[23] कवि ने यहाँ मानवीय कारणों से होने वाले वायु प्रदूषण के स्वरूप को इंगित करते हुए मानव को पर्यावरणीय तत्त्वों को प्रदूषित न करने का सन्देश दिया हैं।

हिमालय के समीपस्थ ग्राम्यस्थली के मनमोहक शरद् ऋतु की प्राकृतिक सुषमा को देखकर कवि ने पृथिवी को नव प्रियतमा के रूप में निरुपित किया है –

तत: स कुजत्कलहंसमेखला सपाकसस्याहितपाण्डुतागुणाम्।
उपाससादोपजनं जनप्रिय: प्रियामिवासादितयौवनां भुवम्।। [24]

मधुर शब्द करते हुए कलहंस रूपी करधनी को धारण करते हुए, धान के पीले रंग की बाली रूपी वस्त्र को धारण करती हुयी, यह भूमि नवीन यौवन से युक्त प्रियतमा के समान प्रतीत हो रही है। कवि कालिदास ने भी शरद ऋतु को नव वधू के रूप में चित्रित किया है– कांस के फूल इसकी साड़ी है, सरोवर में खिले कमलपुष्प इसके मुख है, हंसों की आवाज इसके नुपुर की ध्वनि हैं। पके हुए धान के पौधों के समान गौरवर्ण एवं लचीली तन को धारण करती रमणीय नववधू की तरह यह शरद ऋतु आ गयी।[25] शरद ऋतु में धान के खेतों से युक्त उत्पन्न पुष्पों एवं जीवों को धारण करता हुआ सम्पूर्ण ग्रामीण क्षेत्र सुशोभित हो रहा था–

विन्नमशालिप्रसवौद्यशालिनीरपेतशङ्क ससरोरुहाम्भस:।
ननन्द पश्यन्नुपसीम स स्थलीरूपायनीभुतशरद्गणश्रिय:।। [26]

झुके हुए धान की बालियों से शोभित पङ्करहित कमलपुष्प से युक्त शुद्ध जल को धारण करती हुयी ग्राम्य सीमा की स्थली सुशोभित हो रही थी। जल में क्रीड़ा करती हुयी मछलियों ने अपने कमलवत् नेत्रों से पृथा पुत्र अर्जुन को देखती हुयी मानों उनके के मन को हर लिया हो। मछलियों के संचरण से हिल रही धान की क्यारियाँ मानों उन्हें अपने तरफ बुला रही थी। यहाँ कवि ने प्राकृतिक तत्वों की क्रियायों में मानवीय क्रियायों एवं भावनाओं का अनुभव किया हैं। कवि ने प्रकृति को यहाँ सहचरी के रूप में वर्णित किया है तथा उत्तम स्थलीय परितन्त्र का (धान के खेत) उदाहरण प्रस्तुत किया है। वर्तमान में धान के खेतो का ऐसा परितन्त्र नष्ट होता जा रहा है।

हिम से आच्छदित हिमालय पर्वतों से निकलने वाली गङ्गा, ब्रह्मपुत्र, सतलज, व्यास इत्यादि नदियाँ नित्य शुद्ध एवं समृद्ध जल वाली होती है। सम्पूर्ण पृथिवी को अपने शीतल जल से तृप्त करने वाली गङ्गा जैसी नदियों की प्राकृतिक सुषमा दर्शनीय हैं। सुरनदी गङ्गा में मछलियों के चिलकने से कमल पुष्प हिल रहे थे, पङ्करहित तट से तरङ्गमालाएँ बार–बार टकरा रही थी, गङ्गा कलहंसों के माध्यम से मानों सुर–वधूओं को स्नान करने के लिए बुला रही है।[27] ताप को मिटाने वाला मन्द–मन्द बहते हुए पङ्कजों के स्पर्श से सुगन्धित तरङ्ग मालाओं के अवकाश में रहने वाली शीतल मन्द सुगन्धित वायु ने जल में उतरते हुए देवाङ्गनाओं को हस्तावलम्बन दिया।[28] कवि ने यहाँ गङ्गा नदी एवं वायु में मानवीय कृत्यों की कल्पना कर यह निर्देशित किया है कि प्रकृति मानव जीवन की सहचरी है अत: मनुष्य को

इसका संरक्षण एवं सम्वर्धन करना चाहिए।

कवि ने जल क्रीड़ा को उसकी कलुषता का कारण बताया है - गन्धर्वों एवं देवाङ्गनाओं के जलक्रीड़ा से छिन्न- भिन्न हुए तरङ्गों से युक्त गङ्गा का जल मानों कलुषित हो गया हो। जल क्रीड़ा से कलुषित सुरनिम्नगा की लहरों ने अमर रमणियों के केश को विक्षिप्त कर दिया, पुष्पमालाओं को चञ्चल कर दिया और अंगराग को मिटा दिया।[29] प्रतीत हो रहा है कि जलक्रीड़ा से कलुषित सुरनिम्नगा ने मानों अपने रौद्र रूप को धारण कर लिया हो। पर्यावरणीय तत्वों में मानवीय कृत्यों के अत्यधिक हस्तक्षेप के कारण प्रकृति विकराल स्वरूप को धारण करती है परिणाम स्वरूप अनेक आपदाओं का जन्म होता है।

हिमालय पर्वत निर्मल जल वाले मानसरोवर (जलाशय) को भी धारण करता है। कवि ने हिमालय शिखर पर स्थित मानसरोवर जलाशय के सन्तुलित एवं समृद्ध परितन्त्र को भी दर्शाया है-

विकचवारिरुहं दधतं सरः सकलहंसगणं शुचि मानसम् ।
शिवमगात्मजाया च कृतेर्ष्याया सकलहंसगणं शुचिमानसम्।।[30]

निर्मल जल वाले मानसरोवर में कमल के पुष्प नित्य विकसित रहते है। कलहंसों समूह इस सरोवर के जल में सदा निवास करते हैं। समीपस्थ भगवान शिव अपने प्रमथगणों के साथ सदा यही निवास करते है। महाकवि कालिदास ने भी मानसरोवर के प्राकृतिक सौन्दर्य से आकर्षित हुए राजहंसों की उत्सुकता का वर्णन किया है।[31]

कवि भारवि ने हिमालय, कैलाश, इन्द्रकील पर्वत से लेकर ऋतुओं एवं अन्य पर्यावरणीय घटकों की नैसर्गिक सुषमा का अत्यन्त हृदयस्पर्शी वर्णन किया है। कवि ने जहाँ वृक्ष, वनस्पतियाँ एवं प्रदीप्त होती हुयी औषधियाँ, रत्नों और अन्य भौतिक सम्पदाओं से युक्त हिमायल के समृद्धशाली स्वरूप का वर्णन किया है वहीँ अर्जुन के वन में प्रवेशोपारान्त प्रकृति के जैविक एवं अजैविक तत्त्वों में मानवीय भावनाओं की अनूठी कल्पना की है जिससे कवि का संचेनतत्व भाव प्रदर्शित होता है। हिम शिखरों से कलकल नाद कर बहती हुयी गंगा जैसी जीवनदायिनी नदियों के तरंगों में मानवीय क्रियाओं एवं मानसरोवर आदि जलस्रोतों के प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्रण किया हैं।

कवि शरद् के प्रभाव से फैले प्राकृतिक सुषमा का रमणीय वर्णन दर्शनीय है- क्वार मास में ग्रामीण क्षेत्र कमल, कुमुदिनी एवं धानों के फसलों से परिपूर्ण हो, शीतल मन्द समीर के बहने से सम्पूर्ण वातावरण रमणीय एवं सुखकर प्रतीत होता है। अनेक प्रकार के नवीन पर्यावरणीय तत्त्वों से सुसज्जित होने के कारण ही कवि ने इस ऋतु को नववधू के धर्मगुणों से विभूषित किया हैं।

प्रतीत होता है कि महाकाव्य में सृजनकाल में पर्यावरण के समस्त घटक सर्वथा अप्रदूषित एवं शुद्ध रूप में उपस्थित हैं तथा पारिस्थितिकी तन्त्र भी सन्तुलित अवस्था में विद्यमान था, कोई भी प्राकृतिक तत्व मानवीय हस्तक्षेप के कारण दूषित नहीं था। मानव परितन्त्र से छेड़छाड़ किये बिना प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करता था। यहीं कारण है कि इस महाकाव्य में प्रकृति के संवाहक घटकों का ऐसा सुसमृद्धकारी एवं मनोमुग्धकारी परिवेश द्रष्टव्य हैं।

सन्दर्भ सूची -

1. किरातार्जुनीयम् 5.7
2. किरातार्जुनीयम् 5.15 10.11
3. किरातार्जुनीयम् 5.11
4. किरातार्जुनीयम् 5.14
5. हिमवती दिव्यौषधयः शीर्षे सूर्यः समाविष्टः। मुद्राराक्षसम् 11. 22
6. तयोशिखरयोर्मध्ये प्रदीप्तमतुलप्रभम्।
   सर्वौषधियुतं वीर द्रक्ष्यस्योषधिपर्वतम् ।।
   वाल्मीकि रामायण (युद्धकाण्ड) 6.74. 31
   मृतसञ्जीवनी चैव विशल्यकरणीमपि।
   सुवर्णकरणी चैव सन्धानी च महौषधीम् ।।
   वाल्मीकि रामायण (युद्धकाण्ड) 6.74.33
7. किरातार्जुनीयम् 5.24
8. यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्स मेरौ स्थित दोग्धरि दोहदक्षे।
   भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथुदिष्टां दुदुहर्धरित्रीम् ।।
   कुमारसम्भवम् 1. 2
9. किरातार्जुनीयम् 5.18-25
10. किरातार्जुनीयम् 5.39
11. किरातार्जुनीयम् 5.37
12. हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसरस्यादादनः कुर्वन्कामं क्षणमुख-पटप्रीतिमेरावतय।
    धुन्वकल्पद्रुमकिसलयन्पशुंकानीव वातैर्ननाचेष्टैर्जलद ललितैर्निविशेस्तं नगेन्द्रम् ।। मेघदूतम् 1.63
13. किरातार्जुनीयम् 6.2
14. अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4.12
15. किरातार्जुनीयम् 6.3
16. किरातार्जुनीयम् 4.13
17. किरातार्जुनीयम् 6.18
18. किरातार्जुनीयम् 6.22
19. किरातार्जुनीयम् 6.24
20. किरातार्जुनीयम् 6.25-26-27
21. किरातार्जुनीयम् 6.34
22. किरातार्जुनीयम् 7.24
23. वाल्मीकि रामायण (2.91.9)
24. किरातार्जुनीयम्य 4.1
25. ऋतुसंहार 3.1
26. किरातार्जुनीयम् 4.2.3.5
27. किरातार्जुनीयम् 8.27
28. किरातार्जुनीयम् 8.28
29. किरातार्जुनीयम् 8.32-
30. किरातार्जुनीयम् 5.13
31. मेघदूतम् (पूर्व मेघ) 1.11

ISSN 2278 - 0327

भीष्मचरितम् महाकाव्यम् में सामाजिक व्यवस्था

तृप्ति शर्मा
(शोध छात्रा, संस्कृत)
सेठ फूलचन्द बागला (पी०जी०) कॉलेज, हाथरस

डॉ. संध्या कुमारी
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
सेठ फूलचन्द बागला (पी०जी०) कॉलेज, हाथरस

व्यक्तियों के मेल से समाज का निर्माण होता है। प्राचीन भारत में सामाजिक जीवन वर्तमान युग की अपेक्षा अधिक सुव्यवस्थित एवं सुखमय था। उस समय सभी लोग एकता के सूत्र में आवद्ध रहते थे। ऋग्वेद का एक मंत्र इसी आशय को व्यक्त करता है।

समानी व आकृतिः समाना हृयानि वः।
समानमस्तु वो मनो मथा वः सुसहासति।।[1]

अर्थात् हे मनुष्यों! तुम्हारे अभिप्रायों तुम्हारे हृदयों तथा तुम्हारे मनों में ऐक्य की भावना होनी चाहिए जिससे तुम्हारी सामूहिक शक्ति का विकास हो सके।

मनुष्य के अस्तित्व का निर्माण समाज से ही होता है। समाज में रहकर मनुष्य उसके रीति-रिवाज परम्पराएँ संस्कृति को स्वीकार करता है और समाज में ही मानव अपने व्यक्तित्व के विकास के साथ-साथ सामूहिक शक्ति को स्थापित करता है।

'भीष्मचरितम् महाकाव्यम्' में वर्ण-चतुष्टय सम्बन्धी विवेचन प्राप्त होता है। 'जननीवियोग' नामक प्रथम सर्ग में राजा शान्तनु के कुशल शासन में चारों वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र अपने-अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए दृष्टिगत होते हैं। जैसा कि उद्धृत है-

द्विजास्सदा शास्त्रविचारतत्पराः, सदैव रक्षार्थरता हि बाहुजाः।
विषोऽपि कुष्यादिविधौ समुद्यताः, सुखेन सेवा व्रतिनश्च पादजाः।[2]

ब्राह्मणों के प्रति विश्वास, श्रद्धा तथा पवित्रता का भाव था इस कारण राजा शान्तनु अपने पुत्र देवव्रत के पालन-पोषण हेतु ब्राह्मण कुल में उत्पन्न स्त्रियों का ही चयन करते हैं-

परिचिता द्विजवंश समुद्भवाः, नृपकुलस्य हिते सततं रताः।
कतिपया महिलाश्च नियोजिताः, तनुजपोषणकर्मणि भूभृता।।[3]

'क्षत्रिय' वर्णचतुष्टय में द्वितीय स्थान पर है जिसका प्रधान कर्त्तव्य दूसरों की रक्षा करना है। आचार्य मनु ने क्षत्रियों के कर्त्तव्य इस प्रकार वर्णित किये हैं-

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेव च।
विषयेश्च प्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः।।[4]

महाकाव्य के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि भीष्म तथा सभी क्षत्रिय पाण्डव प्रजा की रक्षा एवं आत्म सम्मान हेतु क्षत्रिय धर्म एवं कर्त्तव्यों का पालन करते हुए परिलक्षित होते हैं।

विचित्रवीर्यविवाह वर्णन नामक द्वादश सर्ग में सत्यवती एवं भीष्म के विवाह संवाद प्रसंग में भीष्म अपने क्षत्रियोचित धर्म की रक्षा करते हुए अपनी प्रतिज्ञा से विचलित नहीं होते हैं।

नलोभकृत्या नच कामपीड्या, भमेन नान्यैरपि हेतुभिश्चनो।
दृढ़व्रताः क्षत्रियजातिमानवाः, निजा प्रतिज्ञा वितथां प्रकुर्वते।।[5]

क्षत्रिय समाज के रक्षक हैं इसलिए उन्हें अपने कर्त्तव्यों से विचलित नहीं होना चाहिए।

वर्णचतुष्टय में तृतीय स्थान वैश्य वर्ण का है। आचार्य मनु ने वैश्यों के कर्त्तव्यों का मनुस्मृति में विस्तार से वर्णन किया है जैसा कि कहा गया है-

पशूनां रक्षणं दानभिज्याध्यनमेव च।
वाणिक्पथ कुसीर च वैष्यस्य कृषिमेव च।।[6]

अर्थात् पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, अध्ययन करना, व्यापार करना, ब्याज पर धन देना एवं कृषि कार्य करना। इस प्रकार मनुस्मृति में वैश्यों के कर्त्तव्यों का वर्णन किया गया है।

'भीष्मचरितम् महाकाव्यम्' में भी वैश्य का कार्य व्यापार करना बताया है और कहा गया है कि व्यापार का उद्देश्य लोगों को जीवनोपयोगी वस्तुओं को प्राप्त करने में सुविधा प्रदान करना होना चाहिए न कि उनके धन को लूटना।

व्यापारिणो लोभपिशाचमोहिताः भूत्वा च कुर्युर्नहि मूल्यवर्धनम्।
भवेज्जनेभ्यः सुविधासमर्पणं व्यापारलक्ष्यं न जनार्थलुण्ठनम्।।[7]

वर्णपरम्परा में शूद्रों का स्थान अन्तिम है उन्हें वर्णाधम माना जाता था। वर्णत्रय की सेवा करना उनका परम कर्त्तव्य था मनुस्मृति के अनुसार शुद्रों के कर्त्तव्यों का वर्णन इस प्रकार है-

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिषत्।
एतेषामेव वर्णानां शुशूषामनसूयया।।[8]

'भीष्मचरितम् महाकाव्यम्' में शूद्र के विषय में निषाद दाशराज का वर्णन मिलता है जो एक मछुवारा है। नवम सर्ग में सम्राट राजा शान्तनु के प्रति अनुरक्त पुत्री सत्यवती की दीन-दशा को देखकर चिन्तित पिता ने पुत्री को समझाते हुए कहा-बेटी! तुम राजा का ख्याल छोड़ दो, कहाँ तो राजाओं के भी राजा वह शान्तनु और कहाँ मछुवारे की बेटी तुम। इस संसार में धरती का आसमान से मिलन कभी नहीं हो होता है-

परित्यज त्वं नृपचिन्तनं सुते, क्व राजराजः क्व च मत्स्यजीविनी।

कदापि लोके नहि पुत्रि। जायते, वसुन्धराया गगनेन संगम:।। [9]

भारतीय संस्कृति में आश्रम व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। महाकाव्य में चारों आश्रमों की प्राचीन व्यवस्था का चलन था किन्तु पृथक्–पृथक् आश्रमों का उल्लेख स्पष्ट रूप से नहीं मिलता है। यद्यपि अध्येय काव्य में कई स्थलों पर आश्रमों के संकेत दृष्टिगत होते हैं।

मानव जीवन का सर्वप्रथम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आश्रम ब्रह्मचर्य आश्रम है। ब्रह्मचर्य आश्रम का प्रारम्भ बालक के उपनयन संस्कार से होता है। इसमें गुरु के प्रति आदर भाव रखते हुए विद्याध्ययन किया जाता है।

प्रस्तुत महाकाव्य में राजा शान्तनु विद्याध्ययन के समय को उचित समझकर शुभ दिन एवं शुभ नक्षत्र में पुत्र देवव्रत को गुरुजनों की सेवार्थ सौपते हुए दिखाई देते है–

समवलोक्य दिनं च शुभं च भं, विधिसमर्चितसर्वसुरो नृप:
गुरुजनेष्वखिलेषु समर्पयन्, निजसुतं विहितात्ञ्जलिरब्रवीत्।।[10]

गृहस्थाश्रम मानव जीवन का वह भाग है जिस पर पारिवारिक एवं सामाजिक उन्नति और वैभव निर्भर है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु एक पुरुष और एक स्त्री को परस्पर धर्मभावना के साथ बाँधकर भाव शुद्धि पूर्वक विभिन्न नियमों में आवद्ध कर ग्रहस्थाश्रम में विवाह संस्कार का विधान किया गया है।

'भीष्मचरितम् महाकाव्यम्' के द्वादश सर्ग में काशी नरेश की दोनों पुत्रियों का विचित्रवीर्य के साथ पाणिग्रहण संस्कार का वर्णन ग्रहस्थ जीवन में प्रविष्ट होने को इंगित करता है–

ततस्ततोऽसाववशिष्टयोर्द्वयो: सुकन्ययो: काममनन्यभावयो:।
अकारयच्चारु च पाणि पीडनं विचित्र वीर्येण समं शुभे दिने।।[11]

'वानप्रस्थ' का अर्थ है, वन की ओर प्रस्थान करना। जीवन के समस्त गार्हस्थ कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्व को सम्पन्न कर लेने के बाद सांसारिक माया मोह को त्याग कर मनुष्य वानप्रस्थ जीवन का आश्रय लेता है।

प्रस्तुत महाकाव्य में वानप्रस्थ आश्रम से होने वाले पुण्यों की चर्चा की गयी है–

य: पर्वतानां सरिता सदम्भसां, तथा वनानां वनसम्पदामपि
रक्षां विधन्ते च नृपस्तपस्विनाम्, असौ तृतीयाश्रमपुण्यमश्नुते।।[12]

(अर्थात् जो राजा पर्वतों, नदियों, झरनों, वनों वन–सम्पत्तियों तथा तपस्वियों की रक्षा करता है, उसे वानप्रस्थ आश्रम का पुण्य प्राप्त होता है।)

आयु के अन्तिम चतुर्थ भाग में मनुष्य सर्ववेदस् यज्ञ करके अर्थात् अपना सर्वस्व दान करके सब प्रकार से वैराग्य धारण कर 'मनसा वाचा कर्मणा' निष्कलंक होकर सन्यास आश्रम में प्रविष्ट होता था। इस आश्रम में मानव सम्पूर्ण उत्तरदायित्वों को पूर्ण कर संसार से पूर्ण विरक्त हो जाता है।

महाकाव्य में संन्यासियों की रक्षा द्वारा सन्यास आश्रम के महत्त्व को प्रकाशित किया गया है कि ज्ञान के प्रति अनुराग रखने वाला जो राजा वेद के विद्वानों और समस्त संसार का कल्याण चाहने वाले सन्यासियों की रक्षा करता है उसे संन्यास आश्रम का पुण्य मिलता है।[13]

मानव के सामाजिक जीवन का प्रारम्भ परिवार से होता है। परिवार मानव समाज के संगठन की प्राथमिक इकाई है। 'भीष्मचरितम् महाकाव्यम्' के कथानक का स्रोत महाभारत है अत: तात्कालीन समाज में परिवार का अस्तित्व था। जीवन के प्रत्येक पहलुओं का विकास भली–भाँति हो चुका था। महाकाव्य में पारिवारिक जीवन संयुक्त परिवार प्रणाली पर आधारित है। भारतीय संस्कृति के अनुसार परिवार का ग्रह स्वामी पिता होता है। पिता के संरक्षण में ही सभी कार्य सम्पादित किये जाते हैं। परिवार के सदस्यों का भरण पोषण, रक्षण, शिक्षण एवं विवाह आदि का उत्तरदायित्व पिता का होता है। महाकाव्य में राजा दुपद द्वाराअपनी पुत्री द्रौपदी के स्वयंवर के आयोजन करने तथा राजा विराट् द्वारा अपनी पुत्री उत्तरा के विवाह का वर्णन मिलता है–

निजदुहितुरुत्तराया:, आर्जुनिना चक्रे परिणयम्।। [14]

माता का परिवार में विशिष्ट स्थान है माता को सबसे बड़ा शिक्षक माना जाता है। नारी जीवन की सार्थकता उसके मातृत्व में निहित है।

'भीष्मचरितम् महाकाव्यम्' में रानी सत्यवती गर्भस्थ शिशु की रक्षा हेतु तथा कोख में बहुमूल्य रत्न को जानकार अपने पहनने वाले आभूषणों को व्यर्थ का बोझ समझकर त्याग देती हैं। जिस प्रकार सूर्य जब निकलने वाला होता है तो आकाश की देवी अपने तारों रूपी आभूषणों को त्याग ही देती है। कवि ने महाकाव्य में जिस राज्य का वर्णन किया है उस राज्य के राजा शान्तनु के शासन काल में सभी लोग अपने–अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए खुश रहते दिखाई देते थे और पूरे देश में धन और धान्य–सम्पत्ति की निरन्तरवृद्धि होती रहती थी।

सदाचार से मनुष्य सर्वत्र सम्मान प्राप्त करता है 'आचारहीन न पुनन्तिवेदा:' कहते हुए पृथ्वी के सभी मानवों ने भारतीय संस्कृति के प्रधान लक्षण आचरण की पवित्रता की शिक्षा प्राप्त की है। दीक्षित जी ने अपने ग्रन्थ 'भीष्मचरितम् महाकाव्यम्' में सदाचार के आचरण को बड़े सुन्दर रूप से चित्रित किया है। दीक्षान्त समारोह नामक तृतीयसर्ग में राजा शान्तनु ने गौरवपूर्वक सभी गुरुजनों का स्वागत कर उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा कि आप लोगों के आगमन से यह सभा देव सभा के तुल्य हो गई है–

सज्जना:! स्वागतं वोऽस्ति, धारयामि कृतज्ञताम्।
भवदागमनेनेयं, सभा देवसभायते।। [15]

महाकाव्य में कवि ने सदाचार की वैशिष्टता को विस्तारित करते हुए भारतीय संस्कृति की सम्पूजा की है।

महाकवि डॉ. हरिनारायण दीक्षित ने अपने महाकाव्य 'भीष्मचरितम् महाकाव्यम्' में तात्कालीन समाज में अतिथि-सत्कार को विशिष्ट स्थान दिया गया है। महाकाव्य के त्रयोदश सर्ग में राजा द्रुपद को जब यह तथ्य विदित हुआ कि स्वयवरं में मत्स्यवेध की शर्त को पूर्ण करने वाला ब्रह्मचारी ब्राह्मण नहीं है बल्कि पाण्डु पुत्र अर्जुन है। तो बड़ी प्रसन्नता के साथ राजा द्रुपद ने सभी पाण्डवों को राजभवन में बुलाकर उनका आदर सत्कारकर अतिथि के मान को बढ़ाया-

रामकृष्णाभ्यां चापि, परिचयोऽभूदिहैव पाण्डवानाम्।
ज्ञातज्ञेयो द्रुपदो, विधिना सदकार्षित् पाण्डवान्।।[16]

इसी प्रकार अज्ञातवास को पूर्ण करके प्रकट हुए पाण्डवों की राजा विराट् ने आदरपूर्वक पूजा की।[17]

'भीष्मचरितम् महाकाव्यम्' के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि तात्कालीन समाज में स्त्रियों की दशा सुद्रढ़ थी। परिवार एवं समाज में नारी की स्थिति का मूल्यांकन करने वाले नारी के तीनों रूपों (अर्थात् कन्या, पत्नी, माता) का वर्णन मिलता है। पति की मृत्यु के पश्चात् सतीत्व धर्म का पालन करने वाली माद्री का उदाहरण उल्लेखित है -

किन्दमशापग्रस्तः, पाण्डुः पञ्चत्वमितः सुरतरतः।
माद्री समर्प्य कुन्तयै, द्वावपि तनयौ तमन्वगच्छत् ।।[18]

विवाह को भारतीय संस्कृति में एक पुनीत अनुष्ठान के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है अतः विवाह को एक अनिवार्य कर्म माना गया है। तात्कालीन समाज में स्वयंवर प्रथा प्रचलित थी। इसी अवसर पर अर्जुन ने पाञ्चाल देश पहुँचकर स्वयंवर में राजकुमारी द्रौपदी को जीत कर बलराम व कृष्ण की उपस्थिति में पाँचों पाण्डवों का द्रौपदी के साथ विधि-विधानपूर्वक विवाह हुआ-

रामकृष्णोपस्थितो, द्रौपदीपाण्डवविवाहो वभूव
पाण्डुसुताभ्युदयोऽयं, व्यथयामास धृतराष्ट्रसुतान्।।[19]

प्राचीन काल से आधुनिक काल तक 'वस्त्र' मानव समाज की संस्कृति का परिचायक है। 'भीष्मचरितम् महाकाव्यम्' में रेशमीवस्त्र, रेशमीशाल, साडी, हरितपत्र रूपी साडी इत्यादि वस्त्रों का वर्णन मिलता है जो इस प्रकार है-

महाकाव्य के तृतीय सर्ग के दीक्षान्त समारोह नामक प्रंसग में 'रेशमी वस्त्र' के सन्दर्भ में उल्लेख हुआ है कि राजकुमार देवव्रत 'रेशमी वस्त्र' पहने हुए आसन पर सुशोभित हो रहे थे-

निजासने समासीनः, कौशेयवसनस्सुधीः।
देवव्रतः प्रसन्नात्मा, दिदीपे दीनवत्सलः।।[20]

इसी प्रकार धनुर्विद्या प्राप्ति नामक षष्ठ सर्ग में कुलवधुओं द्वारा साडी पहनने का उल्लेख मिलता है -

अपूर्णबन्धां निजशाटिकां क्वचिद्, गवाक्षमूले परिधारयन्त्यपि
मनाग् ललज्जे नहि काचिदीक्षिता, नृपात्मजं द्रष्टुमनाः कुलाग्ना।।[21]

पौराणिक काल से ही आभूषण स्त्री एवं पुरुषों के सौन्दर्यवर्धन के सूचक रहे हैं। 'भीष्मचरितम् महाकाव्यम्' में अनेक प्रकार के आभूषणों का उल्लेख प्राप्त होता है। यथा-

महाकाव्य के षष्ठ सर्ग में एक स्थल पर चूड़ामणि का उल्लेख मिलता है। महाकाव्य के सर्गानुसार स्त्रियाँ चूड़ामणि के द्वारा केश अलंकृत करती थीं-

तथैव काचित्कचपाशजालके, दधार स्वीयं तिलकं त्वरावती।
चकार चूडामणिमाषु मस्तके, दधाववातायनसम्मुखी च सा।।[22]

'भीष्मचरितम् महाकाव्यम्' में करधनी के सन्दर्भ में जो वर्णन मिलता है, उससे यह प्रतीत होता है कि स्त्रीयाँ कटि में करधनी पहनती थी-

विधाय कण्ठे रशनां ससम्भ्रमा, स्त्रजं च काचिद् दधती कटीतटे।
समाप्य शृङ्गारविधि समागता, बभूव लोकस्मितभाजनं तदा।।[23]

सौन्दर्य की वृद्धि एवं आकर्षक दिखने के लिए स्त्री एवं पुरुष दोनों ही भाँति-भाँति के सौन्दर्य प्रसाधनों का प्रयोग करते हैं। 'भीष्मचरितम् महाकाव्यम्' के षष्ठ सर्ग में वर्णित है कि स्त्रियाँ अपने पैरों में महावर (आलता) लगाती थी।[24] तथा शारीरिक सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिए स्त्रियों द्वारा आखों में काजल एवं होठों पर लिपस्टिक लगाने का उल्लेख मिलता है।[25]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि डॉ. हरिनारायण दीक्षित जी ने अपने महाकाव्य भीष्मचरितम् में उस समय की सभी सामाजिक परिस्थितियों का समावेश अप्रत्यक्षत रूप से किया है। समाज को व्यवस्थित करने वाले सभी मानक जैसे वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, परिवार भोजन संस्कार इत्यादि महाकाव्य में दृष्टिगत होते हैं।

अतः हम निश्चित रूप से कह सकते है कि तात्कालीन समाज को समझने के लिए यह मानक उपयोगी सिद्ध होंगे।

सन्दर्भ सूची

1. ऋग्वेद, 10/191/4
2. भीष्मचरितम्, 1/22
3. भीष्मचरितम्, 2/8
4. मनुस्मृति, 1/89
5. भीष्मचरितम्, 12/21
6. मनुस्मृति, 1/90
7. भीष्मचरितम्, 18/31
8. मनुस्मृति, 1/91
9. भीष्मचरितम्, 9/20
10. वही, 2/23
11. वही, 12/54
12. वही, 18/48
13. वही, 18/49
14. वही, 13/78
15. वही, 3/12
16. वही, 13/34
17. वही, 13/78
18. वही, 13/23
19. वही, 13/35
20. वही, 3/4
21. वही, 6/33
22. वही, 6/31
23. वही, 6/30
24. वही, 6/32
25. वही, 6/34

ISSN 2278 - 0327

विश्वगुणादर्शचम्पू में ध्वनि-तत्त्व : एक अनुशीलन

अंकिता त्रिपाठी
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग
जामियामिल्लिअलया इस्लामिया, नई दिल्ली- 110025

संस्कृत वाङ्मय में काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। काव्यशास्त्रीय सिद्धान्त ही वह आधार है, जिन पर संस्कृत वाङ्मय की आधारशिला रखी गयी है। काव्य कृतियों का समय-समय पर विश्लेषण किया गया और हमारे समक्ष नवीन-नवीन सिद्धान्त उद्घाटित होते गये, उन समस्त सिद्धान्तों की ज्ञान राशि का जो भण्डार हैं, वही काव्यशास्त्र के नाम से अभिहित है। काव्यशास्त्र के प्रमुख रूप से छः सम्प्रदाय हैं- रस, अलङ्कार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति एवं औचित्य। काव्यशास्त्रीय परम्परा में ध्वनितत्त्व का विशेष स्थान है और इसके प्रतिष्ठापक आचार्य आनन्दवर्धन कहे जाते हैं परन्तु स्वयं आनन्दवर्धन भी इस तथ्य को अपने शास्त्र में स्पष्टतः कहते हैं कि ध्वनि एक प्राचीन तत्त्व है जिसका सम्बन्ध वैयाकरणों के 'स्फोट' से है। उन्होंने '*काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्वः*'[1] इस वाक्य के साथ अपने मन्तव्य को प्रस्तुत किया है। आनन्दवर्धन से पहले भी काव्य के रूप में ध्वनि का वर्णन हुआ है क्योंकि उन्होंने अपने शास्त्र में इसके विरोधियों का मत प्रस्तुत किया है। अतः सामान्य बुद्धि से ही हम समझ सकते हैं कि जिस तत्त्व का अस्तित्व होगा उसी का विरोध भी सम्भाव्य है, इस प्रकार यह ध्वनि कोई नवीन तत्त्व नहीं हैं। ध्वनि शब्द का व्युत्पत्तिलभ्यअर्थ है 'ध्वन्यते अनेन इति ध्वनिः' अर्थात् जिसके द्वारा ध्वनित किया जाये वह ध्वनि है। इससे शब्द अर्थ के व्यापार व्यञ्जना आदि शक्तियों का बोध होता है। ध्वनिकाव्य को परिभाषित करते हुए आचार्य आनन्दवर्धन ने कहा है-

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।।[2]

अर्थात् जहाँ अर्थ स्वयं को तथा शब्द अपने अर्थ को गौण करके एक नूतन अर्थ का प्रकाशन करते हैं, उस काव्य-विशेष को ध्वनिकाव्य कहते हैं। स्पष्टतः ध्वनि में न शब्द की प्रधानता रहती है, न अर्थ की अपितु ये दोनों अपने आपको गौण बनाकर एक ऐसे प्रतीयमान अर्थ का प्रतिपादन करते हैं जो वाच्य की अपेक्षा कहीं अधिक चमत्कारपूर्ण रहता है। परवर्ती आचार्य मम्मट ने भी ध्वनिकाव्य को इस प्रकार परिभाषित किया है-

इदमुत्तममतिशयिनि व्यङ्ग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः।[3]

जहाँ व्यङ्ग्यार्थ वाच्यार्थ की अपेक्षा अतिशय उत्तम अर्थात् चमत्कारपूर्ण होता है उसे ही विद्वानों ने ध्वनिकाव्य कहा हैं। ध्वनि-स्थापन की परम्परा में मम्मट, अभिनवगुप्त आदि ध्वनिवादी आचार्यों ने ध्वनि को ही काव्यात्म तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित किया है। काव्यशास्त्रीय परम्परा में ध्वनि को प्रधानता देते हुए अनेकों काव्य, महाकाव्य, चम्पूकाव्य तथा नाटक आदि का प्रणयन हुआ है। इसी परम्परा में दाक्षिणात्य महाकवि वेङ्कटाध्वरिकृत 'विश्वगुणादर्शचम्पू' भी ध्वनि से अछूता नहीं है। सम्भवतः महाकवि का समय सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। ये काञ्ची (तमिलनाडु) के निवासी थे। इनके चार चम्पूकव्यों में से 'विश्वगुणादर्शचम्पू' प्रमुख चम्पूकाव्य है जिसमें दो गन्धर्वों (विश्वावसु और कृशानु) की विमान-यात्रा का वर्णन है। विश्वावसु प्रत्येक वस्तु के गुणों का वर्णन करता है और कृशानु दोषों का। इस प्रकार यह ग्रन्थ संवाद के रूप में लिखा गया है। इस चम्पूकाव्य में 597 श्लोक और 254 गद्य-खण्ड हैं। महाकवि कृत यह चम्पूकाव्य संस्कृत साहित्य में शास्त्रीय दृष्टि से सर्वाधिक महत्ता को प्राप्त किये हुए है फिर चाहे वह काव्यशास्त्र हो, दर्शनशास्त्र हो, धर्मशास्त्र हो या व्याकरणशास्त्र। काव्यशास्त्र के सभी छः सिद्धान्तों का प्रयोग इस कृति में दृष्टिगोचर होता है जिसमें से यहाँपर ध्वनिसिद्धान्त दृष्ट्या प्रकृत ग्रन्थ का परिशीलन किया गया है। महाकवि ने 'विश्वगुणादर्शचम्पू' में कई प्रसङ्गों में ध्वनि-तत्त्व को आदर्श रूप में प्रतिष्ठित किया है।

ध्वनिसिद्धान्त के प्रमुख भेद-

नौवीं शताब्दी में प्रादुर्भूत ध्वनि सिद्धान्त के प्रवर्तक एवं व्याख्याता आनन्दवर्धनाचार्य व्यञ्जना को ध्वनि का आधारभूत तत्त्व मानते हुए उसके मूल में अभिधा और लक्षणा शब्दशक्तियों को स्वीकार करते हैं। इसी आधार पर उन्होंने ध्वनि के दो भेद किये हैं-

1. अविवक्षितवाच्यध्वनि या लक्षणामूलाध्वनि
2. विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि या अभिधामूलाध्वनि

पुनः अविवक्षितवाच्यध्वनि का दो भेद आचार्य ने किया है-

1. अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यध्वनि 2. अत्यन्ततिरस्कृतवाच्यध्वनि

विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि को भी इन्होनें दो भागों में विभाजित किया है-

1. असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनि 2. संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनि

इन्हीं प्रमुख भेदों और उपभेदों के आधार पर विश्वगुणादर्शचम्पू में ध्वनितत्त्वों का यथासम्भव अन्वेषण करने का प्रयास किया गया है

जो निम्नवत् है-

अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यध्वनि-

महाकवि वेङ्कटाध्वरि ने स्वकीय चम्पूकाव्य के 'वैयाकरणवर्णनम्' प्रसङ्ग में इस ध्वनि को निरूपित करते हुए कहा है-

झोऽन्तः शश्छोटि शेषो ध्यसखि ससजुषो रुर्विरामोऽवसानं
छे चेति व्यर्थवाचः सदसि यदि सतां शाब्दिकाश्चेद् बुधाः स्युः।
किं तैरेवापराद्धं? नट-विट-गणिकानृत्य-हस्त-प्रचारै-
स्तोधी तोधी तधीति त्तकिट तकिट धिक् ताहधिक् तत्तकारैः।।[4]

अर्थात् पण्डितों की सभा में झोऽन्तः आदि व्यर्थ शब्दों को बोलने वाले वैयाकरण भी यदि विद्वान् हैं तो फिर नट-विटादि के नृत्य करते समय तोधी आदि जो शब्द निकलते हैं, तो फिर उन्हें विद्वान् क्यों नहीं कहा जा सकता। यहाँ पर 'किं तैरेवापराद्धं' इस पद का वाच्यार्थ बाधित होकर लक्षणा का आश्रय लेकर निरपराध रूपी अन्य अर्थ में संक्रमित होकर अन्यार्थ को द्योतित करता है। अतः प्रकृत उदाहरण में लक्षणामूला अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यध्वनि है।

अत्यन्ततिरस्कृतवाच्यध्वनि-

महाकवि ने 'महाराष्ट्रवर्णनम्' प्रसङ्ग में प्रकृत श्लोक में इस ध्वनि को उद्धृत किया है-

वेदव्यासः स इह दश यो वेद वेदाक्षराणि
श्लोकं त्वेकं परिपठति यः स स्वयं जीव एव।
आपस्तम्बः स किल कलयेत्सम्यगौपासनं यः
कष्टं शिष्टक्षतिकृति कलौ काश्यमृच्छन्ति विद्याः।।[5]

अर्थात् महाराष्ट्र देश के ब्राह्मण वेदों के दश अक्षर को जानकर स्वयं को वेदव्यास समझते हैं, एक श्लोक को पढ़कर बृहस्पति तथा सायं-प्रातः हवनादि कर स्वयं को आपस्तम्ब समझते हैं। कलियुग में वेदादि विद्याओं का स्तर हीनता को प्राप्त हो चुका है। यहाँ पर वेदव्यास शब्द अत्यन्ततिरस्कृत होकर मूर्ख अर्थ में, एक श्लोक का पाठी बृहस्पति शब्द अल्पज्ञ अर्थ में तथा नित्य कर्मकाण्डी शब्द पाखण्डी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अतः उपर्युक्त श्लोक में लक्षणामूला अत्यन्ततिरस्कृतवाच्यध्वनि है।

असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य रसध्वनि-

रसादि ध्वनि के अन्तर्गत सर्वप्रथम रसध्वनि का उदाहरण 'आन्ध्रदेशवर्णनम्' प्रसङ्ग से प्रस्तुत किया जा रहा है-

रोमावल्या तपनसुतया रम्यहारद्युनद्या
ह्रद्यास्तुङ्गस्तनगिरिजुषो नाभिवापीमनोज्ञाः।
भूमेर्मूर्तीरिव वसुमतीर्भुञ्जते भाग्यवन्तः
क्षोणीपाला इव युवजनाः काममान्ध्रीः पुरन्ध्रीः।।[6]

इस श्लोक में भाग्यशाली तरुणजन आश्रय, आन्ध्रदेश की रमणियाँ आलम्बन विभाव, रोमावली युक्त होना, रमणीय हारों से युक्त होना, कान्तिमय होना इत्यादि उद्दीपन विभाव, विलास करना अनुभाव तथा हर्ष, औत्सुक्य इत्यादि व्यभिचारि भाव है। इन सभी विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारि भावों के संयोग से यहाँ पर रति नामक स्थायी भाव से शृङ्गार रस की अभिव्यञ्जना हो रही है।

भावध्वनि-

'सूर्यवर्णनम्' प्रसङ्ग के निम्न श्लोक में भावध्वनि को निरूपित करते हुए महाकवि ने कहा है-

प्रशस्तगुणसिन्धवे प्रपदनस्पृशां बन्धवे
स्वतोऽपहतपाप्मने सकलदेहिनामात्मने।
नमः कमलवासिनीनयनसौख्यसंदायिने
तम शमविधायिने तरणिमण्डलस्थायिने।।[7]

प्रस्तुत श्लोक में विश्वावसु आश्रय है, विष्णु आलम्बन विभाव, उनके विशेषण यथा- प्रशस्त गुणों के सागर, ज्ञानियों के प्रिय, सभी प्राणियों में आत्मरूपेण स्थित, लक्ष्मी के नयनाभिराम आदि उद्दीपन विभाव, नमस्कार करना अनुभाव, देवादिविषयक रति स्थायी भाव तथा स्मृति सञ्चारी भाव है। चूँकि इस श्लोक में विश्वावसु (गन्धर्व) विष्णु भगवान् की स्तुति करता है तथा उसके अन्तःकरण में नारायण के प्रति देवादिविषयक रति उत्पन्न हुई है। अतः यहाँ पर भावध्वनि है।

भावाभास ध्वनि-

'कर्णाटदेशवर्णनम्' प्रसङ्ग में भावाभास ध्वनि के उदाहरण के रूप में महाकवि ने निम्न श्लोक उल्लिखित किया है-

गायत्रीं सहसा जहद्भगवतीं यज्ञोपवीतं त्यजन्
मुञ्चन् किंच शिखां विरक्त इव यः संप्राप्ततुर्याश्रमः।
आरुढश्चतुरन्तयानमभयो हा हन्त देशान्तरे-
ष्वर्थानामुपसंग्रहाय विचरत्येषोऽप्यमीषां गुरुः।।[8]

प्रकृत श्लोक में कृशानु आश्रय है, माध्वों के गुरु आलम्बन विभाव हैं, भगवती गायत्री का परित्याग, यज्ञोपवीत को तोड़ना, शिखा परित्याग इत्यादि उद्दीपन विभाव है, गुरु-निन्दा अनुभाव है, असूया, चपलता इत्यादि सञ्चारी भाव हैं। यहाँ पर गुरुविषयक रति न होकर अपितु उनका छिद्रान्वेषण हो रहा है। अतः इस श्लोक में भाव के अनौचित्य का प्रसङ्ग होने का कारण भावाभास ध्वनि है।

भावोदय ध्वनि-

'श्रीरङ्गनगरीवर्णनम्' प्रसङ्ग में भावोदय ध्वनि का उदाहरण इस प्रकार है-

सोऽयं यद्यपि ह्रद्य एव विषयः सायन्तनेन्दीवर-
श्यामाङ्गेन सनायकः कृततमोभङ्गेन रङ्गेन्दुना।
भ्रान्ताः किंतु चरन्ति हन्त पिशुनाः शान्तात्मनां तापदाः
श्रीमन्तो यदुदञ्चनाद् बत न खल्वत्रासमत्रासते।।[9]

श्रीरङ्गनगरी का वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं कि यह नगरी श्यामाङ्ग, अन्धकारनाशक, प्रसिद्ध तथा अति रमणीय है और रङ्गनाथ यहाँ के स्वामी हैं फिर भी शान्तात्मा वाले लोगों को सन्ताप देने के लिए पतित एवं दुष्ट लोग भ्रमण करते रहते हैं। यह देखकर ही कृशानु (गन्धर्व) के अन्तःकरण में खेदविषयक 'विषाद' नामक भाव उदित

होता है, अस्तु प्रकृत उदाहरण भावोदय नामक ध्वनि के अन्तर्गत परिगणित होता है।

भावसन्धि ध्वनि-

'सेतुवर्णनम्' प्रसङ्ग में भावसन्धि ध्वनि का उदाहरण अधोलिखित है-

अस्तोकदृप्तिरपि वारिधिरेष यस्मात्
त्रस्तो बिभर्ति विपुलोपलसान्द्रसेतुम्।
गोपायते दुरितवन्ति जगन्ति तस्मै
कोपाय ते रघुपते महते नमोऽस्तु।।[10]

इस श्लोक में रामचन्द्र के क्रोध से भयभीत होकर गर्वयुक्त समुद्र के पत्थरों से लदे सेतु को धारण करने का वर्णन है। यहाँ पर पूर्व में समुद्र में 'गर्व' तथा उत्तर में 'दैन्य' रूपी दो भावों का परस्पर योग होने से भावसन्धि नामक ध्वनि प्रादुर्भूत हुई है।

संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य शब्दशक्त्युत्थ अलङ्कारध्वनि-

महाकवि वेङ्कटाध्वरि शब्दशक्त्युत्थ अलङ्कारध्वनि का निरूपण करते हुए स्वकीय चम्पूकाव्य में प्रकृत श्लोक उद्धृत करते हैं-

साकेताय नमः पुराय भवतु स्तोकेतरश्रीपुषे
नानादोषमुषे तदन्तिकजुषे देव्यै सरय्वै नमः।
येऽमी तत्तटभूमिषु प्रविलसद्रूपाश्च यूपाः स्थिता-
स्तेभ्यो भानुकुलीनकीर्तिलतिकोपघ्नायितेभ्यो नमः।।[11]

इस प्रकार यहाँ पर राजाओं की कीर्ति-लतिका (उपमेय) तथा यज्ञीय पशु के बाँधने के जो स्तम्भ हैं (उपमान) में उपमानोपमेयभाव की कल्पना की गयी है। अतः यहाँ पर शब्दशक्त्युत्थ लुप्तोपमा अलङ्कारध्वनि है।

'आन्ध्रदेशवर्णनम्' प्रसङ्ग में अलङ्कारध्वनि का उदाहरण इस प्रकार है-

को वा कल्पतरोर्गुणः सुमनसां तत्स्वाश्रितानामसौ
सारांशान् हरतः प्रसह्य मधुपान् धत्ते महामोदतः।
कर्णे त्वर्जुनकीर्तिहानिपरता कालाम्बुदे गर्जनं
नीरन्ध्रं पुनरान्ध्रदेशनृपतिष्वास्तेऽनघं स्पर्शनम्।।[12]

इस श्लोक में कल्पतरु का मद्यपों को आश्रय देना, दानी कर्ण में पार्थ के कीर्तिनाश की आसक्ति का होना एवं काले मेघों में गर्जना का होना आदि सभी दोषों से रहित आन्ध्रदेश के राजाओं के दान की प्रसिद्धि का वर्णन है। यहाँ पर कल्पतरु, दानी कर्ण तथा काले मेघों के गर्जन इत्यादि उपमानों की अपेक्षा निरन्तर चलायमान आन्ध्रदेशीय राजाओं के गुणों (दान) का आधिक्य वर्णित है। इस प्रकार प्रकृत श्लोक में उपमानों से उपमेय के आधिक्य का वर्णन होने से व्यतिरेकालङ्कार व्यङ्ग्य हैं।

अर्थशक्त्युत्थ स्वतःसम्भवी अलङ्कार से वस्तुध्वनि-

'कविवर्णनम्' प्रसङ्ग में महाकवि वेङ्कटाध्वरि ने इस ध्वनि को निम्न श्लोक में वर्णित किया है-

स्तुवद्ध्वनिवर्तके सति हरौ कविः सुक्तिभिः
करोति वरवर्णिनीचरितवर्णनं गर्हितम्।
अनीतिरवनीपतिर्गृहशुनीतनुं मौक्तिकै-
र्विभूषयति देवतामुकुटभागयोग्यैर्यथा।।[13]

यहाँ पर कृशानु के द्वारा कवि-निन्दा की गयी है। वह कहता है कि जिस प्रकार नीतिशून्य राजा मोतियों से घर की कुतिया को सजाता है ठीक उसी प्रकार कवि भी भवसागर से पार करा देने वाले नारायण के रहने पर भी मधुर वचनों से निन्द्य रमणियों के चरित का वर्णन करता है। यहाँ दृष्टान्त अलङ्कार से इस वस्तु रूपी अर्थ की अभिव्यञ्जना हो रही है कि कवि को सदैव सच्चरित्रों के चरित्र तथा यशःकीर्ति का ही निरूपण करना चाहिए। अतः यहाँ पर स्वतःसम्भवी अलङ्कार से वस्तु व्यङ्ग्य है।

स्वतःसम्भवी अलङ्कार से अलङ्कारध्वनि-

'सूर्यवर्णनम्' प्रसङ्ग में इस ध्वनि का निरूपण अधोलिखित श्लोक के माध्यम से किया गया है-

स्वेनादौ निखिलं जगद्विरचितं स्वनैव सरंक्षितमं
भिन्दन् हन्त मुकुन्द एष विधृतानन्दो हि निन्दोचितः।
उत्पाद्य स्वयमुत्तमान् फलतरूनुल्लासस्य चारूदकै-
रून्मत्तोऽपि किमुच्छिनत्ति जगतिच्छित्त्वापि किं नन्दति?।।[14]

इस श्लोक में विष्णु भगवान् की निन्दा की गयी है जो संसार का निर्माण करके, उसका पालन-पोषण करके उसको स्वतः ही नष्ट कर देते हैं। ऐसा तो एक मदमत्त मनुष्य भी फल देने वाला वृक्ष लगाकर, उसे सींचकर बड़ा करके स्वतः नहीं उखाड़ता है। इस दृष्टान्त के माध्यम से यहाँ इस विशेष अर्थ की अभिव्यञ्जना हो रही है कि चक्रपाणि भगवान् विष्णु की जगत् के विनाश में प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिए। अतः यहाँ पर दृष्टान्त अलङ्कार के सामान्य कथन से इस विशेष अर्थ का कथन किया गया है। अतः प्रस्तुत उदाहरण में स्वतःसम्भवी अलङ्कार सेअलङ्कारध्वनि है।

अर्थशक्त्युत्थ कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्तिसिद्ध वस्तु से वस्तुध्वनि-

'अयोध्यावर्णनम्' प्रसङ्ग में विश्वावसु के माध्यम से महाकवि वेङ्कटाध्वरि कहते हैं कि-

गातुं क ईष्टे श्रितरामभद्रान् गणान् गुणानां गणनादरिद्रान्।
प्राचेतसाद्याः कवयोऽनवद्या यदेकदेशाकलनेऽपि नेशाः।।[15]

अर्थात् जब वाल्मीकि आदि प्रशंसनीय कवि भी राम के गुणों का लेशमात्र वर्णन करने में समर्थ नहीं है तो भला कौन साधारण मनुष्य उनके गुण-समुदाय का वर्णन करने में समर्थ होगा। यहाँ पर श्रीराम के समस्त यशोगाथा का वर्णन किसी भी कवि के सामर्थ्य से परे है, इस वस्तु रूप अर्थ की अभिव्यञ्जना हो रही है। अतः यहाँ पर कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्तिसिद्ध वस्तु से वस्तु व्यङ्ग्य है।

अग्रिम उदाहरण प्रस्तुत करते हुए 'भूलोकवर्णनम्' प्रसङ्ग में कृशानु के माध्यम से महाकवि कहते हैं-

जनन-मरण-क्काधि-व्याधिप्रभेदशुभेतरा-
कलनमलिना लोकाः शोकातुराश्च भुवं गताः।
तदिह मदिभिः क्षुद्रैश्छिद्रैकमार्गणतत्परैः
प्रभुभिरुदितक्षत्यै क्षित्यै बुधः स्पृहयेत कः?।। [16]

अर्थात् पृथ्वी पर समस्त प्राणी नाना प्रकार की व्याधियों एवं अशुभ कर्मों के करने से मलिन एवं दुःख से पीड़ित हैं। परकीय दोषों को खोजने में लगे हुए एवं अहङ्कारी राजाओं से नष्ट की जाती हुई इस पृथ्वी को भला कौन विज्ञ पुरुष स्वर्गस्थ होकर चाहेगा अर्थात् कोई नहीं चाहेगा। इस निषेधार्थ रूपी वस्तु से यह ध्वनित हो रहा है कि इस भूलोक को समस्त दोषों एवं विकृतियों से मुक्त करने का यथासम्भव प्रयत्न करना चाहिए। अतः यहाँ पर भी कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्तिसिद्ध वस्तु से वस्तु व्यङ्ग्य है।

'वीक्ष्यारण्यवर्णनम्' प्रसङ्ग में विश्वावसु के माध्यम से वस्तुध्वनि का निरूपण करते हुए महाकवि ने यह श्लोक उद्धृत किया है-

द्विरेफवर्णी सुमनोरमां तनुं बिभर्ति संज्ञामिव वीरराघवः।
सुपर्वराजेन यदीयमर्चितं मुखं पदद्वन्द्वमिवोपशोभते।। [17]

इस श्लोक में भगवान् वीरराघव का वर्णन है जो सुमनों में रमणशील है, काले भ्रमरों की तरह शरीर को धारण करते हैं तथा जिसका मुख चन्द्रमा द्वारा पूजित एवं दोनों चरण इन्द्र द्वारा अर्चित होकर शोभा पाते हैं। यहाँ पर वीरराघव के चन्द्रमा द्वारा पूजित मुख एवं इन्द्र द्वारा अर्चित चरण में साम्य-स्थापन अनुपयुक्त एवं असिद्ध है, इसी वस्तु की अभिव्यञ्जना यहाँ पर हो रही है। अतः यहाँ पर कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्तिसिद्ध वस्तु से वस्तु व्यङ्ग्य है।

'यमुनानदीवर्णनम्' प्रसङ्ग में प्रकृत श्लोक में कवि ने अलङ्कार सेअलङ्कारध्वनि को निबद्ध किया है जो इस प्रकार है-

चित्रं चित्रं जृम्भिते कृष्णमेघे
कंसं प्राप्ता प्राप लोपं समृद्धिः।
आसीद्युक्तं हानिदाघप्रशान्तिः
हंसोहिंसां मानसे कीर्तिरुत्था।। [18]

यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण के यशोगाथा का वर्णन और साथ ही साथ काले मेघों का भी वर्णन है। इस श्लोक में दो अर्थ निकलते हैं तथा उनमें परस्पर विरोध भी दिखाई देता है जो कि वास्तविक विरोध नहीं है। इसी कारण यहाँ विरोधालङ्कार रूपी वस्तु से उपमालङ्कार व्यङ्ग्य है क्योंकि यहाँ पर बादलपक्ष तथा कृष्णपक्ष में उपमानोपमेय भाव सम्बन्ध है इसीलिए यह श्लोक अलङ्कार से अलङ्कारध्वनि का उदाहरण सिद्ध होता है।

गुणीभूतव्यङ्ग्यध्वनि-

'श्रीत्रिविक्रमवर्णनम्' प्रसङ्ग से लिये गये निम्नलिखित श्लोक में महाकवि ने गुणीभूतव्यङ्ग्यध्वनि को वर्णित करते हुए कहा है-

नित्यानपायिप्रमदोऽपि नाथो बटूभवन्वञ्चितदातृकोऽसौ।
कविव्यथाकृत्खलु भूसुरोऽपि भूदानवत्वं क्षममेव भेजे।। [19]

इस श्लोक में कृशानु के द्वारा वामनावतार विष्णु की निन्दा की गई है कि जो वामन ब्राह्मण होकर पृथ्वी पर दानवत्व को ग्रहण करते हैं, जो दाताओं का वञ्चक है ऐसे शुक्राचार्य को भी दुःखी कर देते हैं, निश्चित ही यह पूजनीय नहीं है। यहाँ पर 'क्षमम्' पद सामर्थ्य अथवा योग्यता के अर्थ का द्योतन कर रहा है परन्तु भिन्नकण्ठध्वनि से 'क्षमम्' पद का अर्थ 'अक्षमम्' अर्थात् अयोग्यता को बोधित कर रहा है। अतः उपर्युक्त श्लोक में काकुरूपी गुणीभूतव्यङ्ग्यध्वनि है।

इस प्रकार यज्वा या अध्वरी की उपाधि से विभूषित महाकवि वेङ्कटाध्वरिकृत 'विश्वगुणादर्शचम्पू' के अनुशीलनोपरान्त यह सिद्ध होता है कि उनकी इस अद्वितीय कृति में ध्वनि के सभी भेदोपभेदों का सुष्ठु प्रयोग हुआ है। महाकवि ने संवाद-शैली के माध्यम से तत्कालीन भारत के भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों के वैशिष्ट्य को निरूपित किया है। साहित्यिक समीक्षा के उत्कर्षाधायक 'ध्वनितत्त्व' के प्रयोग की दृष्टि से इस ग्रन्थ को अत्यन्त सफल कहा जा सकता है। 'विश्वगुणादर्शचम्पू' में महाकवि ने अपनी तलस्पर्शिनी प्रज्ञाचक्षु के सामर्थ्य से व्यञ्जनावृत्ति का अत्युत्कृष्ट प्रयोग किया है। इस चम्पूकाव्य में ध्वनित्रयी (वस्तुध्वनि, रसध्वनि, अलङ्कारध्वनि) का सुन्दर चित्रण होने के साथ ही साथ गुणीभूतव्यङ्ग्य का भी सम्यक् निरूपण प्राप्त होता है।

प्रकृत चम्पूकाव्य में गवेषिका द्वारा ध्वनि के सभी प्राप्य उदाहरणों को यथासम्भव सङ्कलित कर उनमें शास्त्रसम्मत दृष्ट्या ध्वनि को समन्वित करने का प्रयास किया गया है। अस्तु हम निष्कर्षतः यह कह सकते हैं कि 'विश्वगुणादर्शचम्पू' ध्वनि सिद्धान्त के वैशिष्ट्य को समाहित किये हुए सुधी समीक्षकों, पाठकों एवं सहृदय सामाजिक की ज्ञानपिपासा हृदयगत आह्लादकत्व को परिपुष्ट करता है।

सन्दर्भ-

1. ध्वन्यालोक- 1/1
2. ध्वन्यालोक- 1/13
3. काव्यप्रकाश- 1/1
4. विश्वगुणादर्शचम्पू-569
5. विश्वगुणादर्शचम्पू-138
6. विश्वगुणादर्शचम्पू-156
7. विश्वगुणादर्शचम्पू-13
8. विश्वगुणादर्शचम्पू-178
9. विश्वगुणादर्शचम्पू-408
10. विश्वगुणादर्शचम्पू-479
11. विश्वगुणादर्शचम्पू-36
12. विश्वगुणादर्शचम्पू-157
13. विश्वगुणादर्शचम्पू-543
14. विश्वगुणादर्शचम्पू-15
15. विश्वगुणादर्शचम्पू-49
16. विश्वगुणादर्शचम्पू-26
17. विश्वगुणादर्शचम्पू-220
18. विश्वगुणादर्शचम्पू-129
19. विश्वगुणादर्शचम्पू-309

ISSN 2278 - 0327

कोरोना काल में लॉकडाउन का श्रमिकों पर प्रभाव

डॉ. हरिन्द्र कुमार
सहा० प्रो० समाजशास्त्र
कु० मा० रा० म० स्नातकोत्तर महाविद्यालय
बादलपुर, गौतमबद्ध नगर

प्रस्तावना

कोरोना वायरस महामारी की शुरुआत एक नए किस्म के कोरोना वायरस के संक्रमण के रूप में मध्य चीन के वुहान शहर में 2019 के मध्य दिसंबर में हुई।[1] बहुत से लोगों को बिना किसी कारण निमोनिया होने लगा और यह देखा गया कि पीड़ित लोगों में से अधिकतर लोग वुहान सी फूड मार्केट में मछलियां बेचते हैं तथा जीवित पशुओं का भी व्यापार करते हैं। पहले संदिग्ध मामले को 31 दिसंबर 2019 को विश्व स्वास्थ्य संगठन (World Health Organisation WHO) को सूचित किया गया था। चीनी वैज्ञानिकों ने बाद में कोरोनावायरस की एक नई नस्ल की पहचान की जिसे 2019 COV प्रारंभिक नाम दिया गया।[2] जनवरी आते-आते बुहान शहर में इस वायरस ने बड़ी आबादी को अपनी चपेट में ले लिया और चीन की कम्युनिस्ट सरकार की लापरवाही के कारण फरवरी के महीने तक विश्व के विभिन्न हिस्सों में यह वायरस फैल गया। अगर चीन की सरकार दुनिया के अन्य हिस्सों के लोगों को बुहान आने जाने पर सख्त पाबंदी लगा देती और वहां के लोगों को विश्व स्वास्थ्य संगठन व अन्य सुरक्षा मापदंडों का पालन करते हुए धीरे-धीरे निकाल देती तो दुनिया के अन्य हिस्सों में इस खतरनाक वायरस का शायद उतना प्रसार नहीं होता।

आगे चलकर चीन से अंतरराष्ट्रीय यात्रियों द्वारा अन्य देशों में इस महामारी का प्रसार शुरू हो गया और थाईलैंड में 13 जनवरी, जापान में 15 जनवरी, दक्षिण कोरिया में 20 जनवरी, ताइवान और संयुक्त राज्य अमेरिका में 21 जनवरी, हांगकांग और मकाऊ में 22 जनवरी, सिंगापुर में 23 जनवरी, फ्रांस, नेपाल और वियतनाम में 24 जनवरी, ऑस्ट्रेलिया और मलेशिया में 25 जनवरी, कनाडा में 26 जनवरी, कंबोडिया में 27 जनवरी, जर्मनी में 28 जनवरी, फिनलैंड, श्रीलंका और संयुक्त अरब अमीरात में 29 जनवरी तथा भारत और फिलीपींस में 30 जनवरी यूनाइटेड किंग्डम तथा स्पेन में 31 जनवरी 2020 को कोविड-19 के मरीजों की सूचना की पुष्टि की गई।[3]

भारत में कोरोना से बचाव के प्रयास

19 मार्च 2020 को भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने देश के सभी नागरिकों को 22 मार्च को सुबह 7:00 बजे से लेकर रात्रि के 9:00 बजे तक जनता कर्फ्यू का पालन करने के लिए कहा। इस कर्फ्यू के दौरान उन्होंने सभी को घर में रहने के लिए कहा था।[4] उन्होंने एक कोविड-19 आर्थिक प्रतिक्रिया कार्यबल के गठन की घोषणा भी की।[5] प्रकोप के दौरान विभिन्न क्षेत्रों द्वारा किए जा रहे कार्यों की सराहना के लिए उन्होंने लोगों से शाम 5:00 बजे अपने दरवाजे, खिड़कियों या बालकनियों के सामने इकट्ठा होने और 5 मिनट के लिए उनकी सराहना करने का आग्रह किया।[6] 24 मार्च 2020 को प्रधानमंत्री मोदी ने 21 दिनों की अवधि के लिए उस दिन की मध्यरात्रि से देशव्यापी लॉकडाउन की घोषणा की। 11 मार्च 2020 को भारत के सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी कैबिनेट सचिव राजीव गौबा ने घोषणा की कि सभी राज्य और केंद्र शासित प्रदेशों को महामारी रोग अधिनियम, 1897 की धारा 2 के प्रावधानों को लागू करना चाहिए।[7] 21 मार्च को केंद्र सरकार ने आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 के तहत महामारी को अधिसूचित आपदा घोषित किया जिससे राज्यों को वायरस से लड़ने के लिए राज्य आपदा कोष से धन का एक बड़ा हिस्सा खर्च करने को मिला।[8]

24 मार्च 2020 को भारत सरकार ने देश के 22 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के 82 जिलों को पूरी तरीके से बंद करने का निर्णय लिया। शुरुआत में सरकार ने देशभर के 75 जिलों में लॉकडाउन जारी किया था जहां 31 मार्च तक कोविड-19 मामलों की पुष्टि की गई थी। उत्तर प्रदेश में भी सरकार ने 18 मार्च से अगले आदेश तक के लिए सभी शैक्षणिक संस्थानों को बंद करने का आदेश दिया था। 23 मार्च को दिल्ली में कम से कम 31 मार्च तक लॉकडाउन करने का निर्णय लिया गया।

मतलब 14 अप्रैल तक सभी लोगों को घर से ना निकलने को कहा हालांकि लॉकडाउन होने के बाद भी जरूरी चीजों के लिए दुकानें और मेडिकल स्टोर खुले रखने का आदेश दिया गया। 14 अप्रैल की सुबह 10:00 बजे प्रधानमंत्री मोदी ने देश को संबोधित करते हुए लॉकडाउन की अवधि को बढ़ाकर 03 मई तक करने का फैसला किया और कहा कि अगले एक हफ्ते नियम और सख्त होंगे। उन्होंने यह भी कहा कि जहां कोरोना वायरस के संक्रमण के मामले सामने नहीं आएंगे वहां कुछ छूट दी जाएगी।

जब ऐसा लग रहा था कि भारत कोरोना वायरस के प्रसार को

रोकने में सक्षम रहेगा तभी दिल्ली के निजामुद्दीन मरकज मस्जिद में होने वाले तबलीगी जमात नामक मजहबी जनसमूह द्वारा जाने अनजाने कोरोना वायरस के प्रसार में शामिल होने की घटना की पुष्टि हुई। इस समूह में देश के विभिन्न भागों के 9 हजार से अधिक प्रचारकों ने भाग लिया था और 40 अन्य देशों से 960 लोग उपस्थित थे। अप्रैल आते.आते जमात के सदस्यों के कारण देश के विभिन्न राज्यों में कोरोना वायरस का बड़े पैमाने पर प्रसार हो गया। ऐसे राज्यों में उत्तर प्रदेश भी शामिल था।

फरवरी के महीने तक भारत में भी कोविड-19 या कहें कि इस चाइनीज वायरस को लेकर चिंताएं उभरनी शुरू हो गई थी लेकिन भारत सरकार भी फरवरी के आधे महीने तक इतनी सक्रिय नहीं हुई जितनी कि उसे होना चाहिए था। देश में अंतरराष्ट्रीय उड़ानों का आवागमन बदस्तूर जारी रहा। भारत सरकार ने यह ध्यान नहीं दिया कि चीन के वुहान से लौटे नागरिक दुनिया के अपने-अपने देशों में संक्रमण फैला रहे हैं और चुकी भारत की एक बहुत बड़ी जनसंख्या विदेशों में रहती है, वहां से लौटने वाले भारतीय इस वायरस के वाहक हो सकते हैं। भारत ने वास्तव में मार्च के महीने में सक्रिय कदम उठाना शुरू किया। 19 मार्च को पहली बार प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने रविवार के दिन लोगों से सुबह 7:00 बजे से लेकर रात्रि के 9:00 बजे तक अपने-अपने घरों में रहने का आह्वान किया। उसी रात उन्होंने 21 दिन के लॉकडाउन की घोषणा की। इस लॉकडाउन की खास बात यह थी कि सभी प्रकार के वैसे परिवहन को रोक दिया गया जिससे व्यक्तियों का आना जाना होता है हालांकि इसमें आवश्यक वस्तुओं के परिवहन कार्य में लगे लोगों को सुरक्षा मापदंडों के साथ छूट दी गई।[9]

लॉकडाउन में देश के कमजोर वर्ग के लोगों को असुविधा न हो इसके लिए सरकार ने कई योजनाएं भी घोषित की। सरकार ने घोषणा की कि जो व्यक्ति जहां है, अगले 21 दिनों तक वही रहेगा। सभी सरकारी और निजी संस्थाओं को आदेश दिया गया कि वह अपने कर्मचारियों को लॉकडाउन अवधि का पूरा वेतन बिना किसी कटौती के देंगे। जिन लोगों के घरों में आया व घरेलू काम करने वाले अन्य लोग होते हैं उनसे भी आग्रह किया गया कि ऐसी मुश्किल परिस्थिति में वे अपने कर्मचारियों का पूरा साथ दें। प्रधानमंत्री ने घोषणा की कि अगले 03 महीने तक प्रवासी श्रमिकों को मकान मालिकों द्वारा घर का किराया देने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा। प्रधानमंत्री ने गरीब कल्याण योजना के अंतर्गत गरीबों और मजदूर वर्ग के लोगों को 5 किलो राशन के रूप में चावल या गेहूँ, 1 किलो चना व 3 महीने तक उज्जवला योजना के तहत मुफ्त में रसोई गैस का सिलेंडर देने जैसी घोषणाएं भी की गई। प्रधानमंत्री ने महिला जनधन खाते में 3 माह तक 500 की राशि डालने की भी घोषणा की।

14 अप्रैल 2020 को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने राष्ट्रव्यापी लॉकडाउन को 03 मई 2020 तक बढ़ाने की घोषणा की और साथ ही साथ 20 अप्रैल के पश्चात् जिन क्षेत्रों में कम संक्रमण के मामले थे वहां पर कुछ छूट देने की भी घोषणा की।[10]

लॉकडाउन की अवधि लगातार बढ़ाए जाने के पश्चात् मजदूरों के साथ अनेक समस्याएं शुरू हो गई। सरकार के आदेश के बावजूद उनके नियोक्ताओं ने कारोबार बंद होने का हवाला देकर वेतन भुगतान से इंकार करना शुरू कर दिया था। ऐसे मजदूरों की संख्या भी बहुत ज्यादा थी जो असंगठित रूप से ठेकेदारों के माध्यम से विभिन्न प्रकार के उद्योगों में काम करते थे। बड़ी संख्या में ऐसे मजदूरों की भी थी जो रिक्शा या ऑटोरिक्शा चलाते थे, घरों, मोहल्लों और सड़कों पर साफ-सफाई का काम करते थे। लाखों मजदूर ट्रकों और ट्रेनों से समान लादने-उतारने का काम करते थे। दैनिक मजदूर के रूप में काम करने वाले मजदूरों की संख्या भी कई लाख थी। मजदूरों को खाने-पीने और रहने में भी समस्या उत्पन्न होने लगी। इससे मजदूरों में घबराहट फैल गई और वह पैदल या साइकिल से अपने परिवार के साथ अपने-अपने घरों को वापस लौटने के लिए निकलने लगे। कई जगह उन्होंने रिक्शे के द्वारा अपने प्रांतों को लौटने का प्रयास किया। बहुत सारे मजदूरों ने परिवहन कार्य में लगे ट्रकों के ड्राइवरों को मोटी रकम देकर अपने मूल प्रांत वापस लौटने का प्रयास शुरू किया। इस क्रम में सड़क पर चलते हुए कई दर्दनाक घटनाएं हुई जिसमें कई मजदूर और उनके परिवार मारे गए।[11] कई जगह ट्रक पलटने की घटना में भी काफी मजदूर मारे गए।[12] एक अन्य दुखद घटना में रेलवे लाइन के सहारे जा रहे कई मजदूर कटकर मर गए।[13] दूसरी ओर जो राज्य सरकारें अपने-अपने यहां प्रवासी मजदूरों को हर प्रकार की सहायता देने का दावा कर रही थी उनका भी धैर्य चूक गया और वह केंद्र सरकार पर दबाव डालने लगी कि वह मजदूरों को अपने-अपने राज्य लौटने की इजाजत दें। विभिन्न राज्य सरकारों के दबाव में केंद्र सरकार ने श्रमिक स्पेशल ट्रेनों के शुरुआत की घोषणा की और 1 मई के पश्चात् विभिन्न सुरक्षा उपायों को अपनाते हुए मजदूरों को क्रमबद्ध रूप से उनके प्रांतों में भेजने का काम शुरू किया गया।

उत्तर प्रदेश के प्रवासी मजदूरों की समस्या

कोरोना संकट के दौरान लॉकडाउन के शुरुआती दौर में जब देश के सभी महानगरों से मजदूरों की घर वापसी शुरू हुई ही थी तब उत्तर प्रदेश सरकार ने आश्वासन दिया था कि राज्य में लौटने वाले सभी श्रमिकों को यही रोजगार दिया जाएगा। अब प्रवासी मजदूरों वाले अन्य राज्यों की तरह उत्तर प्रदेश सरकार के पास भी मौका है कि वह अपने मजदूरों के लिए अपने राज्य में ही रोजगार की व्यवस्था करें। प्राप्त आंकड़ों के अनुसार 30 जून 2020 तक राज्य में 5.64 लाख से ज्यादा श्रमिकों की देश के विभिन्न हिस्सों से वापसी हो चुकी है।[14] खुद उत्तर प्रदेश सरकार मानकर चल रही है कि अब एकमुश्त मजदूरों के लौटने की प्रक्रिया पूरी हो चुकी है।

समाचार पत्र दैनिक भास्कर द्वारा उत्तर प्रदेश के सभी जिलों में

घर लौटे श्रमिकों पर एक सर्वे किया गया। समाचार पत्र के अनुसार सर्वे में 5000 से ज्यादा मजदूरों ने भाग लिया। सर्वे के नतीजों के अनुसार नौकरी के लिए फिर दूसरे राज्य जाने के सवाल पर 71.99 प्रतिशत मजदूरों ने कहा कि वह घर से दूर नहीं जाना चाहते। इनमें से 27.5 प्रतिशत ने तो कहा कि चाहे राज्य में नौकरी मिले या ना मिले वह घर छोड़कर नहीं जाएंगे जबकि 44.6 प्रतिशत ने कहा कि अगर भुखमरी की स्थिति बने तो ही वे राज्य छोड़ेंगे वरना कुछ कम मजदूरी में भी यही गुजारा कर लेंगे। इनके अलावा 14.5 प्रतिशत मजदूर ही ऐसे हैं जो तुरंत वापस जाने के लिए तैयार हैं। 13.20 प्रतिशत मजदूरों का कहना है कि वे कुछ समय के बाद ही घर छोड़ने के बारे में सोचेंगे।

प्रवासी मजदूरों में बाहर जाने को लेकर भय

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि जो मजदूर तीन चार महीने पूर्व तक खुशी-खुशी दूसरे प्रांत में रह रहे थे अब वह बाहर क्यों नहीं जाना चाहते थे। विभिन्न अखबारों में प्रकाशित सर्वेक्षणों के अनुसार 85 प्रतिशत से लेकर 88 प्रतिशत मजदूर दूसरे राज्य में अपने परिवार के बिना रह रहे थे। 12 से 13 प्रतिशत अपने परिवार को साथ लेकर रहते थे। मजदूरों के 25 प्रतिशत से 30 प्रतिशत हिस्सा अपने गृह जिले के अर्थात् अपने ही सामाजिक वातावरण के लोगों के साथ रहता था। लगभग 36.42 प्रतिशत अपने सहकर्मियों के साथ एक ही आवास साझा करते थे या फिर अगल बगल में रहा करते थे। लगभग 27.86 प्रतिशत श्रमिक अकेले कमरे में रहते थे। श्रमिक वापस इसलिए भी नहीं जाना चाहते क्योंकि प्रधानमंत्री द्वारा की गई घोषणाओं के बावजूद 60 प्रतिशत से ज्यादा मजदूरों को उनके नियोक्ताओं ने पैसे ही नहीं दिए। दैनिक भास्कर में प्रकाशित सर्वेक्षण के अनुसार 33.36 प्रतिशत श्रमिकों को ही नियोक्ताओं से पैसे का भुगतान हो पाया जबकि 66.64 प्रतिशत को लॉकडाउन के बाद उनके नियोक्ता ठेकेदार ने कोई पैसे नहीं दिए। केंद्र सरकार की घोषणा थी की कोई भी मकान मालिक 03 महीने तक किरायेदारों के ऊपर भुगतान के लिए दबाव नहीं डालेंगे। सर्वेक्षण के अनुसार 50 प्रतिशत से ज्यादा मजदूरों ने कहा कि उनके मकान मालिकों ने उन पर किराया चुकाने के लिए दबाव डाला। 51.5 प्रतिशत श्रमिकों पर मकान मालिकों ने किराए के लिए दबाव डाला जबकि 48.9 प्रतिशत ने कहा कि मकान मालिक ने किराए के लिए दबाव नहीं डाला।[15]

उत्तर प्रदेश के श्रमिक फिर से बाहर इसलिए भी नहीं जाना चाहते क्योंकि कोरोना संकट में लॉकडाउन के दौरान उनके समक्ष खाने की भी समस्या उत्पन्न हो गई थी।[16] दैनिक भास्कर में प्रकाशित सर्वेक्षण के अनुसार 56 प्रतिशत श्रमिकों ने कहा कि न तो स्थानीय सरकार और न ही किसी संस्था ने उनके खाने के लिए व्यवस्था की। हालांकि 44 प्रतिशत श्रमिकों का मानना था कि उनके लिए खाने-पीने का व्यवस्था की गयी थी लेकिन अधिकांश लोगों खाने पीने की व्यवस्था से संतुष्ट नहीं थे। कुल मिलाकर देखें तो उत्तर प्रदेश के मजदूरों में राज्य में वापस लौटने के निम्नलिखित प्रमुख कारण माने जा सकते हैं रू. 24.50 प्रतिशत मजदूरों ने अपने काम की जगह को इसलिए छोड़ा क्योंकि उनके सामने भुखमरी की नौबत आ गई थी। 24.22 प्रतिशत मजदूर ऐसे थे जिन्हें खाने के लिए तो कुछ मिल जा रहा था लेकिन उनके पास पैसे समाप्त हो गए थे। 25.40 प्रतिशत मजदूर ऐसे थे जिनके पास खाने और पैसे की दिक्कत नहीं थी लेकिन वह कितने दिनों तक खाली बैठे रहता इसलिए वह अपने प्रांत वापस लौट गया। 10.8 प्रतिशत मजदूरों का मानना था कि भविष्य में उन्हें कोई काम नहीं मिल पाएगा इसलिए वापस लौट जाना बेहतर है। 15.70 प्रतिशत मजदूरों का मानना था कि उन्हें घर से बाहर निकलने पर कोरोना वायरस से संक्रमित हो जाने का डर सता रहा था।

घर लौटे बेरेजगार श्रमिकों के लिए रोजगार की व्यवस्था

श्रमिक घर लौट चुके हैं, लेकिन जीवन चलाने के लिए उन्हें काम चाहिए। इतनी बड़ी संख्या में श्रमिकों को स्थानीय स्तर पर रोजगार उपलब्ध कराना एक बहुत बड़ी चुनौती है। दूसरे राज्यों से लौटे श्रमिकों को प्रांत में ही रोजगार मुहैया कराने के लिए राज्य सरकार यूं तो अलग-अलग योजनाएं बना रही है लेकिन अन्य पिछड़े प्रदेशों की तरह उत्तर प्रदेश शासन का जोर भी महात्मा गांधी ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना पर है। जिसे संक्षेप में मनरेगा के नाम से जाना जाता है। सरकार का कहना है कि मनरेगा के तहत ज्यादा से ज्यादा कार्य दिवसों का सृजन कर इन मजदूरों को रोजगार दिया जाएगा।[17] राज्य सरकार द्वारा जारी आंकड़ों के अनुसार 30 जून तक 700000 से ज्यादा मजदूर मनरेगा से भी लाभान्वित हो चुके हैं मगर एक बेहद कटु सत्य यह भी है कि इनमें से 98 प्रतिशत से ज्यादा राज्य में ही रह रहे श्रमिक है। मनरेगा में प्रवासी मजदूरों का जोड़ना अभी शुरू ही हुआ है। उत्तर प्रदेश में वर्तमान समय में 1.65 लाख से ज्यादा परियोजनाएं महात्मा गांधी ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के अंतर्गत चल रही है। इनके द्वारा करीब 50 करोड़ मानव कार्य दिवसों के सृजन की योजना है लेकिन मनरेगा के तहत 1 परिवार को साल में 100 दिन का ही रोजगार मिलता है। 30 जून 2020 तक कुल 5477631 श्रमिक दूसरे राज्यों से लौटे हैं। हर मजदूर को एक परिवार की इकाई माना जा सकता है। यदि हम यह भी मान लें कि सभी प्रवासी श्रमिकों को पूरे 100 दिन का रोजगार मिल भी जाएगा तोर 194 रुपए प्रति कार्य दिवस की दर से उन्हें सालाना 19400 रुपए ही मिलेंगे। दैनिक भास्कर के सर्वे के अनुसार लौटे श्रमिकों में 96 प्रतिशत की सालाना आय 60 हजार रुपए से ज्यादा थी। सरकार द्वारा जारी आंकड़ों के अनुसार जो श्रमिक दूसरे प्रांतों से वापस लौटे हैं उनमें से मात्र 65 प्रतिशत श्रमिक का ही अभी तक निबंधन हो पाया है। सरकार द्वारा निबंधित श्रमिकों की स्किल मैपिंग भी होनी है जो अभी तक कई जिलों में शुरू भी नहीं हो पाई है। प्रकाशित सर्वे के

अनुसार 69.95 प्रतिशत श्रमिक अकुशल मजदूर की श्रेणी में आते हैं और 30.05 प्रतिशत श्रमिक कुशल मजदूरों की श्रेणी में शामिल है। यह स्पष्ट है कि महात्मा गांधी ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना जैसी अकेली योजना से ही श्रमिकों को काम नहीं मिल सकता। उनके घर चलते रहे इसके लिए विभिन्न स्तरों पर प्रभावी योजनाएं बनानी होंगी। विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के अतिथि प्राध्यापक ज्यां द्रेज का मानना है कि मनरेगा श्रमिकों को एक प्रकार की सामाजिक सुरक्षा ही दे सकती है विशेषकर वैसे वे लोग जिनके पास आजीविका का कोई साधन नहीं है लेकिन इसके द्वारा मिलने वाला रोजगारएरोजगार की जरूरत का सिर्फएक छोटा सा हिस्सा है।[18]

बेरोजगारी दूर करने के लिए सबसे जरूरी कदम है कि सरकार ऐसी परिस्थिति बनाएं जिसमें अर्थव्यवस्था दोबारा गतिशील हो सकें। इसके लिए जनस्वास्थ्य के मजबूत उपाय अपनाने होंगे, टेस्टिंग बढ़ानी होगी, क्वारंटाइन को प्रभावी बनाना होगा। साथ ही समाज और अर्थव्यवस्था के हर हिस्से को बचाव के उपायों को आदत में शामिल करना होगा। जनसेवा व प्रशासन के कार्यालयों को उचित सुरक्षा उपायों के साथ दोबारा खोलना होगा। जहाँ तक सार्वजनिक कार्यों के द्वारा रोजगार का प्रश्न है मनरेगा ही ग्रामीण क्षेत्रों में सर्वश्रेष्ठ उपाय है लेकिन उत्तर प्रदेश में इसका दायरा बड़े पैमाने पर बढ़ाने की जरूरत है। इसके लिए मनरेगा में खाली पदों पर नियुक्ति, स्वीकृत कार्यों का दायरा बढ़ाना, इस प्रक्रिया को सरल करना और वर्क एप्लीकेशन कैंपेन लॉन्च करने जैसे उपायों पर काम करना होगा।

भारतीय प्रबंधन संस्थान के निदेशक शैलेंद्र सिंह कहते हैं कि देश में केवल 10 प्रतिशत लोगों के पास सरकारी नौकरी है।[19] सरकार सभी को नौकरी नहीं दे सकती और न ही सब को रोजगार उपलब्ध करा सकती है। मनरेगा में अनस्किल्ड लोगों को कुछ काम दिए जा सकते हैं परन्तु यह पर्याप्त नहीं। आवश्यकता है अपने हुनर के अनुसार लोगों को रोजगार करने की। ऐसा करने पर ही सभी हाथों को काम मिल सकता है। लोग अपनी क्षमता के अनुसार काम करेंए छोटा काम करने में भी शर्म महसूस नहीं करें तो काम की कमी नहीं।[20]

आज निजी व्यवसाय क्या संस्थानों में भी बड़ी संख्या में अच्छे अकाउंटेंट, ड्राइवर, मैनेजर, सेल्स मैन, डिलीवरी ब्वॉय आदि की जरूरत है। प्राइवेट ट्यूटर की डिमांड लॉकडाउन के बाद बहुत बढ़ी है। इसी प्रकार रियल स्टेट में लेबर, सुपरवाइजर, कारपेंटर सहित दर्जनों तरह के काम के लिए लोगों की जरूरत होगी। लॉकडाउन समाप्त होने के बाद बाजार में तेजी आ रही है। सरकारी भवनों तथा प्राइवेट अपार्टमेंट का निर्माण शुरू हो गया है। उद्योग धंधों में लोग आने लगे हैं। बाहर से लाखों लोग आए हैं तो यहां से भी बड़ी संख्या में दूसरे राज्यों के लोग वापस गए हैं। ऐसे में लोकल स्तर पर भी रोजगार के अवसर बने हैं। मिट्टी के काम में लगा कर बड़ी संख्या में रोजगार दिया जा सकता है। सरकारी तंत्र की पहुंच पंचायत स्तर तक होनी चाहिए। किस तरह के लोग बेरोजगार हैं इसकी जानकारी मिलने के बाद उन्हें रोजगार उपलब्ध कराने में सुविधा होगी। अब तो इंटरनेट प्लेटफार्म हो सकता है जहां काम करने वाले अपनी जानकारी दे सकते हैं। इसके आधार पर जिन्हें कामगारों की जरूरत है उनसे संपर्क कर सकते हैं। सरकार इन दोनों के बीच फैसिलिटेटर की भूमिका में रहेगी। प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने आत्मनिर्भर भारत के लिए 20 लाख करोड़ के पैकेज के अन्तर्गत कम ब्याज पर ऋण देने की घोषणा की है। छोटे दुकानदार, मोटर मैकेनिक, कारपेंटर, गेट ग्रिल बनाने वाले अनेक ऐसे काम है जिसमें बैंक से छोटा लोन लेकर ही काम शुरू किया जा सकता है और इसे काफी बढ़ाया जा सकता है।

सेंटर फॉर फिसकल स्टडीज के निदेशक हरिश्वर दयाल के अनुसार मजदूरों का पलायन हमेशा मजदूरी का कारण ही नहीं होता बल्कि रोजगार के अच्छे अवसरों का फायदा उठाने के लिए भी होता है। उत्तर प्रदेश में एक फसली खेती एवं सीमित आर्थिक गतिविधियों के कारण रोजगार के अवसर सीमित रहे हैं। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में बहुत सारे श्रमिक असम के चाय बागान चले गए थे और इन चाय बागानों के विकास में इनका अहम योगदान रहा है। आव्रजन के पीछे इनकी मजबूरी ही नहीं बल्कि पसंद भी रही है। जिस समय यहां के श्रमिक असम के चाय बागान में रोजगार करने के लिए जा रहे थे उसी समय पर यहाँ पर कोयले का खनन एवं गिरमिटिया मजदूरों का आगमन शुरू हुआ था ऐसी परिस्थिति में राज्य के लिए इन मजदूरों का उपयोग कर नई आर्थिक गतिविधियों का सृजन करने का एक अच्छा सुअवसर है। अगर इन श्रमिकों का उचित सदुपयोग हुआ तो राज्य की अर्थव्यवस्था भी सुदृढ़ हो जाएगी। जो प्रवासी मजदूर लौट रहे हैं उनकी सही ढंग से स्किल मैपिंग करनी चाहिए जिससे पता किया जा सकता है कि किस सेक्टर के स्किल्ड श्रमिक यहां लौट आया है। इस आधार पर मानव बल की उपलब्धता का पता चलेगा और उनको उचित काम में लगाया जा सकता है। प्राइवेट सेक्टर के लिए भी मौका है कि परिस्थिति को देखते हुए वे अपना कारोबार बढ़ा सकते हैं, नया प्रोजेक्ट लगा सकते हैं। जैसे अभी जानकारियां मिल रही है उसके आधार पर गारमेंट्स सेक्टरए पैकेजिंग इत्यादि के छोटे बड़े कारोबार बढ़ाकर काम कराया जा सकता है। अगर यहां पर उचित मजदूरी दर के साथ पर्याप्त रोजगार सृजन नहीं हो पाता है तो उनमें से कई मजदूर बेरोजगार के लिए पुनः पलायन कर सकते हैं।[21]

उत्तर प्रदेश जल, जंगल, जमीन से समृद्ध प्रांत है। उत्तर प्रदेश को बिहार से अलग हुए 20 वर्ष हो चुके हैं। ऐसा माना जाता है कि उत्तर प्रदेश के लगभग 8 से 9 लाख लोग विभिन्न राज्यों में रोजगार की तलाश में रहते हैं। कोविड–19 का आक्रमण नहीं होता तो शायद यह असली तस्वीर सामने नहीं आ पाती। सिमडेगा में अपनी संस्था के माध्यम से काम कर रही सामाजिक कार्यकर्ता पूर्वी पाल का कहना है

कि स्किल मैपिंग के बाद काम की योजना बनाने में समय लग रहा है।[22] अभी तो विभिन्न तरह के नए काम की योजनाएं ही बन रही हैं। मनरेगा के अलावा भी वन क्षेत्र में विकास के अनेक योजना बनाकर रोजगार के अवसर दिए जा सकते हैं। सरकार ने रोजगार सृजन के लिए एम०एल०एम०ई० और के०बी०आई०सी० के बीच समन्वय स्थापित कर योजनाओं की अमलीजामा पहनाने की दिशा में कदम उठाए हैं लेकिन अनेक तकनीकी जाल में उलझने की वजह से संस्थाएं योजनाओं को अंतिम रूप नहीं दे पा रही हैं और रोजगार के अवसर सृजित नहीं हो पा रहे। वापस लौटे मजदूरों को मनरेगा के काम से वह आमदनी नहीं हो पाएगी जो उन्हें बाहर जाकर मिलती है। ऐसा संभव ही नहीं है। राज्य में गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों का प्रतिशत नोवल कोरोना वायरस महामारी की वजह से बढ़ा है। सरकार नई योजनाओं के साथ काम करने वाले एनजीओ और आदिवासी अर्थव्यवस्था की मजबूती के लिए काम करने वाले विशेषज्ञों को बिठाकर उनसे उचित सुझाव लेकर नया काम प्रारंभ कर सकती है। सरकार भी कोड़ी कुदाल चलाए और विशेषज्ञों को ढूंढें और रोजगार की नई योजनाओं पर बात करें। उत्तर प्रदेश संसाधनों से परिपूर्ण राज्य है जहां रोजगार की असीम संभावनाएं हैं। वन क्षेत्र में भी रोजगार के नए रास्ते खुल सकते हैं।[23]

कोरोना वायरस के संक्रमण की वजह से घोषित लॉकडाउन में जब लोग मुश्किलों से घिरे, तो अपने घरों की ओर भागे। उत्तर प्रदेश सरकार ने अलग-अलग राज्यों में फंसे अपने लोगों को लाने की पहल की और करीब 7 लाख लोग अलग-अलग परिवहन माध्यमों से लाये गये। इस दौरान सरकार ने प्रवासी श्रमिकों का एक सर्वेक्षण भी कराया, जिसमें पता चला कि 80 हजार से अधिक परिवार स्वयं सहायता समूह का हिस्सा नहीं है। अब इन लोगों को स्वयं सहायता समूह से जोड़कर इन्हें रोजगार उपलब्ध कराया जायेगाए ताकि फिर से इन लोगों को रोजी-रोटी के लिए अपना गांव घर छोड़कर किसी और राज्य में पलायन न करना पड़े, बस, ट्रेन और हवाई जहाज से लौटे 3,01,987 लोगों को प्रवासी श्रमिक के रूप में चिह्नित किया गया है। इनमें से 26.51 फीसदी परिवार अब तक स्वयं सहायता समूह से नहीं जुड़ पाये हैं। ऐसे 80,047 परिवारों की पहचान की गयी है। ग्रामीण विकास विभाग की सचिव का कहना है कि इन परिवारों की महिलाओं को एस०एच०जी० से जोड़कर उन्हें स्वावलंबी बनाया जायेगा। उन्होंने कहा कि सरकार के पास ऐसे लोगों का कोई आंकड़ा उपलब्ध नहीं था। लॉकडाउन के दौरान सखी मंडल के द्वारा यह पता लगाया गया कि कौन-कौन लोग कमाने के लिए बाहर गये हैं और लौटना चाहते हैं। ये लोग वहां क्या काम करते हैं, मिशन सक्षम के अन्तर्गत 'सखी मंडल' के द्वारा ही यह भी पता लगाया गया कि प्रवासी श्रमिकों के परिवार सरकार की किन योजनाओं का लाभ ले रहे हैं। इसी दौरान मालूम हुआ कि पात्रता के बावजूद वे कम से कम 7 योजनाओं का सरकारी लाभ नहीं ले पा रहे हैं। ग्रामीण विकास विभाग की सचिव ने यह भी बताया कि सर्वेक्षण के दौरान यह भी आंकड़ा एकत्र कर लिया गया है कि प्रवासी श्रमिकों की रुचि किस काम में है। इसके आधार पर सरकार विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत उन्हें रोजगार उपलब्ध करवायेगी।[24]

यहां बताना प्रासंगिक होगा कि वैश्विक महामारी कोविड-19 (कोरोना वायरस डिसीज 2019) की वजह से देश भर में घोषित लॉकडाउन के दौरान देश के अलग-अलग हिस्सों से 6.89 लाख से अधिक लोग उत्तर प्रदेश लौटे इनमें से 5,11,663 (5 लाख 11 हजार 663) लोगों को प्रवासी मजदूर के रूप में चिह्नित किया गया। इनमें से 3 लाख से अधिक लोगों का ग्रामीण विकास विभाग ने सर्वे किया, तो पाया कि 2.09 लाख से अधिक लोग कुशल श्रमिक हैं, जबकि 92 हजार से अधिक लोग अकुशल श्रमिक हैं। ज्ञात हो कि 1 मई, 2020 से 238 स्पेशल ट्रेनें अलग-अलग राज्यों से उत्तर प्रदेश के 6.89 लाख से अधिक लोग अपने घर पहुंचे। उत्तर प्रदेश सरकार की मदद से जो लोग लाये गये, उनको घर पहुंचाने की व्यवस्था की गयी।

क्या उत्तर प्रदेश में तकनीकी संस्थाओं की कमी यहाँ के युवाओं को दूसरे राज्यों में श्रमिक के रूप में कार्य करने के लिए जिम्मेदार है, विश्वविद्यालय अंतर्गत कार्तिक उरांव महाविद्यालय, गुमला में अर्थशास्त्र के सहायक प्राध्यापक प्रो. अमिताभ भारती कहते हैं, 'केवल तकनीकी संस्थाओं में वृद्धि से कुशलता तो बढ़ जाएगी परंतु वे सही रोजगार की तलाश पुन: प्रवासी होने को उद्यत होंगे। अत: अकुशलता को कुशलता में बदलने के साथ ही साथ उनके लिए उत्तर प्रदेश में ही फलदायक रोजगार का सृजन करना श्रेयस्कर होगा। तभी इस प्रवासन की समस्या का समाधान हो पायेगा।'[25]

केंद्र और राज्य सरकार ने गरीबों और श्रमिकों के कल्याण के लिए कई योजनाएं चलाई हैं लेकिन इस संकट काल में भी उनका सही लाभ जरूरतमंदों तक नहीं पहुंच पा रहा है। प्रधानमंत्री ने गरीब कल्याण योजना में 5 किलो मुफ्त अनाज देश के करीब 8 करोड़ मजदूरों को देने की योजना नवंबर 2020 तक बढ़ाकर एक बेहद ठोस कल्याणकारी कदम उठाया है। यह मुफ्त राशन गरीबों को राज्य सरकारों के द्वारा बाँटा जाना है। विदित है यह उदार योजना करोड़ों प्रवासी मजदूरों को लक्षित कर ही बनी थी। बढ़ते जनाक्रोश को देखकर तमाम राज्यों ने जो पहले इन्हें अपने राज्य में लाने में आनाकानी कर रहे थे वापस बुलाया, फिर बड़े-बड़े वादे किए जैसे अब उन्हें वापस दूसरे प्रांत जाने नहीं दिया जाएगा, अपने घर में ही काम, बाहर जाने पर मुफ्त स्वास्थ्य सेवाएं, बेहतर मजदूरी व उनकी आवास की व्यवस्था के वादे हुए लेकिन हकीकत यह थी कि 26 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों ने केंद्र द्वारा घोषित सहायता तो उठा लिया लेकिन दो माह के बाद भी केवल जहाँ से सबसे अधिक प्रवासी मजदूर पूरे देश में जाते हैं वहाँ स्थिति जस की तस है। मई माह में केवल 2 राज्यों ने

2 प्रतिशत अनाज बांटा। ऐसे ही कई राज्य सरकारों जिन्हें अपने कोटे का अनाज केंद्र सरकार से प्राप्त हुआ था और इनका काम बगैर किसी औपचारिकता के मजदूरों को 5 किलो प्रति व्यक्ति की दर से राशन देना था। केंद्रीय मंत्रालय के आंकड़े बताते हैं कि कुछ राज्य सरकारों ने मजदूरों को राहत दी है जबकि हिमाचल-प्रदेश, कर्नाटक और असम की सरकारों का काम भी प्रशंसनीय है। जिन राज्यों ने राशन कोताही से बांटा है यह वही है जहाँ किसानों से अनाज की सरकारी खरीद में भी कोताही की अकर्मण्यता हर आयाम पर है। राजनीतिशास्त्र में पढ़ाते हैं कि प्रजातंत्र में जनमत का दवाब इतना होता है कि राज्य का कल्याणकारी भूमिका में आना मजबूरी होती है, भारत में यह गलत साबित हो रहा है।

अगर सरकार इन उद्योगों को योजनाबद्ध तरीके से संस्थागत प्रोत्साहन प्रदान करे तो प्रवासी मजदूरों को अपने प्रांत में ही पर्याप्त रोजगार उपलब्ध हो पाएगा। हो सकता है कि यह दूसरे प्रांत में जाकर उनके द्वारा अर्जित किए गए आय से कुछ कम हो लेकिन बाहर रहने पर होने वाले खर्चों को घटा दें तो यहां होने वाली आय बाहर कमाई गई आय के ऊपर भारी साबित होगी, साथ ही साथ अपने घर में रहने का अपने परिवार के साथ रहने का अपने लोगों के साथ रहने का जो शौक और आत्म संतोष प्राप्त होगा दुनिया का कोई धन उसकी बराबरी नहीं कर सकता है।

सन्दर्भ

1. "Why COVID&19 is nothing like the deadly Spanish flu"- Times of India] 18 मार्च 2020.
2. Cohen, Jon (Normile] Dennis (17 जनवरी 2020). triggers alarm"- Science p- 367 (6475): 234–235- PMID 31949058- आइ.एस. एस.एन. 0036-8075.
3. "Operations Dashboard for Arc GIS"- gisanddata-maps-arcgis-com- 29 जनवरी 2020.
4. "Janata Curfew' and other highlights from PM Modi's address to the nation"- Livemint-31 मार्च 2020.
5. "Rs 15,000 crore allotted for healthcare to fight coronavirus] says PM Modi"- www-businesstoday-in 25 मार्च 2020.
6. "PM Modi urges countrymen to dispel the darkness spread by coronavirus by lighting a candles on April 5"- Economic Times 03 April 2020.
7. "The 123&year&old law that India may invoke to counter coronavirus"- The Economic Times- 12 March 2020
8. "To combat coronavirus, India invokes provisions of colonial & Era Epidemic Diseases Act: A look at what this means"- Firstpost- 12 March 2020.
9. Srinivasan, Chandrashekar, संपा. (14 March 2020)- "India Declares Coronavirus A Notified Disaster"- NDTV.
10. '3 मई तक देश में रहेगा लॉकडाउन, 1 हफ्ते नियम होंगे और सख्त; पढ़ें पी.एम. मोदी के संबोधन की 10 अहम बातें'- NDTVIndia 14 अप्रैल 2020.
11. 'औरैया में ट्राला में DCM ने मारी टक्कर, 26 प्रवासी मजदूरों की मौत, 37 घायल' 16 May 2020 Dainik Jagran.
12. 'यूपी, महाराष्ट्र के बाद अब बिहार में सड़क हादसा, ट्रक और बस की टक्कर में नौ मजदूरों की मौत।' न्यूज डेस्क, अमर उजाला, भागलपुर', 19 डंल 2020
13. 'घर जाने के लिए चलते-चलते थके तो सीधे पटरी पर ही लेट गए... ट्रेन आई और उसके बाद वो कभी नहीं उठे' indiatimes com May 08, 2020.
14. Statement of State Government of Uttar Pradesh.
15. दैनिक भास्कर उत्तर प्रदेश, 03 जुलाई 2020 पृ0-1.
16. 'उत्तर प्रदेश लौटे 72 मजदूर अब दूसरे राज्यों को वापस नहीं जाना चाहते' दैनिक भास्कर-मुख्य पृष्ठ 03 जुलाई 2020.
17. 'मनरेगा योजना मिशन मोड पर चलाई जा रही है'- मनरेगा आयुक्त। दैनिक भास्कर, प्रदेश 03 जुलाई 2020.
18. 'मनरेगा को सुधारें शहरों में रोजगार गारंटी का वादा बन सकता है साहसिक पहल'- जया द्रेज। दैनिक भास्कर प्रदेश 03 जुलाई 2020.
19. सरकार सभी को रोजगार नहीं दे सकती आत्मनिर्भर बनाना ही एकमात्र उपाय, दैनिक भास्कर 3 जुलाई 2020.
20. 'प्राइवेट सेक्टर के लिए भी अवसर, लेबर को देखते हुए बढ़ा सकते हैं अपना दायरा,'- दैनिक भास्कर 03 जुलाई 2020.
21. 'सरकार आदिवासी अर्थव्यवस्था के विशेषज्ञों के साथ मिलकर काम करें', डॉक्टर बांसुरी कीरो। दैनिक भास्कर 03 जुलाई 2020 पृष्ठ संख्या 2.

22. प्रो.(डॉ.) दिलीप प्रसाद कार्तिक उरांव महाविद्यालय, गुमला में अर्थशास्त्र के विभागाध्यक्ष हैं।
23. आराधना पटनायक उत्तर प्रदेश के ग्रामीण विकास विभाग की प्रधान सचिव हैं।
24. प्रो. अमिताभ भारती कार्तिक उरांव महाविद्यालय गुमला में अर्थशास्त्र के वरिष्ठ सहायक प्राध्यापक हैं।
25. प्रो बिंदेश्वर साहू कार्तिक उरांव महाविद्यालय गुमला में अर्थशास्त्र के सहायक प्राध्यापक हैं।

26. घर लौटे बेरोजगार श्रमिकों पर नक्सलियों की नजर हरगांव से मांगे दस दस युवक-युवती, दैनिक भास्कर 3 जुलाई 2020 पेज संख्या 1.

ISSN 2278 - 0327

नई शिक्षा नीति का समाज पर प्रभाव

डॉ. इति अधिकारी
असिस्टेंट प्रोफेसर
विभाग समाज शास्त्र
गिन्दो देवी महिला महाविद्यालय, बदायूँ

नई शिक्षा नीति का मुख्य उद्देश्य 1986 के शिक्षा नीति में परिवर्तन के साथ शिक्षार्थी को इस प्रकार की शिक्षा दी जाये जिससे बच्चों का सर्वांगीण विकास हो। नई शिक्षा का लक्ष्य यह भी है कि पांचवी कक्षा तक बच्चों को अपनी मातृभाषा या स्थानीय भाषा में शिक्षा दी जाये और आगे कक्षा 8 तक शिक्षार्थियों को भी मातृभाषा में शिक्षा देने का सुझाव दिया गया है। नई शिक्षा नीति में विद्यार्थियों को पुस्तक और किताबी ज्ञान के साथ रचनात्मक सोच, कौशल, संस्कृति, कला आदि सभी चीजों को शामिल किया गया है। मल्टी डिसिप्लिनरी कोर्स भी तैयार किया गया है, जिससे बच्चे प्रतियोगी परीक्षा की भी तैयारी कर सकें। नई शिक्षा नीति को 3 से 18 साल तक के बच्चों को शिक्षा का अधिकार कानून 2009 के अन्तर्गत रखा गया है। मूलभूत शिक्षा पर ध्यान इस नीति के सबसे महत्वपूर्ण बिन्दु है, जिसे राष्ट्रीय मिशन के रूप में लिया गया है। नई शिक्षा नीति में 5334 वाले शैक्षणिक संरचना 3 से 18 वर्ष की आयु के लिये हैं। यह अध्ययन मुख्य रूप से वर्णात्मक प्रणाली पर आधारित है।

मुख्य शब्द- शिक्षा मंत्रालय, मातृभाषा, सार्वभौमिक, रचनात्मक क्रियाएं, कला व संस्कृति

नई शिक्षा नीति में मानव संसाधन विकास मंत्रालय का नाम ''शिक्षामंत्रालय''[1] कर दिया गया है। नई शिक्षा नीति समय के परिवर्तन की मांग है। पुरानी शिक्षा नीति में समय के साथ बहुत अधिक बदलाव नहीं हुआ थोड़ा बहुतसंशोधन हुआ परन्तु उसका प्रभाव समाज पर बहुत अधिक देखने को नहीं मिला। आज बच्चे अंग्रेजी माध्यम में उलझ कर रह गये हैं, आज अभिभावक अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाने पर अधिक गौरवान्वित महसूस करते हैं। वे शिक्षा कीवास्तविकता को महसूस नहीं करते। शिक्षा का सर्वप्रथम महत्व भाषा तथा उसकेसाथ तकनीकी, चुनौती, संस्कार आदि सभी शामिल है।

शिक्षा का तात्पर्य ''मनुष्य का सम्पूर्ण विकास''। बचपन में दी गई शिक्षा हीसम्पूर्ण जीवन का मूल है। जड़ अगर मजबूत है तो नीव हिल नहीं सकती। जड़ में दिया गया पानी सम्पूर्ण वृक्ष में पहुँच जाता है उसी प्रकार बचपन में दी गई शिक्षा मनुष्य के भविष्य का निर्धारण कर देती हैं। बच्चा गीली मिट्टी के समान होता है जिसको और इस वातावरण का उसके विकास पर प्रभाव पड़ता है। वह जहां रहता है और उसके आस पास जो भाषा बोली जाती है, वह वही सीखता है। जहाँ तक संभव हो दस वर्ष तक उसकी पढ़ाई का विकास उसकी ही मातृभाषा [2] में ही होनी चाहिए। मातृभाषा में उसकी भावना, रूचि का विकास हो जाता है अपनी रूचि को वह स्कूल के वातावरण में ज्ञान के रूप में विकसित करता है।

34 साल बाद नई शिक्षा नीति लागू की गई जिसका मुख्य उद्देश्य 2025 तक प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक [3] बनाना। मातृभाषा के शिक्षा सीखने के बाद उसे धीरे-धीरे अन्य भाषा सीखने के लिए प्रेरित करना चाहिये क्योंकि वह जितनी अधिक भाषा जानेगा, वह अपने आपको अन्य लोगों से सम्पर्क स्थापित करने में उतना ही सहज महसूस करेगा। वह अन्य सभी भाषा में पारंगत तो नहीं होगा परन्तु भाषा के माध्यम से संचार स्थापित कर लेगा। बच्चे की उम्र बढ़ने के साथ-साथ उसकी जिज्ञासा बढ़ेगी और वह सीखने के नये-नये तरीकों को खोजेगा जो विकास में महत्वपूर्ण साबित होगा।

बच्चे को 14-15 वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते वह अपनी रूचि अनुसार विषय, तकनीक, कौशल को पहचान लेगा और उसी पर आगे बढ़ने व अपनी इच्छा को मजबूत करेगा। यहीं से उसको अपने जीवन में आगे बढ़ने का रास्ता स्पष्ट होता जायेगा जो उसके उन्नत भविष्य का सूचक होगा। नई शिक्षा पद्धति पर आधारित जो बच्चों की बुनियादी शिक्षा को बचपन में ही निर्धारित कर उसके भविष्य का रास्ता खोल देगा। जिससे जो युवा डर, बेरोजगारी नई चुनौती का सामना करने से अवसाद व घबराहट का शिकार होता है उससे बचा जा सकता है।

शिक्षा नीति को चार भागों में बांटा गया है पहले भाग में प्राथमिक, दूसरे भाग में उच्च शिक्षा, तीसरे भाग में भाषा संस्कृति एवं तकनीकी चौथे भाग में शिक्षा के स्तर एवं उसकी गुणवत्ता पर चर्चा की गई है। स्कूल की शिक्षा को 5+3+3+4 भागों में बांटा गया है। पहले भाग में यह शिक्षा 102 थी जिसमें छः साल का बच्चा पहली कक्षा में पहुंचता है जिसमें शिक्षा की महत्वपूर्ण जानकारी से उसका कोई नाता नहीं होता, अब Early Child Care and Education के अन्तर्गत बच्चे की शिक्षा 3 साल से ही शुरू हो जायेगी अर्थात् सरकार

का कहना है कि 6 साल तक बच्चे के दिमाग का 80 प्रतिशत विकसित हो जाता है इसके लिये पहली कक्षा से ही बच्चे को अच्छी शिक्षा देने के लिए तैयार रहें इसके लिये बच्चों के भाषा ज्ञान तथा विभिन्न रचनात्मक क्रिया के लिये प्रेरित किया जाये। बच्चों के उचित भाषा, अक्षर एवं अंकों के ज्ञान के लिये बच्चों एवं शिक्षकों का अनुपात 30:1 का है सरकार का यह भी कहना है कि 6 से 8 तक पढ़ाई करने के बाद अधिकांश बच्चे पढ़ाई बीच में ही छोड़ देते हैं 9 से 10 तथा 11 से 12 आते-आते यह प्रतिशत आधी रह जाती है। इसके लिये सरकार सामाजिक एवं आर्थिक रूप से कमजोर बच्चों के मदद के लिये Open School and Distance Learning शुरू की जायेगी एवं बच्चों की मदद के लिये पूर्व छात्र एवं स्थानीय प्रशासन की मदद ली जायेगी।

बच्चों की प्रतिभा के विकास के लिये उसके अतिरिक्त रचनात्मक क्रियाओं[4] को उनके पाठ्यक्रम से जोड़ा जायेगा जिसमें नैतिकता, अच्छा व्यवहार, शिष्टाचार,स्वच्छता सहयोग की भावना विकसित की जायेगी। इसके साथ प्रतियोगिता,प्रयोग, कला, खेलकूद को पढ़ाई का हिस्सा माना जायेगा।

- खेल कूद को अच्छे स्वास्थ्य में शामिल किया जायेगा।
- भाषा का विकास संवाद-वाद-विवाद प्रतियोगिता के लिये किया जायेगा।
- इसके अलावा अन्य स्थानीय भाषा को वैकल्पिक रूप में शामिल किया जायेगा।
- रुचि अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय भाषा को भी शामिल किया जायेगा।

नई शिक्षा नीति द्वारा मूल्यांकन की प्रक्रिया में भी बदलाव किया गया है जिसे NCERT ने National Curricular framework लागू किया जायेगा, जिसका उद्देश्य किताबों के अलावा इसका लक्ष्य बच्चों में सीखने की कला को विकसित करना। बच्चों के साथ शिक्षक व अभिभावक की मदद ली जायेगी जिसमें शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हो। नई शिक्षा नीति की मुख्य विशेषता यह है कि दिव्यांग, लड़कियाँ एवं ट्रांसजेंडर को समान शिक्षा उपलब्ध कराई जायेगी। नई शिक्षा नीति में अधिकारियों को भी इससे जोड़ा जायेगा जैसा जिला शिक्षा अधिकारी, बेसिक शिक्षा अधिकारी जो विद्यालयों के साथ मिलकर काम करेंगे। पुरानी शिक्षा नीति में कुछ ही समूह के पास इनके बदलाव का अधिकार था। नई शिक्षा नीति को बुनियादी कौशल के स्तर पर बनाया गया है जिसमें कला विधि को समझने में अधिक महत्व दिया गया है। IIT में भी ह्यूमैनिटीज और कला को शामिल किया गया है। देश-विदेश के छात्रों को साथ में मिलकर काम करने की कला व संस्कृति को विकसित किया गया है। विश्वविद्यालयों में भाषा के स्तर को बढ़ाने के लिये विशेष शिक्षा जोन बनाये जायेंगे। उच्च शिक्षा में तकनीकी वव्यवसायिक शिक्षा को बढ़ावा दिया जायेगा। जिससे अधिक से अधिक रोजगार उपलब्ध हो सके। शिक्षा पर GDP 4.4 प्रतिशत से 6 प्रतिशत रखने का लक्ष्य रखा गया। जिससे जो भारत के सामाजिक व आर्थिक विकास दोनों के लिये जरूरी है।

समाज पर शिक्षा का प्रभाव-

शिक्षा या शिक्षक शब्द सुनते ही मन-मस्तिष्क में यह विचार आता है कि यह पढ़ा-लिखा और समाज को दिशा देने वाला है। शिक्षक शब्द से ही मन में आदर का भाव उत्पन्न होने लगता है। वर्तमान समाज की मनोदशा शिक्षा व शिक्षा शब्द में बदलाव लाने लगा है क्योंकि शिक्षक विद्यार्थी को उस प्रकार से शिक्षा नहीं दे पाता जिससे विद्यार्थी के अन्दर अनुशासन, प्रेम, त्याग और देश को आगे बढ़ाने की बात सोच सकें। आज विद्यार्थी भ्रमित है क्योंकि उसे शिक्षा का अर्थ कमाना और जीवन जीना यही तक सीमित रह गया है। आज का युवा यही सोचता है जितनी बड़ी नौकरी उतना ज्यादा पैसा और यही पैसा है जीवन जीने का तरीका। यह उनकी कमी नहीं यह शिक्षा विभागों तथा उन विभागों में शिक्षा देने वाले शिक्षकों की है जो शिक्षा में अनुशासन नहीं स्थापित कर पाते। इसके लिये शिक्षा एक प्रशिक्षण न मान शैक्षिक विषय के रूप में देखना पड़ेगा। शिक्षा के दो पक्ष हैं व्यवहारिक व सैद्धान्तिक। व्यवहारिक पक्ष सामान्य समझ की बात करता है जबकि सैद्धान्तिक पक्ष अध्ययन व शोध पर आधारित विशेषता की। व्यावहारिकपक्ष को शिक्षण पद्धतियों द्वारा रूचिकर बनाना तथा सैद्धांतिक पक्ष योग्यता के साथ विशेषता की आवश्यकता को दर्शाता है जैसे एक सर्जन।

समाज के विकास के लिये नीति, परियोजनाओं के क्रियान्वयन के लिये शिक्षा और समाज को शिक्षित होना अति आवश्यक है। शिक्षा व्यवस्था, राष्ट्र की प्रगति, आर्थिक सम्पन्नता, सुरक्षा, गुणवत्ता, गतिशीलता और हर समाज में होने वाले हर परिवर्तन के तत्व को स्वयं में समाहित करने की क्षमता रखता है। इन सभी चीजों को ध्यान में रखकर नई शिक्षा नीति बनाई गई है। शिक्षा सभी की आवश्यकता है, जिसमें अच्छा स्कूल, अच्छे शिक्षक होने चाहिए जो ऐसी शिक्षा दे जिससे बेरोजगार न रहे और अपने जीविकोपार्जन के लिये मुश्किलों का सामना न करना पड़े। शिक्षा बच्चों को चरित्रवान् बनाये परन्तु भारतीयता से विमुख न हो। अपनी संस्कृति, विरासत और परम्परा से परिचित हो। नैतिकता और मानवीय मूल्यों तथा संवैधानिक अपेक्षाओं से बच्चे परिचित हों। इसके समाज, सरकार और शिक्षक सभी को अपना उत्तरदायित्व स्वीकार करना होगा। बच्चों को बस्ते के बोझ से कम होमवर्क, कम प्रोजेक्ट वर्क पर विशेष ध्यान तथा कक्षा से बाहर की गतिविधियों जैसे खेलकूद, वाद-विवाद प्रतियोगिता, कला व कौशल के क्षेत्र में अधिक ध्यान देने की आवश्यकता को बताई गई है। 2020 की शिक्षा नीति से भारतीय शिक्षा प्रणाली का परिदृश्य बदल सकता है। जिसमें पढ़ने-पढ़ाने की प्रक्रिया में रटना कम समझने पर अधिक बल दिया गया है। शिक्षा में और उसकी विद्या तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सभी स्वीकार करते हैं कि प्रारम्भिक शिक्षा का

माध्यम मातृभाषा में ही होनी चाहिए।

अब 2020 की नई शिक्षा नीति में भारतीय अर्थव्यवस्था की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को देखते हुये स्थानीय और वैश्विक मानव संसाधन में सन्तुलन का प्रयास किया गया है। 2020 में अधिकांश संस्थानों परिपक्वता के साथ समालोचना जड़ता है जिसे नई शिक्षा नीति अपनी पसंद विशेष के क्षेत्र में व्यक्तिगत क्षमताओं को विशेष ध्यान दिया गया है, जिसके लिये लचीले विकल्प भी दिये गये। वहीं 2020 की शिक्षा नीति सामाजिक समायोजन के साथ संचित वर्गों की हिस्सेदारी वाले क्षेत्रों में गठन की नई आशा जगाती है। इसके अतिरिक्त नई शिक्षा नीतिशैक्षिक ज्ञान व प्रशिक्षण से मिलने वाले आर्थिक उपार्जन पर भी ध्यान केन्द्रित करती है। 2020 की शिक्षा नीति जो मूल्यों को जोड़ने वाला है जो अन्तर्राष्ट्रीयमानकों के करीब है।

नई शिक्षा नीति के ऑनलाइन सर्वे में लगभग 96 प्रतिशत छात्रों को उम्मीदकी नई किरण जगी है। इसके साथ-साथ अध्यापक-शिक्षा के संस्थानों में प्रशासनिक एवं अकादमिक कार्यों की समय-समय पर समीक्षा करना औरअध्यापक-शिक्षकों की भर्ती एवं पदोन्नति के नियमों को संस्कृति एवं आवश्यकता अनुरूप बदलना एवं सुधार करना। अध्यापकों की क्षमताओं पर शिक्षा की गुणवत्तानिर्भर करती है। इसके लिये अध्यापकों का प्रशिक्षित होना। समय-समय पर नये आयामों को शामिल करना आदि नई शिक्षा नीति एक सकारात्मक पहल है जिसे श्री कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता वाली समिति ने तैयार किया। शिक्षा समवर्ती सूची का भाग है इसलिये केन्द्र राज्य दोनों की भूमिका महत्वपूर्ण है। जिससे नई शिक्षा को आगे बढ़ाया जा सकता है। यह शिक्षा नीति भाषा, संस्कृति, कौशल से समाज को नई दिशा प्रदान कर सकती है। शिक्षा समाज का दर्पण है जिसमें प्रत्येक का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। इसके लिये राष्ट्र, राज्य व अभिभावकों सभी के महत्वपूर्ण योगदान की आवश्यकता है। जो समाज को एक नई रोशनी प्रदान करेगा।

1- Kumar, Raj. C. The Indian express news paper, 31 July, 2020, P.9, Mumbai

2- Singh, Kumar, Arun, Dainik Jagran, 29 July, 2020, P.9.10, Kanpur

3- Chaudhary, S, Zee News, 29 July 2020, DNA, Noida

4- Khan, S, YouTube, official website, 26 March 2020, 9 Feb 2021, Patna

ISSN 2278 - 0327

चाक में चित्रित स्त्री का संघर्ष

डॉ. राम किशोर यादव
श्री वेंकटेश्वर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सार:

'चाक' एक ऐसा उपन्यास है जिसमें नारी की पीड़ा के साथ-साथ नारी का संघर्ष विद्यमान है। उपन्यास की नायिका सारंग है जो बने बनाये सामाजिक ढांचा को झटका पर झटका देती है। वह गांव के दबंगों के सामने हथियार नहीं डालती, हर कदम पर उनका मुकाबला करती है। गाँव रणक्षेत्र बना हुआ है। इस रणभूमि में सारंग उतरी हुई है। उसका कोई साथ देने वाला नहीं है। यहां तक कि उसका पति भी उसके विरोध में खड़ा है। इसमें स्त्री के संघर्ष को देखा जा सकता है। वह परम्परागत भारतीय नारी है जो संपूर्ण दायित्वों का निर्वहण कर रही है। अपने दायित्व निर्वहण के साथ-साथ गांव के विकास की रूपरेखा भी बनाती है। सभी स्त्रियों को अत्याचार से मुक्ति भी दिलाना चाहती है। यही उसका संघर्ष वैयक्तिक न होकर सामूहिक हो जाता है। गांव की स्त्रियों की जीवन गाथा को चित्रित करना ही लेखिका का उद्देश्य है।

सारंग इस युद्ध में अपना साथी स्कूल के प्रिंसिपल श्रीधर को बनाती है। श्रीधर उसके हर कदम की सराहना करते हैं। उन्हें नये मार्ग दिखाते हैं। इस मार्ग पर सारंग निरन्तर गतिशील रहती है। सारंग पुराने रीतियों-कुरीतियों को बदलने के लिए कृतसंकल्प है। वह कई बार इसके लिए प्रयास करती दिखाई देती है। उसे संपूर्ण व्यवस्था से टकराना पड़ता है। यहां तक कि पति से भी टकराना पड़ता है। उसका यह रास्ता कांटों से भरा हुआ है। उसे हर कदम परास्त करने की योजना बनायी जाती है। हर बार वह निकलकर आगे बढ़ जाती है। वह निडर है। वह स्वयं निर्णय लेने वाली है, इस उपन्यास में यह कहा जा सकता है। इस लड़ाई के मार्ग बेहद कठिन है। यह टेढ़ा-मेढ़ा और शूलों से भरा है। वह अपने पति से भी लड़ने से परहेज नहीं करती है। समाज में हो रहे परिवर्तनों को 'चाक' में चित्रित किया गया है। यह मानवीय भावों से ओत-प्रोत है। इसमें किसान के जीवन को रेखांकित किया गया है। किसान की पत्नी सारंग का जीवन चित्र प्रस्तुत है। स्त्री मुक्ति के लिए प्रयासरत सारंग का जीवन संघर्षमय है। वह सामाजिक रुढ़ियों को झटका देती है। आर्थिक सम्पन्नता आने पर स्त्री का जीवन बदल जाता है। वह अपना निर्णय स्वयं लेती है।

'चाक' में स्त्री की संघर्ष गाथा को ही उजागर किया गया है। सारंग इसका प्रतिनिधित्व करती है। वह अपने संघर्ष पथ पर आगे बढ़ती रहती है। यह स्त्री स्वातंत्र्य का जीवन्त दस्तावेज है। अन्याय से मुक्ति के लिए, स्त्री के द्वारा स्त्री के लिए, स्त्री का संघर्ष है।

'चाक' एक ऐसा उपन्यास है जिसमें नारी की पीड़ा के साथ-साथ नारी का संघर्ष विद्यमान है। उपन्यास की नायिका सारंग है जो बने बनाये सामाजिक ढांचा को झटका पर झटका देती है। वह गांव के दबंगों के सामने हथियार नहीं डालती, हर कदम पर उनका मुकाबला करती है। गाँव रणक्षेत्र बना हुआ है। इस रणभूमि में सारंग उतरी हुई है। उसका कोई साथ देने वाला नहीं है। यहां तक कि उसका पति भी उसके विरोध में खड़ा है। इसमें स्त्री के संघर्ष को देखा जा सकता है। वह परम्परागत भारतीय नारी है जो संपूर्ण दायित्वों का निर्वहण कर रही है। अपने दायित्व निर्वहण के साथ-साथ गांव के विकास की रूपरेखा भी बनाती है। सभी स्त्रियों को अत्याचार से मुक्ति भी दिलाना चाहती है। यही उसका संघर्ष वैयक्तिक न होकर सामूहिक हो जाता है। गांव की स्त्रियों की जीवन गाथा को चित्रित करना ही लेखिका का उद्देश्य है।

सारंग इस युद्ध में अपना साथी स्कूल के प्रिंसिपल श्रीधर को बनाती है। श्रीधर उसके हर कदम की सराहना करते हैं। उन्हें नये मार्ग दिखाते हैं। इस मार्ग पर सारंग निरन्तर गतिशील रहती है। सारंग पुराने रीतियों-कुरीतियों को बदलने के लिए कृतसंकल्प है। वह कई बार इसके लिए प्रयास करती दिखाई देती है। उसे संपूर्ण व्यवस्था से टकराना पड़ता है। यहां तक कि पति से भी टकराना पड़ता है। उसका यह रास्ता कांटों से भरा हुआ है। उसे हर कदम परास्त करने की योजना बनायी जाती है। हर बार वह निकलकर आगे बढ़ जाती है। वह निडर है। वह स्वयं निर्णय लेने वाली है, इस उपन्यास में यह कहा जा सकता है। इस लड़ाई के मार्ग बेहद कठिन है। यह टेढ़ा-मेढ़ा और शूलों से भरा है। वह अपने पति से भी लड़ने से परहेज नहीं करती है। नारी के अस्मिता को सारंग के शब्द मुखरित करते हैं, ''क्योंकि दामन बचाकर भी आग से नहीं बच पाओगे। तुम जिन्दगी जी रहे हो। मेरे लिए जिन्दगी और मौत बराबर हो गई है। तुम्हें बेदाग रहने की लालसा है और मैं दागदार जीवन से डरती नहीं।''[1]

समाज में हो रहे परिवर्तनों को 'चाक' में चित्रित किया गया है। यह मानवीय भावों से ओत-प्रोत है। इसमें किसान के जीवन को रेखांकित किया गया है। किसान की पत्नी सारंग का जीवन चित्र

प्रस्तुत है। स्त्री मुक्ति के लिए प्रयासरत सारंग का जीवन संघर्षमय है। वह सामाजिक रुढ़ियों को झटका देती है। आर्थिक सम्पन्नता आने पर स्त्री का जीवन बदल जाता है। वह अपना निर्णय स्वयं लेती है। इस संदर्भ में सीसोन द बुआ का तर्क है, ''हमें यह भी नहीं समझ लेना चाहिए कि केवल आर्थिक स्थिति के बदलते ही स्त्री के पूर्ण परिवर्तन हो जायेगा। यद्यपि मानव विकास के क्रम में आर्थिक व्यवस्था एक आधरभूत तत्व है, जो व्यक्ति का नियंता है, किन्तु इसके बावजूद नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि अवस्थाओं में भी परिवर्तन की पूरी जरूरत है, जिसके बदले बिना नयी स्त्री का आविर्भाव संभव नहीं होगा।''[2]

स्त्री का विकास एक सामाजिक आवश्यकता है। यह प्रक्रिया अत्यन्त जटिल एवं संघर्षमय है। जब भी परिवर्तन होता है सामाजिक रुढ़ियां सामाजिक मर्यादाएं, सामाजिक बंधन उसे नकार देती हैं। वह संपूर्ण बंधनों से स्त्री मुक्ति चाहती है। इस मुक्ति के लिए वह निरन्तर प्रयास करती रहती है। वह अपना केस स्वयं रिप्रजेंट करती हैं। स्वतंत्रता तो सभी मनुष्यों को चाहिए पर नारी पर इस विशेष संदर्भ में देखने की जरूरत है। कोई भी समाज पूर्णत: सक्षम नहीं बन पायेगा जब तक कि उस समाज में स्त्रियां स्वतंत्र नहीं हैं। स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को रूसो अनिवार्य मानते हैं। ज्याँ जॉक रूसो के विचार हैं, ''मनुष्य का जन्म स्वाधीन है लेकिन सर्वत्र बंधनों में जीता है।''[3] स्त्री शिक्षित होकर अपना अधिकार चाहती है। समानता के धरातल पर खड़ा होना चाहती है। समाज के लोग यह अवसर प्रदान नहीं करना चाहते। यहीं संघर्ष का द्वार खुल जाता है। मैत्रोयी पुष्पा के सभी उपन्यासों में नारी के संघर्ष को रेखांकित किया गया है। वे समाज के परिवर्तन में अपना योगदान देती है। वे हार नहीं मानती पर समाज में शोषक वर्ग उसे निरन्तर दबाते रहते हैं। उसे अपना शिकार बनाते रहते हैं।

'चाक' के केन्द्र में स्त्री की दास्तान है। वह संघर्षशील स्त्री है। गांव के दबंगों से टकराती है। सारंग तो चाक पर बैठी हुई है। चाक घूम रहा है। अपने आसपास को समेट रहा है। सारंग को नये आयाम प्रदान कर रहा है। अतरपुर गांव में रहने वाली सारंग को ढालकर 'चाक' नया बना रहा है। सारंग न चाहते हुए भी इसमें सहभागी है। उसके जीवन के यथार्थ को चित्रित किया गया है। उसके साथ-साथ ग्रामीण समाज की तमाम स्त्रियों चाहे रेशम हो, चाहे गुलकन्दी हो की जीवन को पूरी तरह खोलकर रख दिया गया है। अतरपुर के संपूर्ण वातावरण में रहने वाली स्त्रियां की जीवन्त दस्तावेज है।

'चाक' में संस्कारों को तोड़ने का काम किया गया है। सारंग के माध्यम से, रेशम के माध्यम से तथा गुलकन्दी के माध्यम से उन संस्कारों को झटका दिया गया है। जो स्त्री को बांधने के लिए बनाये गये थे। स्त्रियों की सोच, व्यवहार, उनकी दुनिया, उनकी जीवन शैली तथा उनके जीवन की गति को भी वाणी प्रदान किया गया है। स्त्री का जीवन कैसा हो ? उनके भीतर संस्कार कैसे हों ? उनकी मर्यादाएं कैसी हों ? उन पर जाति का दबाव कितना और किस प्रकार का हो ? इन सभी प्रश्नों को इस उपन्यास में उठाया गया है। इसके कथ्य में पीड़ा अन्तर्निहित है। इसमें विद्रोह के दर्शन भी होते हैं। कथा नायिका सारंग के इर्द-गिर्द घूमती है। इस प्रक्रिया में संपूर्ण वातावरण के रूप सामने आ जाते हैं। वह वस्तु से व्यक्ति और 'व्यक्ति' से वस्तु बनने की प्रक्रिया है।

अतरपुर गांव की स्त्रियों के जीवनगाथा को प्रस्तुत किया गया है। मैत्रोयी पुष्पा के अनुसार, ''अतरपुर जाट किसानों का गाँव है और जैसा है वैसा ही बना रहना चाहता है। वह हर बदलाव का विरोधी है। यथास्थिति में जब-जब परिवर्तन आता है, कुछ मूल्य और विश्वास टूटते हैं। हर विकास परम्परागत मान्यता को बदलता और तोड़ता है। सारंग नहीं जानती कि वह इस परिवर्तन और विकास की शिकार है या सूत्रधार। इतिहास कागज के पन्नों पर उतरने से पहले मानव-शरीरों पर लिखा जाता है। अतरपुर जैसे गांव परिवर्तन की मुख्यधरा के प्रवाह से अछूते नहीं हैं। अपने रीति-रिवाजों, जाति-संघर्षों, गीत-उत्सवों, नृशंसताओं-प्रतिहिंसाओं, प्यार-ईर्ष्याओं और कर्मकांडी अंधविश्वासों के बीच धड़कता अतरपुर गांव सारंग और रंजीत के आपसी संबंधें के उतार-चढ़ाव में समय को आत्मसात कर रहा है... गांव को रंग रेशों में जीता हुआ आत्मीय दस्तावेज पुरुष समाज में स्त्री की अपनी पहचान का संकल्प पत्र।''[4]

'चाक' में स्त्री की पीड़ा को संपूर्णता में प्रकट किया गया है। उपन्यास की शुरुआत ही त्रासदी से होती है। नारी की हत्या से होती है। यह हत्या ही कथा के अन्त तक हावी रहती है। इसमें सारंग के रिश्ते की बहन रेशम को मौत के घाट उतार दिया जाता है। इससे सारंग व्यथित हो जाती है। इसमें रेशम का दोष क्या था ? वह तो विधवा होने के बावजूद किसी से प्रेम किया। प्रेम के कारण वह गर्भवती होती है। वह गर्भ को गिराना नहीं चाहती जबकि परिवार के लोग गर्भ गिराने के लिए दबाव डालते हैं। वह उन दबावों के आगे झुकती नहीं है। उपन्यास में इसकी अनुगूंज सुनाई पड़ती है। ''काश यह मौत ! मगर यह हत्या ! पतित स्त्री, गर्भवती औरत की हत्या।''[5]

सारंग की रिश्ते की बहन रेशम को मौत के घाट उतार दिया जाता है। रेशम इससे बेचैन हो जाती है। वह पूरे मामले की सघन जांच चाहती है। इस मामले में शामिल लोगों को कठोर दंड दिलाना चाहती है। इसमें अपने पति रंजीत का सहयोग चाहती है परन्तु इस मामले को दबाने का हरसंभव प्रयास किया जाता है। सारंग का संघर्ष यहां अकेले स्त्री का संघर्ष है जो तमाम चुनौतियों से गुजरती है।

रेशम के भीतर भी स्त्री का प्रबल रूप विद्यमान है। इसकी हत्या से पहले परिवार के लोग जब गर्भ गिराने पर जोर देते हैं तो उसका जवाब है -''मैंने कह तो दिया है, पंचायत जोड़ लो। मैं कह दूंगी, मुझे छेक दो, बच्चा मेरे पेट से पैदा होगा, घर वाले इसमें शामिल ही कहां

हैं।''[6]

यह एक स्वाभिमानी स्त्री का स्पष्ट संदेश है। वह हर हाल में अपने निर्णय पर कायम रहती है। रेशम जब सारंग से मिलती है तो वह कहती है, ''तैयार करने दे सूली, मैं हौसला नहीं हारुँगी।'' यह ग्रामीण स्त्री की चेतना का स्वत: स्फूर्त रूप है। यह अतरपुर गांव में बदलाव की दस्तक है। यह स्पष्ट संदेश है कि मैं अपना निर्णय स्वयं ले सकती हूं। मेरे जीवन में किसी को ताक-झांक करने की आवश्यकता नहीं है। मैं किसी के दबाव में क्यों आऊं। मैं अपने कर्म के प्रति समर्पित हूं। मैं अपना जीवन जीना चाहती हूं। मेरे जीवन में किसी को हस्तक्षेप करने की जरूरत नहीं है। रेशम के इस कथन से सारंग घबरा जाती है। वह सोचती है कि ये नरपिचाश अब रेशम को जीवित नहीं रहने देंगे। जो अंदेशा था वही हुआ। इस प्रकार की हत्या अतरपुर गांव में न पहली है न अंतिम। इस तरह के खेल में गांव के लोग निरन्तर खेलते रहते हैं। उन्हें किसी का भय नहीं रहता था। न पुलिस, न कोर्ट, न धर्म, न ईमान का ही। मामला मुकदमा चलता नहीं, अगर चलता है तो दबंगों के पक्ष में ही जाता है।

रेशम की हत्या से सारंग व्यथित है। वह दुखी है। वह सत्य जानना चाहती है। वह हत्यारे को सजा दिलवाना चाहती है। इसमें पति का साथ चाहती है। पति की अनिच्छा से वह बेचैन हो जाती है। अपना सहारा ढूंढ़ती है ताकि सच को सामने लाया जाये। प्रारंभ में सारंग के कहने पर रंजीत केस करते हैं। डोरिया गिरफ्तार हो जाता है पर झूठी गवाही के बल पर वह छूट जाता है। रंजीत इसे अपनी हार मान लेते हैं।

डोरिया गांव के प्रधान फते सिंह का साथ पा जाता है। वह थान सिंह का भाई है। थान सिंह फते सिंह का आदमी है। प्रधान अपनी पहुंच से डोरिया को छुड़वा देता है। यहीं से रणभूमि के रूप बदल जाते हैं। डोरिया आकर सारंग को धमकी देता है कि उसके पुत्र चन्दन की गर्दन तोड़ देगा। गांव के मुहाने पर डोरिया सारंग से मिलकर धमकी देता है, ''तेरे छोटा की मार (गर्दन) मसकनी है फिर भूल जायेगी विफरना। साली इकबझिया। पूरी जिन्दगी निपुती होकर विसूरती रहना।''[8]

सारंग डोरिया के भय से डरती है। वह अपने पुत्र को बचाना चाहती है। फलस्वरूप अपने पुत्र चन्दन को अपने जेठ के पास आगरा भेज देती है। वह जानती है समय बलवान होता है। समय कभी न कभी करवट लेगा। अपने पुत्र को भेजने के बाद सारंग संघर्ष के मार्ग पर आगे बढ़ती है। 'चाक' में दो बदलावों की ओर ध्यान दिलाया गया है। एक वैयक्तिक बदलाव और दूसरा सामाजिक बदलाव। समाज के बीच तमाम अन्तर्विरोधें के बावजूद वह गतिशील है। सारंग का संघर्ष निरन्तर जारी है कहीं मुखर होकर तो कहीं छिपकर।

इस बीच में गांव में अन्य युवती गुलकन्दी को होलिका दहन के दिन जलाकर मार दिया जाता है। उसका दोष इतना ही था कि वह विसुनदेवा से प्रेम करती थी। उसके साथ भागकर गन्धर्व विवाह कर लिया था होली के दिन उसे मायके बुलाया जाता है। मायके में होली के रात्रि में पति के समेत उसे जलाकर मार दिया जाता है। इस घटना का बहुत ही गहरा प्रभाव सारंग पर पड़ता है। वह गांव के भीतर निरन्तर हो रहे हत्याओं से व्यथित है। इन स्त्रियों को कोई न्याय नहीं मिलता है। न्याय की तलाश में निरन्तर अपने को आहुति देते नारियों का जीवन्त दास्तान है।

इन सभी घटनाओं से चिन्तित सारंग को स्कूल में आये नये शिक्षक श्रीधर प्रजापति का साथ मिलता है। गांव की राजनीति की दिशा को बदलने का निर्णय श्रीधर प्रजापति लेते हैं। इसके लिए वह सारंग को आगे करके संघर्ष शुरू करते हैं। स्कूल गांव की राजनीति का केन्द्र बिन्दु है। वह भ्रष्टाचार का भी केन्द्र है। इन सभी बिन्दुओं को समेटने का प्रयास श्रीधर प्रजापति करते हैं तो गांव के प्रधान सारंग के पति रंजीत से रात्रि में उसे पिटवा देते हैं। अन्त तक श्रीधर प्रजापति रंजीत का नाम नहीं लेते हैं। लेकिन रंजीत की पत्नी सारंग को मोहरा बनाकर ग्रामीण राजनीति की चूलें हिला देते हैं। सारंग भी सोचती है कि पति की हीन भावना से अच्छा है कि वह श्रीधर प्रजापति को अपना सहयात्री बनाये। वीरेन्द्र सक्सेना के अनुसार, ''परिवर्तन कामी सारंग सोचती है कि पति की हीनभावना को गले लगाने से अच्छा है कि वह सहयात्री श्रीधर की उच्चतर भावनाओं को गले लगाये, चाहे इसके लिए प्रकारान्तर से श्रीधर को भी गले लगाने की वर्जनीय लेकिन सुखदायी अनुभूति से ही क्यों न गुजरना पड़े।''[9]

सारंग अपने तमाम नैतिक प्रतिमानों का अतिक्रमण करती है। यहां तक कि श्रीधर प्रजापति के साथ वैवाहिक संबंध भी स्थापित करती है। वह अपने दागदार जीवन से भी डरती नहीं है। उसे अपने मिशन में कामयाब होना है, यह मिशन स्त्रियों की मुक्ति का मिशन है। इस बात की जानकारी रंजीत को है। रंजीत के पिता को भी संबंधें की जानकारी है। श्रीधर के साथ सारंग अलीगढ़ तक जाती है। रंजीत इससे बौखला जाते हैं। वह सारंग नैनी के साथ मार-पीट करते हैं। ऐसे क्षण में सारंग बंदूक उठा लेती है। रंजीत के पिता सारंग का ही पक्ष लेते हैं। वे सारंग को समझाते हैं। मैं जानता हूं तू मास्टर के लिए अपनी जान तक दे सकती है। ''पर बेटी, तू रंजीत को भी ठोकर नहीं मार पायेगी। तू लौट आना जल्दी। आंख से ओझल जो होता है उसका मलाल इतना नहीं मानता आदमी, पर अनदेखतें....।''[10]

स्त्री स्वतंत्रता की भावना को भी यहां स्पष्ट किया गया है। उन सभी प्रश्नों को जस्टिफाई किया गया है। रंजीत के पिता के शब्दों में, ''...हम जाट हैं। खुले मन की कौम मानी गयी है हमारी। बाम्हन-बनियों की तरह पाखंडी होना भारी पड़ेगा हमें। क्योंकि जो खुले और बहादुर संस्कार हमारे खून में है, वही दबंगपना हमारी बैयरों में। लुगाईयों की लहंगा की चौकीदारी करना हमेशा शोभा नहीं देता। जुलम सितम की मारी इंसानियत को महफूस जन्मती है हमारी

पीढ़ियां।''[11]

'चाक' में स्त्री की संघर्ष गाथा को ही उजागर किया गया है। सारंग इसका प्रतिनिधित्व करती है। वह अपने संघर्ष पथ पर आगे बढ़ती रहती है। यह स्त्री स्वातंत्र्य का जीवन्त दस्तावेज है। अन्याय से मुक्ति के लिए, स्त्राी के द्वारा स्त्री के लिए, स्त्री का संघर्ष है।

अतरपुर गांव में चुनाव की तैयारी होती है। इस चुनाव में विपक्ष के खेमे में रंजीत है। विपक्ष की उम्मीदवारी का भ्रम देकर उसे साथ रखा जाता है। सारंग यह जानती है। वह स्वयं निर्णय लेती है कि चुनाव में उम्मीदवार बने। सारंग के माध्यम से स्त्री के राजनीति जीवन में प्रवेश को दिखाया गया है। वह बिना किसी पार्टी, बिना किसी कार्यकर्ता और बिना किसी राजनैतिक पैंतरे के साथ सारंग चुनाव में उतरती है। सारंग पर नाम वापस लेने का दवाब उसके पति देते हैं। सारंग कहती है, ''मैं चाहकर भी पीछे नहीं लौट सकती। अपने प्रधान से छिपा पाओ तो यह बात बताती हूं कि पन्ना सिंह अपना नाम वापस लेंगे, भले ही फतेसिंह खुदकुशी कर लें।''[12]

चुनावी रणनीति अम्बेडकर चौक पर बनती है। उस बैठक में रंजीत भी शामिल रहते हैं। वहां मुर्गे कटते हैं, शराब बहती है, चुनाव जीतने के लिए बूथ कैपचरिंग की योजना बनती है। सारंग की जीत पक्की होते देखकर विरोधियों के होश उड़ जाते हैं। विरोधियों को हार का भय सताने लगता है। अपने गलत कामों को खुलने के डर से किसी भी तरह चुनाव जीतना चाहते हैं। ऐसे समय में वहां रंजीत द्वारा लंका दहन होता दिखाया गया है। वे सारंग की तरफ आ जाते हैं। सारंग की जीत होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि रंजीत चाक पर बैठे हैं और चाक निरन्तर गीतशील है। यह समय का साक्षी है। स्त्री के विजय का प्रमाण है। स्त्री की मुक्ति, स्त्री के द्वारा ही संभव है।

संदर्भ ग्रंथ

1. पुष्पा, मैत्रोयी, चाक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण, 1997, पृ. 184
2. सीमान द बुआ, स्त्राी उपेक्षिता, 'द सेकेण्ड सेक्स' का प्रभा खेतान द्वारा अनुवाद, पृ. 343
3. Rousseau, Jean Jacques, The Social Contract and Discourses, P. 165
4. पुष्पा, मैत्रोयी, चाक के फ्रलैप से उद्धृत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण, 1997, पृ. 1
5. वही, पृ. 7
6. वही, पृ. 21
7. वही, पृ. 21
8. वही, पृ. 46
9. सक्सेना, वीरेन्द्र, पश्चन्ती, जनवरी-मार्च, 1998
10. पुष्पा, मैत्रोयी, चाक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण, 1997, पृ. 317
11. वही, पृ. 318
12. वही, पृ. 417

ISSN 2278 - 0327

चित्रा मुद्गल के उपन्यास गिलिगडु में वृद्ध जीवन का यथार्थ

डॉ. कल्पना सिंह
विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग
एस.एस.वी.(पी.जी.) कॉलेज, हापुड़, मेरठ,
चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, उ.प्र.

नेहा माथुर
शोधार्थी हिंदी विभाग
एस.एस.वी.(पी.जी.) कॉलेज, हापुड़, मेरठ,
चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, उ.प्र.

साहित्य एक ऐसा आईना है जिसमें न केवल इंसानी शक्लें उभरती हैं, अपितु उसके इर्द-गिर्द के बिम्ब भी प्रतिबिम्बित हो उठते हैं। लेकिन यह समस्त वार्ता आइने के आकार पर निर्भर करती है कि वह कितनी छवियों, स्थितियों और मुद्राओं को एक साथ प्रस्तुत कर सकता है। सृजनकार अपने नजरिये से अपने समाज, आस-पास के जीवन-परिवेश में जो कुछ भी अनुभव करता है, उसे ही सृजनात्मकता के साथ अपनी कृति में चित्रित करता है, उसे हम यथार्थ कहते हैं। यथार्थ जीवन की वास्तविक अनुभूति है। इसके अंतर्गत आदर्शों को दूर रखकर किसी भी चीज को उसके वास्तविक स्वरूप में प्रकट किया जाता है, जिसमें कर्ता अपनी तरफ से किसी भी प्रकार की टिप्पणी नहीं करता अपितु संपूर्ण दायित्व अपने दर्शकों और पाठकों पर छोड़ देता है। समकालीन महिला कथाकार चित्रा मुद्गल जी ने मानवीय जीवन के यथार्थ पर साधिकार लेखन किया है। इन्होंने अपने उपन्यासों के लिए प्रत्येक बार नवीन पृष्ठभूमि का चयन किया है। चित्रा जी का उपन्यास क्रम '*एक जमीन अपनी*' से आरंभ हुआ यह रचना क्रम क्रमशः 'आवां ','गिलिगडु' और 'पोस्ट बॉक्स नं. 203' 'नालासोपारा' तक पूरी आत्मीयता से पहुँचा है।

'*समकालीन यथार्थ की बहु परतीय लक्षित जटिल विद्रूपताओं के सर्वथा अलक्षित अंतर्सत्यों का संधान वह जिस सूक्ष्म भाषिक संवेदना के साथ अपनी कथा रचनाओं में परत दर परत अनेक अर्थ छवियों में अन्वेषित करती हैं, वह चकित कर देने वाला है। उनके कथा संवेग पात्रों के द्वंद जनित मनोविज्ञान के अब तक लगभग अव्यक्त रहे अंतर्तहों के अंतः राग को चरम विन्यास के जिस बिंदु पर पहुँचाकर देखते हैं, वह रचना के आद्योपांत बांधे रखने वाले शिष्ट-वैशिष्ट्य को ही नहीं रेखांकित करता है, बल्कि पाठक की चेतना पर दस्तक देने के गहन सर्जनात्मक लक्ष्य को भी इंगित करता है।*'[1] इस संदर्भ में चित्रा जी का साहित्य महत्वपूर्ण है।

इस शोध-पत्र के माध्यम से चित्रा जी के उपन्यास 'गिलिगडु' में वृद्ध जीवन के यथार्थ को समझने का प्रयास किया गया है।

मूल शब्द - यथार्थ, वृद्ध जीवन, उपेक्षित स्थान और एकाकीपन ।

प्रस्तावना - समकालीन हिंदी कथासाहित्य के कथाकारों में किसी एक महिला कथाकार का नाम लेना हो जो अपने व्यक्तित्व से एक भारतीय स्त्री की संपूर्ण गरिमा का प्रतिनिधित्व करती हो, जो लेखन के स्तर पर चेतना संपन्न, जागरुक, मुखर तथा सक्रिय हो तो निसंदेह चित्रा मुद्गल जी का नाम सर्वोपरि होगा।

आधुनिक युग की परिवर्तित नवचेतना की प्रतिनिधि रचनाकार चित्रा मुद्गल का जन्म 10 दिसंबर 1944 ई. को चेन्नई में नेवल ऑफिसर ठाकुर प्रताप सिंह के यहाँ हुआ। जिनका संबंध उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के प्रसिद्ध इलाके बैसवाड़े के गाँव निहाली खेड़ा के एक जमींदार घराने से था। उनकी माँ श्रीमती विमला देवी भी उत्तर प्रदेश के ही एक गाँव प्रतापगढ़ के बयालीस गाँव के ताल्लुकेदार ठाकुर गयाबख्शसिंह की बेटी थीं। उनका पैतृक गाँव बैसवाड़े के उस निहाली खेड़ा गाँव में है, जिसने हिंदी साहित्य को जायसी, निराला, महावीर प्रसाद द्विवेदी, शिव मंगल सिंह 'सुमन' जैसे दिग्गज साहित्यकारों के साथ-साथ चंद्रशेखर आजाद जैसे क्रांतिकारी भी दिए।

साहित्य लेखन के शुरूआती दौर में चित्रा जी ने बहुत सी कविताएँ लिखी जो समयानुसार प्रकाशित भी हुई, लेकिन उन्होंने यह अनुभव किया कि कविता के माध्यम से वह अपनी संवेदनाओं को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त नहीं कर पा रहीं हैं, तब उनका रुझान कहानी और उपन्यास की ओर बढ़ा और फिर बढ़ता ही चला गया। उनके उपन्यास और कहानियाँ अधिक लोकप्रिय, सारगर्भित और युगीन समस्याओं को प्रतिबिम्बित करने वाले हैं। उन्हें अपने रचना कर्म के लिए प्राप्त अनेक सम्मान पुरस्कारों में सहस्त्राब्दि का प्रथम अंतरराष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान, व्यास सम्मान, साहित्यकार सम्मान, सामाजिक कार्यों के लिए विदुला सम्मान, राष्ट्रीय अवंतीबाई सम्मान और भारतीय भाषा परिषद् कोलकाता का रचना समग्र शिखर सम्मान आदि भी सम्मिलित हैं। उपन्यास 'गिलिगडु' के लिए चित्रा जी को मध्य प्रदेश का 2005 'चक्रधर सम्मान' और 2005-06 का 'श्रीमती रत्नी देवी गोयना सम्मान' मुबंई, प्रदान किया जा चुका है। इस प्रकार चित्रा जी के जीवन के न जाने कितने अनुभव हैं जो कल्पना के रंग में रंग कर हमारे समक्ष कथा-साहित्य के रूप में बिखरे पड़े हैं। किसी ने

सत्य कहा है –

' उम्र पकने के साथ जीवन के अनुभवों का कोष तो समृद्धतर होता चलता है, उससे जरूर समझ में गहराई आती होगी, संवेदना भी कदाचित् कुछ अधिक परिष्कृत होती होगी, जो सब अपने रहस्यमय ढंग से कहानी के अंदर उतर आता होगा।' [2]

उपन्यास 'गिलिगडु ' में अपनी संतानों से तिरस्कृत दो बुजुर्गों के जीवन का कथानक है। बाबू जसवंत सिंह रिटायर्ड सिविल इंजीनियर का अपने पुत्र नरेंद्र के पास रहने के लिए आना, उसकी पत्नी तथा स्वयं नरेंद्र का उनके साथ अजनबीयों का व्यवहार करना, पुत्र वधु द्वारा समय-समय पर तंच कसना जिससे जसवंत बाबू का आहत होना, टॉमी को पार्क में घुमाते समय कर्नल स्वामी से भेट होना, उसके बाद उनके जीवन में नवीन मोड़ आना कर्नल स्वामी के द्वारा अपने परिवार के विषय में बताना, अचानक कर्नल स्वामी का मिलने ना आना चिंतित होकर ढूँढते हुए उनके घर पहुँचना और वहाँ पहुँचकर उनके परिवार की वास्तविकता जानकर ठगा-सा रह जाना और अंत में वसीयत परिवर्तित कर लेने का निर्णय लेना। उपन्यास का कथानक केवल इतना ही नहीं है। इसे कथाकार ने कई दृष्टिकोणों से बुना-रचा है। एक दृष्टिकोण बाबू जसवंत सिंह का है जो अपने बेटे-बहू से प्रेम व सम्मान के आकांक्षी है, वहीं दूसरी ओर उनके बेटे-बहू का दृष्टिकोण स्वार्थपरकता से पूर्ण है। कर्नल स्वामी जीवन को सकारात्मक दिशा देने के लिए काल्पनिक संसार का निर्माण कर लेते हैं। संबंधों को नवीन रूप में परिभाषित करता यह उपन्यास हमें केवल यही संदेश देता है कि रक्त संबंधों की अपेक्षा प्रेम एवं लगाव से पूर्ण संबंधों में स्थिरता है। संवेदनाओं का क्षरण हमारे समय की सबसे क्रूर स्थिति है। इसी क्रूरता से भरे यथार्थ को चित्रा जी ने अपने उपन्यास में पूरी संवेदना और तार्किकता के साथ प्रस्तुत किया है।

उद्देश्य –

1. यथार्थ को समझना।
2. 'गिलिगडु' उपन्यास के परिपेक्ष्य में वृद्ध जावन के यथार्थ को प्रकट करना।
3. यथार्थ के परिपेक्ष्य में 'गिलिगडु' का मूल्यांकन करना।

व्याप्ति एवं प्रासंगिकता –

प्रस्तुत शोध-पत्र में उपन्यास साहित्य में यथार्थवाद, चित्रा मुद्गल कृत 'गिलिगडु' में यथार्थवाद और हिंदी दलित साहित्य के आदि ग्रंथों के साथ-साथ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं का प्रयोग किया गया है।

अनुसंधान पद्धति –

प्रस्तुत शोध-पत्र में यथार्थ जैसे विषयों के सैद्धांतिक पक्षों का स्पष्टीकरण विभिन्न रचनात्मक कृतियों के उदाहरणों के माध्यम से किया गया है। इसमें तटस्थ होकर यथार्थ के निकष पर 'गिलिगडु' उपन्यास का मूल्यांकन कर निष्कर्षों तक पहुँचा गया है।

यथार्थ आशय एवं स्वरूप –'यथार्थ दो पदों की संधि से निर्मित हुआ है– *'यथा' और 'अर्थ'। 'यथा' अव्यय है जिसका हिंदी समानार्थी पद 'जैसा' है। अर्थ के प्रमुख हिंदी समानार्थी पद है 'वस्तु', 'तत्व', 'द्रव्य' पदार्थ आदि। 'अर्थ' ज्ञानेन्द्रियों का विषय है। ज्ञानेन्द्रियों के विषय पाँच माने गए हैं – रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द। अत: रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द आदि वस्तुएँ अर्थ की सीमा में आयेंगी। पाँच ज्ञानेन्द्रियों के अतिरिक्त उनका स्वामी मन है जो अनुभव करता है। मन ही ज्ञान, बोध या प्रत्यय को ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से ग्रहण करता है और उन्हें आत्मा तक पहुँचाता है। मस्तिष्क ही एक शक्ति बुद्धि है, जो ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त बोधों की स्मृति की सहायता से एकत्र, संश्लेषित और विश्लेषित करके नये एवं मौलिक निष्कर्ष प्राप्त करती है। इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ मन और बुद्धि के द्वारा प्राप्त बोधों, अनुभवों और निष्कर्षों को उनके वास्तविक रूप में अर्थात वे जैसे हैं उसी रूप में (यथा+अर्थ) प्रस्तुत करना यथार्थ है।'* [3]

मनुष्य एक बुद्धिजीवी प्राणी है और वह अपनी बुद्धि के बल पर निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर होता रहता है। साथ ही वह स्वयं को इस वैज्ञानिक युग में स्थापित कर लेता है जैसा कि हम सभी जानते हैं, मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और साहित्य को हम समाज का दर्पण कहते हैं। साहित्यकार अपने इर्द-गिर्द जो भी घटता हुआ देखता है उसे बिना किसी पक्षपात के अपने साहित्य में चित्रित कर देता है। इस प्रकार समाज का वास्तविक चित्रण ही यथार्थ कहलाता है। प्रो. सुवास के अनुसार – *' यथार्थ मूलत: दर्शनशास्त्र से संबंधित शब्द है। यथार्थ एक ऐसी सच्चाई है जिसे किसी भी युग का साहित्यकार चाहते हुए भी अनदेखा नहीं कर सकता और कदाचित यही कारण है कि पश्चिम में ही नहीं पूर्व में भी यथार्थ का स्वर कभी स्पष्ट तो कभी दबा-दबा सा अवश्य बना रहा है।'* [4]

साहित्य कोश के आधार पर यथार्थ का अर्थ है –

- जो सुनिश्चत है, प्रामाणिक है, सत्यारोपित है, खरा तथ्यपरक है।
- यह काल्पनिक, असत्य, अनुमानित, और आदर्श के विपरीत है। जो जीवन का वास्तविक रूप है। [5]

यथार्थ की अवधारणा को हम एक निश्चित सीमा के अंदर कैद नहीं कर सकते। यह अत्यंत विस्तृत रूप लिए हुए है। यथार्थ की अवधारणा को किसी परिधि में बाँधना संभव नहीं है, क्योंकि इसका क्षेत्र विस्तृत रूप लिए हुए है। यथार्थ वास्तविकता को हमारे सामने प्रकट कर वर्तमान समय की निस्सारता को उद्घाटित करना चाहता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार–*' कविता यथार्थ की उपेक्षा कर सकती है, संगीत यथार्थ को छोड़कर भी जा सकता है, पर उपन्यास और कहानी के लिए यथार्थ प्राण हैं।'* [6]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि यथार्थ के अंतर्गत

साहित्यकार अपने भावों का सजीव एवं स्वभाविक रूप हमारे सामने प्रकट करता है। उसमें कल्पना का कोई अंश नहीं होता। वह वास्तविकता को हमारे समक्ष प्रकट करता है, उसे ही हम यथार्थ कहते हैं।

उपन्यास 'गिलिगडु' दो परिवारों के दो वृद्धों की कथा है। एक कर्नल स्वामी और दूसरे बाबू जसवंत सिंह। दोनों की पत्नियों की मृत्यु हो चुकी है। बाबू जसवंत सिंह जिनका पुत्र नरेंद्र अपनी पत्नी सुनयना और पुत्रों के साथ दिल्ली में रहता है। पत्नी की मृत्यु के पश्चात बाबू जसवंत सिंह कानपुर में अकेले रहते हैं। एक दिन उन्हें पता चला कि हरिहर दुबे उनके एक मित्र जिनकी मृत्यु हार्ट अटैक से हो गई, तीन दिन तक उस विषय में पता न चलने पर उनकी लाश सड़ जाती है जिसे सुन कर वह भयभीत हो जाते है। वह अपनी पुत्री शालिनी की सलाह पर अपने बेटे नरेंद्र के यहाँ चले जाते हैं। उनके पुत्र के पास केवल दो कमरों वाला मकान है इसलिए उनके रहने की व्यवस्था बालकनी में कर दी जाती है - '*कानपुर से आते ही उन्हें इस बात से प्रसन्नता हुई थी कि चलो बेटे-बहू ने टॉमी की जिम्मेदारी सौपकर उन्हें अपनी गृहस्थी की किसी जिम्मेदारी के काबिल तो समझा।*' [7]

बाबू जसवंत सिंह को यह सब अच्छा नहीं लगता। वह स्वयं को उपेक्षित महसूस करते हैं। उनके द्वारा कही ऐसी कोई बात नहीं है जिसकी उपेक्षा ना की जाए-'दलिए का डिब्बा खाली पड़ा हुआ है। सांझ से पहले नहीं आ सकता। नाश्ते में क्या बाबू जी चीला खाना पसंद करेंगे।'[8]

बहू की व्यंग्यभरी बातों व उपेक्षा का उन्हें समय-समय पर सामना करना पड़ता है। चित्रा जी स्वयं लिखती हैं-'*दिल्ली बाबू जसवंत सिंह ने न कभी आना चाहा न आने के बाद कोई दिन गुजरा कि वे चिहंक-चिहुंककर दिल्ली से उचाट ना हुए हो।*'[9]

जिस अकेलेपन से घबराकर बाबू जसवंत सिंह यहाँ आये थे उसी का सामना उन्हें यहाँ भी करना पड़ा। उन्होंने सोचा पुत्र, पुत्रवधु न सही पोते मलय-निलय तो उन्हें स्नेह करेंगे। किंतु मलय और निलय अपने खिलौने तथा कम्प्यूटर में ही सदैव मस्त रहते हैं। मलय के जन्मदिन पर बाबू जसवंत सिंह जब बाहर चलने की इच्छा व्यक्त करते हैं -'न,न दादू! अपने साथ हम किसी भी बड़े को नहीं ले जाएँगे-पार्टी बोरिंग हो जायेगी।'[10]

अकेलेपन की इस त्रासदी को न जाने कितने वृद्ध झेल रहे हैं। मैं, मेरी पत्नी और मेरे बच्चे केवल यही रह गया है लोगों के दिमाग में, मानों वह कभी बूढ़े होंगे ही नहीं। इसी मानसिकता के कारण वृद्धजन निरंतर उपेक्षा का शिकार हो रहे हैं। साथ ही अकेलेपन की त्रासदी भोगने के लिए अभिशप्त भी।

सैर पर जाते हुए बाबू जसवंत सिंह की मुलाकात कर्नल स्वामी जी से होती है। यहाँ बाबू जसवंद सिंह के जीवन में एक नवीन मोड़ आता है। कर्नल स्वामी उनके पहनने के लिए जूते लाते हैं, उनके दर्द को दूर करने के लिए 'अर्निका 30' खिलाते हैं और शीशी भी उन्हें ही दे देते हैं -'डिब्बे से जूते निकालते हुए और पावों में जूतों के सल्लू बाँधते हुए बाबू जसवंत सिंह का मन अनायास भावुक हो आया।'[11] कर्नल स्वामी के इन सब व्यवहार से बाबू जसवंत सिंह बँध जाते हैं। उन्हें लगता है कि हाँ, उनका भी कोई है जो उनसे आत्मीयता रखता है।

कर्नल स्वामी का अचानक से सैर पर आना बंद हो जाता है तब बाबू जसवंत सिंह को उनकी चिंता सताने लगती है। एक दिन वह उन्हें ढूँढते हुए उनके घर पहुँच जाते हैं जहाँ उन्हें उनकी पड़ोसन मिसेज श्रीवास्तव से उनकी मृत्यु की सूचना मिलती है जिसे सुनकर- '*बाबू जसवंत सिंह को समझ में नही आया कि उनका सिर घूम रहा है या पूरी इमारत डोल रही है।*'[12]

वह बाबू जसवंत सिंह को अपने घर ले जाती है और कर्नल स्वामी के प्रति उनके बच्चों के कठोर व्यवहार का उल्लेख करती है। जिसे जानकर बाबू जसवंत सिंह के पैरों तले जमीन खिसक जाती है। मिसेज श्रीवास्तव उनके प्रति हुए दुर्व्यवहार को देखकर कहती हैं- '*ऐसी कसाई औलादों से आदमी निपूता भला।*'[13]

बाबू जसवंत सिंह की आँखों के सामने कर्नल सिंह जी की बातों की रील सी घूमने लगती है कि किस प्रकार वह अपनी मनगढ़ंत दुनिया में प्रसन्न रहते थे। यह सब स्मरण कर बाबू जसवंत सिंह की आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगती है। कर्नल स्वामी के जीवन के यथार्थ को जानकर बाबू जसवंत सिंह अपनी वसीयत को बदलने का निर्णय ले लेते हैं। अब उन्हें पूर्णत: यह समझ आ गया था कि '*वसीयत बदले बिना उनके जीवन की गति संभव नहीं।*'[14]

समान परिस्थितियों में जीवन यापन करने वाले कर्नल स्वामी और बाबू जसवंत सिंह के जीने के प्रति दृष्टिकोण का वर्णन करते हुए चित्रा जी यह स्पष्ट करती हैं कि कर्नल स्वामी जीवन व्यतीत करने के लिए अपनी इच्छाशक्ति, सक्रियता एवं कल्पना का सान्धिय लेते हैं। वे अपने बच्चों की मनमानी पूर्ण करके उनके हाथों की कठपुतली नहीं बनना चाहते। उनके जीवन से बाबू जसवंत सिंह प्रभावित होते हैं। उनकी सोच को सकारात्मक दृष्टि प्रदान होती है। वे अपनी वसीयत बदलने का निर्णय लेते हैं और सदैव कानपुर में रहने का निर्णय लेते हैं। क्योंकि वह समझ चुके हैं कि उनके अस्तित्व को गरिमा उनके शहर कानपुर में ही प्राप्त होगी।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि वृद्धजनों पर केन्द्रित यह उपन्यास एक ऐसा उपन्यास है जो कई-कई कोणों से उनकी समस्याओं को जाँचता और परखता साथ ही हमारे समक्ष उनके निदान भी प्रस्तुत करता है। इस पूँजीवादी व्यवस्था में जो मानवीय संबंधों की उपयोगिता है वो केवल उत्पादकता एवं उपयोगिता के सिद्धांत पर आधारित है, जो लोग परिवार या समाज में कथित उपभोक्तावादी या

उत्पादकता की स्थिति में नहीं होते वे हाशिये पर चले जाते हैं चाहे वे दैहिक रूप से अशक्त हो या वृद्धजन हो वह सब इस पूँजीवादी व्यवस्था में प्रताड़ित रहते हैं। बुजुर्गों को इस तरह से उपेक्षित और असहाय छोड़कर हम समस्या का समाधान नहीं खोज सकते। हमें इस समस्या की गहराई तक जाना होगा। जिससे समाज में बुजुर्गों की स्वीकार्यता बढ़े और उन्हें व्यर्थ न समझा जाए। बल्कि समाज में भी उनकी उपयोगिता समझी जाये। उपन्यास की प्रशंसा करते हुए –

मुशर्रफ आलम जौकी 'शब्दशिखर' में लिखते हैं – 'गिलिगडु दरअसल बूढ़ो के लिए एक ऐसी दुनिया है जहाँ वे अभी भी अपना अनदेखा स्वप्न संभालकर रख सकते हैं। बूढ़ो पर लिखी जाने वाली विश्व की महान कृतियों का तजकिरा हो, तो मैं 'गिलिगडु' को प्रथम पंक्ति में देखना पसंद करूँगा।' [15]

संदर्भ सूची –

1. के. वनजा, चित्रा मुद्गल : एक मुल्यांकन, पृ. 183
2. डॉ. करुणा शर्मा, उपन्यासों के झरोखे से, चित्रा मुद्गल, पृ. 28
3. डॉ. त्रिभुवन सिंह, उपन्यास साहित्य में यथार्थवाद, पृ. 57–58
4. प्रो. सुवास कुमार मौर्य, यथार्थवाद और हिंदी दलित साहित्य, पृ. 27
5. डॉ. नगेन्द्र, साहित्य खंड मानविकी खंड, पृ. संदेहास्पद
6. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास में अभिव्यक्त इतिहास दर्शन, पृ. 37
7. चित्रा मुद्गल, गिलिगडु, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002, पृ. 10
8. वही, पृ. 39
9. वही, पृ. 36
10. वही, पृ. 33
11. वही, पृ. 18
12. वही, पृ. 134
13. वही, पृ. 77
14. वही, पृ. 145
15. डॉ. करुणा शर्मा, उपन्यासों के झरोखे से, चित्रा मुद्गल, पृ. 95

ISSN 2278 - 0327

संस्कृत एवं आधुनिक समाज

डॉ. ज्योति शर्मा
असिस्टैण्ट प्रोफेसर (संस्कृत)
आर्य कन्या महाविद्यालय, शाहाबाद मारकण्डा
कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

'भाषासु मुख्या मधुरा, दिव्या गीर्वाण भारती।
तस्माद्धि काव्यं मधुरं, तस्मादपि सुभाषितम्।।'

हमारे देश में बहुत सी भाषायें प्रचलित हैं। सभी भाषाओं का अपना-अपना योगदान एवं महत्त्व है। परन्तु इन सभी भाषाओं में संस्कृत भाषा का एक विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है।

भूतपूर्व प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में 'यदि मुझसे पूछा जाये, कि भारत की सबसे विशाल सम्पत्ति क्या है और उत्तराधिकार के रूप में उसे सर्वोत्तम कौन सी वस्तु प्राप्त हुयी है तो मै नि:संकोच उत्तर दूंगा कि वह सम्पत्ति संस्कृत भाषा और साहित्य एवं उसके भीतर जमा सारी पूंजी ही है।

संस्कृत साहित्य में भौतिक, रसायन, गणित, जीव विज्ञान, आयुर्वेद, संगीत, धनुर्वेद, सैन्यविज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान एवं भू-विज्ञान, खगोल, जल तथा शिल्प-विज्ञान, वास्तुकला, ज्योतिष, धातु विज्ञान, पर्यावरण, मौसम विज्ञान आदि विपुल सम्पदा विद्यमान है। आज आवश्यकता है इन सभी विषयों रूपी सम्पदा को जानकर उपयोग में लाने की। विदेशी विद्वान् यहां की सम्पदा का ज्ञान प्राप्त कर अपनी तरह से उनकी व्याख्या कर अपना नाम कमा रहे हैं। हमें अपनी सम्पत्ति किसी को देनी नहीं है, अपितु उसे स्वयं आत्मसात् कर स्वयं का नाम देना होगा। परन्तु यह तभी सम्भव होगा जब हम संस्कृत भाषा का अध्ययन करेंगे।

अत: संस्कृत का ज्ञान होना केवल संस्कृत पढ़ने एवं पढ़ाने के लिये ही अनिवार्य नहीं है, अपितु हर भारतीय मानस को इसका ज्ञान होना चाहिये अथवा प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिये। इस भाषा में जीवन के प्रत्येक पक्ष की सामग्री उपलब्ध है। अत: सभी भाषाओं में संस्कृत भाषा की प्रमुखता के बहुत से कारण हैं जिनमें से कुछेक हैं-

1. संस्कृत प्राचीनतम भाषा है :

यह केवल भारतीय साहित्य की ही नहीं, विश्व साहित्य की सबसे पुरानी भाषा है। जब संसार के अन्य देशों में सांकेतिक भाषा के द्वारा आपस में व्यवहार किया जाता था तब केवल भारत में ही संस्कृत भाषा के माध्यम से ब्रह्म-ज्ञान का प्रचार-प्रसार किया जाता था। विश्वसाहित्य का सर्वप्रथम ग्रन्थ ऋग्वेद है, जो संस्कृत भाषा में ही लिखा गया है। इस वेद में जीवन के सभी क्षेत्रों का ज्ञान वर्णित है। यह भाषा केवल साहित्यिक भाषा ही नहीं थी, अपितु जन-सामान्य की भी भाषा थी। रामायण-महाभारत काल में सामान्य लोग भी संस्कृत में बातचीत करते थे। एक उदाहरण द्रष्टव्य है - हनुमान् जी ने सीता के साथ बात करने के लिये संस्कृत भाषा का प्रयोग किया था -

''यदि वाचं प्रदस्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति।।''

2. राष्ट्रीय एकता की भाषा :

कन्याकुमारी से लेकर हिमालय पर्यन्त केवल संस्कृत भाषा ही है जो सभी भारतीयों को एकता के सूत्र में बांधती है। अनेक प्रान्तों में विभक्त एवं विभिन्न भाषायें प्रचलित होते हुये भी भारत में बाह्य भेद तो हैं, परन्तु सभी की संस्कृति एक ही है। वस्तुत: सभी भाषायें संस्कृत रूपी महावृक्ष की लतायें हैं। भारत के किसी भी कोने से जो भी व्यक्ति विकास हेतु आगे बढ़ा, उसे संस्कृत का अपार ज्ञान था। यथा - स्वामी राजा राममोहन राय, महर्षि अरविन्द, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक, महामना मालवीय आदि सभी संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। विवेकानन्द जी ने तो विदेश में जाकर अपनी भाषा संस्कृत के ज्ञान को उनकी भाषा में अनूदित कर बताया। अथर्ववेद का पृथ्वी सूक्त देशभक्ति एवं देश के प्रति उत्कृष्ट अनुराग का सूचक है -

'' माताभूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:।।''[1]

विष्णु पुराण के अनुसार -

''गायन्ति देवा: किल गीतकानि, धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गस्पिदमार्ग भूते भवन्ति भूय: पुरुषा: सुरत्वात्।।''

अर्थात् देवता भारतवासियों की धन्यता के गीत गाते हैं, क्योंकि यह भारत देस स्वर्ग तथा मोक्ष पाने का सुखद मार्ग है और देवता होने के बाद भी यहां जन्म लेकर मानव अपने परम कल्याण का सम्पादन करता है।

आज केवल विद्वान् व्यक्ति ही नहीं, एक सामान्य अनपढ़ व्यक्ति भी संस्कृत भाषा में बोलता है - 'ॐ नम: शिवाय'। संस्कृत भाषा के ऐसे बहुत से शब्द हैं जो हिन्दी, पंजाबी तथा यहां तक कि हरियाणवी बोली में प्रयुक्त किये जाते हैं। यथा 'आख्या' शब्द संस्कृत

का है जिसका अर्थ है –'मैंने कहा।' पंजाबी भाषा में भी यह कहा जाता है – मैं आख्या (मैंने कहा)। कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका मुख सुखादि को ध्यान में रखकर कुछ परिवर्तन कर भाषा में प्रयोग किया जाता है। यथा हरियाणवी बोली में 'गात' का अर्थ 'शरीर' है। संस्कृत भाषा में इसके लिये 'गात्र' शब्द प्रयुक्त है। पंजाबी में इसके लिये 'पिण्डा' शब्द है जो संस्कृत में 'पिण्ड' है। इस प्रकार ऐसे बहुत से शब्द हैं जो हिन्दी भाषा में तत्सम्, तद्भव रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं।

जिस प्रकार दक्षिण भारत में लोग हिन्दी भाषा का विरोध करते हैं, उसी प्रकार संस्कृत भाषा का नहीं। इस प्रकार कोई राज्य संस्कृत का विरोध नहीं करता। पंजाबी जैसे पंजाब की, उड़िया उड़ीसा की, तमिल तमिलनाडु की तथा कन्नड कर्नाटक की भाषायें हैं, संस्कृत उसी तरह किसी विशेष राज्य की भाषा नहीं है। यह सम्पूर्ण भारत की भाषा है। अत: इसका ज्ञान हम सब के लिये अनिवार्य है। यह किसी सम्प्रदाय, देश, राज्यविशेष की भाषा न होकर सर्वमानव की भाषा है। इसका साहित्य सर्वसम्प्रदाय, राज्य एवं इसके प्रत्येक व्यक्ति के लिये है। अधिकांशत: सरकारी संस्थानों, विश्वविद्यालयों के आदर्श वाक्य भी संस्कृत भाषा से ही लिये गये हैं। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र का आदर्श वाक्य भी 'योगस्थ: कुरु कर्माणि' है।

3. अन्ताराष्ट्रिय भाषा :

संस्कृत भाषा न केवल भारत की ही, अपितु सम्पूर्ण विश्व की भाषा है। रूप के मास्को, लेनिनग्राद आदि विश्वविद्यालयों में भारतीय भाषा भूमिका नामक पाठ्यक्रम में छात्र संस्कृत विषय का अनुसन्धान करते हैं। अमेरिका के अनेक विश्वविद्यालयों में संस्कृत भाषा पढ़ाई जाती है, क्योंकि वहां के पीरू प्रान्त की कुईचुआ भाषा में संस्कृत भाषा के शब्दों की अधिकता है। अमेरिका के अनेक शहरों के नाम भी संस्कृत के अपभ्रंश रूप हैं। यथा – कालीवाव (कालीग्राम), कालमक (कालमुख), चयन्त (जयन्त) आदि। जर्मन भाषा में भी संस्कृत भाषा के बहुत से शब्द मिलते हैं।

बर्बर, बलवर आदि संस्कृत के विद्वान् यहीं पैदा हुये। मैक्समूलर, जिन्होंने वैदिक समय का निर्धारण किया, वे भी अधिक समय तक यहीं पर रहे थे। मिस्र देश में भी पहले संस्कृत लोक भाषा थी। आज भी उनकी भाषा में संस्कृत शब्दों की बहुतायत है।

जापान, कोरिया आदि के विद्यार्थी पहले संस्कृत-ज्ञान हेतु चीन जाते थे, परन्तु बाद में वहां भी बौद्ध धर्म के कारण संस्कृत का खूब प्रसार हुआ।

अत: जब विदेशी लोग हमारी मूल भाषा का अध्ययन कर यहां से ज्ञान प्राप्त कर अपनी भाषा में उसका अनुवाद करते हैं, तो हम भारतीय लोग अपनी भाषा को क्यों न पढ़ें, अपनी धरोहर को क्यों न सम्भाल कर रखें ? उसका सही-सही अर्थ हम ही समझ सकते हैं, क्योंकि हमारे भीतर विद्वान् पूर्वजों का खून है। उन्हीं की जन्मभूमि में हम भी पैदा हुये हैं।

4. समृद्ध-साहित्य :

संस्कृत एक ऐसी भाषा है जिसके अध्ययन से आत्मबोध होता है। वस्तुत: भारत में ज्ञान की पवित्रता एवं सार्थकता स्वयं को पहचानने में ही है। इस आत्मबोध संस्कृत भाषा के साहित्य को दो भागों में बांट सकते हैं –

वैदिक –

पूर्व वैदिक – 4 वेद एवं उनकी संहितायें

उत्तर वैदक – ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और षड् वेदांग

लौकिक –

रामायण

महाभारत व भारतीय दर्शन आदि आदि

इस प्रकार संस्कृत भाषा का समृद्ध साहित्य है। इसमें से जीवन के प्रत्येक पहलू का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। नवीन लेखकों और कवियों को अपने लेखन के लिये अपार वस्तु प्राप्त हो सकती है।

5. भारतीय दर्शन :

सम्पूर्ण विश्व में भारतीय दर्शन सर्वोत्कृष्ट है। पाश्चात्य देशों में प्लेटो द्वारा प्रतिपादित दर्शन का आधार भारतीय दर्शन ही है। संस्कृत साहित्य का दर्शन – आस्तिक एवं नास्तिक दर्शनों – दो रूपों में स्वीकार्य है। नास्तिक दर्शनों में चार्वाक, बौद्ध एवं जैन और आस्तिक दर्शनों में सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा तथा उत्तर मीमांसा आते हैं। उच्च शिक्षा में तो दर्शन का बहुत महत्त्व है। प्रत्येक विषय को समझने के लिये उस विषय का दर्शन जानना अत्यावश्यक है। अत: संस्कृत साहित्य को पढ़ने में जिनकी रूचि होती है, उसकी दार्शनिक दृष्टि उतनी तीव्र होगी।

6. खगोल शास्त्र अथवा भूगोल शास्त्र :

भूगोल तथा खगोल शास्त्र के प्रणेता 476 ई. में जन्म लेने वाले आर्यभट्ट थे। इन्होंने ही सबसे पहले बताया था कि सूर्य स्थिर है तथा पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है, जिससे दिन एवं रात बनते हैं। भास्कराचार्य द्वारा लिखित सिद्धान्त शिरोमणि ग्रन्थ खगोलविद्या का प्रामाणिक ग्रन्थ है। कापरनिकस तथा गैलीलियो नामक पाश्चात्य विद्वानों ने कोई नवीन खोज नहीं की। कापरनिकस का जन्म भास्कराचार्य के 323 वर्षों बाद तथा गैलीलियो का 423 वर्षों बाद हुआ। ब्रह्मगुप्त न केवल भारत में ही अपितु अरेबिया में भी खगोलशास्त्री के रूप में प्रसिद्ध हुये। इसमें अभी चिन्तन तथा अध्ययन करने की अति आवश्यकता है।

7. भौतिक शास्त्र :

कणाद मुनि भौतिक विज्ञान के प्रवर्तक माने गये हैं। अणुवाद का सिद्धान्त इन्होंने दिया था। गुरुत्वाकर्षण शक्ति का वर्णन नारदीय सूक्त में मिलता है। लेकिन प्रश्नोपनिषद् में इसके बारे में स्पष्ट रूप में उल्लेख किया गया है। वहां पर कहा गया है कि मनुष्य को खड़ा रहने में पृथ्वी की शक्ति अपान वायु की सहायता करती है –

'' आदित्यो ह वै ब्रह्म प्राण, उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णान:। पृथिव्या या देवता सैषा पुरुषस्य, अपानमवष्टभ्यान्तरा यदाकाश: स समानो वायुव्यानि:।।''[2]

प्रश्नोपनिषद् की इन पंक्तियों पर शंकराचार्य ने भाष्य लिखते हुये कहा है कि यदि पृथिवी इस शरीर को अपानवायु के द्वारा सहायता न करे तो यह शरीर या तो इस ब्रह्माण्ड में तैरेगा अथवा फिर नीचे गिर जायेगा तथा 'पृथिव्यामभिमानिनी या .....वा उद्गच्छेत्'[3]। इस प्रकार स्पष्ट है कि शंकराचार्य जिनका समय 9वीं शताब्दी है, गुरुत्वाकर्षण शक्ति को पूर्ण रूप से जानते थे। महर्षि कणाद ने गुरुत्वाकर्षण की परिभाषा इस प्रकार दी है –

(क) यह पृथिवी की शक्ति है।

(ख) यह शक्ति सब प्रकार के अणुओं को अपने-अपने केन्द्रों की ओर खींचने का सामर्थ्य रखती है।

न्यूटन जिसको इस सिद्धान्त का प्रवर्त्तक कहते हैं, वे तो 11वीं सदी ईसा के पश्चात् हुये हैं। भास्कराचार्य ने लीलावती पुस्तक में जिन नियमों को बताया है, वे न्यूटन के नियमों से मिलते हैं –

प्रथम नियम: व्यैकपदध्नचयोमुखय कस्यादनतयधनम्।[4]

$V = U + at$

द्वितीय नियम: मुखयुग्दलितं तत् (अन्त्यधनं मध्यधनम्)।

$S = Ut + 1/2at^2$

8. गणित शास्त्र :

भारतीयों को गणित का ज्ञान वैदिक काल से ही था। अंकगणित ज्यामिति त्रिकोणमिति के बारे में अनेक भारत के विद्वानों द्वारा किये गये जीरो शून्य का सर्वप्रथम प्रयोग पिंगल के छन्दशास्त्र में मिलता है, जिसकी रचना लगभग 200 ई. पूर्व हुयी थी। शून्य का आविष्कार गृत्समद नामक वैदिक ऋषि ने किया था।[5] कुछ नहीं के लिये संस्कृत शब्द शून्य है। यूरोपीय भाषाओं में यह जीरो बना।[6] किसी भी संख्या का वर्गमूल तथा घनमूल निकालने की पद्धति आर्यभट्ट ने दी थी –

' भाग हरेदवर्गान्नित्यं द्विगुणेन वर्गमूलेन।
वर्गाद्वर्गे शुद्धे लब्धं स्थानन्तरे मूलम्।।''[7]

अर्थात् सदैव अवर्ग (विषम) संख्या को आगे वर्गस्थान की संख्या के वर्गमूल के दुगुने से भाग करना चाहिये। तत्पश्चात् उस भागलब्धि वर्ग को आगे की वर्ग (सम) स्थान संख्या से घटाना चाहिये। तब प्राप्त भागलब्धि को पूर्वलब्धि के आगे लिखने पर वर्गमूल प्राप्त होता है।

पाश्चात्य विद्वान् हरमन हेकल ब्राह्मण ग्रन्थों को ही बीजगणित का रचयिता मानते हैं। विभिन्न प्रकार की यज्ञवेदियों के निर्माण के लिये (linear) समकालिक (simultanious) तथा अपरिमित (underterminate) समीकरणों का प्रयोग किया गया है। समीकरणों को अन्य क्रम में भी बांटा गया है–

(क) एक वर्ण समीकरण (इक्वेशन इन वन अननोन टर्म)

(ख) अनेक वर्ण समीकरण (इक्वेशन इन सैवरल अननोन टर्मज)

(ग) रेखिक समीकरण (linear equation)

क्रमचय (permutations) और संयोजन (combination) आदि क वर्णन महावीराचार्य ने भी किया है।

भास्कर द्वितीय ने अपरिमित समीकरण हल करने के लिये चक्रवाल पद्धति (cycle method) का आविष्कार किया। $61X^2 + 1Y^2$ का हल भास्कर ने इस प्रकार किया है –

$X = 22,61,53,980$

$X = 176,63,19,049$

स्वीटजरलैण्ड के गणितज्ञ ड्यूलर ने भास्कर द्वितीय के 700 काल से भी अधिक समय के बाद इसका हल ढूंढा था। बोधायन सूत्र (pythagoras theorem) में कहा गया है कि –

दीर्घचतुरस्त्रस्याक्ष्ण्या रजु:
पार्श्वमानी तिर्यक् मानी
यत्पृथग्भूते कुरुतस्तदुभयं करोति।

अर्थात् आयत को विकर्ण रेखा के ऊपर दर्शाया गया वर्ग का क्षेत्रफल उसकी लम्बाई तथा चौड़ाई के ऊपर दर्शाये गये वर्गों के क्षेत्रफल के समान है। $\prod$ (पाई) का मान भास्कराचार्य ने ज्यामितिशास्त्रीय ग्रन्थ लीलावती में दिया है –

व्यासे भदन्ताग्निहते विभक्ते खबाणसूर्य: परिधिस्तु सूक्ष्म:।
द्वाविंशति विहतेऽय शैले स्थूलोऽथवा स्यातद् व्यावहारयोग्य:।।

अर्थात् 100 में 4 जोड़कर 8 से गुणा कर 62 हजार जोड़ने पर जो फल प्राप्त होता है, वह सामान्यत: 2000 व्यास वाले वृत्त की परिधि होती है ।

यथा – $\prod$ = परिधि = 8 (100 .4) .62000 = 62832

व्यास = 2000 = 2000

= 3.1416

आधुनिक मान है $\prod$ = 3.1415926

इस प्रकार आर्यभट्ट प्रथम ने त्रिकोण का क्षेत्रफल निकालने का सूत्र बताया था –

त्रिभुजस्य फलशरीरं समदलकोटी भुजार्धसंवर्ग:।

अर्थात् एक त्रिभुज का क्षेत्रफल उसके कोई एक पार्श्व का आधा और उसकी विपरीत शीर्ष से खींची गयी लम्ब रेखा के गुणनफल के समान होता है –

$ABC = \frac{1}{2} AB \times CP$

त्रिकोणमिति (Trignometry) का आविष्कार भी भारत में हुआ है –

ज्या P = sine

कोटिज्या Co-sine

9. ज्योतिषशास्त्र :

ज्योतिषशास्त्र का नाम लेते ही भास्कराचार्य का नाम हमारे सम्मुख आता है। इनके द्वारा लिखे गये शास्त्र को काल-विधान-शास्त्र कहा जाता है। सात वारों की उत्पत्ति भारत में ही हुयी है।

मन्दादधः क्रमेण ..... शीघ्राः। (सूर्य सिद्धान्त)

शीघ्रकपाच्चतुर्धा ..... नपः। (आर्यभट्टीयम्)

10. रसायनशास्त्र :

रस रत्नाकर नामक ग्रन्थ में नागार्जुन ने गंधक शोधन तथा पीतल द्वारा सोने के निर्माण की विधि का वर्णन किया है। रसेन्द्र चूड़ामणि नामक ग्रन्थ में सोमदेव ने बहुत से रासायनिक प्रयोगों का वर्णन किया है।

11. जीव विज्ञान :

ऋग्वेद काल से ही जीव विज्ञान का आरम्भ हो गया था। शतपथ ब्राह्मण ने मानवीय शरीर में 360 अस्थियां मानी हैं। अथर्ववेद में प्राणियों में रोगों को पैदा करने वाले जहरीली 16 प्रकार की कृमियों का वर्णन किया गया है। तैत्तिरीयोपनिषद् के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति परब्रह्म परमात्मा से हुयी है -

तस्माद्वा एतस्मादात्मन ..... समयः।[8]

परब्रह्म से आकाश तत्त्व, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जलतत्त्व तथा जल से पृथ्वी उत्पन्न हुयी है। पृथिवी से विभिन्न प्रकार की औषधियां, औषधियों से अन्न और अन्न से पुरुष की उत्पत्ति हुई है।

12. यन्त्र विज्ञान :

यन्त्रचालित कृत्या नामक मूर्ति का उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी युद्ध में प्रयुक्त होने वाले बहुत से यन्त्रों का उल्लेख मिलता है। भारद्वाज द्वारा रचित 'यन्त्र सर्वस्व' नामक ग्रन्थ वैज्ञानिक भौतिकी का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

13. आयुर्वेद तथा चिकित्साशास्त्र :

महर्षि चरक इसके प्रणेता रहे हैं। अथर्ववेद में गर्भाशय चीर कर गर्भस्थ शिशु को बाहर निकालने का वर्णन है।[9] इसी वेद में रोहिणी या अरूणधती नामक वनस्पतियों का उल्लेख भी जो हड्डी को जोड़ने में सहायता करती हैं, का भी उल्लेख है। वैदिक ग्रन्थों में शरीर रचना (Anatomy) तथा शरीर क्रिया (Ohysiology) से सम्बन्धित तथ्य भी देखे गये, परन्तु उसका तर्कयुक्त वर्गीकरण नहीं दृष्टिगोचर हुआ। इस ज्ञान को आयुर्वेद के रूप में संहितीकरण करने का रास्ता दिखाया गया है। आहार के बारे में भी वर्णन किया गया है कि कब क्या खाना चाहिये ? कब क्या नहीं। पानी पीने के मध्य, बाद अथवा पहले पिये, इसके बारे में उल्लेख किया गया है।

सुश्रुत ने 8 प्रकार की शल्यक्रिया बतायी है। यथा - छेदन, भेदन, लेखन, वेधन, एषण, आहरण, विस्रारण और सीवन। इस क्रिया में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों में 101 प्रकार के यन्त्र और 20 प्रकार के शस्त्र वर्णित हैं। यथा -

स्वस्तिक यन्त्र (Cross-Shaped)

संदश यन्त्र (Forcep)

नाड़ी यन्त्र (Tubular)

सूची (Needle) इत्यादि।

प्राचीन भारतीय शल्य-चिकित्सा की सर्वोत्तम क्रियाओं में लेपरोटोनी (Leparotony) लिथिटोनी (Lithotony) तथा प्लास्टिक सर्जरी (Plastic Surgery) प्रमुख हैं।

14. अर्थशास्त्र (राजनीति विज्ञान) :

कौटिल्य का अर्थशास्त्र एक राजनैतिक ग्रन्थ है। राष्ट्र को अर्थवान् एवं समृद्ध बनाने के लिये इसमें विभिन्न प्रकार की योजनायें बतायी गयी हैं।

15. समाजशास्त्र :

मनुस्मृति समाजशास्त्र की महत्त्वपूर्ण एवं प्रसिद्ध रचना है। इसमें समाज में नारियों का स्थान, गुरु एवं शिष्य का सम्बन्ध, माता-पिता, भाई-बन्धु आदि का स्थान एवं इन सभी के परस्पर एक-दूसरे के प्रति क्या कर्त्तव्य हैं, आदि-आदि का वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त कामशास्त्र, कानून शास्त्र आदि का ज्ञान भी संस्कृत साहित्य में प्रचुर रूप में वर्णित है। याज्ञवल्क्यस्मृति में वर्णित नियम (Law) शिक्षा के लिये प्रसिद्ध है।

16. वैश्वीकरण का सर्वमान्य आदर्श :

सम्पूर्ण विश्व को एक सूत्र में बांधने के लिये संस्कृत की सूक्तियों पर मनन, विचार तथा मन्थन करना होगा। उन्हें जीवन में यदि हम लाने के प्रयास करेंगे तो न तो कोई युद्ध होगा, न लड़ाई होगी, न कोई किसी का बुरा करेगा तथा न ही स्वयं उसका बुरा होगा।

जिस प्रकार इत्र की सुगन्ध चारों ओर सुगन्ध फैला देती है, ठीक उसी प्रकार प्रत्येक सुभाषित में निहित ज्ञान सबको लाभान्वित कर समाज का, राष्ट्र का तथा विश्व का विकास करता है।

17. विश्व संस्कृति की जननी भारत भूमि है :

'संस्कृतिः संस्कृतमाश्रिता' जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त सभी संस्कार संस्कृत भाषा में ही किये जाते हैं। सभी सम्प्रदाय ओम् को तो किसी न किसी रूप में मानते हैं, जो ब्रह्माण्ड का आदिकारक है। पढ़ाई के साथ-साथ जीने की कला भी संस्कृत सिखाती है - 'मनुर्भव'।[10] गुरु गोविन्द सिंह जी ने अपने 5 शिष्यों को 1686 ई. में संस्कृत शिक्षा की ज्ञान-प्राप्ति हेतु काशी भेजा था। इन शिष्यों के नाम हैं - भाई कर्मसिंह, भाई गण्डा सिंह, भाई वीर सिंह, राम सिंह तथा साइमा सिंह। गुरु गोविन्द सिंह जी का कहना था कि बिना संस्कृत ज्ञान के गुरु ग्रन्थ साहिब जी को समझा नहीं जा सकता।

18. योगशास्त्र :

आज योग प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता है। इसका ज्ञान भी पतंजलि ने अपने योगशास्त्र में दिया है।

19. पर्यावरण संरक्षण :

वेद के अनुसार यदि मानव वायु, भूमि, जल एवं प्रकृति के सभी घटकों को शुद्ध रखता है तो पर्यावरण स्वयं ही शुद्ध रहेगा। वायु प्रदूषण के निवारण के लिये वेद का कथन है – *'वन आस्थाप्यध्वम्'* (10/101/11)

अथर्ववेद में *''आयने ते ..... वा पुण्डरीकणान्।''*[11] कहकर घरों के बाहर आने जाने वाले रास्ते पर दोनों तरफ फूलों वाली दूर्वा घास लगाने और मैदान में फव्वारा तथा कमलों से सुशोभित तालाब बनाने का कहा है। इससे भी पर्यावरण शुद्ध एवं पवित्र होगा। अथर्ववेदानुसार अग्निहोत्र यज्ञाग्नि में शुद्ध घी एवं सुगन्धित वायुशोधक, रोग निवारक पदार्थों की आहुति डालकर वायुमण्डल शुद्ध करता है। यह वायुमण्डल के रोगों को वैसे ही नष्ट कर देता है, जिस प्रकार नदी झागों को। इसके अतिरिक्त पराशर ने ज्योतिषशास्त्रीय गणनाओं के द्वारा वर्षाधिपति को जानने की पद्धति का वर्णन किया है –

शाकं त्रिगुणतं कृत्वा द्वियुतं मुनिना हरेत्।
भागशिष्टो नृपो ज्ञेयो, नृपामन्त्री चतुर्थकः।।[12]

बीज की जोतायी के शुभ दिनों का वर्णन भी किया गया है। दशमी, एकादशी, त्रयोदशी, द्वितीया, तृतीया, पंचमी और सप्तमी तिथियां, वृषभ, मीन, कन्या, धनु और वृश्चिक लग्न भी शुभ माने गये हैं। एक रेखा वाली जोताई उत्तम फसलदायक होती है। इसलिये जोताई सतत् होनी चाहिये तथा एक या तीन या पांच रेखाओं में करनी चाहिये –

''एका जयकरी ..... रेखा बहुसस्यप्रदायिनी।।[13]
आपने ते परायणे दूर्वा रोहतु पुष्पिणी
उत्सो वा तन्त्र जायती ह्रदो वा पुण्डरीकवान्।''

वेद की मान्यता है कि प्राकृतिक रूप से आंधी, वर्षा एवं सूर्य द्वारा भी कुछ अंशों में प्रदूषण शोधन होता रहता है। यथा –

'शग्मा भवन्तु मरुतो नः स्योनाः।' [14]
'अनवघासः शुचय पावकाः।' [15]
'गृभायतः रक्षसः सं पिनष्टन।' [16]

अर्थात् झंझावत रूप आंधी प्रदूषण को बहा ले जाकर हमें रक्षित करती है। रोगकृमि रूपी राक्षसों को जकड़ कर पीस डालती है। इसी प्रकार बादलों की वृष्टि से पर्वत, पेड़ादि स्वच्छ हो जाते हैं। रोग दूर होते हैं। सूर्य भी अपनी रश्मियों के जाल तथा अपने द्वारा की जाने वाली वर्षा से चारों ओर पवित्रता रखता है।

इस प्रकार कह सकते हैं कि आज संस्कृतज्ञ तथा एक वैज्ञानिक के परस्पर प्रयास के अनुसार कार्य करने की जरूरत है। तभी एक संस्कृतज्ञ वैज्ञानिक तथा एक वैज्ञानिक संस्कृतज्ञ होगा। आज संस्कृतज्ञों तथा वैज्ञानिकों को गहन अध्ययन, एक जैसे समान शब्दों की तुलना एवं पारिस्थितिक साक्ष्यों द्वारा भारतीय विज्ञान को जानना होगा एवं आधुनिक विज्ञान के विकास की दशा में अपने कार्य को अग्रसर करना होगा।

सन्दर्भ सूची –

1. अथर्ववेद (पृथ्वी सूक्त)
2. प्रश्नोपनिषद् – 3/8
3. शांकरभाष्य
4. संस्कृत में विज्ञान – डॉ. विद्याधर शर्मा गुलेरी
5. प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प – पृष्ठ संख्या 19–24
6. The Culture Heritage of India, page no. 18
7. Science in Sanskrit – Sanskrit Bharati
8. तैत्तिरीयोपनिषद् , ब्रह्मानन्द वल्ली, प्रथम अनुवाक।
9. अथर्ववेद – 1/11/5
10. मनुस्मृति
11. अथर्ववेद – 196
12. कृषि पराशर, श्लोक – 142 (संस्कृत में विज्ञान – डॉ. विद्याधर शर्मा गुलेरी)
13. कृषि पराशर, श्लोक – 143 (संस्कृत में विज्ञान – डॉ. विद्याधर शर्मा गुलेरी)
14. अथर्ववेद – 4/27/3
15. ऋग्वेद – 7/57/3
16. ऋग्वेद – 7/104/18

ISSN 2278 - 0327

कवि निराला के काव्य में प्रगतिशील स्वरूप

दर्शना
शोधार्थी
एम०ए०,(हिन्दी), जे०आर०एफ०

शोध आलेख सारः-

महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला अपने नाम के अनुरूप ही 'निराले' कवि थे। हिन्दी साहित्येतिहास में छायावाद के चार आधार स्तम्भों में से सबसे देदीप्यमान कवि निराला थे। निराला जी एक कवि, उपन्यासकार, निबन्धकार एवं कहानीकार थे। उनका व्यक्तित्व एक और तो भक्ति आस्था एवं परमात्मा को समर्पित था तो दूसरी और अतिशय विद्रोही और क्रान्तिकारी तत्वों से निर्मित हुआ, इसी कारण वे लम्बे अरसे तक परम्पराभ्यासी हिन्दी प्रेमियों द्वारा गलत भी समझे गये। हिन्दी साहित्य में छायावाद के कवियों में कवि निराला ने समाज में व्याप्त कुरीतियों तथा समाज और देश के विकास में आने वाली बाधाओं को अपने साहित्य में स्थान दिया। हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद के साथ ही प्रचलित हुआ शब्द प्रगतिशील है जिसका अर्थ है समाज की प्रगति को लक्ष्य बनाकर लिखा जाने वाला काव्य। निराला जी प्रगतिवादी आन्दोलन के पहले प्रगतिशील कवि रहे है, इनकी कविता, कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला, नये पत्ते में प्रगतिशील रचना धर्मिता की उत्तम उपलब्धि है। पश्चिमी साहित्य की देखादेखी में भारतीय साहित्यकारों ने सन् 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की जिसके अध्यक्ष मुन्शी प्रेमचन्द जी चुने गये थे।

तत्कालीन समाज में विदेशी शिक्षा मार्क्सवाद का प्रभाव, धार्मिक क्षेत्र की चुनौतियां, सामाजिक व्यवस्था की शिथिलता तथा साहित्य जगत के परम्परावाद ने तत्कालीन कवियों को एक नये जागरण का सन्देश देने की बलशाली प्रेरणा दी है। परिणामस्वरूप तत्कालीन कवियों ने प्रगतिशील तत्वों को ग्रहण करने तथा उनको अपने काव्य में स्थान देने का प्रयास किया। हिन्दी साहित्य जगत में प्रगतिशील तत्वों से प्रेरित महान् कवियों की एक परम्परा आधुनिक युग के वरदान के रूप में प्राप्त है।

इन कवियों में सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का प्रमुख स्थान है। प्रगतिशील एवं क्रांतिकारी कवि निराला जैसे साहित्यकारों की प्रगतिशीलता का अध्ययन करने के लिए प्रगतिशील तत्वों का विवेचन करना आवश्यक है।

मूल शब्दः-

देदिप्यमान, स्वच्छन्दता, आविर्भाव, चिरप्रतिष्ठा, परम्परावाद, विध्वंसकारी, आक्रोश, साक्षात्कार

विश्लेषणः-

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला छायावादी युग में काव्य साधना में प्रवृत होने पर भी अपने प्रगतिशील विचारों और स्वच्छन्दता की प्रवृति ने उन्हें निराला बना दिया। उनका मानवतावादी, दृष्टिकोण, राष्ट्रीयता की भावना, भारतीय संस्कृति के प्रति अनुराग की भावना के कारण उनके साहित्य में प्रगतिशीलता का आविर्भाव हुआ। उन्होंने अपने काव्य में समाज में व्याप्त कुरीतियाँ शोषक वर्ग के प्रति आक्रोश, शोषित और निम्न वर्ग के प्रति सहानुभूति को विशेष स्थान दिया। निराला ने 'जुही की कली' कविता की रचना करके अपनी छायावादी प्रतिभा का परिचय करवाने के बाद अपने प्रयोगशील व्यक्तित्व के द्वारा कबीर के समान प्रगतिशील हो गये।

''निराला के कट्टर आलोचकों को भी यह स्वीकारना पड़ा कि निराला सचमुच निराला है और हिन्दी का महाकवि है। उन्होंने सन्त, परहंस तथा महामानव की गरीमा प्राप्त की। किसी ने उन्हें कबीर कहा तो किसी ने तुलसीदास और किसी ने भवभूति असल में निराला महामानव थे।''[1]

अपने प्रगतिशील तत्वों के कारण ही कवि निराला जी का व्यक्तित्व के कारण सांस्कृतिक धरातल पर चिरप्रतिष्ठा स्थापित कर सके। अपरा, अनामिका, नये पत्ते, तुलसीदास आदि उनकी कविताएं कवि की प्रयोगक्षमता का परिचय कराने वाली है। निराला जी अपनी प्रकृति के अनुकूल ही कविता करते हुए बुद्धिवाद और हृदयवाद दोनों का सुखद सम्मेलन रखते हैं। उनके हृदय में करूणा और सहानुभूति का स्रोत बहते हुए स्पष्ट दिखाई देता है। विधवा, भिक्षुक, तोड़ती पत्थर आदि इनके ज्वलन्त उदाहरण है। निराला काव्य के प्रगतिशील तत्वों के अध्ययन से ही कवि की देन का पूर्ण मूल्यांकन सम्भव है।

निराला जी का काव्य और प्रगतिशील स्वरूपः-

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला एक ओर तो सच्चे भक्त और ईश्वर में श्रद्धा रखने वाले व्यक्ति थे तथा दूसरी ओर समाज में व्याप्त मानव में विषमता का डट कर विरोध करते हुए अपने काव्य का विषय बनाया। तोड़ती पत्थर, भिक्षुक, विधवा, कुत्ता भोंकने लगा आदि कविताओं में उन्होंनें कथित नरक, स्वर्ग, परलोक आदि को त्याग कर मानवता को महत्व दिया। इन्होंनें प्रगतिवादियों की तरह न तो ईश्वर में अविश्वास व्यक्त किया है तथा न ही आत्मा तथा अध्यात्म का

निषेध किया है। प्रगतिशील लेखक श्रम के महत्व को प्रतिपादित करते है और सामाजिक शोषण का विरोध करते हुए पूंजीवादी और सामन्तवादी व्यवस्था को समाप्त करने के पक्षधर थे। महाकवि निराला जैसे प्रगतिशील कवि किसान, मजदूर एवं निम्न वर्ग को जागृत एवं सचेत करने का प्रयास करते है।

''यहां प्रगतिशील एवं प्रगतिवाद में विभाजक रेखा यही है कि जहां प्रगतिवादी हिसांत्मक एवं विध्वंसकारी क्रान्ति का पक्ष लेता है वही प्रगतिशील लेखक राजनीतिक दलों का विरोध करता हुआ केवल समाजवादी दल में विश्वास करता है।''[2]

निराला जैसे प्रगतिशील कवि केवल अर्थ की उन्नति को उन्नति नहीं मानते थे, उन्होंने अपने काव्य में निम्न वर्ग को स्थान देते हुए निम्न और शोषित वर्ग की उन्नति तथा उनकी समाज में समानता स्थापित करना ही वास्तविक उन्नति मानते थे। निराला जी ने अपनी 'सरोज स्मृति' में परम्परागत रूढ़ियों का खण्डन करते हुए दान के नाम पर होने वाले धार्मिक ढोंग पर प्रहार किया है। निराला के काव्य में प्रगतिशील प्रवृत्तियाँ स्पष्ट दिखाई देती है। उनकी इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ निम्न प्रकार से वर्णित हैं।

शोषक वर्ग के प्रति आक्रोशः-

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला प्रगतिशील लेखक होने के नाते सामाजिक विषमता को दूर करने के पक्ष में थे, उन्होंने समाज में गरीब किसान और निम्न वर्ग के प्रति सहानुभूति दर्शाई है और शोषक वर्ग के प्रति आक्रोश व्यक्त किया हैं तत्कालीन समाज दो वर्ग में बंट चुका था शोशक वर्ग और शोषित वर्ग। शोषक वर्ग गरीब, किसान और निम्न वर्ग का प्रत्येक प्रकार से शोषण करते थे, कवि निराला ने इस प्रकार से होने वाले शोषण को अनुभव किया तथा अपने काव्य में स्थान दिया। ऐसे ही इन्होंने अपनी कविता 'कुकुरमुत्ता' में गुलाब और कुकुरमुत्ता के माध्यम से शोषक वर्ग के प्रति आक्रोश व्यक्त किया है। इस कविता में गुलाब शोषक वर्ग का प्रतीक है तथा कुकुरमुता शोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है।

अबे सुन बे गुलाब
भूल मत जो पाई खुशबू रंगोआब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतराता है कैपीटलिस्ट।
कितनों को तूने बनाया है गुलाम
माली कर रखा, सहारा जाड़ाघाम।।[3]

शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूतिः-

महाकवि निराला ने अपनी कविताओं में निम्न व शोषित वर्ग को मुख्य रूप से स्थान दिया है, क्योंकि निराला स्वयं भी शोषण का अनुभव रखते थे इसलिए इनके काव्य में शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति होना आवश्यक भी था। निराला का सम्पूर्ण जीवन दुःखों और संघर्षो से जूझते रहा है इसीलिए उन्होंनें समाज में उपेक्षित, शोषित एवं प्रताड़ित वर्ग के साथ साक्षात्कार किया तथा उनके प्रति विशेष सहानुभूति दर्शाई है। 'बादल राग', भिक्षुक, विधवा आदि कविताओं में इन्होंने निम्न व गरीब जनता के कठोर संघर्ष भरे जीवन का चित्रण किया है जिसे पढ़कर हमारे मन में सहानुभूति उत्पन्न हो जाती है। बादल राग, डिप्टी साहब आए है, जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ, आज अमीरों की हवेली किसानों की होगी आदि कविताओं के माध्यम से निराला जी ने अपने प्रगतिशील विचारों द्वारा निम्न और शोषित वर्ग को जागरूक करने का प्रयास किया है। इनकी 'भिक्षुक' कविता में प्रगतिशील चेतना का स्वर मुखरित करते हुए एक ऐसे भिक्षुक का चित्रण करते है, जिसे पढ़कर हमारे मानश पटल पर एक बिम्ब बन जाता है जिससे हमारे मन में सहानुभूति उत्पन्न होती है।

वह आता, दो टूक कलेजे के करता पछताता,
पथ पर आता पेट-पीट दोनों मिलकर है एक,
चल रहा लकुटिया टेक, मुटठी भर दाने को भूख मिटाने को।[4]

इस प्रकार इनकी 'विधवा' कविता में एक विधवा स्त्री की विवशता, अभाव और मजबूरी की दास्तान का चित्रण किया गया है और उसके दुःखों को सुनने वाला कोई नहीं है तथा वह एकांकी जीवन किस प्रकार से व्यतीत करती है इसकी कहानी कहते हैं-

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी
वह दीपशिखा सी शान्त भाव में लीन
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा-सी
वह टूटे तरू की छूटी लता सी दीन
दलित भारत की विधवा है। [5]

रूढ़ियों और जड़-परम्पराओं का विरोधः-

हमारे सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रचलित रूढ़ियों का आधिपत्य रहा है। समाज में लोग अपने शासकों को देवी-देवता का प्रतिनिधि मानकर उनके प्रति अनावश्यक श्रद्धा और विश्वास रखते थे। धार्मिक नेताओं ने अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए सामान्य जनता को अनेक कर्मानुष्ठानों का पालन अनिवार्य कर दिया था। इस प्रकार की रूढ़ियों का विरोध हमारे सुधारवादी लेखकों ने किया परन्तु इसका पूर्णतः बहिष्कार नही हो पाया।

''प्रगतशील साहित्यकारों ने रूढ़ियों और अन्धविश्वासों का घोर विरोध किया। रूढ़ियों के प्रति उन्होंने आलोचनात्मक दृष्टिकोण भी अपनाया। यह दृष्टिकोण मार्क्सवादी दर्शन तथा भारतीय प्रगतिशील विचारधारा पर अविलम्बित था। समाज हमेशा विकासशील रहा है । अधिक समस्याओं को सुलझाने पर सामाजिक रूढ़ियाँ नष्टभ्रष्ट होती है और समाज पर परिवर्तन होता है।''[6]

इस प्रकार सूर्यकान्त त्रिपाटी निराला प्राचीन रूढ़ियों का कड़ा विरोध करते थे उन्होंनें अपनी कविता दान के माध्यम से वानरों को मालपुए खिलाकर पूण्य अर्जित करने वालों पर व्यंग्य किया है।

मेरे पड़ोस के वे सज्जन

करते प्रतिदिन सरिता – गज्जन
झोली से पुए निकाल लिये
बहते कपियों के हाथ दिये। [7]

सामाजिक यथार्थ का चित्रणः-

निराला जी छायावाद के मुख्य प्रगतिशील लेखक होने के कारण सम्पूर्ण समाज को एक समान देखना चाहते थे। उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से उच्च वर्ग और निम्न वर्ग, शोषक और शोषित वर्ग, धनी, और निर्धन वर्ग के बीच के भेद-भाव को मिटाने का प्रयास किया । छायावादी युग में साधारण व्यक्ति के यथार्थ का चित्रण किया गया है, जबकि उसके उपरान्त निराला जी ने भारत के उस जन साधारण का चित्रण किया है जो पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का शिकार है। निराला ने अपनी कविता 'तोड़ती पत्थर' में एक ऐसी ही श्रमिक महिला का यथार्थ चित्रण किया है जो उनके प्रगतिशील दृष्टिकोण को दर्शाती है।

चढ़ रही थी धूप, गर्मियों के दिन
दिवा का तमतमाता हुआ रूप
उठी सुलसती हुई लू, रूई ज्यों जलती हुई भू
गर्द चिनगी छा गई। [8]

इसी प्रकार उन्होंने 'भिक्षुक' कविता में भिक्षुक की दयनीय स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है।

साथ दो बच्चे भी है सदा हाथ फैलाए
बायें से वे मलते हुए पेट को चलते
और दाहिना दया-दृष्टि पाने की और बढ़ाए। [9]

क्रान्ति और नवनिर्माण की प्रेरणाः-

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियाँ तथा सामाजिक और आर्थिक भेदभाव से चिन्तित थे उन्होंनें समाज में हो रहे शोषण को अनुभव किया तथा अपनी लेखनी के माध्यम से जनसाधारण का शोषण करने वाले पूंजीपति वर्ग का घोर विरोध किया। उन्होंनें समाज में नवनिर्माण की भावना का आह्वान करते हुए क्रान्ति की बात की क्योंकि समाज में कल्याणकारी परिवर्तन लाने के लिए क्रान्ति आवश्यक थी। इसलिए उन्होंने 'जागो फिर एक बार' कविता में देश के युवाओं को उद्बोधित करते हुए नवनिर्माण की प्रेरणा देते है।

पशु नहीं वीर तुम समर शूर क्रूर नहीं
काल चक्र में हो दबे आज तुम राजकुंवर। [10]

इस प्रकार कवि निराला ने सदियों पुरानी रूढ़ियाँ, बन्धुआ मजदूरी जैसे कुप्रथाओं का घोर विरोध व्यक्त करते हुए सदियों से संयत हाहाकर को वीणा नाद की लहरों में बहा देने तथा नूतनता का संचार करने का आग्रह किया है। सदियों पुरानी रूढ़ियां और जनता में जड़ें जमा चुके दुर्बल विश्वास को दूर करके नई किरणों की गति से आकाश पाताल को एक करने वाले, क्रान्ति मचा देने वाले सन्देश कवि निराला जी ने जनता को दिये है।

''यह स्पष्ट है कि निराला एक नये युग का स्वागत करने के लिए हमेशा तैयार रहते थे। यह सही है कि जगत की जीर्ण और प्राचीन व्यवस्था के स्थान पर नूतन सुखमयी व्यवस्था के निकट होने के आभाष का वर्णन निराला की 'उद्बोधन' नाम की कविता में मिलता है''[11]

इस प्रकार कवि निराला ने अपने क्रान्तिकारी विचारों और आक्रोश भरी लेखनी के माध्यम से समाज में नवनिर्माण और नये विचारों को प्रोत्साहन देते हुए आगे बढ़नें का सन्देश दिया है जिसका सकारात्मक प्रभाव समाज में देखने को मिला।

ब्रिटिश शासन की दमन-नीतियों का विरोधः-

कवि निराला का समय अंग्रेजी शासन का काल था भारत में ब्रिटिश शासक अपने धन, मान एवं प्रताप से भारतीयों को दबाकर रखते थे, शोषण नीति से प्रेरित अंग्रेज यहां के लोगों की कमजोरी एवं आपसी झगड़ों से लाभ उठाने के पक्ष में थे और भारतीय गरीब जनता का प्रत्येक प्रकार से शोषण करते थे। अंग्रेज भारत से कच्चा माल सस्ते में खरीद कर विदेश ले जाते थे और विदेश में तैयार माल भारतीयों को मंहगे दाम में बेचते थे और अंग्रेजों को सस्ते मजदूर भी भारत से ही मिल जाते थे, जिनका वे पूर्णरूप से शोषण करते थे। इस प्रकार की ब्रिटिश व्यवस्था को देखते हुए निराला ने यद्यपि वे किसी राजनीतिक पार्टी से सम्बन्धित नहीं थे फिर भी इन दमन-नीतियों की प्रत्यक्ष रूप से आलोचना अपनी लेखनी के माध्यम से की है। इसी प्रकार निराला की कविता 'बापू के प्रति' में उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वरिष्ठ नेता महात्मा गांधी की महिमा व्यक्त की है इससे यह स्पष्ट होता है कि महात्मा गांधी जिन दमन-नीतियों का विरोध करते थे निराला जी ने भी उन्हीं का विरोध करते हुए अपनी कविता में स्थान दिया है।

भजता होता तुमक मैं और
मेरी प्यारी अल्लारखी
बापु, मुर्गी खाते यदि। [12]

अछूत प्रथा और जातिवादः-

अछूत प्रथा और जातिवाद जैसी समस्या हमारे देश में प्राचीन काल से ही चली आ रही है। तत्कालीन समाज विभिन्न वर्ग और जातियों में बंट चुका था जिसके परिणामस्वरूप निम्न जाति में जन्में शूद्र को अंगीकार नहीं मिलता था तथा समाज में निम्न वर्ग हीनता की दृष्टि से देखा जाता था निराला जी ने अपनी 'प्रेमसंगीत' और 'गर्म पकौड़ी' मुक्तकों में, तुलसीदास, राम की शक्ति पूजा, कुकुरमुत्ता आदि कविताओं में जातिवाद का खण्डन किया है। निराला जी की कविता 'प्रेमसंगीत' में उन्होंने छुआछूत की प्रथा और अस्पृश्यता को जातिवाद के परिणामस्वरूप दर्शाया है। इसमें एक ब्राह्मण का लड़का पनिहारिन से परिणय करना चाहता है लेकिन परिहारिन काली होने के

कारण उनकी शादी नहीं हो सकी। इस प्रकार इनकी कविता 'गर्म पकौड़ी' में सुधारवादी पथ के मार्ग में निम्न वर्ग के कारण आने वाली बाधाओं पर व्यंग्य किया है–

अरी तेरे लिये छोड़ी
बम्हन की पकायी
मैं ने घी की कचौड़ी।[13]

निष्कर्ष –

हिन्दी साहित्येतिहास में छायावाद के कवियों में सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ही मुख्य कवि हुए है, जिन्होंनें समाज की प्रत्येक रूढ़ियों का विरोध करते हुए प्रगति की राह पर अग्रसर किया है। इन्होंनें अपनी भक्ति आस्था और धार्मिक विचारों के साथ–साथ विद्रोही प्रवृत्ति द्वारा समाज का विकास करने वाले महत्वपूर्ण कदम उठाए है। कहा जाता है कि कवि जिस अनुभूति को मन में उत्पन्न कर लेता है वह अनुभूति ही कवि की प्रतिभा के द्वारा शब्दों के रूप में कविता का रूप ग्रहण कर लेते है। समाज हित एवं मानव कल्याण को काव्य साधना का लक्ष्य मानने वाले कवि निराला ने युग चेतना से प्रेरित हो कर प्रगतिशील तत्वों का विवेचन किया है। कवि के रूप में निराला जी ने अपनी कविताओं में भारतीय जनजीवन के उत्कर्ष के लिए योगदान दिया है। इनकी कविता उद्बोधन, ध्वनि, बादल राग, पास ही रे हीरे की खान, बापू के प्रति, समर करो जीवन में, राजे ने अपनी रखवाली की, यमुना के प्रति आदि कविताओं में निराला जी ने बिटिश शासन के विरूद्ध आवाज उठाई है। कुकुरमुता, भिक्षुक, तोड़ती पत्थर जैसी कविताओं के माध्यम से उन्होंनें शोषित वर्ग के प्रति सद्भावना और शोषक वर्ग के विरूद्ध आवाज उठाई है। 'प्रेमसंगीत' कविता के माध्यम से निराला जी ने समाज में व्याप्त छुआछूत एवं जातिवाद का विरोध किया है इस प्रकार निराला सम्पूर्ण समाज का एक समान विकास चाहते थे इसलिए उन्होंनें समाज में व्याप्त उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के मध्य वैचारिक भेदभाव की खाई को मिटाने के लिए अपनी लेखनी के माध्यम से हर सम्भव प्रयास किया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि निराला हिन्दी की प्रगतिशील और प्रगतिवादी कवियों में शीर्ष स्थान पर है हिन्दी साहित्य के छायावाद में प्रगतिशील परिवर्तन का क्षेत्र निराला जी को ही जाता है।

सन्दर्भ सूची:–

1 शिवगोपाल मिश्र, महामानव निराला, प्रथम संस्करण 1997, पृ० 9

2. रामविलास शर्मा, हिन्दी के छायावादी कवि, पृ० 76

3 गंगा प्रसाद पाण्डेय, छायावाद के आधार स्तम्भ, लिपि प्रकाशन दिल्ली, पृ० 186

4 रामकृष्ण त्रिपाठी, निराला रचनावली, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृ० 64

5 वही पृ०60

6 हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास, राष्ट्रभाषा परिषद पटना, 1995, पृ० 197

7 रामकृष्ण त्रिपाठी, निराला रचनावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृ० 291

8 वही पृ० 323

9 वही पृ० 64

10 निराला, परिमल, पृ० 204

11 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० 683– 684

12 सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, निराला रचनावली–2, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 35

13 वही पृ० 42

ISSN 2278 - 0327

'हल्दीघाटी' में स्वातन्त्र्य चेतना

डॉ. शौकीना देवी
सहायक प्रोफेसर
पं. नेकीराम शर्मा राजकीय महाविद्यालय, रोहतक

शोधसार-

मेवाड़ नरेश महाराणा प्रताप भारतीय इतिहास में प्रकाश स्तम्भ की भाँति आलोकित होने वाले ऐसे विरल व्यक्तित्व हैं, जिन्होंने अकबर की दुर्दमनीय शक्ति के सम्मुख कभी पराजय और पराभव का अनुभव नहीं किया। 'हल्दीघाटी' काव्य का महान् उद्देश्य महाराणा प्रताप के शौर्य, पराक्रम, रण-कौशल को चित्रित करने के साथ-साथ वीरवर झाला, देशभक्त भीलों, हँस-हँसकर अपने पुत्रों, भाइयों और पतियों को युद्ध-क्षेत्र में भेजने वाली क्षत्राणियों के बलिदान को नमन करना है। भारतभूमि के कण-कण की रक्षा करते हुए कितने ही जवानों के अंग-भंग हुए, कितने ही वीरगति को प्राप्त हुए, किन्तु अन्त तक मातृभूमि की रक्षा में धैर्य, साहस और शक्ति के साथ जुटे रहे। युद्ध-क्षेत्र में चेतक जैसे अश्वों और अनेक गजों का भी पीड़ादायक अन्त हुआ। 'हल्दीघाटी' काव्य के द्वारा उन सभी का अभिनन्दन किया गया है, श्रद्धासुमन अर्पित किये गये हैं।

मुख्य शब्द -वीरशिरोमणि, अनभिज्ञ, कुण्ठित, अनल, अविराम, रिपु, अरि, कारागृह, आधिपत्य, शौर्य, आक्रन्ताओं, क्षत्राणियाँ, कामातुर, व्यसनी, पराजय, पराभव, प्रज्वलित।

परमप्रतापी, धैर्य, साहस और वीरता की प्रतिमूर्ति सिसोदिया वंशीय महाराणा प्रताप के शौर्य, पराक्रम, बलिदान, स्वातन्त्र्य-प्रेम, रण-कौशल और नेतृत्व को वह सम्मान प्राप्त नहीं हुआ जो ऐसे वीर शिरोमणि को होना चाहिए था। हमारा समस्त ज्ञान मुसमलान लेखकों, कुण्ठित सोच वाले हिन्दुओं, हमारे इतिहास-गौरव से अनभिज्ञ पाश्चात्य विचारकों और संकीर्ण विचार रखने वाले इतिहासकारों की एकतरफा तंग सोच के मकड़जाल में उलझ, इतना कुण्ठित और दयनीय हो गया कि हम अपने वीरपुरुषों के पराक्रम का गुणगान भी मुक्त कंठ से करने में हिचकिचाते हैं। इस लेख का मूलाधार ओजस्वी कवि श्री श्यामनारायण पाण्डेय का ग्रंथ 'हल्दीघाटी' है, जिसमें कवि ने पूरे भावावेग से इतिहास की छद्म सीमाओं का अतिक्रमण करके रणबाँकुरे, वीरवर महाराणा प्रताप को सच्ची श्रद्धांजलि दी है। कवि के काव्य सृजन के मूल उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए 'हरियाण साहित्य रत्न' प्रो. हरिश्चन्द्र वर्मा लिखते हैं,''कवि का मुख्य ध्येय, जन-भावना को विदेशी शासन से संघर्ष करने के लिएउत्साहित करना रहा है।''[1] ''यज्ञ-अनलसा धधक रहा वह स्वतन्त्र अधिकारी''[2] कहकर काव्य के प्रारम्भ में ही महाराणा प्रताप की स्वातन्त्र्य-चेतना को स्मरण किया है। कवि महाराणा प्रताप के रण-कौशल और नेतृत्व की प्रशंसा करते हुए कहते हैं- सेना-नायक राणाके भीरण देख-देखकरचाह भरे। मेवाड़-सिपाही लड़ते थे दूने-तिगुने उत्साह भरे।।''[3] 'हल्दीघाटी' काव्य में कवि ने देश की स्वतन्त्रता के लिए आत्मोसर्ग करने वाले गोरा-बादल को स्मरण करते हुए उन्हें 'स्वतन्त्रता के मन्दिर का जलता अविराम चिराग अभी''[4] कहकर उनकी राष्ट्रभक्ति के प्रति अपनी अनन्य आस्था अभिव्यक्त की है। महाराणाप्रताप के साथ-साथ उनकी सेना के सभी जवान युद्ध-कौशल में निपुण और वीर थे। वे मातृभूमि के लिए अपने प्राणों का बलिदान देने के लिए तत्पर और तैयार रहते थे। अकबर की सेना से युद्ध हो रहा था। शत्रु पक्ष के अनेक योद्धा एक साथ महाराणा प्रताप पर टूट पड़े। महाराणा प्रताप रिपुदल से घिर गये और प्राण संकट में पड़ गये। दूर युद्ध कर रहे वीर सेनापति झाला ने यह दृश्य देख लिया। वीरझाला कैसे अपने नायक को आहत होते देख सकता था। वीर झाला ने चोटिलराणा प्रताप के पास जाकर उनके शीश से मुकुट उतारकर अपने शीश पर धारण कर लिया। अरिदल भ्रमित हो गया और सेनापति झाला को महाराणा प्रताप समझ कर उन पर टूट पड़ा। रिपुदल के एक साथ किये गये घातक प्रहारों को सेनापति झाला अधिक देर तक झेल नहीं पाये और वीरगति को प्राप्त हो गये। अपने प्राण त्यागकर भी वीर झाला ने महाराणा प्रताप के प्राणों की रक्षा कर दी -झाला को राणा जानमुगल फिर टूट पड़े वेझाला पर। मिट गया वीर जैसे मिटता परवाना दीपक-ज्वाला पर।।''[5] प्रस्तुतकाव्य में भामाशाह के त्याग की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। कोई भी रण तभी जीता जा सकता जब राज्य में रहने वाले सभी लोगों का भरपूर सहयोग मिले। अपना राज्य खो चुके महाराणा प्रताप जब जंगलों में अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। महलों के ऐश्वर्य में जीवन व्यतीत करने वाली रानियाँ दर-दर की ठोकर खा रही थीं। बच्चे घास की रोटियाँ खा-खाकर जीवन जीने को विवश थे। सारी विवशताओं से आहत महाराणा का धैर्य और मनोबल टूट रहा था। तभी भामाशाह का आगमन संजीवनी का कार्य करता है। भामाशाह अपनी सम्पूर्ण पूँजी महाराणा प्रतापको समर्पित करके उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे पुन: मेवाड़ के अधिपति बने। महाराणा प्रताप उस पूँजी से सेना एकत्रित करते हैं। नये उत्साह के साथ युद्ध करते हैं और विजय प्राप्त

करते हैं। प्रताप को स्वातन्त्र्य चेतना की ज्योति से पुन: आलोकित करते भामाशाह वीरवर से कहते हैं –कारागृह में बन्दी माँनित करती याद तुम्हें है। तुम मुक्त करो जननी को यह आशीर्वाद तुम्हें है।।''[6] 'हल्दीघाटी' में मातृभूमि के लिए आहुति देने वाले उत्साहित, समर्पित वीर भीलों के वीरत्व कीभी प्रशंसा की गयी है। खोये हुए राज्य को पुन: पाने की उदात्त भावना से प्रेरित महाराणा, सेना सहित मुगल सेना से युद्ध करने के लिए हल्दीघाटी आ गये। सामने मुगलों की अस्त्रों-शस्त्रों से सुसज्जित अपार सेना थी, जिसके सम्मुख महाराणा की छोटी पर पराक्रमी सेना थी। तभी वहाँ पर पुँजा भीलों की टोली लेकर आ गया। एक-एक भील मुगलों के आधिपत्य से मेवाड़ के कण-कण को मुक्त करवाने की बलवती इच्छा रखता था। पुँजा के नेतृत्व में युद्ध लड़ने वाले भीलों के शौर्य का वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं-''उन्नत मस्तक कर कहते थेले-लेकर कुन्त कमानतीर। माँ की रक्षा के लिए आज अर्पण है यह नश्वर शरीर।।''[7] कवि श्यामनारायण पाण्डेय ने क्षत्राणियों के जौहर पर पीड़ा व्यक्त की है जिन्होंने मुस्लिम आक्रान्ताओं की पैशाचिक दरिंदगी से अपनी अस्मत बचाने के लिए प्रज्वलित अग्नि में आत्मदाह कर लिया-''कौन वीर बाला नचिता पर चमक उठी थी ज्वाला-सी।।''[8] कविकुल शिरोमणि श्यामनारायण पाण्डेय ने राजपूत शक्ति को भी ललकारा है। देखो ये क्षत्राणियाँ जौहर कर रही हैं और राजपूत तेरी तलवार शत्रु का रक्त पीने के लिए आतुर क्यों नहीं है-''नहीं देखते सतियों के जलने-का है अंगार कहाँ? राजपूत तेरे हाथों में है नंगी तलवार कहाँ?''[9] काव्य में महाराणा प्रताप की पत्नी की भी प्रशंसा की गयी है जो परिस्थितियों से पराजित होकर धैय खो चुके राणा की शक्ति बन जातीहै-''थक गया समर से तो तब, रक्षा का भार मुझे दे। मैं चण्डी-सी बनजाँऊ अपनी तलवार मुझे दे।।''[10] मुगल सम्राट अकबर को इतिहासकार दयालु, करुणा का भण्डार, सहिष्णु, सभी धर्मों का आदर करने वाला, सदाचारी बतलाकर सत्य पर परदा डालते रहे हैं। वास्तव में उसकी यह प्रेमपूर्ण नीति चाहे वह हिन्दू धर्म को लेकर हो या हिन्दू जनता के लिए; उसकी विस्तारवादी, सत्तालोलुप अनीति का आधार थी। दुराचारी, कामातुर, व्यसनी मुगलबादशाह किसी भी हिन्दू सुन्दरी को अपनी काम-पिपासा शान्त करने के लिए उठवा लेता था। अकबर के व्यभिचार पर प्रकाश डालते हुए कविवर लिखते हैं-''अहो हमारी माँ-बहनों से सजता था मीनाबाज़ार। फैल गया था अकबर का वह कितना पीड़ामय व्यभिचार।।''[11] 'दीन-इलाही' धर्म के माध्यम से भी अकबर बिना रक्तपात किये हिन्दू जनता को हिन्दू धर्म त्यागकर मुस्लिम रीति-नीति की ओर उन्मुख कर रहा था। जन सामान्य अकबर की कृत्रिम, छद्म उदारवादी नीति के कारण मुसलमान बनने की ओर उन्मुख हो रहा था। अकबर की ऐसी ही घृणास्पद नीतियों के कारण राष्ट्रभक्त, स्वाभिमानी महाराणा प्रताप अकबर के प्रति वैरभाव रखते थे-''कूटनीति सुनकर अकबर की राणा जो गिनगिना उठा। रण करने के लिए शत्रु से, चेतक भी हिनहिना उठा।।''[12] अहंकार, विद्वेष और एक दूसरे को नीचा दिखाने की भारतीय राजाओं की कुत्सित प्रवृत्ति, देश के पराजय और पराभव का सबसे बड़ा कारण है। अहंकार से भरा राजा मानसिंह बादशाह अकबर की ओर से युद्ध करने के लिए आता है और मेवाड़ नरेश महाराणाप्रताप को पराजित करने का दुस्साहस करता है-''राणा की क्या शक्ति उसे भीरण की कला सिखा दूँ। मृत्यु लड़े तो उसको भी अपने दो हाथ दिखा दूँ।।''[13] केवल राजा मानसिंह ही नहीं हजारों हिन्दू योद्धाओं ने स्वजातीय गौरव का परित्याग करके महाराणा प्रताप के विरुद्ध युद्ध में अकबर का साथ दिया। महाराणा प्रताप के अपने भाई शक्तिसिंह भी आखेट को लेकर हुए आपसी झगड़े के बाद उन्हें छोड़ कर चले गये। आखेट को लेकर दोनों के मध्य हुए द्वन्द्व को रोकते हुए पुरोहित कहता है-''कहा, डपटकर रूक जाओ, यह सिसोदिया-कुल-धर्म नहीं। भाई से भाई का रण यह कर्मवीर का कर्म नहीं।।''[14] उपर्युक्त विवेचन के आलोक में हम कह सकते हैं कि कर्मवीर, युद्धवीर, महारथी महाराणा प्रतापने सीमित संसाधनों से मातृभूमि की न केवल रक्षा की अपितु जन-जन के अन्दर स्वातन्त्र्य-चेतना की भावना जाग्रत की। महाराणा का पावन महान् चरित आज भी हमारे अन्दर गति, शक्ति और मुक्ति की चेतना जगाता है। कवि ईश्वर से प्रार्थना करताहै-''राणा-सदृश तूशक्ति दे,जननी-चरण-अनुरक्तिदे।था देश-सेवा के लिए झाला-सदृश ही भक्ति दे।।''[15] निश्चय ही 'हल्दीघाटी' काव्य प्रेरक, प्रभावशाली और ओजस्वी है, जिसका उद्देश्य जन-जन के अन्तर में स्वातन्त्र्य-चेतना को प्रज्वलित करना है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. हरिश्चन्द्रवर्मा, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 410
2. श्यामनारायणपाण्डेय, हल्दीघाटी, पृ. 7
3. वही, पृ. 137
4. वही, पृ. 10
5. वही, पृ. 143
6. वही, पृ. 183
7. वही, पृ. 104
8. वही, पृ. 9
9. वही, पृ. 9
10. वही, पृ. 170
11. वही, पृ. 43
12. वही, पृ. 60
13. वही, पृ. 66
14. वही, पृ. 36
15. वही, पृ. 165

ISSN 2278 - 0327

प्रवासी हिन्दी कहानी और मानवीय मूल्य

कविता
शोधार्थी
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

जितेंद्र शर्मा
शोधार्थी
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

भूमिका -

मानवीय मूल्य (Human Values) एक ऐसी आचार-संहिता या सद्गुणों का समूह है जिसे मानव अपने संस्कारों तथा पर्यावरण के माध्यम से अपनाकर अपने निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपनी जीवनशैली का निर्माण करता है और अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। मानव के मूल्यों में मनुष्य की अवधारणा, विचार, विश्वास, मनोवृत्ति, आस्था या निष्ठा आदि मानवीय गुणों का समावेश होता है। ये मानव मूल्य एक ओर व्यक्ति के अन्त:करण द्वारा नियन्त्रित होते हैं तो दूसरी ओर इनके द्वारा उसकी संस्कृति एवं परम्परा क्रमश: निस्तृत एवं परिपोषित होती हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' एवं 'बहुजनहिताय' मानवीय मूल्यों की कसौटी मानी जाती है। मानवीय मूल्य वे मानवीय मान, लक्ष्य या आदर्श हैं जिनके आधार पर विभिन्न मानवीय परिस्थितियों तथा विषयों का मूल्यांकन किया जाता है। वे मूल्य व्यक्ति के लिए कुछ अर्थ रखते हैं और उन्हें व्यक्ति अपने सामाजिक जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण समझते हैं। इन मूल्यों का एक सामाजिक-सांस्कृतिक आधार या पृष्ठिभूमि होती है, इसीलिए प्रत्येक समाज के मूल्यों में हमें विभिन्नता मिलती है।

प्रवासी कथा साहित्य का विवेचन करने पर अनेक मानवीय मूल्य सामने आते हैं। कथाकारों ने वहाँ समाज में जो भी घटित हुआ, उसे अपने विवेक और भावों का पुट देकर समाज के सामने पुन: प्रस्तुत किया। आम आदमी की जिंदगी में कई कठिनाइयाँ हैं। विशेषकर प्रवासी भारतीयों की जिंदगी एक लंबी त्रासदी से भरी हुई है। आज वे जिस मुकाम पर पहुंचे हैं, वहां तक पहुंचने के लिए काफी संघर्ष करना पड़ा है। प्रवासी साहित्यकारों की रचनाएं अलग-अलग बिंदुओं को छूती है जो कि जीवन के प्रत्येक पल से जुड़ी हुई है।

इसी प्रकार की एक कहानी है 'पड़ोस', यह कहानी सुषम बेदी द्वारा रचित 'तीसरी आँख' कहानी संग्रह में संकलित है जिसमें भारत और पाकिस्तान की दशा-दिशा के बारे में दर्शाया गया है कि जिस प्रकार हमारे देश में आस पड़ोस की जानकारी सभी लोग रखते हैं और साथ में ही वह सब एक दूसरे का सहयोग करके अपना मानव धर्म भी निभाते हैं, लेकिन अमेरिका जैसे देश में ऐसी व्यवस्था नहीं है। वहाँ के लोगों की सोच संकीर्ण है। वहीं भारतीय ना चाह कर भी एक दूसरे के बारे में हाल पूछ कर उनके कष्ट को जानकर अपना मानवता धर्म निभाते हैं।

इस कहानी की नायिका भी भारतीय है लेकिन वह भारतीयों की इस आदत को पसंद नहीं करती। 'मैं यूं भी अपने काम से काम रखती हूँ जो कि हिंदुस्तानी हूँ और हिंदुस्तान में खुद भी इस बात से दुखी होती थी कि हर कोई दूसरे की जिंदगी में जरूरत से ज्यादा ही दखलअंदाजी करने का समभाव रखता है।'[1] इसलिए यहां आकर मैंने अपने आप को जरूरत से ज्यादा संभाल कर रखा है। यहां के लोग यह भी व्यक्तिगत सवाल कम ही पूछते हैं। हम हिंदुस्तानी तो किसी से भी मिलने जाते हैं तो पूरे कुनबे के बारे में हाल चाल पूछ लेना, उनके जीवन उनके अतीत और उनके भविष्य की योजनाओं के बारे में पूछना हमारी आदत होती है। यहां के ज्यादातर हिंदुस्तानी ऐसा ही करते हैं। सबका आगा पीछा मिनटों में जान लेते हैं। परंतु मैंने ऐसा न करने की ही आदत डाली हुई है।

सुषम बेदी की यह कहानी जहाँ अमेरिका में लोगों की मनोवृति को बताकर लोगों की सोच को उजागर करती है जिसमें वह अपनों से मिलने जुलने को बेकार मानती है। लेकिन वही नायिका अब अपने पड़ोसी की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी से मिलने जाती है क्योंकि 'ऐमा' की मानसिक जिंदगी से वह व्यथित हो जाती है और ना चाहते हुए बिना जान-पहचान के उसके कंपार्टमेंट में पहुंच जाती है और उसका हालचाल जानकर अपने मानवता के मूल्यों और संवेदनाओं को प्रकट करती है।

ब्रिटेन की महिला रचनाकार अचला शर्मा की कहानी 'मेहरचंद की दुआ' विश्व बंधुत्व और भाईचारे की भावना को प्रकट करती है। यह कहानी भारत और पाकिस्तान के बीच तनाव को अलग रखकर भारतीय द्वारा पाकिस्तानी नाई 'महरे आलम' के संदेश 'विश्व बंधुत्व' के भाव को सामने लाती है। लंदन में भारतीय दुकानदार नवीन भाई पाकिस्तानी महरे आलम का नाम बदलकर मेहरचंद रख देते हैं।

इसका कारण लेखिका बताती है कि सैलून में आने वाले ज्यादातर क्लाइंट गुजराती हैं। वह भी ऐसे हिंदू, जो मांस मच्छी तक नहीं खाते। 'अवतारों नाम मेहरचंद! नवीन भाई गुजराती ने कहा था। जिसका मतलब गुजराती में था, अब तुम्हारा नाम है, 'मेहरचंद' मंजूर हो तो

बोलो।'[2] इसके बाद मेहर चंद अपने धंधे को मजहब से दूर रखता है और नवीन भाई के कहने पर स्वामीनारायण मंदिर में जाकर अपने बाल भी कटवाता है।

यह कहानी ब्रिटेन की चुनावी राजनीति पर भी ध्यान केंद्रित करती है जिसमें मेहर चंद जैसे लोगों को सरकार चुनाव जीतने पर वहां लीगल तरीके से रहने की अनुमति दे देगी। मेहरचंद इस कारण सोचता है कि तब तो वह अपनी शकीला और चार बच्चों को लंदन लेकर आ जाएगा और स्थाई रूप से रहने लगेगा।

इस प्रकार इस कहानी में अचला शर्मा हिंदू-मुस्लिम दोनों की धार्मिकता को भुलाकर परस्पर भाईचारे का संदेश देती है और साथ ही साथ यह दिखाती है कि जो भारतीय या फिर एशियाई मूल के जो लोग हैं, उनके संस्कार किस प्रकार हैं। वह आज भी अपने परिवार अपने बच्चों, अपने माता-पिता के प्रति संवेदना रखते हैं जबकि दूसरी तरफ अमेरिका या ब्रिटेन में ऐसा नहीं है। उन्हें अपने बड़े होते बच्चों की चिंता नहीं सताती जबकि भारत के लोगों को अपने बड़े होते बच्चों की चिंता सदैव सताती रहती है। वह अमेरिका के युवा होते लड़के- लड़कियों के माता-पिता नहीं जो अपने बच्चों को स्वच्छंद छोड़ देते हैं, बल्कि वे युवक की दहलीज पर कदम रखते अपने बच्चों की चिंता सदैव करते हैं। प्रत्येक अनहोनी से बचने के लिए उन्हें सचेत करते हैं और समय आने पर इनके साथ कठोर व्यवहार भी करते हैं, लेकिन बच्चे इस बात को नहीं समझ पाते और उनका परिचय प्रतिकार करते हैं।

रेणु राजवंशी की कहानी 'बेटी की विदाई' ऐसे विषय पर केंद्रित है कि जिसमें बेटी माता- पिता के अत्याधिक स्नेह का फायदा उठाने लगती है। यहां तक कि वह अपने माता-पिता का बात-बात पर विरोध करती है और उन्हें ठेस पहुंचाने का कार्य करती है। रमन और रागिनी माता-पिता की लाडली और दुलारी बेटी है गरिमा जिसके नाम पर ही यह कहानी है। रमन को अपनी लाडली बेटी का इस तरह व्यवहार अच्छा नहीं लगता, गरिमा रमन की विशेष लाडली थी। अपने पापा के अचानक अमेरिका चले जाने पर उसके मन में विद्रोह पनप रहा था। यहां आने के पश्चात् परिवार के अपार स्नेह और सद्भाव का लाभ उठाने लगी। किसी भी अनुचित कार्य के लिए रमन गरिमा को डांट फटकार लगाता था, लेकिन गरिमा को वही डांट-डपट बिल्कुल प्यार की तरह लगती थी। वह उन सब की आदी हो चुकी थी। धीरे-धीरे रमन की दुलारी बेटी बगावती बेटी बनती जा रही थी। उसका बात टालना, निरंतर ऊंचा होता स्वर, घर के बाहर घूमना, बेहुदगी भरे कपड़े, उटपटांग मेकअप करना गरिमा के सारे व्यवहार रमन को पीड़ित करते हुए उसके धैर्य की परीक्षा ले रहे थे। ऐसे समय में रागिनी को दोनों विरोधी दलों के बीच मध्यस्थ का कार्य करना था। रागिनी जो कि रमन की पत्नी है और गरिमा में हो रहे परिवर्तन को असहाय देख रही थी। लेखिका बताती है 'उसके काले रंग की जींस काले रंग की लिपस्टिक फैले हुए बिखरे बाल उसके आने वाले भविष्य में खतरे की घंटी का संदेश दे रहे थे।'[3]

गरिमा इतनी विद्रोही हो चुकी थी कि उसने अपने माता-पिता की शिकायत पुलिस में दे दी। लज्जित होकर माता-पिता भी कुछ नहीं कर पा रहे थे। जिसका दुष्परिणाम यह हुआ की गरिमा बिना शादी के ही गर्भवती हो जाती है। यह कहानी माता-पिता की चिंता को सही ठहरी सी प्रतीत होती है और साथ ही साथ यह संदेश भी देती है कि जब माता-पिता का नियंत्रण बच्चे से हट जाता है तो बच्चा गलत संगति में चला जाता है और कु-संस्कार उसके अंदर आ जाते हैं जिसका उदाहरण यह कहानी है।

इसी प्रकार जकिया जुबेरी की कहानी 'मन की सांकल' पश्चिमी देशों में मां और पुत्र के रिश्तो में आए बदलाव को गहनता से अध्ययन कर प्रस्तुत करती है। प्रवासी साहित्यकारों ने समाज में पाई जाने वाली विद्रूपताओं का वर्णन प्रस्तुत किया है। इस क्रम में ब्रिटेन की रचनाकार जकिया जुबेरी लिखती है कि 'वह लड़का जो बचपन में प्याज काटने से मां की आंखों में आए पानी को आंसू समझकर विचलित हो जाता था और वही लड़का समीर बड़ा होते-होते पश्चिमी सभ्यता के रंग में रंगा जाता है।'[4] जिसके परिणाम स्वरूप वह एक अंग्रेज लड़की से विवाह कर लेता है। वह अपनी पत्नी से वही अपेक्षाएं करता है, जैसे कि उसके जमींदार प्रवृत्ति के पिता को अपनी पत्नी यानी उसकी मां से उम्र भर रहती है। इसकी नायिका सीमा है जो एक उच्च वर्ग की महिला है जो कि हेयर ड्रेसर से बाल कटवाती है जिसके घर में खाना बनाने वाला खानसामा है और जो ब्रिटेन की राजनीति में दखल रखती है। ऐसी पढ़ी-लिखी महिला को अचानक उसका पुत्र पिछड़ी हुई महिला घोषित कर देता है क्योंकि वह उसे अपनी गर्लफ्रेंड के साथ रात में रहने की इजाजत नहीं देती है। पुत्र अपनी मां को इतनी बुरी तरह से मारता है कि उसकी बाहों पर नील उभर आते हैं। मां के साथ पुत्र का यह व्यवहार मन को झकझोर देता है।

इस कहानी में मां का पुत्र के प्रति प्रेम उस समय दिखाई देता है। जब पुत्री मां के साथ किए हुए अत्याचार से क्रोधित होकर पुलिस बुला लेती है। पुलिस आकर उस प्रेमिका को घर से रवाना कर देती है और साथ में पूछती है कि क्या बेटे को भी निकाला जाए तो मां का मन यह नहीं चाहता और बेटे के नफरत करने के बाद वह उसे माफ कर देती है क्योंकि उसे लगता है कि समीर के चेहरे पर बदहवास ही देखकर सीमा को ठीक नहीं महसूस हुआ। जैसे वह बचपन में अपने पिता के हाथों पिट रहा हो। उसके भीतर मां जैसे टूट रही थी। पुलिस देखकर शायद वह बुरी तरह घबरा गई थी।

इस कहानी का अंतिम दृश्य आते-आते कहानी का कथानक ही बदल जाता है। एक समय था जब समीर मां को बाहर कॉन्फ्रेंस में जाने और दोस्तों के साथ घूमने जाने को कहता था, लेकिन वही आज

ऐसा कुछ कह जाता है कि उसके अंदर तक को हिला देता है और आखिर में एक भय और आशंका उसे अपने कमरे के दरवाजे पर सांकल चढ़ाने को मजबूर कर देती है। यहां पर जुबेरी जी लिखती है कि 'वरना कौन अपनी मां को छिनाल कह सकता है। अपने यारों के साथ घूमती है। क्या फर्क रह गया पति और बेटे में वह भी तो अपनी कमजोरियाँ छुपाने के लिए यही इल्जाम लगाता रहा है।'[5]

समीर की जुबान की कटुता की चोट जितनी गहरी लगी थी उतना तो बाजू पर नील के निशान का दर्द भी नहीं चुब रहा था। अपनी जवानी का एक-एक क्षण एक-एक कतरा इकलौते बेटे के नाम लिख दिया था। सोचती थी कि बाप के वक्त की भरपाई बेटा करेगा। आज इस उम्र में मां पर इतना बड़ा आरोप। बेटी रात को घर में ही रह गई। वह और उसका पति अपने पिता के कमरे में आराम से सो रहे हैं। सीमा शरीर के दर्द से लड़ रही है। आत्मा के घाव सहला रही है, मुंह में धनिये के बीजों का स्वाद है मगर दिल में एक डर भी है। कहीं गुस्से में समीर उसकी हत्या तो नहीं कर देगा। नहीं! नहीं! यह नहीं हो सकता आखिर पुत्र हैं। भला ऐसे कैसे कर सकता है। मगर दिल का डर उसे सोने नहीं दे रहा। बिस्तर पर करवटें बदल रही है। सीमा एकाएक बिस्तर से उठती है और भीतर से कमरे की सांकल चढ़ा देती है।

इस कहानी में इस प्रकार से मां का अपने पुत्र से डर जाना और पूर्व में पति के द्वारा पीड़ित होने से जोड़ा जाता है, जिसके चलते उसके मन का एक भय व्याप्त हो जाता है। कहानी के अंतिम पड़ाव में सीमा को इस प्रकार का भयावह डर लगने लगता है जो कि बहुत वेदना जगाता है।

दिव्या माथुर द्वारा रचित 'इक सफ़र साथ-साथ : प्रवासी भारतीय लेखिकाओं की कहानियाँ',कहानी संग्रह की भूमिका में 'फ्रचेस्का ऑर्सीनी,(लन्दन विश्वविद्यालय)' लिखती हैं कि 'प्रवासी जीवन की व्यक्तिगत और नैतिक चुनौतियों पर केन्द्रित इन कहानियों की शैली ज़्यादातर सीधी-सादी है, कुछेक ही हैं जो मुख्य मसले या चरित्र से हटकर कोई बड़ा परिप्रेक्ष्य दिखाने की कोशिश करती हैं या पाठक को जानबूझकर उधेड़बुन में डालती हैं।'[6]

निष्कर्ष-

अत: निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि प्रवासी रचनाकारों ने कहानियों में भारतीय मानवीय मूल्यों के पहलुओं को अलग-अलग नजरिए से प्रस्तुत किया है। प्रवासी लेखकों की रचनाओं में हमें कई मानवीय मूल्य देखने को मिलते हैं जो कि मनुष्य को मनुष्य के प्रति प्रेम भाव नैतिकता, आर्थिक सोच और विदेशों में अपनों की सहायता आदि कई कार्य जो उसे सामान्य से अलग करते हैं। मनुष्य के जीवन में सुख- दुख, प्रेम, निराशा, क्रोध आदि बहुत से भाव भरे रहते हैं जिसके माध्यम से वह दूसरे मनुष्यों से जुड़ता है। जीवन में व्यक्ति अपने यथार्थ के लिए नहीं जीता बल्कि दूसरों के लिए भी जीना पड़ता है। यदि मनुष्य संवेदनहीन होकर मूल्यहीन हो जाता है तो उसे पशुपत माना जाता है।

इन रचनाकारों ने विदेशों में भारतीय संस्कृति को उजागर कर पाठकों को इससे जोड़ने का प्रयास किया है। विदेशों में रहने वाले भी इनसे जुड़े रहते हैं जिसके कारण वे भारतीय तीज- त्यौहार, रहन-सहन आदि को बड़ी तन्मयता के साथ मनाते हैं। यद्यपि भारतीय क्रियाकलाप करने में विशेष कठिनाई होती है फिर भी वहीं से निभा कर अपने वतन को जीते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. दिव्या माथुर, इक सफ़र साथ-साथ : प्रवासी भारतीय लेखिकाओं की कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,संस्करण 2018, पृष्ठ 202
2. पूजा गामिनी, चुनिंदा प्रवासी कहानियाँ, पृष्ठ 31
3. वही पृष्ठ 56
4. वही पृष्ठ 158
5. दिव्या माथुर,इक सफ़र साथ-साथ : प्रवासी भारतीय लेखिकाओं की कहानियाँ,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,संस्करण 2018, पृष्ठ 359
6. वही पृष्ठ 14

ISSN 2278 - 0327

गांधी के सपनों का स्वच्छ एवं समर्थ भारत

कमल किशोर कंडावरिया
शोधार्थी, अहिंसा एवं शांति विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं

महात्मा गांधी नेअपने महाप्रयाण के एक दिन पूर्व 29 जनवरी 1948 को वक्तव्य दिया था, जो उनका आखिरी वसीयतनामा माना जाता है। उसमें उन्होंने लिखा कि 'देश का बंटवारा होते हुए भी, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा मुहैया किये गये साधनों के जरिये हिन्दुस्तान की आजादी मिल जाने के कारण मौजूदा स्वरूप वाली कांग्रेस का काम अब खत्म हुआ–यानी प्रचार के वाहन और धारा सभा की प्रवृत्ति चलाने वाले तंत्र के नाते उसकी उपयोगिता अब समाप्त हो गयी है। शहरों और कस्बों से भिन्न उसके सात लाख गांवों की दृष्टि से हिन्दुस्तान की सामाजिक, नैतिक और आर्थिक आजादी हासिल करना अभी बाकी है।'[1] गांधी ने भारत और उनके संदेश में कहा कि, 'भारत मेरे लिए दुनिया का सबसे प्यारा देश है, इसलिए नहीं कि वह मेरा देश है, लेकिन इसलिए कि मैंने इसमें उत्कृष्ट अच्छाई का दर्शन किया है। भारत की हर चीज मुझे आकर्षित करती है। सर्वोच्च आकांक्षाएं रखने वाले किसी व्यक्ति को अपने विकास के लिए जो कुछचाहिए, वह सब उसे भारत में मिल सकता है।'[2] गांधी के सपनों का स्वच्छ एवं समर्थ भारत की रूपरेखा 'मेरे सपनों का भारत' नामक पुस्तक के संपादित अंशों में देखा जा सकता है, जो अधिकतर 'यंग इंडिया', 'हरिजन' आदि हिन्दी एवं अंग्रेजी साप्ताहिक पत्रों में प्रकाशित हुए हैं। जनवरी 1915 को गांधी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे तथा अपने राजनीतिक गुरु गोपाल कृष्ण गोखले के परामर्श पर भारतको जानने के लिए भ्रमण प्रारंभ किया। गांधीजी का अभियान चम्पारण–सत्याग्रह, खेड़ा सत्याग्रह, तिलक स्वराज्य फंड, राष्ट्रीय विद्यापीठों की स्थापना,चौरी–चौरा कांड, सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित, उपवास, दांड़ी–यात्रा, गोलमेजसम्मेलन, सत्याग्रह प्रारंभ, खादी ग्रामोद्योग, बुनियादी तालीम, भारत छोड़ों आन्दोलन, स्वतंत्रता–प्राप्ति, नो आखाली–कलकत्ता में उपवास, दिल्ली में आमरण–अनशन की गाथा के उपरान्त 30 जनवरी को गांधी जी का महाप्रयाण हो गया। उनका अतिशय लगाव देश में रहा, अतएव उन्होंने स्वीकारा था कि, मैं भारत की भक्ति करता हूँ।, क्योंकि मेरे पास जो कुछ भी है वह सब उसी का दिया हुआ है। मेरा पूराविश्वास है कि उसके पास सारी दुनिया के लिए एक संदेश है। उसे यूरोप का अंधानुकरण नहीं करना चाहिए।[3] गांधी के सपनों के भारत में उनकी इच्छा ऐसे भारत के लिए कोशिश करना था जिसमें गरीब से गरीब लोग भी यह महसूस करेंगे कि वह उनका देश है–जिसके निर्माण में उनकी आवाज का महत्व है। उनका मानना था कि, 'मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा, जिसमें ऊंचेऔर नीचे वर्गों का भेद नहीं होगा और जिसमें विविध संप्रदायों में पूरा मेल–जोल होगा। ऐसे भारत में अस्पृश्यता के या शराब और दूसरी नशीली चीजों के अभिशाप के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। उसमें स्त्रियों को वहीअधिकार होंगे जो पुरुषों को। चूंकि शेष सारी दुनिया के साथ हमारा संबंध शांति का होगा यानी न ही हम किसी का शोषण करेंगे और न किसी के द्वारा अपना शोषण होने देंगे, इसलिए हमारी सेना छोटी से छोटी होगी। ऐसे सब हितों का जिनका करोड़ों मूक लोगों के हितों से कोई विरोध नहीं है, पूरा सम्मान किया जायेगा, फिर वे देशी हों या विदेशी।[4] गांधीजी ने अपने सपनों के स्वराज्य की रूपरेखा प्रस्तुत किया है। उन्होंने लिखा है कि मेरे....सपनों के स्वराज्य में जाति (रेस) या धर्म के भेदों को कोई स्थान नहीं हो सकता। उस पर शिक्षितों या धनवानों का एकाधिपत्य नहीं होगा। वह स्वराज्य सबके लिए–सबके कल्याण के लिए होगा सबकी गिनती में किसान तो आते ही हैं, किन्तु लूले, लंगड़े, अंधे और भूख से मरने वाले लाखों–करोड़ों मेहनतकश मजदूर भी अवश्य आते हैं।[5] उन्होंने कहा, सच्चा स्वराज्य–सरकारी नियंत्रण से मुक्त हो, क्योंकि जब राजसत्ता जनता के हाथ में आती है, तब प्रजा की आजादी में होने वाले हस्तक्षेप की मात्रा कम–से–कम हो जाती है। सच्ची लोकशाही केन्द्र में बैठे हुए दस–बीस आदमी नहीं चला सकते। वह तो नीचे से हर एक गांव के लोगों द्वारा चलायी जानी चाहिए।[6] केन्द्रीकरण से जकड़न की प्रवृत्ति व्याप्त होती है अतएव गांधीजी राजनीति में विकेन्द्रीकरण के पक्षधर थे। उनका मानना है कि आजादी नीचे से शुरू होनी चाहिए। हर एक गांव में लोगों की हुकूमत या पंचायत का राज होगा। उसके पास पूरी सत्ता और ताकत होगी। इसका मतलब यह है कि हर एक गांव को अपने पांव पर खड़ा होना होगा। अपनी जरूरतें खुद पूरी कर लेनी होंगी, ताकि वह अपना सारा कारोबार खुद चला सके। ऐसा समाज अनगिनत गांवों का बना होगा। उसका फैलाव एक के ऊपर एक के ढंग पर नहीं, बल्कि लहरों की तरह एक के बार एक की शक्ल में होगा। जिन्दगी मीनार की शक्ल में नहीं होगी, जहां ऊपर की तंग चोटी को नीचे के चौड़े पाये पर खड़ा होना पड़ता है। वहां तो समुद्र की लहरों की तरह जिन्दगी एक के बाद एक घेरे की शक्ल में होगी और व्यक्ति उसका मध्यबिन्दु होगा। वह व्यक्ति हमेशा अपने गांव के खातिर मिटने को तैयार रहेगा।[7] गांधीजी सत्य और अहिंसा को ग्रामीण जीवन की सादगी में ही प्राप्त कर सकते हैं और लोगों का शासन पंचायत के द्वारा चलेगा। उन्होंने हिन्दुस्तान के हर एक गांव में कभी पंचायती राज कायम हुआ, तो मैं अपनी इस तस्वीर की सच्चाई साबित कर सकूंगा, जिसमें

सबसे पहला और सबसे आखिरी, दोनों बराबर होंगे या यों कहिए कि न कोई पहला होगा, नकोई आखिरी। (यहां पंचायती राज से प्रचलित 'पंचायती राज' का भ्रम नहीं होना चाहिए)। उन्होंने कहा कि ग्राम-सुधार आंदोलन में केवल ग्रामवासियों के ही शिक्षण की बात नहीं है, शहरवासियों को भी उससे इतना ही शिक्षण लेना है। इस काम को उठाने के लिए शहरों से जो कार्यकर्ता आये, उन्हें (अपने में) ग्राम मानस का विकास करना है और ग्रामवासियों की तरह रहने की कला सीखनी है। इसका यह अर्थ नहीं कि उन्हें ग्रामवासियों की तरह भूखे मरना है, लेकिन इसका यह अर्थ जरूर है कि जीवन की उनकी पुरानी पद्धति में आमूल परिवर्तन होना चाहिए।[8] इसका एक ही उपाय है कि हम जाकर उनके बीच में बैठ जायें और उनके आश्रय दाताओं की तरह नहीं बल्कि उनके सेवकों की तरह दृढ़निष्ठा से उनकी सेवा करें, हम उनके भंगी बन जायें और उनके स्वास्थ्य की रक्षा करने वाले परिचारक बन जायें। हमें तो गांवों के सुधार के इस छोटे काम में लग जाना चाहिए, जो आज जरूरी है और तब भी जरूरी होगा, जब हम अपना उद्देश्य (स्वराज्य) प्राप्त कर चुकेंगे। सच तो यह है कि ग्राम कार्य की यह सफलता स्वयं हमें अपने उद्देश्य (स्वराज्य) के निकट से जाएगी।[9] गांधीजी का उपर्युक्त कथन स्वराज्य प्राप्ति के अंतिम दौर का था। उन्होंने गांवों की त्रिविध बीमारी का उल्लेख किया है और कहा है कि हमें गांवों को अपने चंगुल में जकड़ रखने वाली बीमारी का इलाज करना है, वह इस प्रकार है-1. सार्वजनिक स्वच्छता की कमी 2. पर्याप्त और पोषक आहार की कमी 3. ग्रामवासियों की जड़ता। ग्रामवासी जनता अपनी उन्नति की ओर उदासीन हैं। वे स्वच्छता के आधुनिक उपायों को न तो समझते हैं और न उनकी कद्र करते हैं। अपने खेतों को जोतने-बोने या जिस किस्म का परिश्रम वे करते आये हैं, वैसा परिश्रम करने के सिवा अधिक कोई श्रम करने के लिए वे राजी नहीं है। ये कठिनाइयां वास्तविक और गंभीर हैं। लेकिन हमें उनसे घबराने या हतोत्साह होने की जरूरत नहीं है। हमारे व्यवहार में धीरज होना चाहिए। हम उन परिचारिकाओं की स्थिति में हैं, जो उन्हें सौंपे हुए बीमारों को सिर्फ इसलिए छोड़कर जाने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं कि उन बीमारों की बीमारी असह्य है।[10] 'भारतमाता ग्रामवासिनी खेतों में फैला है श्यामल' सुमित्रानंदन पंत की यह पंक्ति स्पष्ट करती है कि भारत की अधिकांश आबादी स्वतंत्रता के पैसठ वर्ष बाद भी गांव में रहती है, अतएव समर्थ भारत की स्थिति गांव के सबलीकरण पर ही देश का सबलीकरण संभव है। गांधी के सपनों का स्वच्छ एवं समर्थ भारत हेतु उनकी ग्रामस्वराज्य की कल्पना काफी स्पष्ट है एवं दिशा निर्देशन के लिए काफी है। गांधी ने कहा 'ग्राम स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि यह एक ऐसा पूर्व प्रजातंत्र होगा, जो अपनी अहम जरूरतों के लिए-जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा-यह परस्पर सहयोग से काम लेना। इस तरह हर एक गांव का पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूरत का तमाम अनाज और कपड़ों के लिए कपास खुद पैदा कर ले। (इसके अलावा) उसके पास इतनी सुरक्षित जमीन होनी चाहिए, जिसमें ढोर चर सकें और गांव के बड़ों व बच्चों के लिए मन बहलाव के साधन और खेल-कूद के मैदान वगैरह का बंदोबस्त हो सके। इसके बाद भीजमीन बची तो उसमें वह ऐसी फसल बोयगा, जिन्हें बेचकर वह आर्थिक लाभ उठा सकें,(लेकिन) वह गांजा, तम्बाकू, अफीम बगैरह की खेती से बचेगा। हर एक गांव में गांव की अपनी एक नाटकशाला और सभा-भवन रहेगा। हर एक गांव में गांव की अपनी एक नाटकशाला और सभा-भवन रहेगा। पानी के लिए सभी लोगों को शुद्ध पानी मिला करेगा। कुओं और तालाबों पर गांव का पूरा नियंत्रण रखकर यह काम किया जा सकता है। बुनियादी तालीम के आखिरी दरजे तक शिक्षा सबके लिए लाजिमी होगी। जहां तक हो सकेगा, गांव के सारे काम सहयोग के आधार पर किये जायेंगे। जात और क्रमागत अस्पृश्यता के जैसे भेद आज हमारे समाज में पाये जाते हैं। वैसे इस ग्राम-समाजमें बिल्कुल नहीं रहेंगे।[11] सत्याग्रह और असहयोग के शस्त्र के साथ अहिंसा की सत्ता ही ग्रामीण समाज का शासन-बलहोगी। गांव का शासन चलाने के लिए हर गांव के पांच आदमियों की एक पंचायत चुनी जायेगी। गांधी के चिन्तन में आशावादी दृष्टीकोण था, अतएव बाद के काल के लिए उन्होंने कहा कि आज भी कोई गांव चाहे तो अपने यहां इस तरह का प्रजातंत्र कायम कर सकता है। उसके इस काम में मौजूदा सरकार भी ज्यादा दखल अंदाजी नहीं करेगी। इस ग्राम-शासन में व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आधार रखने वाला सम्पूर्णप्रजातंत्र काम करेगा। व्यक्ति ही अपनी इस सरकार का निर्माता भी होगा। संभव है, ऐसे गांव को तैयार करने में एक आदमी की पूरी जिंदगी खत्म हो जाय।[12] गांधी ने गांवों का पुनर्निर्माण के संबंध में कहा कि मेरी कल्पना की ग्राम-इकाई मजबूत से मजबूत होगी। मेरी कल्पना के गांव में 1000 आदमी रहेंगे। ऐसे गांव को अगर स्वावलंबन के आधार पर अच्छी तरह संगठित किया जाय, तो वह बहुत-कुछ कर सकता है। आदर्श भारतीय ग्राम इस तरह बसाया जायेगा कि उसमें आसानी से स्वच्छता की पूरी-पूरी व्यवस्था रहे। उसकी झोपड़ियों में पर्याप्त प्रकाश और हवा का प्रबंध होगा और उसके निर्माण में जिन सामान का उपयोग होगा वह ऐसा होगा, जो गांव के आसपास पांच मील की त्रिज्या के अन्दर आने वाले प्रदेश में मिल सके। गांव की गलियां और सड़कें जिस धूल का हटाया जा सकता है उससे मुक्ति होंगी। उस गांव में उसकी आवश्यकता के अनुसार कुएं होंगे और वे सबके लिए एक सभा-भवन होगा, मवेशियों के चरने के लिए गांव का चरागाह होगा, सहकारी डेरी होगी, प्राथमिक और माध्यमिक शालाएं होगी जिसमें मुख्यत: औद्योगिक शिक्षा दी जायेगी और झगड़ों के निपटारे के लिए ग्राम-पंचायत होगी। वह अपना अनाज, साग-सब्जियां और फल तथा खादीखुद पैदा कर लेगा।[13] देहात वालों की ऐसी कला और कारीगरी का विकास होना चाहिए जिससे बाहर उनकी पैदा की हुई चीजों की कीमत की जा सके। जब गांवों का पूरा-पूरा विकास हो जायेगा, तो देहातियों की बुद्धि और आत्मा को संतुष्ट करने वाली कला-कारीगरी के धनीस्त्री-पुरुषों की गांवों में कभी नहीं रहेगी। गांव

में कवि होंगे, चित्रकार होंगे, शिल्पी होंगे, भाषा के पंडित और शोध करने वाले लोग भी होंगे। थोड़े में, जिंदगी की ऐसी कोई चीज न होगी जो गांव में न मिले। आज हमारे देहात उजड़े और कूड़े-कचरे के ढेर बने हए है। कल वहीं सुंदर बगीचे होंगे, और ग्रामवासियों को ठगना या उनका शोषण करना असंभव हो जायेगा। इस तरह के गांवों की पुनर्रचना का काम आज से ही शुरू हो जाना चाहिए और गांवों की पुनर्रचना का (यह) काम काम-चलाऊ नहीं, बल्कि स्थायी होनीचाहिए।[14] गांधीजी का मानना था कि गांवों की स्थिति में सुधार लाए बिना देश की स्थिति में सुधार संभव नहीं है क्योंकि उन्होंने माना था कि (अभी) शहरों द्वारा ग्रामीणों और उनकी संपत्ति का हरण हो रहा है मेरी योजना के अंतर्गत, ऐसी कोई चीज शहरों द्वारा नहीं बनने दी जायेगी, जो उतनी ही अच्छी तरह गांवों में बनायी जा सकती हो। शहरों का सही उपयोग यह है कि वे गांवों में बनी हुई चीजों के निकास के केन्द्र हों गांवों को निश्चित रूप से स्वावलंबी बनना चाहिए। महात्मा गांधी ने अपने समय के सात लाख गांवों की अर्थ-रचना को सामने रखते हुए स्पष्ट चेतावनी दी थी, ''यदि ग्रामोद्योगों का लोप हो गया, तो सात लाख गांवों का सर्वनाश हो गया समझिये।'' किंतु भारत देश ने यह 5 किलोमीटर के भीतर में उपलब्ध सामग्री का उपयोग करने पर पहल कर पाया न ही मंजूरी को याद कर पाया। आचार्य राममूर्ति गांव का विश्लेषण करते हैं कि देश की समस्या भी गांव में है और समस्यों का समाधान की कुंजी भी गांव में है। इन दिनों गांव की पूंजी गांव से भाग रही है। जिसके पास गांव में पैसा हो जाता है, वह उसे शहर के किसी न किसी कारोबार में लगाने शहर चला जाता है। अगर गांव की पूंजी गांव से निकल गई तो दूसरी भाषा में गांव की लक्ष्मी गांव से निकल गई। अगर गांव का पढ़ा-लिखा युवक गांव से निकल गया तो गांव की सरस्वती गांव से निकल गई और जवान मेहनत करने वाला मजदूर निकल गया तो गांव की शक्ति गांव से निकल गई। पूंजी यानी लक्ष्मी, सरस्वती और शक्ति से वंचित गांव जिंदगी की लड़ाई कैसे जीतेगा? एक और बात, जो गांव में हम देखते हैं, वह यह है कि-एक गांव आज दुर्योधन का दरबार बना हुआ है। क्या होता है उस दरबार में? द्रोपदी का चीरहरण और बड़े-बड़े श्रेष्ठजन बैठकर तमाशा देखते थे। यह ख्याति है दुर्योधन दरबार की। आज गांव में पुलिस तो है, लेकिन सुरक्षा नहीं है। पड़ोस में न्यायालय है, लेकिन न्याय नहीं है। विद्यालय है, लेकिन विद्या नहीं है। बड़ी-से बड़ी अनीति हो जाए, बड़े से बड़ा अन्याय हो जाए, उसको कोई सुनने वाला नहीं है।[15] आज भी हम गांव को देख सकते हैं-पंचायती राज हुआ है या नहीं, न हुआ हो, लेकिन पांच लोगों का राज्य तो हुआ। नेता का राज्य हुआ, अफसर का राज्य हुआ, गांव के मुखिया का राज्य हुआ, महाजन का राज्य हुआ और उन सबसे ऊपर गुंडे का राज्य हो रहा है।[16] कुछ वर्ष पूर्व तक स्थिति काफी भयावह थी परन्तु उसमें अपेक्षाकृत सुधार हुआ है। गांधी जी ने एक बार कहा था स्वच्छता आजादी से महत्वपूर्ण है। उन्होंने रचनात्मककार्यक्रम में गांव की सफाई को 18 कार्यक्रमों में रखा था। गांधी का यह भी मानना था कि 'श्रम और बुद्धि के बीच जो अलगाव हो गया है, उसके कारण हम अपने गांव के प्रति कितने लापरवाह हो गए हैं कि वह एक गुनाह ही माना जा सकता है। नतीजा यह हुआ है कि देश में जगह-जगह सुहावने और मनभावने छोटे-छोटे गांव के बदले हमें घूरे-जैसे गांव देखने को मिलते हैं। बहुत से या यों कहिये कि करीब-करीब सभी गांवों में घुसते समय जो अनुभव होता है, उससे दिल को खुशी नहीं होती। गांव के बाहर और आसपास जितनी गंदगी होती है और वहां इतनी बदबू आती है कि अक्सर गांव में जाने वाले को आंख मुंदकर और नाक दबाकर जाना पड़ता है।[17] गांवों का यह कहना उचित ही है कि, ज्यादातर कांग्रेसी गांव के ही वाशिन्दे होते थे, अगर वैसा ही है तो उनके लिए यह फर्ज होता हो जाता है कि वे अपने गांव को सब तरह से सफाई के नमूने बनाये। लेकिन गांधीजी ने अफसोस के साथ उल्लेख किया है कि गांव वालों को हमेशा के यानी रोज-रोज के जीवन में शरीक होने या उनके साथ घुलने-मिलने को उन्होंने कभी अपना कर्तव्य माना ही नहीं। हमने राष्ट्रीय या सामाजिक सफाई को न तो जरूरी गुण माना, और न उसका विकास ही किया। यों रिवाज के कारण हम अपने ढंग से नहा-भर लेते हैं, मगर जिस नदी, तालाब या कुओं के किनारे हम श्रद्धा या वैसी ही दूसरी कोई धार्मिक क्रिया करते हैं और जिन जलाशयों में पवित्र होने के विचार से हम नहाते हैं, उनके पानी को बिगाड़ने या गंदा करने में हमें कोई झिझक नहीं होती। हमारी इस कमजोरी को मैं एक बड़ा दुर्गुण मानता हूँ। इस दुर्गुण का यह नतीजा है कि हमारे गांवों की और हमारी पवित्र नदियों के पवित्र तटों की लज्जाजनक दुर्दशा और गंदगी से पैदा होने वाली बीमारियों हमें भोगनी पड़ती है।[18] स्वतंत्रता के पूर्व ही 1941 में गांधीजी ने पहली बार 'रचनात्मक कार्यक्रम उसका रहस्य और स्थान' में जिन बातों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है अगर हम लोग उस दिशा में थोड़ा भी जाते तो भारत के आधिकांश शहरों-गांवों नदियों, सार्वजनिक स्थानों, पर्यटनस्थलों, धार्मिक स्थलों की स्थिति इतनी शर्मसार करने वाली नहीं होती। कुछ हद तक जब अस्तित्त्व का संकट बढ़ने लगा तो सजगता आई, परिणामस्वरूप 73वें संविधान संशोधन अधिनियम 1992 के अनुसार, स्वच्छता को 11वीं अनुसूची में शामिल किया गया है। इसके अनुसार सम्पूर्ण स्वच्छता अभियान के कार्यान्वयन में पंचायतों की महत्वपूर्ण भूमिका है। शौचालयों के निर्माण एवं अपशिष्ट पदार्थों के सुरक्षित निपटान के माध्यम से वातावरण स्वच्छ रखने के संबंध में एकजुटता सुनिश्चित करने के लिए स्वैच्छिक संगठनों एवं गैर-सरकारी संगठनों का भी सहयोग लिया जा रहा है। इसके सार्थकपरिणाम भी सामने आए हैं। सरकारी मशीनरी के साथ ही स्वैच्छिक संगठनों एवं गैर-सरकारी संगठनों ने लोगों को जागरूक करने की दिशा में काफी महत्वपूर्ण योगदान किया है। स्वच्छता अभियान (टी.एस.सी.) के तहत 11वीं योजना के अंत तक करीब 2.4 करोड़ घरों में भी स्वच्छता संबंधी सुविधाएं उपलब्ध करा दी गई। प्रतिवर्ष लगभग 1.2 करोड़ ग्रामीण घरों में स्वास्थ्य सुविधाएं मुहैया करायी जा रही है। 12वीं पंचवर्षीय

योजना में 3.18 करोड़ परिवारों को स्वच्छता सुविधाएं उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया है। केन्द्र सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय की ओर से इस लक्ष्य रखा गया है। केन्द्र सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय की ओर से इस लक्ष्य को हासिल करने की दिशा में अभी से प्रयास शुरू हो गया है। यही वजह है कि पंचायतों एवं अन्य संस्थाओं को व्यक्तिगत स्तर पर भी जागरूक किया जा रहा है।[19] भारत में स्वच्छता अभियान की स्थिति पर ध्यान दें तो केन्द्रीय ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम (सी.आर.एस.पी.)1986 में ग्रामीण क्षेत्रों में स्वच्छता सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए शुरू किया गया था। परन्तु आशा के अनुरूप प्रगति नहीं हो पाई। समय के अनुरूप इसमें तमाम तरह के बदलाव हुए। 1999 में सम्पूर्ण स्वच्छता अभियान (टी.एस.सी.) के गठन को बढ़ावा मिला। तब से ग्रामीण विकास मंत्रालय के अंतर्गत पेयजल आपूर्ति एवं स्वच्छता विभाग द्वारा कार्यक्रम के क्रियान्वयन की मजबूती के लिए अनेक नए प्रयास किए गए है। इस प्रयास को दिनोंदिन बल मिल रहा है। इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि साल 2001 में ग्रामीण स्वच्छता अभियान की पहुंच सिर्फ 22 प्रतिशत आबादी तक थी लेकिन साल 2011 में यह 70 प्रतिशत से ज्यादा लोगों तक पहुंच गई हैं वर्ष 2013 में इसे शत-प्रतिशत लोगों तक पहुंचाने का लक्ष्य रखा गया था। अगर हम स्वच्छता अभियान के मामले में विभिन्न राज्यों की स्थिति देखें तो सिक्किमपूर्ण स्वच्छत कवरेज प्राप्त करने वाला देश का पहला निर्मल राज्य हो गया है।[20] ग्रामीण को स्वच्छता कार्यक्रम के प्रति जागरूक करने एवं सरकार की ओर से चलाई जा रही विभिन्न स्वच्छता से संबंधित योजनाओं के शत-प्रतिशत क्रियान्वयन को ध्यान में रखते हुए सरकार ने निर्मल ग्राम पुरस्कार योजना की शुरूआत की। सन् 2005 से संचालित कार्यक्रम में से एक निर्मल ग्राम पुरस्कार या एनजीपी रहा है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने एक बार सभा को संबोधित करने हुए कहा था, पहले शौचालय फिर देवालय उनके इस कथन से कुछ लोग असहमत एवं असहज हुए थे परन्तु व्यापक सोच के आधार पर यह उचित लगता है कि ईश्वर का वास वहां होता है जहां स्वच्छता होती है। स्वच्छता में व्यक्तिगत घरेलू शौचालय एवं व्यक्तिगत दृष्टिकोण की है। देश में अभी भी अधिकांश राज्यों में व्यक्तिगत घरेलू शौचालय की स्थिति 50 प्रशित के राष्ट्रीय औसत से नीचे है। एक सरकारी सर्वे के आधार पर यह उजागर हुआ है कि सिक्किम और केरल में सभी घरों में शौचालय निर्माण हो चुका है। विभिन्न स्कूलों में शौचालयों के निर्माण मामले में मेघालय, जम्मू एवं कश्मीर, बिहार, हिमाचल, प्रदेश, पश्चिम बंगाल, गोवा, नागालैण्ड, मध्यप्रदेश, उत्तराखण्ड, त्रिपुरा, तमिलनाडु और मणिपुर का प्रदर्शन राष्ट्रीय स्तर से नीचे पाया गया था, लेकिन अब इन राज्यों की स्थिति में भी तेजी से सुधार हुआ है। स्वच्छता पर निर्भरता है समर्थता का, दोनों में अन्योन्याश्रय संबंध है, ऐसा कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने ''गांधी के सपनों का भारत में स्वच्छता को प्रमुखता से चिन्हित किया, क्योंकि अगर भारत को समर्थ बनाना है तो बिना स्वच्छता को अपनाये लक्ष्य तक पहुंचना संभव नहीं हैं अतएव 15 अगस्त, 2014 को लालकिले से नरेन्द्र मोदी ने अपने भाषण में 'स्वच्छ भारत समर्थ भारत' का आह्वान किया जिसका राष्ट्रव्यापी असर हो रहा हैं देश के प्रत्येक क्षेत्र, संस्थान, समुदाय, वर्ग में अपेक्षाकृत स्वच्छता के प्रति सजगता आई है तथा कुछ-कुछ फलीभूत भी होने लगा है। 'स्वच्छ गंगा मिशन' तथा स्वच्छता के लिए प्रवासी भारतीयों से विदेशी दौरों पर वे आर्थिक सहयोग के लिए आह्वान किए है। उसी कड़ी में पिछले नौ माह के कार्यकाल में प्रधानमंत्री को मिले कुछ 455 तोहफों की भी नीलामी की गई है। इससे मिलने वाली रकम का उपयोग प्रधानमंत्री के महत्वाकांक्षी 'स्वच्छ गंगा मिशन' के लिए किया जायेगा। गांधी जयंती 2 अक्टूबर, 2014 से राष्ट्रव्यापी स्तर पर स्वच्छता शपथ लिया गया है। उक्त दिशा में गतिविधियों बड़ी है। 2019 में जब गांधी की 150वीं जयंती मनायी गई तब तक भारत स्वच्छ हो जाये, ऐसी योजना थी चूंकि ऐसा नहीं हुआ परन्तु विकास के कुछ प्रतिमान सामने आये है। यह अवधारणा सरल नहीं है क्योंकि चुनौतियां विकराल है परन्तु वर्तमान में राष्ट्रीय स्तर पर स्वच्छता के प्रति सजगता बढ़ी है जिसका कुछ सार्थक परिणाम भी दिखाई पड़ने लगा है।

सन्दर्भ सूची -

1. गांधी, पो. क., मेरे सपनों का भारत, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2001, पृ. 15
2. यंग इण्डिया, 21 फरवरी, 1929
3. गांधी मो.क., पूर्वावत, पृ. 17
4. यंग इण्डिया, 10 सितम्बर, 1931
5. यंग इण्डिया, 26 मार्च, 1931
6. हरिजन, 18 जनवरी, 1948
7. हरिजन सेवक, 28 जुलाई, 1948
8. हरिजन, 11 अप्रैल, 1936
9. हरिजन, 16 मई, 1936
10. हरिजन, 2 अगस्त, 1942
11. उपरिवत
12. महात्मा : तेंदुलकर (अंग्रेजी) खंड 4, पृ. 144
13. हरिजन सेवक, 10 नवंबर, 1946
14. राममूर्ति, आचार्य गांधी मार्ग, गांधी शांति प्रतिष्ठान,नई दिल्ली, वर्ष 53 अंक 3, मई-जून 2011, पृ. 38-39
15. उपरिवत, पृ. 42
16. गांधी मो. के., रचनात्मक कार्यक्रम उसका रहस्य और स्थान, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1946, पृ. 27
17. उपरिक्त, पृ. 27-28
18. रंजन, प्रभात, कुरूक्षेत्र, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, वर्ष 59, अंक 03 जनवरी, 2013, पृ. 4
19. उपरिवत, पृ. 4
20. उपरिवत, पृ. 6-7

ISSN 2278 - 0327

उपेंद्रनाथ 'अश्क' के उपन्यासों में नारी-प्रतिष्ठा चिंतन

ओमवीर
शोधार्थी, हिन्दी-विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

उपेंद्रनाथ 'अश्क' हिन्दी कथा साहित्य को मुखर स्वर देने वाले महान् साहित्यकार हैं। उनके समय में दो पीढ़ियों कीटकराहट थी। पुरानी पीढ़ी परम्परागत मूल्यों की तरफ प्रतिबद्ध थी, तो नई पीढ़ी नए मूल्यों की तलाश में आगे बढ़ रही थी। सामाजिक विषमताएँ मुँह फैलाये चारों ओर कष्टप्रद स्थितियाँ पैदा कर रही थी। प्रेम-विवाह और अंतरजातीय विवाह भारतीय विवाह संस्कार को नया रूप देने के लिए प्रस्तुत हो रहा था। नारी को प्रत्येक समाज और संस्कृति का अभिन्न अंग माना गया है। भारतीय समाज और संस्कृति में तो नारी को पुरुष के बराबर सम्मान प्राप्त है, परन्तु यह आज आधुनिक युग की बात है। वैसे तो नारी की स्थिति सदैव से ही विवादास्पद रही है। प्राचीनकाल से शुरु करें तो हम देखते हैं कि समाज में नारी की स्थिति हमेशा एक जैसी नहीं रही। समय के साथ-साथ उसके स्तर में परिवर्तन आता रहा है। उपनिषद्काल में नारी समाज में उच्च पद की अधिकारिणी थी, पुरुष की तरह यज्ञ एवं अन्य धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेती थी। वेदशास्त्रों और ग्रन्थों में भी कहा गया है कि जब तक पुरुष गृहस्थ जीवन व्यतीत नहीं करता, तब तक उसे स्वर्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती। आदिकाल से आज तक नारी के अस्तित्व परदृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि उसके जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव आए हैं परन्तु फिर भी ये उतार-चढ़ाव उसके अस्तित्व को धूमिल नहीं कर पाए। आदिकाल में नारी को भोग का साधन मान लिया गया तथा उसे निस्वार्थ गृहसेविका, चुल्हा करने वाली दासी तथा सन्तान उत्पत्ति की वस्तु समझकर उसके साथ घृणित व्यवहार किया। इतना ही नहीं रीतिकाल में नारी कामवासना की पूर्ति का साधन और मन बहलाने की वस्तु बन गई। कहना होगा कि नारी प्राचीनकाल से गिरते-उठते आधुनिककाल तक पहुँच गई है। उसने अपनी मेहनत, अपने कार्य-व्यवहार आदि से सिद्ध कर दिया है कि नारी पुरुष के पैरों की जूती, उपभोग की वस्तु, सन्तान प्राप्ति का साधन मात्रा नहीं है। वह भी पुरुष के समान महत्त्व और सम्मान की अधिकारिणी है। वह आज अवलम्बिनी मात्रा नहीं रह गई है बल्कि आत्म गौरव से युक्त होकर अपने स्वतन्त्र अस्तित्व का अहसास करवा रही है। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने भी अपने उपन्यासों में नारी के इस स्वरूप को चित्रित किया तथा उसे नई दिशा प्रदान करने की कोशिश की है। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के उपन्यास आधुनिकताबोध से सम्पन्न है। इसलिए उसकी नारी भी आधुनिकता को लिए हुए है। वह पुरुष की दासी नहीं है और न ही वह पति के चरणों में सर्वस्व जीवन अर्पित करने वाली है। वह तो पुरुष से बराबरी चाहती है। अश्क जी ने उपन्यास में दर्शाया है - जगत लता से प्रेम करता है। वे दोनों साथ-साथ पढ़ते हैं। जगत शादी के नाम पर लता को धोखा देता है। जगत की दृष्टि प्राचीन है, वह अपने लिए ऐसी लड़की चाहता है जो उसके हर हुक्म को माने, जो उसके पैरों की जूती बनी रहे, लेकिन लता को आधुनिक बोध से सम्पन्न मानकर वह उससे शादी करने में आनाकानी करता है। ''और लता - उसके लिए ऐसी पत्नी बनने का अवसर और भी कम था। विवाह के पश्चात् यदि जगत् कुछ भी व्यस्त रहे, प्रेम-प्रदर्शन में तनिक भी ढील करें, तो लता यही समझेगी कि वह अब उससे प्रेम नहीं करता उस पर शक करेगी और हो सकता है, उसमें प्रतिशोध अथवा प्रतिक्रिया की भावना उत्पन्न हो जाये। उसके विचारों को वह जानता था, वह स्त्रियों के लिए बराबरी का अधिकार चाहती थी। वह कई बार कह चुकी थी- पुरुषों को क्या अधिकार है कि वे स्त्री पर किसी प्रकार का अत्याचार करें? स्त्री-पुरुष में कोई अन्तर नहीं है। अब समय आ गया है कि स्त्रियों पुरुषों के बराबर काम करें, खायें, पहने, घूमें-फिरें और बराबरी का व्यवहार चाहें। यदि पुरुष उनसे दुर्व्यवहार करे तो उन्हें भी वह अधिकार है कि पुरुष के साथ वैसा ही सलूक करें।''[1] जगत सोचता है ऐसी स्वतन्त्र विचारों वाली लड़की के साथ सफलतापूर्वक जीवन व्यतीत करना संदेहास्पद है। परन्तु जगत ने लता के व्यक्तित्व का एक ही पहलू समझा और देखा था। इसी उपन्यास में आगे चलकर जब बंसीलाल लता की निष्ठुरता की वजह से आत्महत्या का प्रयास करता है और मरणासन्न अवस्था में पहुँच जाता है तो न केवल लता ने उसकी सेवा-सुश्रुषा का सारा भार अपने ऊपर ले लिया बल्कि उसके परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेवारी भी उठा ली। लता के इस त्याग, निष्ठा और लगन को देखकर डॉक्टर अमृतराय उससे प्रेम करने लगे थे और उसे पाना चाहते थे। लता से पहले भी अमृतराय के जीवन में तीन लड़कियाँ आ चुकी थीं। परन्तु उन्हें वे सब लता के सामने उसके पैरों की धूल के समान भी नहीं लगती थी। ''लता ने जिस लगन, जिस निष्ठा से बंसीलाल की सेवा की थी, उससे उनकी दृष्टि में लता की इज्जत और भी बढ़ गयी थी। एक ग्रेजुएट लड़की किसी रोगी की इतनी सेवा करती है, यह उनके लिए नयी बात थी। इसी सभ्यता के रंग में रंगी हुई विमला शायद इस मांस-पिण्ड को देखना भी पसन्द नकरती और फलोरा, वह तो अपने प्रेमी की मृत्यु के दिन ही दूसरे से लौ लगा लेती। वे चाहते थे, उसी सेवा, उसी लगन, उसी निष्ठा से लता के दिल में अपनी जगह बना लें। रूपया उसे अपनी ओर न खींच सकता था, वह स्वयं धनी बाप की इकलौती लड़की थी।

रूप का भी उसके यहाँ इतना मूल्य न था–जो एक मांस–पिण्ड कुरूप रोगी से प्रेमकर सकती है, उसकी पूजा कर सकती है, वह मन आने पर ही किसी अन्य व्यक्ति को अपने अनुराग का दान दे सकती है और किसी तरह नहीं। यहाँ तो सेवा का मूल्य था और इसी साधन से वे अपने उद्देश्य में सफल होना चाहते थे।''[2] यहाँ 'अश्क' जी ने लता के माध्यम से यह बात साफ शब्दों में कह दी है कि आज आधुनिक युग की नारी अबला नहीं सबला है। वह अपने निर्णय स्वयं ले सकती है, वह पराश्रिता नहीं बल्कि किसी भी परिस्थिति में पुरुष से कम नहीं है। यदि वह आधुनिक विचार रखती है तो इसका मतलब यह कतई नहीं कि उसने अपने आदर्शों और कर्त्तव्यों को तिलांजलि दे दी है। आधुनिक नारी अपने आदर्शों, कर्त्तव्यों और अधिकारों में समन्वय बनाकर रखना भली–भांति जानती हैं। अश्क जी के एक अन्य उपन्यास की नायिका निमिषा गोविन्द को बहुत पसन्द करती है। यद्यपि हर तरह से वह गोविन्द से अधिक शिक्षित, सुन्दर एवं समझदार है, फिर भी वह गोविन्द से विवाह करना चाहती है, परन्तु सम्मान के साथ। जब अचानक एक दिन गोविन्द निमिषा से कहता है कि यदि मुझसे शादी करनी है तो अभी आज ही सम्भव है, नहीं तो कभी नहीं, ''मैंने पुरानी अनारकली में आर्यसमाज मन्दिर के प्रधान से बात कर रखी है। मैं चाहता हूँ कि हम आर्य समाज मन्दिर में आज ही शादी कर लें। भाई साहब शाम को आयेंगे। मैं उनसे कह दूँगा कि मैंने शादी कर ली और राहों वाली सगाई अपने आप हट जाएगी। अब तुम देर नकरो।''[3] परन्तु निमिषा नहीं मानती। वह कहती है कि हम शादी ही कर रहे हैं कोई चोरी तो नहीं, मैं अपने घर वालों, सहेलियों आदि को बताना चाहूँगी तथा यदि कल शादी करें तो उन्हें बुलाना चाहूँगी गोविन्द के बहुत रोकने और जोर देने पर भी निमिषा सम्मानपूर्वक शादी करने के फैसले पर अडिग रहती है और अगले दिन सुबह आने की बात कह कर अपने घर की ओर चल देती है। वह यूँ बिना किसी को बताये शादी करके अपने परिवार वालों का अपमान नहीं करना चाहती। ''इस तरह बिना किसी को बताये मैं नहीं कर सकती शादी!'' निमिषा ने जोर देकर कहा, ''मेरे मामा और मौसियाँ तो खैर दूर रहती हैं, लेकिन मैं चाचा–चाची के अलावा मेरी दादी जिन्दा हैं, फूफी हैं, उनकी लड़कियाँ हैं, दामाद हैं, मेरी सहेलियाँ हैं, मिसेज शर्मा हैं। आज कल रखें तो मैं आज शाम को सब को इत्तला कर दूँगी। मैं नहीं कहती कि सब शादी में शामिल हो ही जायेंगे। सम्भव है कोई भी न हो। लेकिन मेरा कर्त्तव्य पूरा हो जायेगा। मैं अभी जाकर सबको इत्तला कर देती हूँ।''[4] निमिषा के चले जाने के बाद जब स्वयं गोविन्द निमिषा के दृष्टिकोण से सोचता है तो उसके फैसले को ठीक समझता है और तमाम रोमानियत के बावजूद निमिषा उससे ज्यादा जिम्मेदार, व्यवहार कुशल और दृढ़ इच्छाशक्ति वाली लड़की है। 'गर्म राख' में भी चालक नारी को पुरुष के बराबर का महत्त्व देता है। वह उसे दासी नहीं मानता है। उन्हीं के कारण समाज की उन्नति हुई है। आज जीवन के हर क्षेत्र में वह पुरुष को सहयोग प्रदान कर रही है, उसके साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चल रही है, ''भारत की नारी ने जो पुरुष का साथ देना छोड़ दिया–कई कारणों से जिसे छोड़ने पर विवश हुई – उससे भारत को कम क्षति नहीं उठानी पड़ी। अब नारी घर की चारदीवारी से निकल कर राजनीतिक और सांस्कृतिक मोर्चों पर पुरुष के कन्धे से कन्धा मिलाकर सहयोग दे रही है, यह भारतकी उन्नति का बड़ा शुभ लक्षण है।''[5] आज आधुनिक युग में नारी पुरुष के जुल्मों से निजात पा सकती है। वह यदि ऐसा महसूस करे कि उसका पति उसकी आवश्यकताओं को पूरा करने में अक्षम हो, वह अपनी जीवनशैली में सहायक बनने की अपेक्षा बाधक है तो उससे मुक्ति पाने में सक्षम है। वह पति को देवता तथा सर्वस्व मानने के लिए बाध्य नहीं है। उपन्यास 'सितारों के खेल' में मिस बाली नारी की स्वतन्त्रता के पक्ष में अपने उद्गार प्रस्तुत करती हुई कहती है कि ''हमारी पुरानी संस्कृति, हमारी पुरानी बातें हजार अच्छी हों और उनसे सम्बन्ध रखने वाले रीति–रिवाज हजार लाभदायक हों, लेकिन उनमें परिवर्तन करना आवश्यक है। हम उन्हें नहीं बदलेंगें तो वे स्वयं बदल जायेंगें क्योंकि पुरानी व्यवस्था कितनी भी अच्छी क्यों न हो, अवश्य बदलती है और नयी उसका स्थान ले लेती है – पुरुषों के बनाये हुए पतिव्रत धर्म ने बहुतेरे अत्याचार ढाये हैं, अब जरा स्त्रियों की स्वतन्त्रता को, अपनी–अपनी पसन्द को,तलाक को, कोर्टशिप को भी अपने करिश्में दिखाने दीजिए।''[6] आज की नारी किसी एक पुरुष के साथ ही बंधी नहीं रह सकती है। यदि उसे ऐसा आभास हो कि उसके साथ उसका पति अन्याय, अत्याचार, शोषण कर रहा है तो वह तुरन्त उससे नाता तोड़कर अपनी पसन्द से किसी दूसरे व्यक्ति के साथ सम्बन्ध स्थापित कर सकती है। इसी सन्दर्भ में मिस बाली कहती है, ''कहीं ऐसी कैद नहीं, कहीं ऐसा बन्धन नहीं, तितली फूल–फूल पर बैठती है, एक ही फूल के साथ नहीं पिरो दी जाती, तो फिर पत्नी ही क्यों पति के साथ इस तरह से बांध दी जाए कि मृत्यु के सिवा यह बन्धन टूट ही न सके।''[7] अत: स्पष्ट है कि आधुनिकता बोध से नारी जीवन में महान् क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है। वह सदियों से पीड़ित, कुचिलत, पुरुष द्वारा शोषित नारी नहीं रह गई थी वरन् वह पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर, सम्मान के साथ जीवन जीने लगी है। वह ऐसे पुरुष का त्याग करने में भी सक्षम है जो उसके अधिकारों को छीनता है, उसका शोषण करता है। वह उन धर्मों की विचारधाराओं से भी टक्कर लेने की हिम्मत रखती है जिसमें नारी को पुरुष की सेविका के रूप में स्थापित कर दिया है। अत: 'अश्क' के उपन्यासों की नारी आधुनिकताबोध से सम्पन्न है।

संदर्भ सूची

1. उपेन्द्रनाथ 'अश्क', 'सितारों का खेल', पृ. 45
2. वही, पृ.110
3. उपेन्द्रनाथ 'अश्क', 'निमिषा', पृ. 157
4. वही, पृ.257
5. उपेन्द्रनाथ 'अश्क', 'गर्म राख', पृ.148
6. उपेन्द्रनाथ 'अश्क', 'सितारों का खेल', पृ. 14
7. उपेन्द्रनाथ 'अश्क', 'सितारों का खेल', पृ. 15

ISSN 2278 - 0327

मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में अभिव्यक्त स्त्री की पीड़ा

डॉ. राम किशोर यादव
श्री वेंकटेश्वर कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सार -

मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में स्त्री की पीढ़ा को ही अभिव्यक्त किया गया है। समाज में स्त्री-पुरुष दोनों की सकारात्मक भूमिका है। दोनों ही समाज की धूरी हैं। समाज के भीतर घटित हो रहे क्रिया व्यापारों का वर्णन कहानियों में हुआ है। ये सभी कहानियों एक्सरे की तरह समाज के भीतर विद्यमान समस्याओं को सामने लाती हैं। उनकी कहानियों की संख्या अधिक है। इसमें विविधता व्याप्त है। इस लेख में 'चिन्हार', 'गोमती हंसती है' और 'ललमनियां' कहानी संग्रह में वर्णित कहानियों को आधार बनाकर स्त्री की पीढ़ा को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है। इसे समग्रता में देखने की जरूरत है। एकांगी दृष्टिकोण से देखने पर इसमें कमियां नजर आयेगी पर समग्रता में देखने पर यह समाज की गंभीर समस्याओं को चित्रण करती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में जीवन में व्याप्त समस्याएं उभरकर आ गई हैं। लेखिका ने समाज के भीतर की तस्वीर को उजागर किया है। मध्यवर्गीय परिवार के भीतर स्त्री की स्थिति का मूल्यांकन किया गया है। कहानी में सच्चाई और प्रामाणिकता सभी अनुभूतियों को रेखांकित किया गया है। स्वतंत्रता के बाद समाज में जो परिवर्तन आया उसको तत्कालीन रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में दिखाया है। यह मानव जीवन की समूची घटनाओं का लेखा-जोखा है। गांव से लेकर शहर तक के जीवन में जो बदलाव आये हें, उन सभी को कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। कहानी भ्रष्ट व्यवस्था और बदलते सामाजिक समीकरण पर अपनी दृष्टि केन्द्रित की है। युवक-युवतियों की मन:स्थितियों का समग्रता में आकलन करता है। भ्रष्ट व्यवस्था और सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार भी करता है।

मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में जीवन की धड़कन है। सिनेमा की रील की तरह चलता है। गांव के लोगों के जीवन की समस्याओं, उनके घुल-छद्म, स्त्रियों के ऊपर हो रहे जुल्म। इन सभी बिन्दुओं को समग्रता में पकड़ने की कोशिश की गयी है। मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों को पढ़ने के बाद पता चलता है कि जीवन कितना जटिल है। समाज को कितना आगे बदलने की जरूरत है। लोगों की सोच उनकी कथनी और करनी के अन्तर को बदलने की जरूरत है।

मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में स्त्री की पीढ़ा को ही अभिव्यक्त किया गया है। समाज में स्त्री-पुरुष दोनों की सकारात्मक भूमिका है। दोनों ही समाज की धूरी हैं। समाज के भीतर घटित हो रहे क्रिया व्यापारों का वर्णन कहानियों में हुआ है। ये सभी कहानियों एक्सरे की तरह समाज के भीतर विद्यमान समस्याओं को सामने लाती हैं। उनकी कहानियों की संख्या अधिक है, इसमें विविधता व्याप्त है। इस लेख में 'चिन्हार', 'गोमती हंसती है' और 'ललमनियां' कहानी संग्रह में वर्णित कहानियों को आधार बनाकर स्त्री की पीढ़ा को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है। इसे समग्रता में देखने की जरूरत है। एकांगी दृष्टिकोण से देखने पर इसमें कमियां नजर आयेगी पर समग्रता में देखने पर यह समाज की गंभीर समस्याओं को चित्रण करती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में जीवन में व्याप्त समस्याएं उभरकर आ गई हैं। लेखिका ने समाज के भीतर की तस्वीर को उजागर किया है। मध्यवर्गीय परिवार के भीतर स्त्री की स्थिति का मूल्यांकन किया गया है। कहानी में सच्चाई और प्रामाणिकता सभी अनुभूतियों को रेखांकित किया गया है। श्री कमलेश्वर के अनुसार, ''इस कहानी ने जीवन की सारी असंगतियों-विसंगतियों, जटिलताओं और दवाबों को महसूस किया है..... यानि नई कहानी पहले और मूल रूप में जीवनानुभव है इसके बाद कहानी है।''[1]

स्वतंत्रता के बाद समाज में जो परिवर्तन आया उसको तत्कालीन रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में दिखाया है। यह मानव जीवन की समूची घटनाओं का लेखा-जोखा है। गांव से लेकर शहर तक के जीवन में जो बदलाव आये हैं, उन सभी को कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। कहानी भ्रष्ट व्यवस्था और बदलते सामाजिक समीकरण पर अपनी दृष्टि केन्द्रित की है। युवक-युवतियों की मन:स्थितियों का समग्रता में आकलन करता है। भ्रष्ट व्यवस्था और सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार भी करता है। डॉ. नामवर सिंह के शब्दों में, ''नयी कहानी संकेत नहीं करती बल्कि संकेत है।''[2] यह संकेत है सम्पूर्ण घटनाओं के घटित होने का, गांव के दबंगों की गतिविधियों का, बदलता राजनैतिक स्वरूप का, व्यक्ति के जीवन के भीतर व्याप्त समस्या के समाप्त न होने का। यह संकेत हर स्तर पर करती है। समाधान भी प्रस्तुत करती है। इन सभी के बीच मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में जीवन की धड़कन है। सिनेमा की रील की

तरह चलता है। गांव के लोगों के जीवन की समस्याओं, उनके घुल-छद्म, स्त्रियों के ऊपर हो रहे जुल्म। इन सभी बिन्दुओं को समग्रता में पकड़ने की कोशिश की गयी है। मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों को पढ़ने के बाद पता चलता है कि जीवन कितना जटिल है। समाज को कितना आगे बदलने की जरूरत है। लोगों की सोच उनकी कथनी और करनी के अन्तर को बदलने की जरूरत है।

'चिन्हार' मैत्रेयी पुष्पा का प्रथम कहानी संग्रह है। इस संग्रह में 12 कहानियां संग्रहित हैं। अपना-अपना भाग्य, सहचर, बहेलिये, मन नाहि दस बीस, हवा बदल चुकी है, बेटी, आक्षेप, भंवर सफर के बीच, केतकी और चिन्हार में स्त्री के विविध रूप विद्यमान हैं। इनमें सामाजिक विसंगतियां व्याप्त हैं। लेखिका ने बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ इसका विश्लेषण किया है। सभी पात्रों की भावनाओं को उजागर कर जीवन की स्थिति को चिन्हित करने का सार्थक प्रयास है। भाषा की दृष्टि से इसमें ग्रामीण शब्दों का प्रयोग किया गया है। कहीं ठेठ ग्रामीण शब्दों को तो कहीं तद्भव रूप में शब्दों का प्रयोग किया गया है। यह मौलिक है। इसमें बिम्बात्मकता, प्रतीकात्मकता, नाटकीयता एवं संवादात्मकता व्याप्त है। मैत्रेयी पुष्पा ने स्वीकार किया है, ''सामाजिक विसंगतियों ने जिन्हें ढह जाने को बाध्य कर दिया, उन्हीं के सतत संघर्ष को उकेरने का प्रयत्न किया है मैंने। उनकी लड़ाई नहीं लड़ी है, मैं केवल वर्णित भर कर पायी हूं। पात्रें की लड़ाई में हिस्सेदार होने की इच्छा से बढ़कर लेखकीय साहस और क्या होगा?''[3]

इस संग्रह की सभी कहानियों में जीवन का विविध पक्ष शामिल है। 'अपना अपना आकाश' ग्रामीण जीवन की नैतिकता और स्वार्थपरकता की टकराहट की कहानी है। 'सहचर' में मानवीय प्रेम की झलक है। 'बहेलिये' कहानी की गिरिजा अन्याय का प्रतिकार करने के लिए प्रधान चुनी गई है। वह सभी स्त्रियों की स्थिति पर प्रकाश डालती है। उन्हें मुक्त करने की कोशिश करती है। 'हवा बदल चुकी है' में संवेदना का वृहद् रूप व्याप्त है। बेटी की ममता को दिखाने का प्रयास किया गया है। इसमें त्यागमयी मुन्नी का जीवन वर्णित है। 'कृतज्ञ' की नायिका मुरली है जो परोपकारी है। अपनी सेवा से कल्याण का कार्य करती है। 'भंवर' की बिरमा स्वार्थी पति से त्रस्त है। अपने संवेदनशील बनी रहती है। 'सफर के बीच' में संवेदना का अलग रूप दिखाई पड़ता है। प्रशासनिक अधिकारी और कामान्ध गंधर्व सिंह की करतूतों का इतिहास है। अपनी रुचि के अनुरूप गन्धर्व सिंह का स्त्रियों पर शोषण जारी रहता है। इस तरह शिकार केतकी की कथा को वाणी देने का काम लेखिका ने किया है। यहां स्त्री मौन होकर सबकुछ सहती है। हर परिस्थिति में दु:ख ही उसके जीवन में व्याप्त है। इस संकट से निकलने का मार्ग उसे दिखाई नहीं पड़ता है। सभी कहानियों के पात्र जीवन्त हैं। सत और असत् मानव समाज के द्योतक हैं। हर समय सतर्क रहकर ही इन सभी लोगों को बचाया जा सकता है। 'चिन्हार' कहानी अपने आपमें मिशाल है। आदमी और आदमी के बीच अनचाहे रिश्तों की दास्तान है। कहानीकार के जीवन के बीच उसे पकड़ने की कोशिश की है। उनका प्रयास सफल रहा है। उस पहचान का एक उत्कृष्ट रूप 'चिन्हार' है।

स्त्री का लेखन उसके जीवन का उद्गार होता है। स्त्रियों के भीतर के भावों को सामने लाती है। स्त्री को लेकर फैले भ्रम का निवारण करती है। कहानी में जीवन प्रतिबिम्बित होता है। अपनी हर रचना में विषय की विविधता को समेटे हुए हैं। विषय वैविध्य और परिपक्वता का परिणाम मैत्रेयी पुष्पा की रचनाओं में मिलता है। ग्रामीण जीवन के अंतरंग झांकियों का चित्रण करके मैत्रेयी पुष्पा जी ने साहित्य जगत में हलचल मचा दी है। स्त्रियों के जीवन को बारीकी से चित्रित कर उनको एक स्वरूप प्रदान करना ही उनका उद्देश्य है।

स्त्री का समाज में महत्वपूर्ण स्थान है पर हर कदम पर उसे पीढ़ा ही भोगनी पड़ती है। उनकी पीढ़ा पुरानी है। पीढ़ा के स्रोत भी पुराने ही हैं। उसमें नया तो सामाजिक संस्कारों की पीडोन्मुख आखेटप्रियता की जीवन्त अभिव्यक्ति है। सभी कहानियों में स्त्री की वेदना ही देखने को मिलती है। वह मुक्ति के लिए संघर्ष करती स्त्रियां हैं। जो जीना चाहती हैं अपनी शर्तों पर। इस समाज में कुछ ऐसे व्यक्ति हैं जो निरन्तर घात लगाये बैठे रहते हैं।

'ललमनियां' कहानी संग्रह में भी वेदना एवं स्वाभाविकता है। नारी की विविध समस्याओं को विविध दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया गया है। ललमनियां नारी जीवन का जीवन्त रूप है। इस संग्रह में लगभग 10 कहानियां संग्रहित हैं। फैसला, सिस्टर, सेंध, अब फूल नहीं खिलते, रिजक, बोझ, पगला गयी है भागवती! छाँह, तुम किसकी हो बिन्नी? एवं ललमनियां प्रमुख कहानियां हैं। इसमें विविध दृष्टिकोण के साथ विविध रूपों का वर्णन मिलता है। स्त्री की विविध समस्याओं को ललमनियां में प्रतिबिम्बित किया गया है।

'फैसला' कहानी नारी अस्मिता को चित्रित करती है। इस कहानी पर 'वसुमती की चिट्ठी' नाम से टेलीफिल्म प्रसारित किया जा चुका है। इस कहानी पर ही लेखिका को कथा पुरस्कार मिला है। स्त्री की शिक्षा के बावजूद भी उसकी जीवन लय टूटी लगती है। महिलाओं को विविध वर्गों में बांटकर उलझा दिया गया है। वसुमती इस कहानी की मुख्य पात्र है। वह प्रधान बनती है पर निर्णय अभी पति का ही चलता है। सारे निर्णय रणवीर लेते हैं। किसी मौके पर अगर सही फैसला भी सुना दिया जाता है तो उस स्त्री को कुएं में कुदवा दिया जाता है। गांव हो या शहर हो सभी जगह एक जैसी ही समस्या है। शोषण का रूप एक जैसा ही है। स्त्री अपनी अस्मिता के लिए हर समय संघर्ष करती रहती है। वह पुरुष प्रधान समाज द्वारा निरन्तर प्रताड़ित होती है। रणवीर के कहे गये शब्द इसका प्रमाण है कि स्त्री को मान मर्यादा में ही रहना चाहिए। वह कहता है, ''पंचायती

चबूतरे पर बैठती तुम शोभा देती हो ? लाज-लिहाज मत उतारो। कुल परम्परा का ख्याल भी नहीं रहा तुम्हें ? औरत की गरिमा आढ़-मर्यादा से ही है। फिर तुम क्या जानो गांव में कैसे कैसे धूर्त हैं।''[4]

'फैसला' कहानी में हरदेई के पक्ष में फैसला सुनाया जाता है। वह कहती है-रणवीर मेरी पीर नहीं समझेंगे। तुम समझ सकती हो। वसुमती से वह निवेदन कर रही है, ''तुम औरत हो भाभी, मेरा दु:ख समझो, न्याय करो। पति की लाभ की नौकरी है, छुट्टी अब दो साल बाद ही मिल पाएगी, पूरे सात साल निकल गये इसी तरह।''[5]

'फैसला' में पुरुष समाज द्वारा नारी पर किये जाने वाले शोषण का वर्णन है। ऐसी स्त्री की कहानी है जो निरन्तर शोषण की शिकार है। अन्त में उसे अपना जीवन समाप्त करना ही एकमात्र विकल्प बचता है। 'सिस्टर' कहानी में मानवीय संबंधों की पड़ताल की गयी है। इसमें सिस्टर की परोपकारिता का वृतान्त है। वह कठिन परिश्रम करके सुरेशचन्द को बीमारी से बचाने का प्रयास करती है। सुरेशचन्द ने भी सिस्टर को बहन बना लिया था। लड़के की शादी में उसे ठेस लगती है। इसमें मानवीय संबंधों के बदलाव को उजागर किया गया है। महरी के वाक्य है, ''सिस्टर, सुरेश बाबू जी हमसे पूछ रहे थे कि कैसी है सिस्टर डिसूजा ? लो हमने तो जवाब दे दिया, कैसी है। अच्छी है। खूब अच्छी। हमने खुद अपनी बांह में सुई लगवाई है।''[6]

जब सुरेशचन्द बेटे के विवाह में सिस्टर को नहीं बुलाते तो वह काफी उदास हो जाती है। उसकी भावनाओं को ठेस पहुंचती है। सिस्टर को सम्मान न मिलने से आहत है जिसने बड़ी ही मेहनत से बीमारी में उनकी सेवा की है। इस तरह भावना को आधार बनाकर कहानी को रचा गया है।

'सेंध' कहानी गांव के वातावरण को उजागर करती है। इसमें चकबन्दी और ग्रामीण व्यवस्था में लिप्त भ्रष्टतंत्र की कथा है। किस प्रकार दबंग व्यक्ति गंगा सिंह आस-पास की जमीनें अपने नाम करवा लेते हैं। इसमें भ्रष्ट व्यवस्था का चित्रण मिलता है।

'अब फूल नहीं खिलते' एक ऐसी छात्र की कहानी है जो शिक्षक द्वारा अनैतिक कार्य किये जाने का विद्रोह करती है। शिक्षा तंत्र में व्याप्त शारीरिक शोषण को दिखाना ही लेखिका का उद्देश्य है। इस कार्य के विरुद्ध छात्र आन्दोलन करते हैं। आन्दोलन को समाप्त करने के लिए आंसू गैस छोड़े जाते हैं। लाठियां भांजी जाती हैं। प्रधानाचार्य के निवास को पुलिस घेर लेती है। वे दिखावा तो खूब करते हैं पर नैतिक रूप से भ्रष्ट है प्राचार्य। किसी को बोलने की हिम्मत नहीं होती। 'झरना' नामक छात्र की व्यथा कथा को इसमें दर्शाया गया है। ''बोलो झरना तुम्हें किस पर शक है ? कौन कर सकता है ऐसा टुच्चापन ? सच कहता हूं खाल उधड़वा दूंगा।''[7]

झरना के जीवन संग्राम को चित्रित करना ही लेखिका का मुख्य ध्येय है। झरना प्रिसिंपल के पास जाती है। वे भी अपने को असमर्थ पाते हैं। उनकी दृष्टि तो स्वयं झरना पर है। वह कहीं भी सुरक्षित नहीं है। न कॉलेज में, न रास्ते में, न गांव में। कॉलेज से जब उठकर चली तो सहसा उस पर प्रहार होता है, ''उठकर चली थी कि सहसा पीछे से दो बलिष्ठ हाथ कंधों पर आये और जकड़ते चले गये।''[8] इसमें शैक्षणिक संस्थानों में घटित हो रहे अनैतिक घटनाओं की जीवन्त तस्वीर है।

'रिजक' कहानी में बिरादरी के आन-बान-शान को दिखाया गया है। पति जेल में बन्द हो जाता है। उसके जेल जाने के बाद उसकी पत्नी लल्लन घर संभालने का प्रयास करती है। उसके परिवार के दु:ख को यहां उजागर किया गया है। लल्लन बच्चा जनवाने का कार्य करती है। वह सभी बिरादरी के घरों में जाती है। हर जगह से कुछ न कुछ मिलता है। भूख की पीढ़ा का वर्णन इसमें है। एक बार निर्णय करती है कि वे अब पुराना कार्य नहीं करेगी। इसमें भूख की पीढ़ा सहनी पड़ती है। अन्त में लल्लन पेट की खातिर मोदी के घर बच्चा जनवाने का कार्य करने पहुंच जाती है। इसमें भूख की पीढ़ा और बिरादरी के आन-बान को दिखाया गया है। ''आज की नहीं है लल्लन। पैंतीस-अड़तीस बरस उमर गुजार चुकी है, बीसियों साल तो इसी खिल्ली गांव में ही हो गए।''[9] अहीर के गांव का चित्रण इसमें मिलता है। दो गांवों के बीच ठनी दुश्मनी को भी उजागर किया गया है। लल्लन आसाराम को निरन्तर कोसती रहती है, ''जोगिया पिछौरा ओढ़ के बन गया संत-महंत। सोच रहा है बामन-बनियां इसकी नेतई कबूल लेंगे।''[10]

लल्लन के जीवन के हर पक्ष पर लेखिका की दृष्टि बनी हुई है। घर चलाने की परेशानी, भूख से पीड़ित परिवार को कैसे संभाले। वह अपना जीवन चलाने के लिए मोदी के घर पहुंच जाती है। ''लल्लन झटपट संभलकर बैठ गई और फुर्ती से जच्चा को अपनी बांहों में भर लिया। बैठे ही बैठे माते की बहू की ओर गरदन घुमाकर तेजी से सांस लेती हुई बोली, ''दुलहिन, हमारे रहते तु-म।''[11]

स्त्री के जीवन को आधार बनाकर संपूर्ण समाज में व्याप्त भेदभाव की स्थिति को उजागर किया गया है। ऐसी स्त्री जो सभी की मदद करती है। सबके सुख-दु:ख में शामिल होती है। अन्तत: वह परिस्थितियों के सामने अपने को हार मान लेती है। अपने पुश्तैनी काम को करने के लिए बाध्य हो जाती है।

'तुम किसकी हो बिन्नी ?' में स्त्री का दर्द चित्रित है। एक ऐसी लड़की जो सौतेली मां के पास रहती है। उसे मां का प्यार नहीं मिलता। जीवन संग्राम में वह अकेले हैं। हर बात पर उसे फटकार मिलती है। हमेशा उसे प्रताड़ना झेलनी पड़ती है। वह घुट-घुट कर जीने के लिए विवश है। मिसेज गुप्ता को लगातार पुत्री होने पर मानसिक संत्रस होता है। वह निरन्तर सोचती रहती है। उसकी व्यथा-कथा को ही मुख्य आधार बनाया गया है। इस व्यथा का पूरा चित्र

इसमें विद्यमान है। इस कहानी में भ्रूण हत्या की समस्या पर प्रकाश डाला गया है। भ्रूण हत्या समाज के लिए अभिशाप है। शहरों में टेस्ट कराकर इस क्रिया को क्रियान्वित किया जा रहा है। इसका यथार्थ रूप इसमें मिलता है। इसमें स्त्री के जीवन को सही परिप्रेक्ष्य में समझने की जरूरत है।

'बोझ' कहानी शहरी जीवन पर आधारित है। क्रैच में रखे गये बच्चे की कहानी है। शहर में पति पत्नी दोनों ही नौकरी करते हैं। बच्चे को क्रैच में डाल देते हैं। लेखिका ने सुनीता से कहलवाया है, ''पंछी पखेरू तक अपने बच्चों को उड़ना सीखने से पहले दूसरों के भरोसे नहीं छोड़ते तुम तो मनुष्य जात! पढ़े लिखे! सभ्य सुसंस्कृत हो।''[12]

'छांह' कहानी संबंधों की पड़ताल करती है। बतासो मुस्लिम स्त्री होकर भी ददुआ की सेवा करती है। उस समय वह सेवा करती है जब ददुआ बहू बेटे के द्वारा फेंक दिए गए हैं। बतासो के संघर्ष को ही मुख्य माना गया हैं, आर्थिक धरातल पर टिके संबंधों की विवेचना की गयी है।

'पगला गयी है भागवती!' में नारी की व्यथा चित्रित है। जिस नारी ने वैधव्य जीवन जीया है। गांव में स्त्रियों पर किये जाने वाले जुल्म का अद्भुत रूप इसमें विद्यमान है। अनुसूईया मास्टर से प्रेम करती है। वह मन्दिर में जाकर विवाह कर लेती है। इस विवाह को माधोसिंह स्वीकार नहीं करते हैं। वह अपनी बेटी को विष देकर मार डालते हैं जबकि बेटे कोर्ट से विवाह करके घर आता है तब वे लोगों को दावत देते हैं। उसी समय भागवती पत्थर चलाकर मारती है। वह कहती है कि बेटे को भी वही सजा दो जो अनुसूईया को दी है। इस प्रकार पुत्र और पुत्री में भेदभाव को दिखाया गया है। इसका परिणाम कहानी में है। 'ओ अधरमी! अन्यायी! ठाकुर माधो! आज बेटा बहू के स्वागत में मरे जा रहे हो तुम ?..... आज आंखें मूंद लई ? बेटा की गलती दिखाई नहीं दई तुम्हें ? याद करो माधो जे ही गलती तो मेरी अनुसूइया ने करी थी। बस जे ही।''[13]

'ललमनियां' कहानी में नारी का जीवन अंकित है। नारी की व्यथा को चित्रित करना ही लेखिका का उद्देश्य है। इसमें एक ऐसी स्त्री का वर्णन है जो ललमनियां करके बच्चे का पेट पालती है। मोहरो की शादी योगेस के साथ होती है। उसके पिता उसे स्वीकार नहीं करते हैं। उसको नाचने वाली कहकर तिरस्कृत कर देते हैं। योगेस के जीजा एक कमरा लेकर उसे अलग रहने की व्यवस्था कर देते हैं। वहां योगेस छिप-छिपकर मिलता है। लम्बे समय तक खर्च न उठाने पर योगेस के जीजा उसे गांव छोड़ जाते हैं। योगेस गांव में कभी नहीं पहुंचता है। यहीं से उसके जीवन में संघर्ष शुरू हो जाता है। वह एक पुत्री को जन्म देती है। उसके ऊपर दोहरी जिम्मेदारी आ जाती है। अपनी बच्ची का पालन-पोषण करने के लिए उसे कठिन संघर्ष करना पड़ता है। वह निरन्तर वेदना सहती रहती है। इस प्रकार नारी की वेदना को उजागर किया गया है।

ललमनियां यानि 'ब्रज का नाच'। इसकी एक परम्परा है। लोक साहित्य में इस नृत्य की धूम है। इसकी विशेषता बातयी गयी है। ''ललमनियां क्या लेने-देने के लिए किया जाता है? अरे वो तो अपनी बिरज भूमि का नाच है। बस मरता हुआ नहीं देखा जाता। अम्मा क्या कमाई के लिए ललमनियां दिखाती थी ? उसे तो अटूट पिरैम था इस नाच से।''[14]

यहां उल्लेखनीय है कि भारतीय संस्कृति के विरासत को संभालने का काम एक स्त्री कर रही है। हर प्रकार की यातना झेलकर कर रही है। उस लंबी परंपरा को जीवन्त बनाए रखना चाहती है। बिरादरी के खौफ का कोई असर नहीं पड़ता है। इसका यथार्थ रूप दृष्टव्य है- ''कनास! गरीब-गुरबा के ब्याह में ललमनियां दिखा आई तो तेरी हेठी हो गयी ? अरे और इसके सिवा हमारे पास है ही क्या देने को ?''[15]

मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी कहानियों में स्त्री को ही महत्व दिया है। पितृसत्तात्मक समाज के मर्दवादी छद्म को चुनौती देती है। 'गोमा हंसती है' संग्रह की कहानियां स्त्री की दासतां और मुक्ति की कथा कहती हैं। वीरेन्द्र यादव के अनुसार, '''गोमा हंसती है' संग्रह की कहानियां वैयक्तिक न होकर सामाजिक हैं। कभी वे पितृसत्तात्मक मूल्यों को चुनौती देती हैं तो कभी उसका शिकार होती हैं तो कभी स्वयं नारी के ही विरुद्ध पितृसत्तात्मक हथियारों की वाहक होती हैं।''[16] इस कहानी में नारी की नैतिकता का सवाल भी है। लेखिका ने सभी प्रश्नों को खेत-खलिहान के माध्यम से हमारे सामने प्रस्तुत किया है। इसमें नारी की स्थिति को रेखांकित किया गया है। स्त्रियों की पीढ़ा को इस प्रकार समझा जा सकता है। ''स्त्रियां तो मनुष्य गिनती में ही नहीं थीं। चढ़ती वय और उसके तकाजे, स्त्री होने के रास्ते में लड़की को इतिहास का शिकंजा जकड़ने लगा था। स्त्री-पुरुष के शारीरिक तंतुओं में लहरें मारते आवेश-संवेगों की प्राकृतिक मांग का विभाजन पक्षपात के साथ हो रहा था। शाबासी और दंड विधान के बंटवारे की प्रक्रिया में मुझे हल्का किया जायेगा, यह सत्य मुझे मेरा समय समझाने लगा। और मैंने पाया कि मैं धीरे-धीरे अपने नैसर्गिक अधिकारों के स्तर से नीचे धकेली जा रही हूं, खुले रास्ते के मुहाने रोके जा रहे हैं।''[17]

इस संग्रह में रास, गोमा हंसती है, ताला खुला है पापा, बिछुड़े हुए, बारहवीं रात, सांप और सीड़ी, प्रेमभाई एण्ड पार्टी, शतरंज के खिलाड़ी और उज्रदारी कहानियां प्रमुख हैं। 'रास' कहानी की नायिका ससुर की वासना का शिकार होती है। ''काहे को गया था रमढोल ? हमें इलम है कि हमारा बच्चा छोटा है मरद क्या सोचे-समझे ? यही कि तेरी जवानी..... ।''[18]

'गोमा हंसती है' में बेमेल विवाह की कथा है। इसका प्रतिकार नायिका विवाहेत्तर संबंध बनाकर करती है। 'ताला खुला है पापा' में किशोरावस्था में किये जाने वाले प्रेम का वर्णन है। 'बिछुड़े हुए' में स्त्री की यंत्रणा का विवरण है। 'सांप और सीड़ी' में पारिवारिक संबंधों के आर्थिक-स्वार्थ में बदलने की दास्तान है। 'शतरंज के खिलाड़ी' में स्त्री मुक्ति की कथा है। 'उज्रदारी' में पुरुष सत्ता को चुनौती दी गई है। स्त्री के देह को भी एक मुक्ति का साधन माना गया है। संपूर्ण कहानियां स्त्री की पीढ़ा को ही चित्रित करती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कमलेश्वर, नयी कहानी की भूमिका, अक्षर प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1996, पृ. 32
2. सिंह, डॉ. नामवर, कहानी : नयी कहानी, लोकभारती प्रेस, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, 1973, पृ. 42
3. नवभारत टाइम्स, पृ. 8
4. पुष्पा, मैत्रेयी, ललमनियां (फैसला), किताबघर, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1996, पृ. 11
5. वही, पृ. 15
6. पुष्पा, मैत्रेयी, ललमनियां (सिस्टर), किताबघर, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1996, पृ. 23
7. पुष्पा, मैत्रेयी, ललमनियां (अब फूल नहीं खिलते), किताबघर, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1996, पृ. 56
8. वही, पृ. 60
9. पुष्पा, मैत्रेयी, ललमनियां (रिजक), किताबघर, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1996, पृ. 66
10. वही, पृ. 69
11. वही. पृ. 80
12. पुष्पा, मैत्रेयी, ललमनियां (बोझ), किताबघर, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1996, पृ. 93
13. पुष्पा, मैत्रेयी, ललमनियां (पगला गई है भागवती), किताबघर, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1996, पृ. 104
14. पुष्पा, मैत्रेयी, ललमनियां (ललमिनयां), किताबघर, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1996, पृ. 139
15. वही, पृ. 145
16. हंस, सितम्बर, 1998, पृ. 96
17. पुष्पा, मैत्रेयी, गोमा हंसती है, किताबघर, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1998, पृ. 1
18. हंस, सितम्बर, 1998, पृ. 96

ISSN 2278 - 0327

कबीर के काव्य का अनुभूति-पक्ष

ईन्दु रानी
नेट (जे.आर.एफ.), हिन्दी
म.न. 256, सुभाष नगर
हिसार (हरियाणा)

शोध-आलेख सार :

किसी भी साहित्य का अनुभूति पक्ष उसके मन्तव्य की सार्थकता को बखूबी दर्शाता है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक अनेक ऐसे कवि हुए हैं, जो भक्त कवियों की श्रेणी में आते हैं। इनमें भी सबसे ज्यादा भक्त कवि पूर्व मध्यकाल (भक्ति काल) में हुए हैं। भक्तिकालीन काव्य को दो भागों सगुण भक्ति काव्य और निर्गुण भक्ति काव्य में बांटा जा सकता है। निर्गुण काव्यधारा के अन्तर्गत सन्त और सूफी काव्य आता है। सन्त कवियों में कबीरदास जी का नाम अग्रगण्य है।

कबीरदास जी ने जैसा अनुभव किया वैसा ही लिख दिया, इससे उनका अनुभूति पक्ष बहुत सशक्त बन गया है। उनकी अनुभूति की अभिव्यक्ति के समक्ष भाषा भी लाचार-सी जान पड़ती है। कबीर ने जब निर्गुण निराकार ब्रह्म के प्रति अपनी अनुभूति को अभिव्यक्ति दी है, तो यह अत्यन्त हृदयस्पर्शी बन गई है। एक तरफ तो कबीर के काव्य को पढ़ने से ऐसा लगता है जैसे उनकी विरहिणी आत्मा वर्षों से अपने प्रिय से मिलने के लिए तड़प रही है और दूसरी तरफ कबीर जी कल्पना रूप में अपने प्रिय (प्रभु) से मिलने का आनन्द लेते प्रतीत होते हैं, जहाँ उनकी प्रणयानुभूति पाठक को धन्य कर देती है तो उनकी विरहानुभूति के पदों में पाठक को व्याकुल कर देने की क्षमता भी है। इस प्रकार उनके काव्य में विरहानुभूति में भक्त की व्याकुलता और प्रणयानुभूति में कल्पनारूप में भक्त की आनन्दानुभूति अनुभव की जा सकती है।

मुख्य शब्दः

अनुभूति, विरहानुभूति, प्रणयानुभूति, अग्रगण्य, विरहिणी, केन्द्रीय संवेदना।

प्रस्तावनाः

कबीरदास हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन निर्गुण काव्यधारा के महान सन्त कवि हुए हैं। उनका काव्य आलोचकों द्वारा भी प्रशंसा पाता आया है। कबीरदास का जन्म पंद्रहवीं सदी में हुआ और वे सोलहवीं सदी तक विद्यमान रहे।

भक्तिकाल में दो काव्यधाराएँ प्रवाहित हो रही थीं। सगुण काव्यधारा और निर्गुण काव्यधारा। सगुण के अन्तर्गत राम काव्यधारा और कृष्ण भक्ति काव्यधारा तथा निर्गुण के अन्तर्गत सूफी काव्यधारा और सन्त काव्यधारा। कबीरदास जी को सन्त/संत काव्य का आधार स्तम्भ कहना समीचीन प्रतीत होता है।

विरहानुभूति : अर्थ एवं स्पष्टीकरण

विरहानुभूति = विरह + अनुभूति अर्थात् विरह की अनुभूति। जिस काव्य में विरह की प्रधानता हो, जिस काव्य में कवि अपने प्रिय या प्रभु से विरह की व्याकुलता प्रकट करे, वहाँ विरहानुभूति की प्रधानता होती है।

कबीर के काव्य में विरहानुभूति :

कबीरदास जी ने एक तरफ तो हिन्दु-मुस्लिमों में फैली कुरीतियों पर तीखा प्रहार किया है, दूसरी तरफ विरहिणी आत्मा बन कर अपने निर्गुण राम प्रिय को पुकारा है:

'विरहिनी ऊभी पंथ सिरी, पंथी बूझै आइ।
एक सबद कवि पीव का, कबरे मिलैंगे आई।।'[1]

इन पंक्तियों में कबीरदास एकनिष्ठ होकर अपने प्रिय (प्रभु) का ध्यान लगाते हैं और उनका मन प्रिय (प्रभु) से मिलने के लिए तड़पने लगता है। वे प्रियतम का भेजा हुआ एक शब्द का संदेश सुनने के लिए आकुल हो जाते हैं।

कबीरदास के लिए प्रभु-मिलन किसी स्वर्णिम स्वप्न के समान है। प्रभु मिलन में उनकी व्याकुलता उनके काव्य में स्पष्ट झलकती है। प्रियतम का पथ निहारते-निहारते उनकी आँखों में झाईं पड़ जाती है और प्रिय का नाम पुकारते-पुकारते उनकी जीभ में छाला पड़ जाता है-

'' आँखड़ियाँ झाईं पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
जीभड़िया छाला पड्या, राम पुकारि पुकारि।।''[2]

कबीर की यह विरहानुभूति उस समय अपने चरम पर पहुँच जाती है जब ये अत्यन्त व्याकुल होकर कहते हैं कि हे प्रिय (प्रभु) या तो विरहिणी को मृत्यु दे दो या अपने दर्शन। अब उनकी विरहिणी (आत्मा) से आठों पहर वियोग की अग्नि में नहीं जला जाता -

'' के विरहिणी कूँ मीच दे, कै आपा दिखलाई।
आठ पहर का दाझणा, मोपै सयहा न जाइ।।'' [3]

उनके काव्य में विरहानुभूति अपने चरम पर उस समय पहुँच

जाती है, जब वे स्वयं को जलाकर अपने प्रिय (प्रभु) का अनुग्रह प्राप्त करना चाहते हैं। वे कहते है कि अच्छा तो यदि मैं इस शरीर को जलाकर राख कर दूं। जलते हुए शरीर का धुआँ जब स्वर्ग तक पहुँचेगा तब शायद मेरे प्रिय (प्रभु) द्रवीभूत हो जायें और वे अपने स्नेह के शीतल जल की वर्षा करके हमारे हृदय की विरह-ज्वाला को शान्त करें -

'' यह तनु जालौं मसि करूँ ज्यूँ धुआँ जाइ सरग्गि।
मति वे राम दया करें, बरसि बुझावै अग्गि।।''[4]

कबीर की विरहानुभूति सांसारिक नहीं है, अपितु यह तो लौकिक संसार से विरक्ति और उस अगोचर प्रभु के प्रति असीम आसक्ति का परिणाम है। चूंकि यह विरह साधारण नहीं है, अत: विरहानुभूति भी साधारण नहीं कही जा सकती। कबीर जी की साखियों के विरह के पदों में असीम व्याकुलता और प्रभु-मिलन की उत्कंठा अनुभव की जा सकती है। कबीर ने अपने प्रिय (प्रभु) को 'साई', 'आल्हा', 'हरि', 'पीव', 'भरतार', 'राम', 'कंत' और 'सहज' कहकर पुकारा है। कबीर का अपने प्रिय से उत्कट अनुराग उन्हें सम्पूर्ण संसार से विरक्त कर देता है। कबीर की आत्मा एक सच्ची प्रिया बनकर अपने प्रिय को पुकारती है।

कबीरदास की यह विरहानुभूति आदिकालीन रासो काव्य और रीतिकालीन काव्य की विरहानुभूतियों से सर्वथा भिन्न और पवित्र है। कबीरदास का विरह उच्च श्रेणी का है क्योंकि यहाँ आत्मा परमात्मा से मिलने के लिए तड़प रही है और उसकी तड़प कुछ ऐसी है जैसे जल बिन मछली तड़पती है। उनकी विरह की साखियों को पढ़कर या सुनकर सामान्य जन के मन में भी प्रभु के प्रति आसक्ति उत्पन्न हो जाती है।

प्रणयानुभूति : अर्थ एवं स्पष्टीकरण :

प्रणयानुभूति = प्रणय + अनुभूति अर्थात् प्रणय (संयोग) अवस्था में जो अनुभूति कवि को होती और उसे पढ़कर सहृदय को होती है वही प्रणयानुभूति होती है।

कबीर के काव्य में प्रणयानुभूति :

''कबीर की दृष्टि में अनुभूति ही वह तत्व है जो वाणी को अमृतमय बना देता है। जिस अनुभूति के संस्पर्श से कबीर ने अपने वाणी को अमृतमय बनाया है, वह है - प्रणयानुभूति। प्रणय - प्रकृति और पुरुष की शाश्वत प्रणय-लीला को अपने अंत:करण में अनुभव करना प्रत्येक भक्त और रहस्य-साधक का लक्ष्य है। प्रत्येक भक्त साधक अन्तत: परम प्रियतम से मिलकर एकाकार हो जाना चाहता है।''[5]

कबीर ने स्वयं को प्रिया और प्रभु को प्रिय माना है और वे अपने प्रियतम से मिलने के लिए सदैव आतुर हुए रहते हैं। कहीं-कहीं वे अपने प्रिय-मिलन का कल्पना-चित्र बनाते हैं और अपने प्रिय से स्वप्न में मिलन करते हैं, उनके प्रिय ने उन्हें सोते से जगा दिया है। कबीर का अपने प्रिय (प्रभु) से प्रत्यक्ष मिलन हो चुका है। अब वे इस भय से आँखें बन्द नहीं कर रहे है कि कहीं सच में यह प्रत्यक्ष मिलन, स्पन-मिलन न बन जाए -

'' कबीर सुपिनै हरि मिल्या, सूतां लिया जगाइ।
आंखि न मीचौं डरपता, मति सुपिना है जाइ।।'' [6]

''कबीर की यह प्रणयानुभूति उनकी अटपटी और रूखी वाणी को निस्संदेह रसात्मक बना देती है।''[7]

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि निर्गुण निराकार के प्रति कैसी प्रणयानुभूति! साधारण मन के लिए यह रहस्योत्पादक ही हैं। किन्तु कबीर की यह प्रणयानुभूति प्रतीकों और संकेतों से हो जाती है।

कबीरदास प्रतिपल प्रिय-मिलन का स्वप्न देखते रहते हैं। कबीर की प्रणयानुभूति में प्रिय-मिलन के कुछ मार्मिक चित्र हैं। वे कल्पना करते हैं कि नदी के उस पार किसी मनोरम स्थल पर प्रियतम ने हिंडोला डाल रखा है। वही नारी सुलक्षणी है जो नित्य-प्रति उस हिंडोले पर प्रियतम के साथ झूला झूलती है -

'' दरिया पार हिंडोलना मेल्ह्या कंत मचाई।
साई नारी सुलवणीं नित प्रति झूलण जाई।।'' [8]

आचार्य शुक्ल जी चिन्तामणि भाग-2 में रहस्यवाद को समझाते हुए कहते है -

''काव्य की वह प्रवृत्ति जिसमें परोक्ष सत्ता से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करके उससे मिलन तथा वियोग की स्थितियों के काल्पनिक चित्र अंकित किए जाते हैं।'' यही काल्पनिक चित्र कबीर अपने प्रणयानुभूति के काव्य में उतारते हैं। कबीर कल्पना करते हैं कि उनके प्रिय (प्रभु) स्वयं उनके घर आये हैं। वे कहते हैं कि यह मेरा परम सौभाग्य है। मैंने इस अवसर के अनुकूल मंगलाचार किया है और राम-रसायन के रस का आस्वाद लिया है -

''बहुत दिनत थे मैं प्रीतम पाये।
भाग बड़े घरि बैठे आये।
मंगलाचार मंगहि मन राखौं। राम रसाइन रसना चाखौं।
मंदिर मांहि भया उजियारा। ले सूती अपनां पीव पियारा।।'' [9]

इस प्रकार कबीर जी अपने प्रिय (प्रभु) के विरह में संतप्त हैं तो साथ ही कल्पना में प्रिय (प्रभु) मिलन पाकर स्वयं को धन्य भी समझते हैं।

कबीर का प्रत्येक दोहा, प्रत्येक साखी सीधे हृदय पर प्रहार करते हैं। उनके व्यंग्य, कटाक्ष, विरह और प्रणय सभी प्रकार का काव्य जनता के हृदय तक पहुँचने वाला है। उन्होंने धर्माडम्बरों और ढोंगियों पर तीक्ष्ण वाणी से प्रहार किया है। हिन्दू धर्म में अनेक देवी-देवताओं का पूजन व मुस्लिमों में विभिन्न पीर-मौलवियों का बोलवाला था, जिससे सामान्य जन भटक रहा था। तब कबीर ने अगम, अगोचर, निराकार एक ही ब्रह्म में एकनिष्ठ होकर रहने का उपदेश दिया। हालांकि उन्होंने लगभग सभी धर्मों में फैले अन्धविश्वासों और दिखावे

पर अपनी तीक्ष्ण वाणी से प्रहार किया तथापि दूसरी तरफ अपने निर्गुण निराकार ब्रह्म के प्रति प्रेम अत्यन्त सुन्दर शब्दों में और कोमल वाणी में अभिव्यक्त किया। वे अपनी विरहानुभूति को अत्यन्त मार्मिकता से अभिव्यक्त करते हैं और साथ ही प्रिय (प्रमु) से प्रणयानुभूति को भी अत्यन्त सुन्दर शब्दों में अभिव्यक्त करते हैं। अत: उनकी वाणी में कहीं भी वज्र के समान कठोरता है तो कहीं फूल-सी कोमलता। उन्हें अपने हर भाव को अभिव्यक्त करना बखूबी आता था। उनकी इसी विशेषता के कारण हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने उन्हें 'वाणी का डिक्टेटर' कहा है।

कबीर के विरह और प्रणयानुभूति के काव्य की समता अन्य कोई कवि नहीं कर सकता। क्योंकि वे अपने निर्गुण-निराकार के प्रति इतने अधिक आसक्त दिखाई पड़ते हैं कि उन्हें किसी आकार और रूप-रंग वाले प्रभु की दरकार नहीं है, वे अपने निराकार ब्रह्म में ही समा जाने की इच्छा रखते हैं। उनकी इस प्रकार की इच्छा व्यक्त करने वाले पद रहस्योत्पदक भी हैं -

'' जल में कुम्भ है, कुम्भ में जल, भीतर बाहर पानी।
फूटा कुम्भ, जल जल ही समाया, यह तथ कहियो गयानी।।''[10]

कबीर की कविता की केन्द्रिय संवेदना भक्ति ही है। कबीर के काव्य की मूल संवेदना (चेतना) भक्ति ही है। कबीर की भक्ति का केन्द्रीय आधार धर्म नहीं, वरन् निर्गुण निराकार ब्रह्म है। उनके निर्गुण निराकार ब्रह्म से विरह और प्रणय की अनुभूति किसी भी आधार पर सगुणोपासना से कम नहीं आंकी जा सकती। उन्होंने अपने निराकार ब्रह्म से ऐसे ही प्रेम दर्शाया है, जैसे सगुणोपासकों ने अपने-अपने प्रभु से। हालांकि उनका यह अव्यक्त प्रिय (प्रभु/ब्रह्म) के प्रति प्रेम रहस्योत्पादक प्रतीत होता है। किन्तु कबीर के लिए तो उनके निराकार ब्रह्म ही परम प्रिय हैं, जिन्हें वे 'राम', 'गोव्यंदे', आदि विभिन्न नामों से पुकारते हैं।

निष्कर्ष -

कबीर के काव्य में विरहानुभूति और प्रणयानुभूति साथ-साथ चलती हैं। विरह में उनकी आत्मा व्याकुल है तो कहीं-कहीं ये प्रिय-मिलन के स्वन को प्रत्यक्ष मान प्रणय की अनुभूति करते हैं। इससे उनका काव्य उच्च कोटि का और रोचक भी बना है क्योंकि ये प्रणयानुभूति और विरहानुभूति सच्चे निष्कपट भक्त के हृदय का उद्गीत है।

निर्गुण सन्त काव्यधारा में जितने भी सन्त कवि हुए हैं, उन सब में कबीरदास का स्थान वैसा ही है, जैसा हाथियों में ऐरावत का और सितारों में ध्रुव तारे का है। परन्तु कहीं-कहीं इनकी विरहानुभूति और प्रणयानुभूति बहुत ज्यादा रहस्यवादी भी जान पड़ती है जो साधारण पाठक को आसानी से समझ नहीं आ सकती। फिर भी कबीर दास जी जैसा दूसरा कवि ना इनसे पहले हुआ और ना ही शायद भविष्य में हो सके, क्योंकि इनका अपने प्रिय (प्रभु) के प्रति प्रेम निष्पाप है, जिसका रूप, रंग, गुण से कोई वास्ता नहीं। इन्हें सिर्फ प्रभु-मिलन की आस है, अन्य सांसारिक भोगों की नहीं।

कबीर ने अपने प्रिय (प्रभु) के प्रेम में वशीभूत होकर दोनों ही अनुभूतियों - प्रणयानुभूति और विरहानुभूति को अपने काव्य में उतारा है। उनकी दोनों ही अनुभूतियाँ अत्यन्त मार्मिक और रहस्यमयी हैं। कभी वे प्रिय के साथ हिंडोले पर झूलते हैं तो कभी प्रिय (प्रभु) के विरह में आतुर हो पंथ निहारते हैं।

कबीरदास जी को दोनों ही अनुभूतियों को दर्शाने में समान दक्षता हासिल है। उनकी प्रणयानुभूति और विरहानुभूति दोनों समान रूप से पवित्र हैं।

संदर्भ सूची -

1. श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रन्थावली, साखी 5, पृष्ठ 8
2. श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रन्थावली, साखी 22, पृष्ठ 9
3. वही, साखी 35, पृष्ठ 10
4. वही, साखी 11, पृष्ठ 8
5. डॉ. रामचन्द्र तिवारी, कबीर मीमांसा, पृष्ठ 127
6. माताप्रसाद गुप्त, कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ 128
7. डॉ. रामचन्द्र तिवारी, कबीर मीमांसा, पृष्ठ 129
8. माताप्रसाद गुप्त, कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ 131
9. माताप्रसाद गुप्त, कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ 128
10. माताप्रसाद गुप्त, कबीर ग्रन्थावली, राग गौड़ी, पद 2
11. 'कबीर की कविता' पृष्ठ 108

ISSN 2278 - 0327

'बिसात पर जुगनू' उपन्यास में चित्रित सामाजिक समस्याएं

पूजा
पी-एच.डी. शोधार्थी (हिन्दी)
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

'समस्या' शब्द एक अत्यंत जटिल शब्द है इसे ''जटिल स्थिति, उलझा हुआ मामला (प्रॉब्लम)[1] के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। यह अत्यधिक जटिल, गूढ़, सर्वशक्तिशाली एवं सर्व समावेशी बनता जा रहा है। मनुष्य जीवन का कोई भी पक्ष ऐसा नहीं है जो इससे अछूता हो। मनुष्य अपने जीवन को अत्यधिक सुखमय बनाने के लिए निरंतर विकास पथ की ओर अग्रसर है और मनुष्य के इस विकास पथ में जो अवरोधक तत्व उभरकर सामने आते हैं, उन्हीं तत्वों को समस्या के रूप में प्रतिपादित किया जा सकता है। वस्तुत: सामाजिक समस्याओं से तात्पर्य उन समस्याओं से है जो समाज के विकास एवं उत्थान के मार्ग को बाधित करते हैं अर्थात् अवरोधक बनकर सामने आते हैं। मनुष्य निरंतर किसी न किसी समस्या से जकड़ा रहता है और उनसे मुक्त होने का प्रयास करता रहता है, लेकिन जितना व समस्याओं से मुक्त होने का प्रयास करता है कई बार वह उलझता ही चला जाता है। अनके समाजशास्त्री विद्वानों ने मनोवैज्ञानिक ढंग से 'समस्या' शब्द को परिभाषित करने का प्रयास किया है। व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग है। व्यक्ति के उन्नयन से ही समाज गत्यमान है। जब किसी कारणवश व्यक्ति का विकास बाधित होता है तो स्वाभाविकत: इसका असर समाज पर पड़ना अवश्यंभावी है। किसी भी मनुष्य का विकास तभी सार्थक समझा जाता है जब समाज का विकास होता है। व्यक्ति के बिना समाज एवं समाज के बिना व्यक्ति दोनों की ही कल्पना नहीं की जा सकती। समाज के विकास में विभिन्न प्रकार की समस्याएँ मौजूद हैं जिनका निवारण अभी तक नहीं हो पाया है ''सामाजिक समस्याएं एक ऐसी कष्टप्रद दशा है जो व्यक्ति और समाज दोनों के विकास की दृष्टि में बाधक है।''[2]

मनुष्य के सामाजिक जीवन में जब किसी एक समाज विशेष के सांस्कृतिक मापदंडों के अनुसार जब कोई पक्ष समाज के अन्य पक्षों पर अपने विकृत या अस्वस्थ रूप का प्रभाव अन्य की तरफ अग्रसर करके अपने पक्ष को भी विनाश की ओर आमंत्रित करता है तो उसे सामाजिक समस्याओं के तौर पर पहले भारतीय समझा जा सकता है। वर्तमान समय में बेरोजगारी, दहेज प्रथा, मद्यपान, पारिवारिक हिंसा, महिलाओं के विरुद्ध अपराध, भ्रष्टाचार आदि समाज में चहूँ ओर व्याप्त हैं, जोकि समाज को खोखला बना एवं जड़वत् बना रही है।

चूँकि साहित्य समाज का दर्पण है। एक साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज के विभिन्न पक्षों को उजागर करता है। वंदना राग ने भी अपनी कृति 'बिसात पर जुगनू' नामक उपन्यास में समाज के सभी पक्षों को उद्घाटित करने का प्रयास किया है इनकी यह कृति सन् 2020 में प्रकाशित हुई थी। 'वंदना राग' साहित्य जगत में सुप्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित लेखिका के रूप में उभर कर सामने आई है। इनकी लेखनी अत्यंत जटिल है। ये साहित्यजगत् में कहानीकार, उपन्यासकार, अनुवादकर्त्ता आदि के रूप में जानी जाती है। इन्होंने अपनी कृति 'बिसात पर जूगनू' में भारत एवं चीन दो देशों को केंद्र में रखकर विविध सामाजिक समस्याओं का चित्रांकन प्रस्तुत किया है। यथा- मध्यपान, बेरोजगारी, प्रवास की समस्या, ईर्ष्या,द्वेष, लोभ, छुआछूत एवं भेदभाव इत्यादि।

'बेरोजगारी' भारत एवं चीन दोनों ही देशों की केंद्रीय समस्या है। 'बिसात पर जुगनू' उपन्यास में सन् 1840 से 2001 ईस्वी तक के समय को अंकित किया गया है। उपन्यास में वर्णित दोनों देश 1850 से 1857 के आसपास आंतरिक गृह युद्ध एवं बाहरी आक्रमणों के चलते घोर विपदा का सामना कर रहे थे। शासक अपने स्वार्थ परकता के चलते केवल अपनी सत्ता को भी स्थापित करने में लगे हुए हैं। ऐसे में आम जनता जो कि समाज की निर्माता एवं पालक है उसके जीवन के कष्टों एवं समस्याओं की ओर कोई भी ध्यान नहीं दिया जाता। व्यापारियों के व्यापार पर फिरंगी अपना कब्जा जमा रहे हैं जिस कारण बेरोजगारी बढ़ती जा रही है और बेरोजगारी की समस्या ही प्रवास की समस्या को जन्म देती है। भारत के लोग रोजगार प्राप्ति के लिए चीन का मार्ग खोज रहे हैं और चीन के लोग रोजगार के लिए अमेरिका और फ्रांस की ओर प्रवास कर रहे हैं। उन्हें उनकी मर्जी व जबरन दोनों ही तरीकों से प्रवास करवाया जा रहा है।

''अमेरिका में रेल बिछाई जा रही हैं बहुत रोजगार है वहाँ, औरतों और बच्चों को भी ले जाने में ये अमेरिकी गौरे दिलचस्पी दिखा रहे हैं। सब सोच समझ बुजुर्ग ने सबके बीच खड़े होकर ऐलान किया, जो जाना चाहे, जाए... कोंग्जी उस्ताद की बातों को देश दुनिया में लेकर जाए।[3] अमेरिका की जमीन पर चीनियों की संख्या बढ़ने से वहाँ इसे 'पीला खतरा' नाम की समस्या के रूप में संबोधित किया जाने लगा,वहाँ की जनता का मानना था कि चीन से रोजगार के लिए आने वाले ये लोग उनके देश के लिए खतरा है। वहाँ की संसद भी ऐसा बिल लाने पर विचार करती थी, जिससे इन प्रवासी लोगों को वहाँ की नागरिकता न दी जाए। लेकिन यथार्थ के धरातल से देखा

जाए तो लोग सैकड़ों की संख्या में रोजगार के लिए यहाँ से वहाँ प्रवास करने के लिए विवश है। अत: लेखिका ने यहाँ बेरोजगारी एवं प्रवास की समस्या को दर्शाया है।

महिलाओं के संदर्भ में लेखिका ने उनसे जुड़ी अनेक समस्याओं का चित्रांकन किया है। पुरुष प्रधान समाज में महिलाएं घर के अंदर एवं बाहर दोनों ही स्थानों पर अनेक समस्याओं से घिरी रहती हैं। सामाजिक रूप से समस्याओं में प्रमुख है- विषमता की समस्या, भेदभाव एवं जातिवाद की समस्या आदि। उपन्यास में यू-यान, ली-ना, यू-ई एवं मो-चाओचीन की पृष्ठभूमि से तथा खदीजा बेगम, संगीता, परगासो, पार्वती देवी आदि पात्रों को भारत भूमि पर विभिन्न समस्याओं से जूझते दिखाया गया है। सन् 1840-57 में स्त्री को मात्र भोग विलास की ही वस्तु समझा जाता था। उपन्यास के फिरंगी पात्र एवं उच्च वर्ग के लोगों के साथ निम्न वर्ग के पुरुषों की भी स्त्री के प्रति घृणित मानसिकता देखने को मिलती हैं। यथा 2001 में दिल्ली के इंदिरा गांधी अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे के पुलिस अधिकारी चीन से शोध कार्य के लिए भारत आई ली-ना नामक स्त्री को घृणित मानसिकता से देखते हैं, उसके साथ अभद्र व्यवहार करते हैं और उसका मानसिक शोषण करते हैं। ''दरोगा उसे सामने बिठा ऊपर से नीचे तक घूरने लगा थाए ऐसा लग रहा था, दरोगा यह निश्चित करना चाहता था कि उसके अंदर ठीक से प्रवेश किया जा सकता है या नहीं।''[4]

इस प्रकार लेखिका ने यहाँ समाज में व्याप्त मनुष्य की घृणित मानसिकता की समस्या को रेखांकित किया है जो वर्षों के अंतराल के बाद भी समाज में अपनी जड़ बनाए हुए हैं।

तत्कालीन समय में स्त्री को घर पर चहारदीवारी के अंदर पर्दे में रखा जाता था। उसे बाहर निकलने की अनुमति नहीं थी। लेकिन खदीजा बेगम जैसी उम्दा चित्रकार घर की दीवारों को तोड़कर बाहर पंख फैलाकर आसमान में उड़ना चाहती हैं। तो पुरुष समाज यह कैसे सहन कर सकता है? खदीजा बेगम जब प्रथम बार अपने असली स्वरूप में मुसव्विरखाना के लिए जाती है तो उसी के पड़ोस में रहने वाला महतो रामेश्वर नामक चौकीदार उससे मुसव्विरखाना में प्रवेश करने से रोक लेता है। ''उसने आज तक अपनी साठ साल की उम्र में पैंतालिस बरस की नौकरी में किसी औरत को यहाँ आते नहीं देखा था, सुना था बाबूजी से कि कुछ औरतें भी अपने घर की सरहदों में बैठकर चित्रकारी करती है, लेकिन ऐसे बेपर्दा होकर हिम्मत करना सरासर बदतमीजी थी, नाकाबिले बरदाश्त बदतमीजी।''[5] लेकिन खदीजा इन मानसिक मापदंडों के विपरीत जाकर मुसव्विरखाना में प्रवेश करती है। इससे सामाजिक विषमता की समस्या उजागर होती है। समाज में स्त्री को दोयम दर्जे का स्थान दिया गया है। पुरुष प्रधान समाज स्त्री को बराबरी का अधिकार नहीं देना चाहता। ठीक इसी प्रकार से पति के साथ गृह त्याग करने वाली स्त्री यू-यान को भी मछुआ टोली का बुजुर्ग एक बाघी मानता है। लोगों के हितों की रक्षा व स्वतंत्रता के लिए कदम बढ़ाने के पश्चात् भी उसे दुत्कारा जाता है।

उपन्यास के अन्य पात्र पार्वती देवी और संगीता दोनों ही अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों के निर्वाह के लिए तत्पर होकर अपने व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन में अकारण ही समस्याओं से घिरी हुई प्रतीत होती है। पार्वती देवी चांदपुर रियासत की रानी है। वे परंपरागत पारिवारिक परिवेश में पैदा हुई स्त्री हैं, जिसे अपने पति को खुश करने के अलावा और किसी प्रकार की शिक्षा नहीं देते। उसके पति राजा दिग्विजय सिंह पारिवारिक एवं राज्य के कामकाजों के चलते चिंता में रहते हैं। तत्कालीन समय 1857 की बगावत का था। बड़े राजा एक अयोग्य उत्तराधिकारी एवं दूसरी ओर फिरंगी से परेशान है। पार्वती देवी पति की मनोदशा को भलीभांति समझती थी लेकिन कुछ भी करने में स्वयं को असमर्थ पाती थी। पार्वती देवी का कलेजा सब जानता था उनका बढ़ता पूजा-पाठ इस झमेले से भागने की कायर कोशिश थी... उन्हें पलंग पर चढ़कर आराम करने और पति को खुश करने के अलावा और कुछ करने की शिक्षा नहीं दी गई थी।''[6] ठीक इसी प्रकार संगीता नामक पात्र भी आधुनिक नारी होने के पश्चात भी अपने पति प्रो. समर्थलाल की बिगड़ती मनोदशा को समझ कर उन्हें संभालती हुई नजर आती है।

इस प्रकार लेखिका ने उपन्यास में वर्णित स्त्रियों को व्यक्तिगत एवं पारिवारिक स्तर पर विभिन्न समस्याओं से जूझते दिखाया गया है। स्त्री पात्रों के अतिरिक्त पुरुष पात्र भी विभिन्न समस्याओं से घिरे नजर आते हैं। शंकरलाल एवं समर्थलाल दोनों ही समस्या ग्रस्त है। सन् 1857 में शंकरलाल को अपनी कला के मंदिर मुसव्विरखाना को बचाने की तलब उठती है और वे अपने शार्गिदों के बनाए चित्रों को उनका सही अधिकार दिलवाने के लिए चीन की ओर प्रस्थान करते हैं। शंकर लाल के परिवार का हिस्सा थे समर्थलाल। शंकरलाल के लापता होने एवं उसके पश्चात् उसके पुत्र अमर लाल के कहीं चले जाने के पश्चात्समर्थलाल के पिता सज्जनलाल को भी परिवार की भगौड़ी प्रवृत्ति के कारण वंश एवं पूर्वजों से नफरत हो गई। ''कलाकार से नफरत, पिता के पिता से नफरत, अपने पितामह से नफरत सुलगती रही और लायक हो जाने के बावजूद उन्होंने अपने पितामह से बदला लिया, उनकी स्मृति में खूबीसूरत को खूब रुलाया। कभी कोई कदर नहीं की उन चित्रों की।''[7] समर्थलाल को अपने पिता की घृणा का भुगतान करना पड़ा। कला-प्रेमी समर्थ लाल पिता सज्जनलाल से कला प्रेम के चलते ही अलग हो गए। एक कलाकार के रूप में सज्जनलाल ने बेटे को कभी स्वीकार नहीं किया और अपने पिता एवं उनके पिता द्वारा चित्रकला के लिए किए गए अपमान के लिए समर्थलाल ने कभी पूर्वजोंको क्षमा नहीं किया और आजीवन अपने अंतर्मन में पारिवारिक के प्रति अपने व्यक्तिगत समस्याओं से घिरे रहे।

छुआछूत एवं भेदभाव की समस्या का बिंब भी उपन्यास में उभरकर हमारे सम्मुख प्रस्तुत होता है। इसका जीवंत उदाहरण है चांदपुर रियासत। वहाँ पर निम्न व उच्च दो वर्गों के लोगों का निवास है। एक तरफ चांदपुर गढ़ी का राजसी परिवार और दूसरी तरफहै निम्न वर्ग के वे लोग जो गढ़ी वासियों की प्रजा है दुसाधो का टोला। दुसाध टोली के लोग गढ़ी में पीढ़ी दर पीढ़ी से राजसी परिवार की सेवा कर रहे हैं।

दुसाधटोली में नाई, माली एवं दुसाध लोग शामिल हैं। उच्च वर्ग अर्थात् गढ़ी में रहने वाले बड़े राजा का परिवार इन लोगों को उचित मानता है और स्वयं से दूर रखता है परगासो नामक दुसाध कन्या जब वहाँ नौकरी के लिए आती है तो बड़ी रानी (पार्वती देवी) उसे गढ़ी में प्रवेश न करने की शर्त रख कर काम पर रखती है।

इस प्रकार की अन्य पाबंदियाँभी निम्न समझे जाने वाले लोगों पर उच्च वर्ग द्वारा लगाई जाती है। ''उसे याद आ रहा था, अपना आस-पड़ोस, भगत जी और माई। उसे याद आ रहा था सच और झूठ का गिरिधर गोला जिसमें से उसके जैसे लोगों को झूठ की ओर धकेल कर फ़रमान जारी कर दिया जाता था, दूर रहो अछूतों।''[8] यह ये लोग आजीवन इसी अपमान व घृणा के साथ अपना जीवन व्यतीत करने पर विवश होते है। निम्न व उच्च होने का यही भेदभाव इन समस्याओं को जन्म देता है। जिस आग में पीढी-दर-पीढी लोग अपने वर्तमान एवं भविष्य को खराब करते हैं।

उक्त समस्याओं के अलावा नशा भी तत्कालीन समाज की एक अत्यंत ही जटिल एवं बड़ी समस्या के रूप में सामने आई है। फिरंगी अपनी आमदनी एवं अपनी सश्रा के लोलुपता से वशीभूत होकर भारत की भूमि पर अफीम को जबरन उगवाते हैं और समुद्री मार्ग के रास्ते जहाजों से अफीम चीन पहुँचती है। यह व्यापार चीन एवं भारत दोनों ही देशों के लिए आफत का शब्ब बना हुआ है। चिन्ह के सम्राट दाओगुआंग की ओर से फिरंगी की महारानी विक्टोरिया को इस समस्या से अवगत कराने के लिए पत्र लिखा जाता है। वे अपने देश की जनता में अपनी युवा पीढ़ी को बर्बाद करने वाले इस व्यापार पर रोक लगाने की मांग करते हैं। लेकिन अंग्रेजी सरकार की ओर से इस संदर्भ में कोई भी कार्यवाही ने होने पर गुप्त रूप से चलने वाला अफीम युद्ध भी सक्रिय हो जाता है। भारत में उगवाई गई अफीम को भारत के ही पटना शहर के गोदामों में भर दिया जाता है। फतेह अली खान रोजनामचा में इस बारे में स्वयं दर्ज करते हैं कि ''पटना के गोदामों में ईस्ट इंडिया कंपनी ने व्यापार का जो माल छिपाया है वह लाखों की अफीम है जिसे वे जंग के बाद फिर चीन ले जाएंगे। अपने जहाजों में भर बड़े राज्यों ने भी इशारों में बताया था कि सूर्य दरबार अफीम का व्यापार नहीं करता.... ईस्ट इंडिया कंपनी सिर्फउसी का व्यापार करने लगी है और बाकी सब व्यापार को ठप करवा दिया है।''[9] चीन इस जगह को हार जाता है लगातार दो बार चीन की हार होती है। नानकिंग समझौता हुआ अब तक गुप्त रूप से चलने वाला अफीम का व्यापार इससे खुलेआम होने लगा इसके संबंध में फिरंगी सरकार ने कानून बनाएं। भारत भी इस नशे की समस्या से अछूता नहीं था यहाँ पर भी अफीम बोई जाती थी और लोगों द्वारा इसका सेवन भी किया जाता था। चीन में अफीम की अत्यधिक मांग के कारण सारा व्यापार जहाज में चीन की ओर व्यापार करने पर आमदा थे भारत में उगाकर रेशम की पोटलियों में बांधकर तत्पश्चात् इसे लकड़ी के बक्शो हिफाजत से रखकर जहाजों में चढ़कर चीन पहुँचाया जाता था धुंआ सागर मीना के समान बक्सों में भरा रहता था और वातावरण में अपनी गंध फैलाए रहता था भारत में भी उच्च वर्ग के लोग राजसी ठाठ-बाठ वाले राजा व नवाब इसका सेवन करते थे भारत व चीन दोनों ही देशों में पटना का प्रमुख कारण बन गया था चांदपुर गढ़ी के युवराज सुमेर सिंह भी बचपन से ही इसका सेवन करने की आदत बना चुके थे अपने मन के मीत्तों के साथ सुमेर सिंह को गंध हरिया ने दी थी उसका मन बहलाने के लिए। फिर धीरे-धीरे सुमेर को इसकी आदत हो गई। अफीम के अलावा और भी नशीले पदार्थ जैसे चाय का भी यहाँ से वहाँ भेजा जाता था चाय की पैदावार चीन में होती थी। पहले इसका उपयोग औषधि के रूप में किया जाता था। फ्तेह अली चीन से चाय को मित्र सुमेर के लिए जाते थे। इन नशीले पदार्थों की सत्यता का ज्ञान सुमेर सिंह की पत्नी परगासो को भी हो गया था। ''वह तो बहुत बाद में उसे चाय का मतलब समझ में आया था।

चाय और चीन का।
चाय और सूर्य दरबार का।
चाय और व्यापार का।
चाय और कंपनी बहादुर का।
चाय और लालच का।
चाय और धुंध का।
चाय और अफीम का।
अफीम और गुलाम का।[10]

चीन के लोगों को पूर्णत नशे में डूबाने के पश्चात् फिरंगी अपनी सफलता एवं चीन की विफलता की कहानी अपने मालिक एवं उनके नौकर होने की गाथा पर कविता लिखकर लोगों को सुनाता है। इस प्रकार से वंदना राग जी ने बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, प्रवास, नशा, व्यक्तिगत पारिवारिक एवं मानव समाज से जुड़ी अनेक समस्याओं को अपने उपन्यास 'बिसात पर जुगनू' के माध्यम से पाठकों के सम्मुख सजीव रूप में उकेरकर समाज में उन समस्याओं में सुधार की मांग की है। जिससे मानव जीवन को विकास की उच्चतम शिखर की ओर गत्यात्मकता प्रदान की जा सकें।

संदर्भ सूची-

1. वर्धा हिंदी शब्दकोश, महात्मा गांधी, अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा, दूसरा संस्करण 2015, पृ.1139
2. डॉ. मंजूलता छिल्हर, भारतीय सामाजिक समस्याएं, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2009, पृ. 3
3. वंदना राग, विसात पर जुगनू, राजकमल प्रकाशन, 2020, पृ. 253
4. वही, 2020, पृ.13
5. वही, 2020, पृ.123
6. वही, 2020, पृ.162
7. वही, 2020, पृ.194
8. वही, 2020, पृ.135
9. वही, 2020, पृ.47
10. वही, 2020, पृ.150

ISSN 2278 - 0327

बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ योजना : एक मूल्यांकन

गीता
शोधार्थी, लोक प्रशासन विभाग
चौ.देवीलाल विश्वविद्यालय, सिरसा

प्रो. विष्णु भगवान
प्रोफेसर, लोक प्रशासन विभाग
चौ.देवीलाल विश्वविद्यालय, सिरसा

शोध सार– भारत प्रत्येक क्षेत्र में वृद्धि करता हुआ देश है यह आर्थिक शोध तकनीकी और बुनियादी ढांचे के क्षेत्र में तेजी से बढ़ रहा है लेकिन देश में इस तरह के विकास के बाद भी लड़कियों के खिलाफ हिंसा आज भी व्यवहार में है, इसकी जड़ इतनी गहराई में है, जो कि समाज को पूर्ण विकास करने में बाधा उत्पन्न कर रही है। लड़कियों के खिलाफ हिंसा बहुत ही खतरनाक सामाजिक बुराई है जिसमें कन्या भ्रुण हत्या भी एक है। इसका मुख्य कारण देश में तकनीकी सुधार जैसे- अल्ट्रासाऊंड, लिंग परीक्षण, स्कैन परीक्षण और आनुवंशिक असमानताओं का पता लगाना आदि है। इस तरह की तकनीक ने सभी तरह के वर्गो को चाहे वो अमीर हो, गरीब हो सभी तरह के परिवारों के लिए भ्रूण के परीक्षण का रास्ता साफ किया है। कन्या भ्रूण हत्या, उचित पोषण की कमी आदि भारत में लडकियों की संख्या में कमी होने का मुख्य मुद्दा है। यदि लड़की ने जन्म ले भी लिया तो उसे माता-पिता व परिवार के अन्य सदस्यों और समाज द्वारा अन्य प्रकार के भेदभाव और उपेक्षा का सामना करना पड़ता है जैसे बुनियादी जीवन-शिक्षा, जीवन स्तर, दहेज हत्या, दुल्हन को जलाना, बलात्कार, यौन उत्पीड़न व बाल उत्पीड़न आदि हमारे समाज में महिलाओं के खिलाफ हो रही सभी प्रकार की हिंसा को व्यक्त करता है। सयुंक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में लगभग 750000 कन्या भ्रूण का वार्षिक गर्भपात करवाया जाता है। विशेष रूप से पंजाब और हरियाणा में तो हालात और भी खराब है। यदि हम निश्चित रूप से माताओं के बिना दिन देखेंगे तो इस तरह का कोई जीवन नहीं होगा।

शोध उद्देश्य– मूल रूप से 'बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ' योजना को गिरते हुए बाल लिंग अनुपात और महिला सशक्तिकरण से जुड़े अन्य मुद्दों के समाधान के उदेश्य से शुरू किया गया था।

1. बेटियों को पराया धन मानने वाली मानसिकता का विरोध करना व लैंगिक समानता को बढ़ावा देना।
2. सामाजिक कुरीतियों का दृढता से विरोध करना।
3. बालिका शिक्षा को मजबूत करना।
4. कम होते लिंग अनुपात के प्रति लोगों को जागरूक करना।
5. लड़कियों के लिए सुरक्षित व भयमुक्त वातावरण का निर्माण करना।

शोध पद्धति–

प्रस्तुत शोध पत्र को पूरा करने के लिए ऐतिहासिक व विश्लेषणात्मक विधि को अपनाया गया है तथा पुस्तकों से संकलित सामग्री, समाचार पत्रो से प्राप्त तथ्यों के आधार पर बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना का अध्ययन किया गया है।

भूमिका–

आज के समय में महिलाओं की स्थिति घरों व सार्वजनिक स्तर पर कमजोर बनी हुई है। लड़कियो की शिक्षा पर विशेष ध्यान नहीं दिया जा रहा है जिससे लिंगानुपात की स्थिति बिगड़ती जा रही है। लैंगिक भेदभाव, उत्पीडन, छेड़खानी व बलात्कार जैसी अप्रिय व अमानवीय घटना आये दिन कहीं न कहीं हमारे समाज में देखने को मिलती है जिससे नजर आता है कि लड़किया महफूज नहीं है। हमारे भारत के कुछ ऐसे राज्य है जहां लिंगानुपात के कारण विवाह न होने जैसी समस्यायें गंभीर होती जा रही है। अधिकतर महिलायें कमजोर मनोबल के कारण खुद को कमजोर समझती है इसलिए महिलाओं का मनोबल बढ़ाने के लिए विशेष प्रयास की अवश्यकता है। इसी प्रयास के तहत सरकार द्वारा बेटियों की लिये कुछ योजनाएं चलाई गयी है जिनमे से बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ एक महत्वपूर्ण योजना है। पिछले कुछ वर्षों में हरियाणा सरकार काफी प्रयासरत है कि बालिका शिक्षा को कैसे प्रोत्सहित किया जाये और शिक्षा में लैंगिक अंतर को कैसे कम किया जा सकता है। इसके लिए सरकार ने समय-समय पर विभिन्न कार्यक्रम व योजनाओं की शुरुआत की है। सरकार द्वारा चलाए गए अभियानों व योजनाओं में से एक एक योजना बेटी बचाओ-बेटी पढाओ है जिसका हम संक्षिप्त में आगे वर्णन करेंगे।

वर्षों से गिरते लिंगानुपात के कारण महिलाओं व बालिकाओं के प्रति भेदभाव पैदा हुआ है। महिला सुरक्षा और सशक्तिकरण सुनिश्चित हो सके इसके लिए बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ योजना 22 जनवरी 2015 को हरियाणा के पानीपत में भारत के प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा शुरू की गई थी। बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ योजना तीन मंत्रालयों- महिला बाल विकास, स्वास्थय और परिवार कल्याण विभाग और संसाधन विकास द्वारा संचालित की गई है। बेटियों के प्रति सोच बदलने में केंद्र सरकार का यह अभियान काफी कारगर साबित हुआ

है। इस अभियान के तहत लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा दिया जा रहा है बेटी बचाओ-बेटी पढाओ योजना में 100 जिलों में लडकियों की शिक्षा सुदृढ बनाने के लिये 5.करोड रूपये उपलब्ध कराये गए हैं इस योजना के तहत हर जिले में 5 लाख दिये गये है।

भारतीय जनगणना 2011 के आंकड़ों के अनुसार साक्षरता की दृष्टि से हरियाणा भारत के राज्यों व केंद्रशासित प्रदेशों में 22वें स्थान पर है जिसमें पुरुष साक्षरता दर 84.01 प्रतिशत और महिला साक्षरता दर 65.90 प्रतिशत है आर्थिक रूप से समृद्ध होने के बावजूद भी प्रदेश में लैंगिक अंतर 18.02 है। और कार्य सहभागिता के क्षेत्र में भी प्रदेश काफी निचले पायदान पर देश भर में 27वें स्थान पर है। इस योजना को एक राष्ट्रीय पहल के रूप में 100 चयनित जिलों में लागू किया जा रहा है जहां बाल लिंग अनुपात कम है इन 100 जिलों का चयन भी सभी राज्यों और केंद्रशासित राज्यों को कवर करने वाली वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार चुना गया है। 87/23 राज्य जो राष्ट्रीय औसत से नीचे है। 81 /8 राज्य जो औसत से ऊपर है लेकिन गिरावट दिख है। 5 जिले 5 राज्यों औसत से ऊपर हर ओर बढ़ते रुझान दिखे।

चयनित जिलों से परे इस कार्यक्रम को फलने-फूलने के लिये 11 राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों के 61 अतिरिक्त जिलों को चुना गया है जिसमें लिंगानुपात 918 से कम है 8 मार्च 2018 को बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ योजना की राष्ट्रीय स्तर पर शुरुआत की गयी जिसमे 2011 की जनगणना के अनुसार 64 जिलों को सम्मिलित किया गया तहत 2015 में बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ योजना के लिये 100 करोड़ रुपये की शुरुआती घोषणा की थी। साक्षी मलिक को 2020 में बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ का ब्रांड अम्बेसडर बनाया गया है। अगर हम हरियाणा में बालिकाओं की लिंगानुपात की बात करें तो 2018 के अनुसार हरियाणा के लिंग अनुपात में बड़े पैमाने पर सुधार हुआ है। सरकारी आंकड़ों के मुताबिक वर्ष 2017 मे लिंगानुपात प्रति 1000 लड़कों पर 914 लड़कियों का रहा। जिसमें पानीपत 945 के एस.आर.बी के आंकड़ों के साथ सर्वोच्च स्थान पर रहा। 2016 में प्रति 1000 लड़कों पर यह आंकड़ा 900 और 2015 में 876 था राज्य के 17 जिलों में लिंगानुपात का आंकड़ा 880 से कम नहीं है। राज्य सरकार ने इस उपलब्धि का श्रेय केंद्र सरकार की मुहिम बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ योजना को दिया है। इसके अतिरिक्त तीन जिलों को भी इस कार्यक्रम में सराहनीय प्रदर्शन के लिए पुरस्कृत किया गया है। इनमे करनाल जिले को (इफेक्टिव कम्युनिटी एंगजमेण्ट) श्रेणी झज्जर जिले को एनेबलिंग गर्ल्सचाइल्ड एजुकेशन की श्रेणी में तथा कुरुक्षेत्र जिले को पी.सी एन.डी.टी एक्ट को सही ढंग से लागू करने की श्रेणी में चुना गया है। इस तरह से हमें सरकार के इस कार्यक्रम के बाद हरियाणा में लिंगानुपात में काफी परिवर्तन देखने को मिला है।

बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ योजना के तहत 100 जिलों में पायलट प्रोजेक्ट बनाना है। जिलों के चयन के आधार पर योजना के तहत ऐसे 0-6 आयु समूह का लिंगानुपात राष्ट्रीय औसत से कम है। राष्ट्रीय औसत जो 919 है या फिर उसके आसपास लिंगानुपात की दर उस जिले की है। दूसरा जिन जिलों का अनुपात अधिक है। वहां पर पायलट प्रोजेक्ट प्रोत्साहन के तौर पर बनाये जायेंगे।

बेटीयों की सुरक्षा- आज महिलाएं देश के किसी भी कोने में सुरक्षित नहीं है। इसलिए उनकी सुरक्षा के लिए विशेष कदम उठाये जा रहे है जिसके लिये 50 करोड़ का फण्ड दिया गया है। जिसमें मुख्यत: महिलाओं के लिए पब्लिक ट्रांसपोर्ट की सुविधा दी जाएगी। अलर्ट बटन सरकार द्वारा चलाई गई एक एप है। जिसमे विपरीत परिस्तिथियों में महिला अपने मोबाइल से एक बटन दबा कर पुलिस थाने में आवाज सन्देश के साथ ही फोटो के जरिए सुरक्षा हेतु मदद माँगने के लिए सन्देश भेज सकती है।

संकट प्रबंधन

अगर कोई दुर्घटना हो गयी है तो इस स्थिति मे उचित कार्यवाही हेतु संकट प्रबंधन की सुविधा दी जायेगी।

जनता की जागरूकता हेतु पोस्टर, स्लोगन, विज्ञापन आदि प्रकार के प्रयास किये जायेंगे।

बेटियों की सुरक्षा एवं शिक्षा के लिए लोगों को प्रोत्साहित करेंगें। बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ योजना के तहत, एक बचत योजना शुरू करना जिसका नाम है सुकन्या समृद्धि योजना जो 1000 रूपये की राशि से खोला जायेगा।

बेहतर ब्याज दर-

इस योजना में खोले जाने वाले खाते में ब्याज दर बेहतर दी जायेंगी इस योजना के तहत माता-पिता उनके नाम से पैसा जमा कर सकते है और इसे वे लड़की की 14 वर्ष की आयु तक जारी रख सकते है जैसे ही लड़की 21 वर्ष की होगी या यदि वह 18 से 21 वर्ष तक की आयु के बीच में शादी करने का निर्णय लेती है तो यह फण्ड मच्योर्ड हो जाएगा और यह फण्ड स्वयं मेच्योरटी स्टेज में पहुंच जाए। तत्पश्चात् केवल लड़की ही इस खाते से पैसे निकाल सकती है। सरकारी विद्यालयों में लड़कियों को शुल्क नहीं देना होगा वहीं प्राइवेट स्कूलों मे बच्चियों के लिए डिस्काउंट प्रदान किया जायेगा।

वित्त वर्ष

महिला एवं बाल विकास विभाग हरियाणा द्वारा महिलाओं तथा बच्चों के विकास एवं सशक्तिकरण के लिए वचनबद्ध है। विभाग का मुख्य उदेश्य नीति और कार्यक्रमों द्वारा महिलाओं के सामाजिक तथा आर्थिक सशक्तिकरण को प्रोत्साहित करना, सीखने के अधिकार के प्रति जागरूक करना, सीखने की क्षमता बढ़ाना, पोषण संस्थानित समर्थन इत्यादि है। विभाग का बजट वर्ष 2014-2015 में 1,1114 15 करोड़ रूपये से बढ़कर वर्ष 2019-20 में 1,498 . 98 करोड़ रूपये हो गया है। इस वित्त में दिसंबर 2019 तक 79 वित्त वर्ष

2020–2022 में महिला एवं बाल विकास मंत्रालय को 24 ,345 करोड़ रूपये का आबंटन किया गया गया जबकि 1 फरवरी 2020 को पेश बजट में इस विभाग को 30,007,10 करोड़ रूपये किया था। हालांकि इस राशि को संधोधित अनुमानों में घटाकर 21,008,31 करोड़ रूपये कर दिया गया था। अर्थात् पिछले वर्ष बजट घोषणाओं में यह राशि 18.5 प्रतिशत कम है। बजट 2021–22 में समर्थ एक नाम दिया गया है जिसमे बेटी बचाओ–बेटी पढ़ाओ योजना प्रधानमंत्री मातृवन्दना योजना कौशल कार्यक्रम क्रेच, जेण्डर बजट को एक साथ कर दिया गया है। इसके लिए 2,522 करोड़ रूपये की राशि जारी हुई है जिसमें यह सपष्ट नहीं है कि बेटी बचाओ–बेटी पढ़ाओ अभियान में कितना पैसा खर्च किया जायेगा। 0.95 करोड़ रूपये की राशि विभिन्न विभाग व कार्यक्रमों पर खर्च की गई है।

बेटी बचाओ–बेटी पढ़ाओ योजना में आने वाली बाधाएं

हमारी सरकार इतने प्रयासो के बाद भी इस लिंगानुपात जैसी समस्या को जड़ से क्यों नहीं खत्म कर पा रही है और किस कारण बेटियों को दुनिया में आने से पहले ही मार दिया जाता है या फिर उन्हें शिक्षित क्यों नहीं किया जाता है? सरकार के इतने भरसक प्रयासों के बावजूद भी ऐसे प्रश्न बार–बार क्यों उठ जाते है? ऐसा इसलिये है क्योंकि कुछ बाधाएं आज भी सरकार के सम्मुख है जिसके रहते हम और हमारी सरकार को बेटी बचाओ–बेटी पढ़ाओ के मिशन में हम अभी तक पूर्ण रूप से जीत हासिल नहीं कर पाए हैं। इसका मुख्य कारण हमारे समाज की जटिल संरचना का होना, जातीय धार्मिक पूर्वाग्रह, समाज की लड़कियों के प्रति संकीर्ण सोच व लोगों का अपनी रूढ़िवादी नियति पर निर्भर होना है वहीं इनके अतिरिक्त कुछ अन्य समस्याएं भी इस मिशन मे बाधा डालने के लिये कहीं न कहीं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इसे जुड़ी है जैसे की प्रशासन में भ्रष्टाचार, लालफीताशाही, अपारदर्शिता, दायित्व और लचीली कानूनी प्रणाली का होना है।

योजना की देखरेख–

इस योजना की देखरेख के लिए केंद्र सरकार द्वारा महिला बाल विकास मंत्रालय, मानव विकास मंत्रालय और स्वास्थ्य एवम् परिवार कल्याण मंत्रालय को कहा गया है ताकि कन्या भ्रूण हत्या जैसे अपराध समाप्त हो जाए और संतुलित एवं शिक्षित समाज को बढ़ावा दिया जा सके। इस योजना के लिए सरकार ने 100 करोड़ बजट तय किया है। इस योजना की देखरेख तीन स्तर से हो रही है।

राष्ट्रीय स्तर टास्क फोर्स, राज्य स्तर टास्क फोर्स, जिला स्तर पर जिला क्लेक्टर। योजना के तहत लड़कियों की आयु 10 साल हो तब तक योजना का लाभ मिले सकेगा। इसके अतिरिक्त 1 वर्ष तक इसे योजना के लाभ को ले सकते है।

सुझाव–

1. बेटी बचाओ–बेटी पढ़ाओ योजना के तहत लड़कियों को बोझ के रूप में समझना व लड़कियों को लड़कों के मुकाबले उचित शिक्षा प्रदान करने वाली सोच में बदलाव होगा।
2. अनपढ़ व गरीब परिवारों को इस योजना के माध्यम से जागरूक किया जाना ताकि ज्यादा से ज्यादा लोगों को इस योजना का लाभ मिल सके।
3. योजना के तहत बेटियों को स्कूल स्तर पर आत्मरक्षा के गुण सिखाये जाये ताकि वह किसी भी प्रकार की छेड़खानी से अपना बचाव कर पाये।
4. महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा चलाई गई इन सेवाओं का पालन अच्छी तरह करवाया जाना चाहिए ताकि ग्रामीणों एवं शहरी इलाकों की झुगी–झोपड़ियों में रहने वाले लोगों को कार्यक्रम के बारे में जानकारी दी जा सके ।
5. प्रसासन को समय–समय पर योजना को लोकल स्तर लागू करवाने के लिये सुनिश्चित किया जाना चाहिए।
6. इस योजना के क्रियान्वन से लिंग परीक्षण पर रोक लगेगी व लिंगानुपात में बढ़ोतरी होगी।
7. योजना के तहत बेटियों की शादी में मिलने वाली आर्थिक सहायता बिना किसी रुकावट के मिले रही है या नहीं यही भी सुनिश्चित की जाए।
8. योजना के तहत स्कूलों में लड़कियों की संख्या में बढ़ोतरी हुई, यह भी समय–समय पर मूल्यांकन करना चाहिए।
9. बेटियों को बढ़ावा देने के लिए समय–समय पर महिला मुद्दों पर आधारित कार्यक्रम व वर्कशॉप आयोजित करवानी चाहिए।
10. समाज में लोगों की सोच बदलने के लिए समान लैंगिक शिक्षा को बढ़ावा देना चाहिए।

निष्कर्ष–

प्रस्तुत शोध में बेटियों की वर्तमान स्थिति का वर्णन किया गया है। जिसमें स्पष्ट है कि समाज में लड़कियों को लड़कों के समान अधिकार पाने के लिए बहुत अधिक संघर्ष करना पड़ रहा है। हमारे समाज में जहाँ लड़कियों को देवी स्वरूप माना जाता है। वहीं दूसरी तरफ उनसे भेदभाव किया जाता है। जिससे हमारे समाज का दोहरा चरित्र सामने आता है। इसलिए समाज में बेटियों को सम्मान प्रदान करने के लिए बेटी बचाओ–बेटी पढ़ाओ योजना को लाया गया। घर के भाव को आत्मसात करती बेटी बचाओ–बेटी पढ़ाओ योजना निश्चित रूप से बाल लिंग अनुपात को रोकने के लिए एक मजबूत पहल है। इससे महिलाओं को सशक्त बनाने और उन्हें सम्मान दिलाने और अवसरों को उपलब्ध करने का मौका मिलेगा। इसकी बदौलत भारत न केवल अपना संतुलित विकास व समावेशी विकास करेगा बल्कि अपने भावी लक्ष्यों को पूरा करने और शिक्षित भारत व सशक्त भारत की ओर बढ़ेगा। इस योजना के तहत बेटियों की शिक्षा व विवाह के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की जाएगी। जिससे माता–

पिता बेटियों को पैदा करने में शर्म महसूस नहीं करेंगे व बेटों और बेटियों में भेदभाव को कम करने में मदद मिलेगी। इस योजना के तहत सरकार द्वारा प्रदान की गयी आर्थिक सहायता तथा स्वयं द्वारा जमा की गयी राशि प्रदान की जायेगी। विजन 2020 सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्य 2016–2030 अंतराष्ट्रीय समझौते व प्रतिबद्धताओं को पूरा करने की दृष्टि से भी बेटी बचाओ–बेटी पढ़ाओ योजना सार्थक प्रयास है। संपोषणीय व संतुलित विकास की अवधारणा को मूर्त रूप देने की दृष्टि से इस तरह की पहलकदमी बहुत प्रांसगिक है। ऐसी योजना के माध्यम से सभी की बीच फैली बेटी को बोझ समझने वाली अवधारणा में परिवर्तन होगा व लैंगिक समानता का भाव पनपेगा। क्योंकि यही योजना बेटियों को माँ के गर्भ से लेकर आत्मनिर्भर बनाने तक बेटियों की सुरक्षा को मजबूत करती है। लेकिन कई जगह बेटी बचाओ–बेटी पढ़ाओ के नारे के रूप में असमानता को बढ़ावा देखने को मिलता है। उदाहरण के तौर पर–बेटी नहीं बचाओगे तो बहु कहा से लाओगे, बेटी नहीं बचाओगे तो रोटी कहा से खाओगे, इस तरह के नारे कहीं न कहीं हमारी संकीर्ण सोच को दर्शाते हैं। जैसे घर का कार्य करना और रसोई संभालना सिर्फ महिलाओं का ही काम है। हमें बेटियों को सुरक्षित इसलिए करना है क्योंकि बहु की जरूरत है। अत: इस प्रकार के नारे भी समाज में पुरुषवादी सोच को बढ़ावा देते है। इसलिए हमें इस प्रकार के नारों को नकारते हए ज्यादातर उन नारों की बात करनी होगी जो लैंगिक समानता की बात करते हो व महिला सक्तिकरण को बढ़ावा देते हो। बेटियों को आगे बढ़ाने के लिए हमें उनकी शिक्षा के लिए भरपूर प्रयास करने चाहिए जिससे कि बेटियाँ हमारे परिवार, समाज, देश और हमारे राष्ट्र का नाम विश्व में रोशन करें।

संदर्भ सूची

1. http:@@www-newssloe-com-cdm-amproject-ord
2. hi@wikipedia-org@wiki@/बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ
3. सर्व शिक्षा अभियान प्रशिक्षण संदर्शिका (2010–2011)
4. महिला एवं बाल विकास, बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ, कार्यक्रम भारत सरकार नई दिल्ली 22 जनवरी 2015
5. चंद्र गिरीश पांडये, बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना प्रतियोगिता दर्पण, सामाजिक लेख ,नई दिल्ली 2015 प्र. 96
6. द टाइम्स ऑफ इंडिया नई दिल्ली 4 जनवरी, 9130 pm 9-30PM
7. rpjournal-com
8. भारतीय जनगणना आंकड़े गृह मंत्रालय नई दिल्ली 2011
9. कश्यप जगन्नाथ, समग्र प्रयास से ही सुधरेगी बेटियों की दशा, कुरुक्षेत्र, जनवरी, प्र सं 5 10 यौन उत्पीड़न, जागौरी पत्रिका नई दिल्ली, 2014

ISSN 2278 - 0327

असमिया लेखिका इंदिरा गोस्वामी की कहानी 'वंशवेल' का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. शुभी भसीन
असिस्टेंट प्रोफेसर
गिंदो देवी महिला महाविद्यालय, बदायूँ, उत्तर प्रदेश

शोध सार– असमिया की सुप्रसिद्ध कथा–शिल्पी इंदिरा गोस्वामी जिन्हें मामोनी रायसम गोस्वामी के नाम से भी जाना जाता है, एक बहुचर्चित एवं मशहूर साहित्यकार हैं। इनकी रचनाओं में असम क्षेत्र धड़कता हुआ महसूस होता है। इन्होंने अपनी रचनाओं में विशेषकर कहानियों में असम का सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास, असमी जनता के दु:ख–दर्द, आशा एवं आकांक्षा को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। यह शोध पत्र उनकी एक असमिया कहानी 'वंशवेल' का गहराई से अध्ययन करेगा जो की समाज में व्याप्त पितृसत्तात्मकता को दर्शाती है।

बीज शब्द– असमिया, कथा–शिल्पी, दु:ख–दर्द, आकांशा, वंशबेल।

प्रस्तावना– आधुनिक साहित्य में इंदिरा गोस्वामी जी का नाम बहुत आदर के साथ लिया जाता है। इन्होंने अपना लेखन कार्य मामोनी राइसम गोस्वामी नाम से किया है। इन्होंने असमिया साहित्य जगत को बहुमूल्य रचनाएं दी हैं। यह असम भाषा की संपादिका, कवित्री, प्रोफेसर और लेखिका के रूप में महत्वपूर्ण कार्य कर चुकीं हैं। इन्हें सन् 1983 ई में अपने उपन्यास 'मामरे धारा तरोवाल' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से नवाजा गया था। इन्हें अपने नि:स्वार्थ साहित्य सेवा के लिए सन् 2000 ई. में भारतीय साहित्य का सर्वश्रेष्ठ साहित्य सम्मान ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। यह असमिया साहित्य की एकमात्र साहित्यकार हैं जिन्होंने इस पुरस्कार को प्राप्त किया है। इन्होंने असमिया लोगों की सामाजिक रूढ़ीवादिता पर कटाक्ष किया है। इनकी कई रचनाओं को असामी भाषा से अंग्रेजी भाषा मे अनुवाद किया गया है। जिसमे 'द मोथ ईटन हावड़ा ऑफ द टस्कर' ओर 'पेज स्टैंड विद ब्लड' शामिल है। गोस्वामी जी असम की चरम पंथी संगठन उल्फा (यूनाइटेड लिब्रेशन फ्रंट ऑफ असम) और भारत सरकार के बीच मध्यस्थता करने की महत्वपूर्ण भूमिका निभा चुकीं हैं।

इंदिरा गोस्वामी का जन्म 14 नवंबर सन् 1942 ई में दक्षिण कामरूप के पलाशबारी अंचल के अमरंगा नामक एक छोटे से गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम उमाकांत गोस्वामी और माता का नाम अम्बिका देवी था। इनकी प्रारंभिक स्कूली शिक्षा लताशील प्राइमरी स्कूल गुवाहाटी में हुई। इन्होंने इंटरमीडिएट हांडिके गर्ल्स कॉलेज, गुवाहाटी से उत्तीर्ण किया। सन् 1960 ई में स्नातक व सन् 1963 ई में इन्होंने गुवाहाटी विश्वविद्यालय से असमिया मे परास्नातक की उपाधि ली। सन् 1962 ई. में जब वो छात्रा थीं, उनका पहला कहानी संग्रह 'चिनाकि मरम' प्रकाशित हुआ। इन्होंने सन् 1973 ई. में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। ये दिल्ली विश्वविद्यालय के आधुनिक भारतीय भाषा विभाग में प्रोफेसर के पद पर कार्यरत रहीं। इंदिरा गोस्वामी जी को उनके उत्कृष्ट लेखन के लिए जाना जाता है। गोस्वामी जी का बचपन अवसादों में गुजरा। उन्होंने अपनी आत्मकथा 'द अनफिनिश्ड ऑटोबायोग्राफी' में इसका उल्लेख किया है। सन् 1965 ई में गोस्वामी जी का विवाह एक असमिया समुद्री इंजीनियर माधवन रायसोम अयंगार से हुआ। शादी के अट्ठारह महीने बाद उनके पति की एक कार दुर्घटना में मौत हो गयी। चारों ओर परेशानियों से घिरे रहने के उपरान्त भी इन्होंने हार नहीं मानी व अपना समय सृजनात्मक लेखन कार्यो में व्यतीत करना शुरू कर दिया। इस समय उन्होंने दो उपन्यास लिखे 'अहिरण और चेनाबर स्रोत'। इन्होंने इन उपन्यासों में अपने व्यक्तिगत अनुभवों को साझा किया है। इन्होंने सामाजिक कुरीतियों पर गहरा प्रहार किया और भारत में महिला सशक्तिकरण पर जोर दिया। इन्होंने अपने जीवन की वेदना को कभी भी अपने लेखन के आगे नहीं आने दिया। अपने लेखन के माध्यम से इन्होंने आम जनता के दु:ख दर्द, आशा–आकांशा, राग–विराग, व संघर्ष का सच्चा चित्रण अपने उपन्यासों व कहानियों में किया। इनके लेखन में प्रवाह निहित है जो पाठक को उसी जगह पहुँचा देता है जिसका चित्रण लेखन में दिया होता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में हमे जन चेतना के बहुत से उदाहरण मिलते हैं। 'तत्कालीन सामाजिक यथार्थ के या तो प्रतिक्रिया स्वरूप या प्रतिसाद के स्तर पर लेखकों ने सामाजिक बदलाव के अपने रुझानों को रचनाओं के माध्यम से स्पष्ट किया है'।[1] समाज में चलते परिवर्तन हमें साहित्य में भी देखने को मिलते हैं परंतु कई पुरानी मान्यताएँ, आडंबर व रीति–रिवाज आज भी समाज में व्यापक रूप से अनुकरण किए जाते हैं जो की चिंता का विषय है।

विश्लेषण – इंदिरा गोस्वामी मानवतावादी लेखिका हैं। वे समाज में मानवता और शांति प्रतिष्ठित करना चाहती थीं। किसी भी समाज की संरचना बहुत बड़ी सीमा तक इस तथ्य से प्रभावित होती है कि उसके अंतर्गत स्त्रियों की स्थिति कैसी है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था के इतिहास में स्त्रियों की स्थिति एक लंबे समय से विवाद का विषय रही है। भारतीय समाज में स्त्रियों को संपत्ति, ज्ञान और शक्ति का प्रतीक माना गया है। जिसकी अभिव्यक्ति के रूप में लक्ष्मी, सरस्वती और दुर्गा की पूजा की जाती रही है परंतु समाज में चलते परिवर्तनों के कारण धीरे–धीरे स्त्रियां परतंत्र, निस्सहाय और निर्बल बन गई। पुरुष ने शक्ति के लोभ में स्त्री के पारिवारिक अधिकार तक छीन लिए। अथर्ववेद में कहा गया है 'नववधू ! तू जिस घर में जा रही है , वहाँ की साम्राग्री है। तेरे श्वसुर, सास, देवर और अन्य व्यक्ति तुझे साम्राग्री समझते हुए तेरे शासन में आनंदित हों।'[2] स्त्रियों की दशा का सजीव

चित्रण इंदिरा गोस्वामी की 'वंशबेल' नामक कहानी में दर्शाया गया है। समाज में व्याप्त पितृसत्तात्मकता का प्रभल उद्घोष करके ये कहानी एक व्यक्ति को उसके पुत्र पाने की अभिलाषा में स्त्री को केवल एक 'लाभप्रद वस्तु' के रूप में देखे जाने का वर्णन प्रस्तुत करती है। महाजन पीताम्बर पचास को पार कर चुका है। उनका वर्णन कहानी में इस प्रकार दिया गया है–

'उसकी ठुट्टी के नीचे की खाल ढीली पड़कर लटकने लगी थी। वह दूर निगाहें टिकाए एक बच्चे को देखे जा रहा था, जो अपनी बंसी की फंसी डोरी को छुड़ाने की कोशिश में था।'[3]

इस कहानी के माध्यम से इंदिरा गोस्वामी ने जातिवाद, पितृसत्तात्मकता, रूढ़िवादिता, स्त्रियों के प्रति उदासीन दृष्टिकोण व मनुष्य में कभी न खत्म होने वाली इच्छाओं का सजीव व मार्मिक वर्णन किया है। दमयंती के चरित्र से गोस्वामी जी ने विधवाओं के जीवन में आने वाली समस्याओं को दिखाया है कि कैसे वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर न होने के कारण अपने जीवन यापन में अनेक समस्याओं का सामना करती हैं–

'मैं कर भी क्या सकती हूँ, मुझे जिंदा भी तो रहना है। अब मेरे पास न कोई काम है न धंधा। सभी मुझे भ्रष्ट और पतित समझते है.....धान का मेरा हिस्सा भी नहीं देते। मेरी मजबूरी का फायदा उठाते हैं। ऐसी हालत में मैं इन दो नन्हीं बच्चियों को लेकर कहाँ जाऊँ? मैंने लगान भी नहीं चुकाया। एक दिन मेरी जमीन की भी नीलामी हो जाएगी। बताओ मैं क्या करूँ?'[4]

कृष्णकांत पुजारी के चरित्र से गोस्वामी जी ने दिखाया है कि कैसे अपने ही काम से पुजारियों का जीवन अब सुचारू रूप से नहीं चल सकता। पुजारी कहता है –

'ये बात नहीं हैं। आज जमाना ही बदल गया है। पहले तो हर यजमान के घर से हर महीने एक जनेऊ, दो धोतियाँ और पाँच रुपए मिल जाते थे, पर अब तो कोई इन बातों को मानता ही नहीं। अपना खर्चा बचाने के लिए मेरा पुराना यजमान मणिकांत अपने दोनों बेटों को कामाख्या ले गया और वहीं उनका यज्ञोपवीत करवा आया। माइतानपुर के यजमानों ने अब अपने माता–पिता का श्राद्ध एक साथ ही करना शुरू कर दिया है।'[5]

गोस्वामी जी ने अपने लेखन से समाज की विभिन्न विसंगतिओं का विश्लेषण किया और उन पर कटु प्रहार कर उन्हें समाप्त करने के लिए सदा प्रत्यनशील रहीं। पीतांबर अपनी बीमार पत्नी से सारी उम्मीदें खो चुका था। उसे तो अपना वंश चलाने के लिए एक बालक की अभिलाषा थी और इसलिए वह दमयंती के पास जाता है–

'अगस्त का महीना था। पूर्णमासी की रात। पीतांबर ने अपने सबसे बढ़िया कपड़े पहने। फिर आइना उठा अपना चेहरा निहारने लगा। चेहरे पर उसे वे झुर्रियाँ दिखायी दीं, जो एक–दूसरे को काट रहीं थीं। वह दमयंती के घर की ओर चल पड़ा।'[6]

जब पीतांबर को पता चला कि दमयंती उसके बच्चे की मां बनने वाली है– 'पीतांबर का समूचा शरीर खुशी से थरथराने लगा, क्या यह वाकई सच है, दमयंती के पेट में बच्चा मेरा ही है– होगा। पुजारी झूठ क्यों बोलेगा, मेरा ही बच्चा होगा। देखना कहीं मेरी उम्मीद पर पानी न फिर जाए। तुम जानते ही हो, यदि यह बच्चा गिर गया, तो मेरी वंशबेल को आगे बढ़ाने वाला कोई नहीं रहेगा।'[7]

देश में व्याप्त भिन्न भिन्न प्रकार की सामाजिक कुरीतियों को बहुत स्पष्ट रूप से इंदिरा गोस्वामी ने इस कहानी में दिखाया है। यह एक सार्वभौमिक तथ्य है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके परिवेश व सामाजिक यथार्थ और उसके मनोवैज्ञानिक स्रोतों पर टिका होता है। आज के युग में साहित्य में नए नायक या चरित्र को चित्रित किया गया है जो कि यथार्थवादी है और वह अपने आसपास के समाज से पूर्णत: प्रभावित है। इन सबके साथ–साथ वह चरित्र या नायक अपने मनोविज्ञान से भी प्रभावित होता है। ऐसे ही चरित्र को पितांबर के रूप में चित्रित किया गया है जो कि अंत में कहता है कि–

'मैं उस लोथड़े को अपने इन हाथों से छूना चाहता हूँ। वह मेरी वंशबेल की कड़ी थी, मेरे ही खून से बना था वह। मैं उसे एक बार जरूर छूकर देखूँगा।' कहानी के अंत में हमें पीताम्बर की बेबसी का पता चलता है जो की उसकी स्वयं की सोच के कारण है।'[8]

निष्कर्ष– शोषण व अन्याय जब अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाते हैं तब उनके विरुद्ध प्रतिक्रियाएं भी अवश्य होती हैं। अनेक कर्म–कांडों, रूढ़ियों और कुरीतियों में स्त्रियों का जीवन इस तरह उलझ गया कि उनके प्रयत्नों के बाद भी आज भी समाज में अनेकों महिलाएं अपनी योग्यता व क्षमता को सिद्ध करने की लड़ाई लड़ रही हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी पुरुष को अधिक महत्व दिया जाता है और महिलाओं को सामाजिक और निजी आजादी की समझ बहुत कम होती है। शिक्षा का इसमें बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है जो कि महिलाओं को आर्थिक स्वावलंबन देने मे सक्षम है। इंदिरा गोस्वामी ने अपनी 'वंशबेल' कहानी के माध्यम से समाज में व्याप्त महिलाओं के साथ हो रहे दुर्व्यवहार का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। उन्होंने दिखाया है कि कैसे मनुष्य की इच्छाएं एवं आशाएं उसे और अधिक असहाए बना देती हैं। मानवीय संवेदना, सामाजिक विसंगतियाँ, नारी सशक्तिकरण और शांति की चाह यह सब उनकी रचनाओं का प्रमुख आधार हैं। उन्होंने अपनी प्रगतिशील विचार धारा के माध्यम से भारतीय नारी की कथा– व्यथा को संवेदनशील दृष्टि से जन जागरण का एक नया अध्याय रचा है। इंदिरा गोस्वामी ने समाज में होने वाले आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक शोषण को अपनी रचनाओं में दिखाया है। असमिया साहित्य को विश्व साहित्य में स्थान दिलवाने का श्रेय इंदिरा गोस्वामी जी को जाता है। उनके संवेदनशील व्यक्तित्व और कृतित्व असमिया साहित्य जगत में अविस्मरणीय है।

सन्दर्भ –

1. लोखण्डे अरुणा, समकालीन हिन्दी कथा साहित्य में जनचेतना, विकास प्रकाशन, कानपूर 1996।
2. अग्रवाल जी के, भारतीय सामाजिक संस्थाएँ, साहित्य भवन 2002
3. https://hindikahani.hindi-kavita.com/Vanshbel-Indira-Goswami.php
4. उक्त
5. उक्त
6. उक्त
7. उक्त
8. उक्त

ISSN 2278 - 0327

21वीं सदी के उपन्यासों में झलकता वृद्धों का दर्द

मीनाक्षी
शोधर्थी, हिंदी विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
अस्थल बोहर, रोहतक, हरियाणा

डॉ. प्रवेश कुमारी
सहायक प्रोफेसर
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

सारांश –

21वीं सदी अपने-आप में एक विशिष्ट सदी मानी जाती है जो निरंतर परिवर्तनशील तथा प्रगतिशील है। इस युग का साहित्य में भी मुख्य स्थान है। समय की गतिशीलता के साथ-साथ मानव भी प्रगति के पथ पर अग्रसर है। कहा भी जाता है –'परिवर्तन प्रकृति का नियम' है। अगर हम समाज में बदलाव लाना चाहते हैं तो हमें खुद ही ऐसे मुद्दे उठाने का प्रयास करना चाहिए जो समाज में बदलाव ला सकें। मनुष्य अपनी बौद्धिक क्षमता के सहारे अनेक परिवर्तन ला रहा है लेकिन भूमण्डलीकरण के इस दौर में जीवन के हर क्षेत्र में नैतिक मूल्यों का ह्रास भी हो रहा है।

आधुनिकता के इस युग में एक ओर हम पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होकर अपने रूढ़िवादी विचारों के घेरे से निकल कर विकास की ओर उन्मुख हो रहे हैं वही इन सब के बीच उन नैतिक मूल्यों और संस्कारों को भी छोड़ते जा रहे हैं, जो हमारे चरित्र-निर्माण में सहायक है। जिस भारतवर्ष का अतीत सुनहरा है तथा जहाँ की संस्कृति में माता-पिता को भगवान् तुल्य माना जाता है उस भारतवर्ष में आज बुजुर्गों की दयनीय एवं असम्माननीय स्थिति हो गई है। जिस प्रकार एक मजबूत मकान के लिए उसकी नींव का मजबूत होना जरूरी है, उसी प्रकार बुजुर्ग भी हमारी नींव है इनके बिना भावी पीढ़ी की उन्नति की कल्पना नहीं की जा सकती है लेकिन आज की युवा पीढ़ी अपनी स्वार्थपरता के कारण वृद्धों की अवहेलना करते हैं। 21वीं सदी के उपन्यासकार अपने उपन्यासों के माध्यम से पाठकों एवं शोधकों को वृद्धों की स्थिति से रु-ब-रु कराते हैं। उपन्यासकार अपने उपन्यासों के माध्यम से वृद्धों की पीड़ा, दर्द, अकेलापन, शारीरिक एवं मानसिक समस्याओं जैसी जीवन त्रासदी से युवा पीढ़ी को अवगत कराना चाहते है।

मूलशब्द – वृद्धावस्था, वृद्धों की स्थिति, वृद्ध जीवन की त्रासदी

भूमिकाः-

बहुधा कहा जाता है कि उम्र के अन्तिम पड़ाव में कदम रखते ही मनुष्य बूढ़ों की श्रेणी में आ जाता है। वृद्धावस्था या बुढ़ापा जीवन की उस अवस्था को कहते हैं जिसमें उम्र मानव जीवन की औसत काल के समीप या उससे अधिक हो जाती है। वृद्धावस्था में शारीरिक व मानसिक क्षमता भी क्षीण पड़ जाती है वृद्धावस्था में रोग लगने की संभावना बढ़ जाती है। उनकी समस्याएं भी बढ़ जाती हैं मनुष्य की तीन अवस्थाओं में से एक अवस्था जो युवावस्था के उपरांत और सबसे बाद में आती है – बुढ़ापा।

वृद्धावस्था एक धीरे-धीरे आने वाली अवस्था है जो कि स्वाभाविक व प्राकृतिक घटना है।[1] विशेष अर्थ में – यह अवस्था प्रायः 60 वर्ष के उपरांत आती है। इसमें मनुष्य दुर्बल और क्षीण हो जाता है उसके सब अंग शिथिल हो जाते हैं, शरीर की धातुएँ तथा इन्द्रियाँ आदि भी बराबर क्षीण पड़ जाती है और इसके अन्त में मृत्यु आ जाती है।[2]

वृद्धों की स्थिति –

भारत में एक ओर जहाँ वृद्धों की संख्या का अनुपात बढ़ा है, वहीं दूसरी ओर औद्योगिकरण, भूमण्डलीकरण एवं पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होने के कारण वृद्धों की स्थिति दयनीय होती जा रही है। बच्चों को माता-पिता से जोड़े रखने वाले संस्कार क्षीण पड़ते जा रहे हैं। भौतिकतावादी युग में बुजुर्गों की जो अवहेलना हो रही है, वह भावी पीढ़ी को पतन के गर्त की ओर धकेल रही है लेकिन युवा इन सब से अनभिज्ञ है। 'वृद्धावस्था विमर्श' में सही कहा गया है कि बुढ़ापें को एक नई दृष्टि से देखने की आवश्यकता है – एक ऐसी दृष्टि से जिसमें संवेदना हो और बूढ़ों के लिए आदर व सम्मान प्राप्त हो, जीवन देने की आकांक्षा हो।[3]

वृद्धजीवन की त्रासदीः-

वृद्धावस्था जीवन का संध्याकाल माना जाता है। वृद्धावस्था आने पर मनुष्य शरीर में शिथिलता आ जाती है। स्वाति तिवारी जी ने वृद्धावस्था के बारे में कहा है, 'वृद्धावस्था जीवन का एक सामान्य घटनाक्रम एवं प्राकृतिक सन्तुलन की अनिवार्यता भी। शरीर के अंगों की संचित कार्यक्षमताओं में धीरे-धीरे होने वाली कमी से संबंधित है'[4] 21वीं सदी के उपन्यासों का अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ये उपन्यास हमें बुजुर्ग पीढ़ी की झटपटाहट, अकेलापन, शारीरिक स्थिरता, उपेक्षित व्यवहार असंतोष, पीड़ा आदि से अवगत

कराते हैं। वृद्ध जीवन को आधार बनाकर लिखे गए समकालीन उपन्यास है – चित्रा मुद्गल – 'गिलिगडू' (2010), कृष्णा सोबती– 'समय–सरगम' (2012), ममता कालिया– दौड (2000), हृदयेश– 'चार दरवेश' (2011), गोविन्द मिश्र – 'शाम की झिलमिल' (2017), डॉ. सूरज सिंह नेगी के तीन उपन्यास है – रिश्तों की आँच (2016), वसीयत (2018) और नियतिचक्र (2019) आदि। प्रस्तुत आलेख इन्हीं उपन्यासों को आधार बनाकर लिखा गया है। 'गिलिगडू' उपन्यास में चित्रा जी ने नैतिक मूल्यों का क्षरण दिखाया है। उपन्यास का वृद्ध पात्र जशवंत सिंह कानपुर से सब कुछ छोड़कर बेटे नरेंद्र के पास दिल्ली आते हैं किन्तु उन्हें लगता है कि अपनापन कहीं–न–कहीं कानपुर में ही छूट गया है। वे बेटे और बहु के साथ कदम–कदम पर स्वयं को अपमानित महसूस करते हैं। अपने बेटे की अपने प्रति उपेक्षा को देखकर जशवंत सिंह विवश होकर नरेंद्र से पूछते हैं, 'तुम कभी बूढ़े नहीं होगें नरेंद्र ?'[5] अपनी स्थिति को देखकर वे स्वयं सोचते भी हैं – 'इस घर में एक नहीं दो कुत्ते हैं एक टॉमी दूसरा अवकाश प्राप्त सिविल इंजिनियर जशवंत सिंह। टॉमी की स्थिति बनिस्बत मजबूत है।'[6] बुजुर्गों के मुख से ऐसे शब्दों का निकलना उनकी दयनीय स्थिति को उजागर करता है।

'समय–सरगम' उपन्यास की लेखिका कृष्णा सोबती ने दिखाया है कि कैसे वृद्धावस्था में वृद्ध अकेलेपन के शिकार हो जाते हैं और अकेलापन हर समय उन्हें अखरता रहता है। उपन्यास में कामिनी और दमयंती जैसी स्त्रियों की स्थिति वृद्ध समस्या को भली–भाँति स्पष्ट करती है। अकेलेपन की शिकार दमयंती अरण्या से अपने मनोभाव व्यक्त करती हुई कहती है– 'बच्चे साथ रह रहे हैं मेरा घर, मेरा किचन चल रहा है। खर्चा मैं कर रही हूँ और मैं अकेली पड़ी हूँ। बिना इज़ाजत के मेरा सामान इधर–उधर करते रहते हैं। पीछे आश्रम गई तो माधव को धमकाते रहते हैं। बताओं ममा लाकर की चाबी कहाँ है..... कुछ कहो अरण्या।'[7]

आज का युवा वर्ग कैरियर बनाने की होड़ में घर, परिवार, माँ–बाप, संस्कृति और नैतिकता सब से किनारा' करते नजर आ रहे हैं। इन सब का चित्रण ममता जी ने 'दौड़' उपन्यास में बखूबी दिखाया है। जब सघन के माता–पिता उसे अपने देश में वापिस बुलाना चाहते हैं तो सघन अपने पिता से हिन्दुस्तान लौटने के लिए कम–से–कम तीस–चालीस लाख की माँग करता है। पिता राकेश घर की आर्थिक स्थिति देखते हुए उसे अपनी मजबूरी बताता है। इस पर सघन का कथन हृदय को चीर–चीर कर देता है वह कहता है– 'आपने इतने वर्षों में क्या किया ? दोनों बच्चों का खर्च आपके सिर से उठ गया। घूमनें आप जाते नहीं पिक्चर आप देखते नहीं, दारू आप पीते नहीं, फिर आपके पैसों का क्या हुआ ?'[8] 'चार दरवेश' उपन्यास में भी वृद्ध पीड़ा मुखरित हुई है। हृदयेश जी ने लिखा है – इस कलयुगी समय में मनुष्य ने दया, ममता, रिश्ते–नाते सब से मुख मोड़ लिया है। उपन्यास में वृद्ध जीवन के दु:ख–दर्द, वृद्ध जीवन की उथल–पुथल को इतनी विश्वसनीयता से दिखाया गया है कि वृद्धजीवन को बहुत करीब से देखा जा सकता है। उपन्यास में एक ऐसा प्रसंग है जहाँ उपन्यास का वृद्ध पात्र रामप्रसाद पेशाब करते हुए अक्सर अपना पजामा गिला कर बैठते हैं। बेटी के टोकने पर उनका सादगी से भरा कथन पाठक को अंदर तक झकोरता है। 'जानबूझकर तो भिगोता नहीं !बूढा हूँ! बच्चों की तरह कुछ संभलता नहीं।'[9]

गोविन्द मिश्र जी ने उपन्यास 'शाम की झिलमिल' में भी वृद्धावस्था में अकेलेपन को भोग रहे वृद्ध की उधमशीलता को उजागर किया गया है। 'शाम की झिलमिल' का बूढ़ा पात्र लगभग 70 वर्ष की उम्र के आस–पास का दिखता है लेकिन इच्छाएँ अभी भी जिन्दा है जो उपन्यासकार ने दिखाई है – 'जिस रास्ते से यहाँ तक आया, वह आगे जाता नहीं दिखता। आस–पास कोई आगे रास्ता–दूसरा, तीसरा, दाएं, बाएं भी नहीं कि उसे पकड़कर चलूँ, चलता चला जाऊ..... देखूं कि कहाँ–कहाँ ले जाता है। जीवन में जो हो सकता था हो लिया –प्रेम, नौकरी, तरक्की, गृहस्थी, धनोपार्जन..... इन सब के तनावों उनके गली–कूचों से गुजर लिया। नए तनावों को ढूँढ़ने, उन्हें जीवन में लाने की तरफभी निकला .....थोड़ा दूर चले तो बोर्ड लगा दिया –

'आगे रास्ता बंद है' तो अब किधर'।[10]

'रिश्तों की आँच' की पात्र नेहा द्वारा अपने परिवार के बड़े–बुजुर्गों को अनदेखा किया जाता है तो यह गिरते जीवन मूल्यों, संस्कारों तथा मानवीय सद्भावनओं से पतन की ओर अग्रसर हो रहे समाज की ओर इशारा करते हैं। नेहा ने पति और जेठ को अनदेखा ही नहीं किया बल्कि रामप्रसाद की नजरों के सामने ही यह कहकर रमेश का तिरस्कार कर दिया– 'आपकी मर्जी कहीं भी जाओ। वैसे भी एक बीमार डॉक्टर का यहाँ क्या काम है।'[11]

'वसीयत' उपन्यास में भी संस्कारों के अभाव में वृद्ध होते माँ–बाप के जीवन की पीड़ा को दिखाया गया है। हर माँ–बाप अपना अंतिम समय अपनी संतान के साथ बिताना चाहते हैं। विश्वनाथ भी अपना शेष जीवन अपने बेटे राजकुमार के साथ बिताना चाहता है। एक पिता के दिल की उमंग को दिखाते हुए डॉ. नेगी ने लिखा है – 'मन के कोने में उमंगे इस बात को लेकर हिलोरे मार रही थी कि चलो सेवा–निवृत्ति के बाद बेटा पास में ही रहेगा उसकी धूमधाम से शादी कर अंतिम जिम्मेदारी से भी जल्द ही मुक्त हो जाऊँगा।'[12]

बेटे के मिलने की चाहत में विश्वनाथ खाना तक नहीं खाता है। वह तो अब बेटे के साथ ही खाना खाने के इंतजार में है– 'ऐसी क्या जल्दी राजकुमार बस कुछ घंटों में आता ही होगा। बरसों बाद साथ में खाना खायेंगे।'[13] विश्वनाथ का यह कथन पाठक को भी भाव–विभोर कर देता है। 'नियति चक्र' की पात्र नंदिनी वृद्धाश्रम में रह रहें वृद्धजनों की कर्मठता संबंधी चर्चा कर एक प्रश्न खड़ा कर हम सब को सोचने पर मजबूर कर देती है – 'अक्सर उम्र के इस पड़ाव के

बाद परिवार वालों की यह मानसिकता हो जाती है कि उनके माँ-बाप अब वृद्ध हो चुके हैं, उनसे कोई काम नहीं हो सकता। यह स्थिति बेहद दर्दनाक साबित होती है जो कहीं-न-कहीं समय से पहले उनको शरीर से कहीं अधिक मानसिक तौर पर दुर्बल बना देती है। बच्चे भूल जाते हैं कि वृद्धजनों की सीख, उनका अनुभव बहुत बड़ी पूँजी है जिसे समय पर काम लिया जाए तो मुश्किल काम आसान हो जाते है।'[14]

नेगी जी ने वृद्धों की त्रासदी के साथ-साथ ऐसे प्रेरक शब्द चित्र भी उद्धृत किए है जो पठनीय, चिन्तनीय व अनुकरणीय है। उपन्यास को पढ़कर कई बार ऐसा महसूस होता है कि लेखक के भीतर मानवीय गुणों का लावा फूट रहा है वे पाठक वर्ग को सन्देश भी देते प्रतीत होते हैं- 'समय रहते यदि अपने बुजुर्गों के अनुभव से सीख ली जाए और उन्हें पूरा सम्मान मिले तो प्रत्येक परिवार में हमेशा खुशियाँ चौखट चूमती है इसके विपरीत यदि बुजुर्गों के अनुभव को कोई मान-सम्मान न दिया जाए, उनकी बेकद्री की जाए उनको केवल बोझ समझा जाने लगे तो वहाँ खुशियाँ भी अधिक दिनों तक नहीं टिकतीं।'[15]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि बुढ़ापा जीवन का वह पड़ाव है जहाँ पहुँचने पर मनुष्य का शरीर शिथिल पड़ जाता है, आँखों की रोशनी जाने लगती है। हाथ कंपकंपाने लगते हैं। ऐसी स्थिति में यदि कोई अपना साथ दे तो आगे का सफर आसान हो जाता है। वृद्धावस्था एक ऐसी अवस्था है जब उनकी अपने बच्चों, परिवार पर निर्भरता बढ़ जाती है लेकिन युवा पीढ़ी उनका सहारा बनने की बजाय उनको अपने से दूर करने की रणनीति बनाने लगते हैं। युवा पीढ़ी इस बात से अनजान है कि वृद्ध लोग समाज के लिए उपयोगी है, उनके अनुभवों का सही से उपयोग करें तो युवा पीढ़ी उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकती है।

संदर्भ-ग्रन्थ सूची

1. hi.m.wikipedia.org (यूनियन पीडिया)
2. Bsarkari.Comdictionary
3. प्रसादचन्द्र मौलेश्वर, वृद्धावस्था विमर्श, परिलेख प्रकाशन, नजीबाबाद, 2016, पृ. सं. 20
4. स्वाति तिवारी, अकेले होते लोग, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ. सं. 31
5. चित्रा मुद्गल, गिलिगडू, सामयिक प्रकाशन, 2007, पृ. सं. 80
6. वहीं, पृ. सं. 96
7. कृष्णा सोबती, समय-सरगम, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2008 आवृत्ति 2012, पृ. सं. 4
8. ममता कालिया, दौड़, वाणी प्रकाशन, 2000, पृ. सं. 58
9. हृदयेश, चार दरवेश, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, 2011, पृ. सं. 10
10. गोविंद मिश्र, शाम की झिलमिल, किताबघर प्रकाशन, 2017, पृ. सं. 20
11. सूरज सिंह नेगी, रिश्तों की आँच, नवजीवन पब्लिकेशन, 2016, पृ. सं. 149
12. सूरज सिंह नेगी, वसीयत, साहित्यागार, 2018, पृ.सं. 13
13. वहीं, पृ.सं. 17
14. सूरज सिंह नेगी, नियति चक्र, सनातन प्रकाशन, 2019, पृ. सं. 112
15. वहीं, पृ. सं. 92

ISSN 2278 - 0327

द्विवेदी युगीन कविता के विभिन्न आयाम

मोनिका
शोधार्थी
योग्यता : एम.ए. (हिन्दी)
बी.एड., जे.आर.एफ. (हिन्दी)

शोर सार –

हिंदी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल के काव्य के विकास का दूसरा चरण द्विवेदी युग से आरम्भ हुआ। द्विवेदी युग का नामकरण आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर पड़ा जिन्होंने 1900 से 1920 तक के साहित्यिक युग पर अपने विशिष्ट व्यक्तित्व एवं कृतित्व के फलस्वरूप छाप अकिंत की। इस कालखण्ड को डॉ. नगेन्द्र ने 'जागरण–सुधार' काल नाम से अभिहित किया है। इस युग के साहित्य में जिस आदर्श की प्रतिष्ठा हुई तथा जिस साहित्यिक चेतना का प्रतिपादन हुआ उसका समस्त श्रेय द्विवेदी जी को ही प्राप्त है। इस युग की महान् उपलब्धि सरस्वती पत्रिका थी जिसमें युगीन साहित्य को आकार व गतिशीलता प्रदान की। इस पत्रिका का पहला अंक जनवरी 1900 में प्रकाशित हुआ, उस समय इसके सम्पादक श्यामसुंदरदास, राधाकृष्ण दास, कार्तिक प्रसाद खत्री, जगन्नाथदास रत्नाकर और किशोरीलाल गोस्वामी थे। सन् 1903 में महावीर प्रसाद द्विवेदी इसके सम्पादक बने तथा अठारह वर्षों तक सरस्वती का सम्पादन कर हिन्दी पत्रकारिता में एक कीर्तिमान स्थापित किया। द्विवेदी जी ने पत्रिका में ऐसे लेख प्रकाशित किए जिनसे भारतीय जनमानस में देशभक्ति, स्वतंत्रता, बंधुत्व तथा स्वाभिमान की भावनाएँ जागृत होने लगीं। आचार्य द्विवेदी से प्रेरित होकर तथा उनके आदर्शवादी विचारों को आगे विकसित करने वाले अनेक कवि इस युग में आए जिनमें से मैथिलीशरण गुप्त, गयाप्रसाद शुक्ल 'स्नेही', अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', नाथूराम शर्मा शंकर, रामनरेश त्रिपाठी प्रमुख थे। इन सभी कवियों की कविताएं नव–जागरण, राष्ट्रीयता, आदर्शवाद, समाजसुधार, भक्ति भावना से परिपूर्ण है, जिसमें श्रृंगार रस को मर्यादित रूप में ग्रहण करने पर बल दिया गया है। इस युग की कविता पर गांधीवादी विचाराधारा और स्वतंत्रता आंदोलन का विशेष प्रभाव पड़ा। इस युग में गद्य–रचनाओं के साथ–साथ पद्य रचनाएं भी खड़ी बोली में निर्मित होने लगी थी। द्विवेदी–युग की कविता भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से विशेष स्थान रखती है। वह मानवतावाद, जन–सेवा, समाज–सुधार की भावना को प्रश्रय देने वाली है इस युग में देशी एवं विदेशी भाषाओं की कविताओं का खड़ी बोली में अनुवाद हुआ जिससे साहित्य का क्षितिज विस्तारित हुआ। द्विवेदी युगीन कविता भाव और भाषा दोनों ही स्तरों पर नवीन प्रवृत्तियों को लेकर उदित होती है।

मुख्य शब्द – पारस्परिक, एकीकरण, स्वाभिमान, सुव्यवस्थित, आलोक, तिरस्कृत, परित्याग।

परिचय –

जागरण–सुधार काल भारतीय इतिहास का वह युग है जिसने हिंदी कविता को श्रृंगारिकता से राष्ट्रीयता, जड़ता से प्रगति तथा परंपरागत रूढ़ियों से आधुनिकता के द्वार पर लाकर खड़ा कर दिया। यह काल ब्रिटिश शासन के शोषण, अत्याचार, अनाचार, दमन व कूटनीति का समय था। अंग्रेजों की नीति भारतीयों के लिए हितकर नहीं थी अपने स्वार्थपूर्ति के लिए वे देशवासियों का ऐसा वर्ग खड़ा करना चाहते थे, जो शरीर से भारतीय होते हुए भी हृदय से गौरांग प्रभुओं का भक्त हो जिससे वे उनके आगामी शासनकार्यों में सहायक सिद्ध हो।

अत्याचारों एवं दमनचक्र का मुख्य कारण परतंत्रता को ही माना गया परिणामस्वरूप जनता ने पूर्ण स्वाधीनता की मांग की। उनकी इसी मांग की आवाज को बुलंद करने के लिए द्विवेदी युगीन साहित्यकारों ने अपनी लेखनी चलाई। इस युग की कविता में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना तथा समाज विकास की भावना को विकसित किया गया है। मातृभूमि के लिए सर्वस्व बलिदान, पारस्परिक भेदभाव को समाप्त करने और स्वार्थभावना को तिलांजली और परोपकार की भावना को आत्मसात करने की दृष्टि से द्विवेदी युगीन काव्य महत्वपूर्ण है। द्विवेदी युग में ऐतिहासिक या पौराणिक विषयों के प्रति महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ कि अब काव्य में नायक या नायिकाएँ ईश्वरीय अवतार में न रहकर पीड़ियों और शोषितों की सेवा के हित में अवतार लेने वाले मनुष्य बन गए है। महावीर प्रसाद द्विवेदी के अथक प्रयासों से तथा सफल व सही दिशा–निर्देश से गद्य एवं पद्य की भाषा का एकीकरण हुआ। खड़ी बोली का परिष्कार कर उसे काव्य की भाषा बनाया। प्रस्तुत काल में कविता को श्रृंगारिता से मुक्त कर सामान्य मानवता का विषय बनाया गया। गुप्त जी की 'किसान' (1917), 'स्नेही' जी की 'कृषक–क्रंदन' कृषक जीवन संबंधी ऐसी कविताएं है जिनमें जन साधारण को काव्य–विषय में स्थान प्राप्त हुआ है। युगीन कविता में नीति और आदर्श उच्च पराकाष्ठा पर है इन कवियों ने आदर्श को

आत्मसात करते हुए विभिन्न काव्यरूपों का प्रयोग किया है। इस युग के महाकाव्यों, खण्डकाव्यों, मुक्तक, प्रबंध काव्यों द्वारा दमित और शोषित जनता को उत्साह प्रदान कर स्वाभिमान की भावना प्रबल की गई। भारतेन्दुकालीन साहित्य ने जहां सिर्फ भारत की दुर्दशा पर दु:ख प्रकट करके रह गया था वहीं द्विवेदी कालीन लेखकों ने देश की दुर्दशा के चित्रण के साथ-साथ भारतवासियों को स्वतंत्रता प्राप्ति की प्रेरणा भी दी तथा स्वाभिमान व बलिदान का मार्ग भी दिखाया।

जिन काव्य प्रवृतियों का जन्म भारतेंदु युग में हुआ। उनका विकास द्विवेदी युग में हुआ। जन-जीवन को विश्वास और उम्मीद का सन्देश युगीन कवियों ने दिया। रामचन्द्र शुक्ल जी ने इस काल का नामकरण नई धारा द्वितीय उत्थान इसीलिए दिया कि इस युग की कविता जागरण सुधार युग के आंदोलनों, विद्रोहों और क्रांतियों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनी। रीतिकालीन श्रृंगारिकता और विलासिता का खण्डन करते हुए कवियों ने राष्ट्रप्रेम और देशभक्ति के माध्यम से मानव मुक्ति का अभियान चलाया।

इस युग की कविता किसी एक विषय के दायरे में न होकर विभिन्न विषयों पर अपनी दृष्टि रखती है। नर हो या नारी दलित हो या पीड़ित, शोषित चाहे व किसान हो या मजदूर पराधीन समाज हो सबके प्रति सहानुभूति और करूणा इस युग की कविता का अंग था। सामान्य मानव के गौरव की प्रतिष्ठा पहली बार द्विवेदी युग में हुई। आदर्शवाद, नीतिवाद, आशावाद उनके स्वभाव में था जिनका प्रभाव उनके काव्य में दिखाई देता है। इस युग के कवियों में सबसे पहले महावीर प्रसाद द्विवेदी का नाम उल्लेखनीय है। जिन्होंने अपनी लेखनी द्वारा हिंदी भाषा और साहित्य की सेवा में अपना योगदान दिया। सरस्वती के सम्पादक बनकर उन्होंने हिंदी भाषा और साहित्य उत्थान के लिए जो कार्य किया वो स्मरणीय है हिन्दी साहित्य के कवियों और लेखकों की एक पीढ़ी का निर्माण, हिन्दी व्याकरण को सुव्यवस्थित करने और खड़ी बोली का परिष्कार करने और उसे गद्य तथा पद्य की भाषा बनाने का श्रेय बहुत हद तक महावीर प्रसाद द्विवेदी को ही है। इस युग के कवियों ने भी द्विवेदी जी के निर्देशन में काव्य-पथ को विभिन्न आयामों द्वारा संचालित किया।

द्विवेदी युगीन कविता में राष्ट्रीय भावना -

इस युग के प्राय: सभी कवियों ने देशभक्ति और राष्ट्रप्रेम से परिपूर्ण कविताओं की रचना की। एक राष्ट्र के निर्माण में उस राष्ट्र की ज़मीन, जनता, धर्म, जाति, इतिहास, साहित्य, संस्कृति का प्रमुख अंश होता है। द्विवेदी युगीन साहित्यकारों ने तत्कालीन अंधकारमय युग को अपनी कविताओं द्वारा आलोक प्रदान करते हुए हताश, निराश देशवासियों के हृदय में नए संकल्प और उत्साह की धारा को प्रवाहित किया तथा धर्म और संस्कृति की रक्षा करते हुए खण्ड-खण्ड राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधने की प्रेरणा दी है। राष्ट्रकवियों में सर्वप्रथम मैथिलीशरण गुप्त का नाम सर्वश्रेष्ठ है जिन्होंने अपनी काव्य रचना में जन्मभूमि का गौरव विभिन्न प्रसंगों में प्रस्तुत किया है। 1912 ई. में 'भारत-भारती' लिखकर उन्होंने राष्ट्रीय कविता का आरंभ किया। भारत-भारती में उन्होंने हताशा से भरी जनता को आत्मविश्वास से जागृत करने का प्रयास किया है। वो सूचित करते है कि किस प्रकार भारत युगीन काल में अपनी श्रेष्ठ संस्कृति के साथ अस्तित्व में था। भारतवर्ष की श्रेष्ठता बताते हुए वे लोगों को स्वाभिमान की भावना से भरना चाहते है -

''हाँ, वृद्ध भारतवर्ष ही संसार का सिर मौर है,
ऐसा पुरातन देश कोई विश्व में क्या और है?
भगवान की भव-भूतियों का यह प्रथम भण्डार है,
विधि ने किया नर-सृष्टि का पहले यहीं विस्तार है।''[1]

देश को दासता की बेड़ियों से मुक्त करना युगीन कवियों का लक्ष्य था। भारतवर्ष की जनता को विदेशी शासकों के अधीन देखकर तद्युगीन साहित्यकारों का हृदय व्याकुल हो उठा। उन्होंने पराधीनता को सबसे बड़ा अभिशाप माना है तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए क्रांति एवं आत्मोसर्ग की प्रेरणा दी है। नाथूराम शंकर जिन्होंने अपनी ओजस्वी वाणी और निर्भीक लेखनी द्वारा देश की बलिवेदी पर मर-मिटने का संदेश दिया है। उन्होंने अपनी रचना 'शंकर सर्वस्व' के 'बलिदान गान' की पंक्तियों द्वारा जनता को उत्साह से भरने का प्रयास किया है-

'' सिंहों सत्यामृत प्रवाह में गोल बंध बहना होगा
पोल खोल खोटे कुराज्य को दुश्शासन कहना होगा।
पशुबल ठलेगा जेलों में वर्षों तक रहना होगा
माय खाय निर्दय दुष्टों की घोर कष्ट सहना होगा।
जाति जीवनधार रक्त से कर्म कुण्ड भरना होगा।
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।।'' [2]

लोगों की आलस्य भावना, खुदगर्जी, कूटनीति, पाखण्ड आदि कुरीतियों की ओर भी कवियों का ध्यान गया है। स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने और विदेशी वस्तुओं को त्यागने का आग्रह उन्होंने किया है। क्योंकि मातृभूमि की महिमा का गान भी देशी भक्ति का ही अंग है।

नारी चित्रण -

तत्कालीन युग नारी जागरण का युग होने के कारण इस समय की काव्य रचनाओं में नारी भावना को प्रमुख स्थान दिया गया है। स्त्री अब पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर राष्ट्रीय आंदोलन में भागीदार बनने लगी थी। प्राचीन काल से उपेक्षित और प्रताड़ित नारी के प्रति कवियों ने विशेष सहानुभूति प्रकट की तथा उनके जीवन में आने वाली विपत्तियों का यथार्थ वर्णन किया। वर्तमान नारी की दुर्दशा पर विचार करते हुए उन्होंने समाज के इस शिथिल और पिछड़े हुए भाग को शक्ति और जीवन देकर समाज का उद्धार किया। तत्कालीन कवियों ने नारी को रीतिकालीन वासना पूर्ति से बाहर लाकर उसे सामाजिक मर्यादा से गौरवान्वित कर लोक कल्याण की भावना से परिपूर्ण माना है। तिरस्कृत और उपेक्षित नारी पात्रों को काव्य में स्थान

दिया गया है। कवि अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जी अपनी रचनाओं में नारी के विभिन्न रूप आदर्श प्रेमिका, पतिव्रता नारी, ईश्वर आराधना आदि का चित्रण किया है। उनकी रचना 'प्रियप्रवास' की नायिका राधा लोकमंगल की भावना से अभिभूत तथा प्रिय का परित्याग करने वाली नारी है। नायिका राधा को जब पता चलता है कि कृष्ण अब लोक कल्याण में रत तो वे भी कृष्ण का संदेश सुनकर मन में विश्वप्रेम व लोक कल्याण की भावना को धारण कर लेती है –

'' जो बातें है भव-हितकारी सर्व-भूतोपकारी
जो चेष्टायें मलिन गिरती जातियां हैं उठाती
हो सेवा में निरत उनके अर्थ उत्सर्ग होना
विश्वासात्मा-भक्ति भव-सुखदा दासता-संज्ञका है।'' [3]

युगीन कवियों की दृष्टि समाज में नारी की दयनीय स्थिति की ओर गई और उन्हें काव्य में स्वतंत्र स्थान मिला। द्विवेदी युग नारी चेतना को और अधिक प्रबल बनाता है। इस युग की नारी में शुद्ध नैतिकता एवं महान आदर्शों की भावना के साथ ही राष्ट्रीय चेतना की भावना को कवियों ने अभिव्यक्ति दी है। साकेत, यशोधरा, मिलन, प्रियवास में नारी के उद्धात स्वरूप देखने को मिलते है। युगीन साहित्यकारों ने अपने साहित्य में प्रेम प्रधानता में श्रृंगारिकता, वासना, संयम के स्थान पर शिष्टता, संयम, लोकप्रेम आदि का समावेश किया है। 'मिलन' की नायिका विजया को त्रिपाठी जी ने स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने वाली नारी के रूप में चिन्हित किया है जब विजया अपने पति के उपदेश का पालन करते हुए पुरुष रूप धारण करके उसके साथ संसार की सेवा में निकलती है विजया कहती है –

''चिर संगिनी तुम्हारी मैं हूँ
मेरे जीवन-नाथ
जहां-जहां जाओगे मैं भी सदा रहूंगी साथ
साथ रहूंगी, पद सेऊँगी
छाया-सम सब काल
मेरे नाथ न छोडूँगी मैं
यह नव बाहु विशाल।।'' [4]

मैथिलीशरण गुप्त का दृष्टिकोण नारी के प्रति व्यापक है। उन्होंने स्त्री और पुरुष दोनों को समान माना है। स्त्री के बिना पुरुष का अस्तित्व ही नहीं है। 'यशोधरा' अपने पति के मार्ग में बाधा न बनकर उनके कर्त्तव्य मार्ग में सहायक बनना चाहती है वे कहती हैं –

'' सखि वे मुझसे कहकर जाते,
कह तो क्या मुझकों अपनी पथ बाधा ही पाते?।'' [5]

द्विवेदी युगीन साहित्यकारों ने नारी के हर रूप का चित्रण किया है और उसे जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग माना है।

मानवतावादी विचारधारा –

द्विवेदी युगीन काव्य से पूर्ववर्ती काव्य रीतिकाल में असामान्य ईश्वर, राजा, महाराजा, सामंत, योद्धा, श्रृंगारिक नायिकाओं को ही स्थान प्राप्त था। किंतु द्विवेदी काल में सामान्य मानव को यह गौरव स्थान प्राप्त हुआ है। विश्व शान्ति और लोक कल्याण के लिए मानवता की आवश्यकता है और इसी मानवता को पोषित करने के तत्कालीन कवियों ने अपनी तूलिका चलाई। शोषित और दलित, पीड़ित कृषक और श्रमिक उनकी कविता के विषय बने तथा मानवतावाद को मुखरित किया।

हरिऔध की रचनाओं में विश्वप्रेम की व्यापक भावना है। उन्होंने 'वैदेही वनवास' की पंक्तियों द्वारा विश्वबन्धुत्व की भावना का प्रचार किया है –

'' सर्वोतम साधन है उर में
भव हित-पूत-भाव का भरना
स्वाभाविक सुख लिप्साओं को
विश्वप्रेम में परिणत करना।।'' [6]

गुप्त जी अपने देश में सुख शांति से रहने का संदेश देते हैं –

'' यह सारा संसार है उस प्रभु का परिवार
सब से रखना चाहिए प्रेम-पूर्ण व्यवहार।।'' [7]

मानवता के इस युग में मानव की महिमा का ही गुणगान किया है इसलिए इस युग के कवियों ने ईश्वर को भी मानवीय गुणों से युक्त देखा है। रामनरेश त्रिपाठी गांधी जी के अहिंसावादी विचारों को ऊपर उठाते हुए मानवीय प्रेम को श्रेष्ठ सिद्ध किया है –

''रक्तपान करना पशुता है
कायरता है मन की
अरि को वश करना चरित्र से
शोभा है सज्जन की।।'' [8]

खड़ी बोली का प्रयोग और सरस्वती पत्रिका –

भारतेन्दु युग में खड़ी बोली का प्रयोग थोड़ा ही हुआ। द्विवेदी जी ने रीतिकालीन श्रृंगारिकता को छोड़कर अन्य सभी विषयों पर कविता करने का उपदेश कवियों को दिया। सन् 1900 में सरस्वती पत्रिका का संपादन शुरू हुआ। 1903 में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने संपादनकार्य संभाल कर सरस्वती में खड़ी बोली कवितओं को प्रकाशित किया। आचार्य जी ने पत्रिका के माध्यम से साहित्य में व्याकरण सम्मत भाषा का प्रचार किया। उन्होंने गद्य और पद्य की भाषा का एकीकरण करते हुए 'रसज्ञंरजन' में लिखा है ''गद्य और पद्य की भाषा पृथक्-पृथक् नहीं होनी चाहिए। यह निश्चित है कि किसी समय बोलचार की हिन्दी भाषा ब्रजभाषा की कविता के स्थान को अवश्य छीन लेगी, इसलिए कवियों को चाहिए कि वे क्रम से गद्य की भाषा में कविता करना आरंभ करें।'' [9]

द्विवेदी जी के मार्गदर्शन से सरस्वती व्यवस्थित और परिमार्जित हुई और हिंदी भाषा के लिए नया रूप देने में सहायक सिद्ध हुई।

प्रकृति चित्रण –

मानव और प्रकृति का हमेशा अटूट रिश्ता रहा है। काव्य रचना

की मूल प्रेरणा प्रकृति ही है। मानव मन के भाव जैसे श्रृंगार, हर्ष, शोक, करूणा, भय, उत्साह आदि को कवि प्रकृति द्वारा ही काव्य में चित्रित करते हैं। द्विवेदी युगीन कविता में स्वछन्द भावना दिखाई देती है। इन्होंने प्रकृति के मनोरम सौन्दर्य से मोहित होकर सूक्ष्म चित्रण किया है। श्रीधर पाठक प्रकृति के मुग्धकारी रूप को 'सांध्य अटन' नामक कविता में चित्रित किया है-

विजय वन प्रांत था
प्रकृति मुख शांत था
अटन का समय था
रजनि का उदय था।।[10]

काव्य रूपों की विविधता -

इस काल खण्ड में काव्य रूपों की विविधता रही है। प्रबंध काव्य, खण्ड काव्य, प्रगति आदि तमाम काव्यरूपों में रचना हुई है। 'प्रियप्रवास' 'साकेत' का अधिकांश भाग तथा 'रामचरितचिंतामणि' जैसे महाकाव्यों का प्रणयन इस युग में हुआ। हिंदी साहित्य के अनेक खण्डकाव्यों मैथिलीशरण गुप्त का 'रंग में भंग', 'जयद्रथ-वध', 'किसान', रामनरेश त्रिपाठी का 'मिलन' आदि वर्णनीय है। कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जहां इन कवियों की दृष्टि न गयी हो।

अनुदित रचनाएं -

द्विवेदी युगीन काव्य में सर्वाधिक अनुदित रचनाएं हुई है। अलग-अलग भाषाओं से इस युग में रचनाओं का अनुवाद कवियों ने किया। मैथिलीशरण द्वारा अनुदित रचनाएं - 'दूत घटोटकच' जो भास के एंकाकी का अनुवाद है, 'अविस्मारक', 'प्रतिमा', 'अभिषेक' सभी भास के नाटक का अनुवाद है। हरिऔध जी द्वारा अनुवादित रचनाएं नीति निबन्ध, विनोद वाटिका, उपदेश कुसुम आदि हैं। इस प्रकार इस युग में अनेक रचनाओं का अनुवाद किया गया।

निष्कर्ष -

हिंदी साहित्य इतिहास की प्रगति का अवलोकन करने के लिए अनेक कालक्रमों से गुजरना पड़ता है। प्रारंभिक काल में वीररस से परिपूर्ण काव्य की रचना हुई। इस काल में उपरांत हिंदी साहित्य ने भक्तिकाल में प्रवेश किया। यह युग साहित्य की दृष्टि से उन्नत था। लेकिन रीतिाकल तक आते-आते कविता श्रृंगारिकता और वासना के प्रपंच में उलझ गई। कविता को इस वासना से मुक्ति आधुनिक काल में आकर मिली। आधुनिक काल का आरंभ भारतेन्दु युग से होता है जिसने साहित्य क्षेत्र में नवीन आलोक फैला द्विवेदी युग भारतेन्दु युग से प्रभावित था। जिस सुधारवादी दृष्टिकोण को भारतेन्दु युगीन कवियों ने अपनाया उसकी चरम सीमा द्विवेदी युग में विकसित हुई। इस युग की कविता के अनेक आयाम उभरकर सामने आए। जिनमें राष्ट्रीयता, अतीत का गौरव गान, नैतिकता, आदर्शवाद, उपदेशात्मकता, मानवता एवं विश्वबन्धुत्व की भावना, इतिवत्तात्यकता, भाषा परिष्कार, सुधारवादी दृष्टिकोण आदि है। इस काल में पूरे भारतवर्ष पर ब्रिटिश शासन का राज था जिसने जनता पर अनेक अत्याचार किए। जिसका विरोध साहित्यकारों ने अपनी लेखनी द्वारा किया। लोगों में स्वाभिमान व देशप्रेम की भावना का संचरण हुआ। नारी समानता व स्वतंत्रता इस युग की प्रमुख प्रवृति थी। इन्होंने समाज में उपेक्षित और शोषित नारी की दुर्दशा का चित्रण कर समाज का ध्यान आकृष्ट किया। परिणामस्वरूप जनता में चेतना जागृत हुई और नारी भी स्वतंत्रता संग्राम में सहचरी बनकर अहम भूमिका निभाई। इस युग सामान्य मानव को काव्य का विषय बनाया गया। द्विवेदी जी ने भाषा संस्कार का आंदोलन शुरू करके खड़ी बोली का आयाम स्थापित किया। युगीन कवियों ने प्रकृति के अद्भूत सौन्दर्य का सूक्ष्म चित्रण अपनी रचनाओं में किया है। इन्होंने रीतिकालीन श्रृंगारिक प्रकृति चित्रण की अवहेलना करके स्वदेशप्रेम की धारणा को निहित किया है। तत्कालीन कवियों ने अपनी कविताओं द्वारा समय के देश में व्याप्त अनेक कुरीतियों की अवहेलना करके साहित्य, समाज, धर्म, संस्कृति अनेक प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत किया। द्विवेदी युगीन काव्य रचनाकारों का यही सबसे बड़ा योगदान है।

सन्दर्भ -

1. मैथिलीशरण गुप्त, भारत-भारती, पृष्ठ 4, साहित्य सदन दशम संस्करण।
2. हरिशंकर शर्मा (सम्पादक), शंकर सर्वस्व (बलिदान गान), पृष्ठ 248 गयाप्रसाद सन्स, प्रयाग।
3. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', प्रियप्रवास, पृष्ठ 257, हिन्दी-साहित्य-कुटीर, बनारस।
4. रामनरेश त्रिपाठी, मिलन, पृष्ठ 4, हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग। चौथा संस्करण।
5. मैथिलीशरण गुप्त, यशोधरा, पृष्ठ 21, साहित्य-प्रेस।
6. 'हरिऔध' वैदेही बनवास, सर्ग 7, पद 75, पृष्ठ 113 , हिन्दी-साहित्य-कुटीर, बनारस, प्रथम संस्करण।
7. मैथिलीशरण गुप्त, काबा और कर्बला, पृष्ठ 4।
8. रामनरेश त्रिपाठी, पथिक, पृष्ठ 46
9. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, रसज्ञ-रंजन, पृष्ठ 16, साहित्य-रत्न-भंडार, आगरा।
10. श्रीधर पाठक, भारत गीत, सांध्य अटन, पृष्ठ 149, गंगा पुस्तकालय लखनऊ, द्वितीय संस्करण।

ISSN 2278 - 0327

आफताब-ए-सितार उस्ताद विलायत खाँ और सितार

सुरेन्द्र कुमार
सहायक प्रोफेसर, संगीत विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

सितार वाद्य की बात हो और उसमें आफताब-ए-सितार उस्ताद विलायत खाँ साहब का नाम न हो ऐसा संभव हो ही नहीं सकता। विलायत खां साहब का जन्म 1936 ई. में हुआ था। विलायत खाँ साहब संगीत की दुनिया में एक ऐसे रत्न हुए, जिन्होंने सितार वाद्य को एक अलग ही मुकाम पर पहुँचा दिया। अपने दादा उस्ताद इमदाद खाँ और पिता उस्ताद इनायत खाँ की संगीत परंपरा को बहुत ऊँचाई पर ले गये। विलायत खाँ साहब सितार वाद्य को ध्रुपद अंग की वादन शैली से अलग करते हुए ख्याल गायन शैली के प्रभाव वाली वादन शैली की ओर ले गए जहाँ न केवल तंत्रकारी अंग को रखते हुए अपने वादन को निखारा अपितु दाँए हाथ से तन्त्रकारी अंग के साथ-साथ सितार वाद्य में बाएँ हाथ की भूमिका और ज्यादा बढ़ा दी। विलायत खाँ साहब ने अपनी वादन कला राग के विस्तार और राग की खुशबू, राग की आत्मा को अपने वादन के सभी अलंकरणों से न केवल सुशोभित किया बल्कि मानों जान फूंक दी हो।

किसी कलाकार ने एक इंटरव्यू में कहा था कि कलाकार राग-रागनियों को प्रार्थना करते हैं कि हम पर कृपा कीजिए कि आज हम आपको गा अथवा बजा पाए लेकिन उस्ताद विलायत खाँ साहब के समक्ष राग-रागनियाँ हाथ जोड़े खड़े होते थे कि आज खाँ साहब किस राग पर कृपा करेंगे, किस राग को बजाएँगे विद्वानों के ऐसे विचार विलायत खाँ साहब की साधना और रागों को गंभीरता के साथ चिंतन करने की वजह से ही थे। खाँ साहब राग का फैलाव और विस्तार बहुत गंभीरता से करते थे। जब वो राग प्रस्तुतिकरण करते थे तो मानो राग भावों में बहता दिखाई पड़ता था। मानो वो राग से बातचीत कर रहे हो। वो राग की गहराई में उतर जाते थे जिसका आभास श्रोतागण भी करते थे और उस आनंद को हृदय में उतारते थे।

किसी भी कलाकार की दक्षता और क्षमता उसकी सोच की गहराई और राग के विस्तार करने की कला को प्रस्तुत करने पर स्पष्ट दिखाई पड़ती है। जो कि खाँ साहब के सितार वादन में थी।

विलायत खाँ साहब बहुत ही कम उम्र में थे, जब उनके पिता जी उस्ताद इनायत खाँ साहब का इंतकाल हो गया था। उनको कहा गया कि उनको किसी उस्ताद के पास सितार सीखने के लिए जाना चाहिए तो उस बहुत कम उम्र में भी उनका जवाब था कि उनके वालिद साहब ने उनको हजारों तान सिखाई हैं जब ये कर लूँगा तब सोचूंगा किसके पास सीखना है। विलायत खाँ से जुड़ा एक और किस्सा याद आता है। कहा जाता है कि जब विलायत खाँ साहब चौदह वर्ष की अल्पायु में मंच प्रदर्शन कर रहे थे तो उनको सुनने के लिए उस्ताद आमिर खाँ साहब, बड़े गुलाम अली खाँ साहब और पंडित ओंकारनाथ ठाकुर जी जैसे अनेकों बड़े-बड़े संगीतज्ञ बैठे हुए थे। ऐसे कहा जाता है कि उस्ताद विलायत खाँ साहब ने अपनी प्रस्तुति के दौरान कुछ ऐसी बारीकी का प्रयोग किया कि सभी कलाकारों के मुख से उफ्फ, ओह, ये क्या सुना जैसे शब्द निकले उस्ताद आमिर खाँ साहब ने उनसे वो हरकत दोबारा बजाने का अनुरोध किया और कहा जाता है कि इस पर विलायत खाँ साहब ने कहा कि अगर यहीं हरकत दोबारा हूबहू न बजी तो हाथ काटकर रख दूँगा। जिससे उनका अपनी साधाना पर भरोसा और उनके आत्मविश्वास का पता चलता है।

सितार जैसे तन्त्री वाद्य पर ख्याल गायकी को उतारने का प्रयत्न सबसे पहले खाँ साहब ने ही किया एक इंटरव्यू में उन्होंने इसके पीछे की कहानी बताई है कि कैसे जब पिता के इंतकाल के बाद परिवार की सारी जिम्मेदारी बहुत कम उम्र में ही इन पर आ गई तो खाँ साहब उस समय कव्वालों के साथ सितार बजाते थे, जिससे उन्हें थोड़ा शहद या कुछ पैसे मिलते थे। उस समय कव्वालों के साथ सितार बजाते-बजाते इनको वो सभी बारीकियाँ सितार पर उतारने का ख्याल आया और यहीं से इन्होंने सितार वादन में गायकी अंग का समावेश किया।

उस्ताद विलायत खाँ मूलत: अपने घराने का वाद्य बजाते हैं; जिसे उन्होंने आधुनिक संदर्भ में सितार पर परिष्कृत और संवर्द्धित किया है। उनके वाद्य में गायकी अंग के सितार वादन का संपूर्ण, निर्दोष एवं सक्षम रूप मिलता है। उनके वाद्य में ध्रुपद का गाम्भीर्य, ख्याल गायकी का अलंकरण, लंबी सपाट तानें तथा ठुमरी का लालित्य एवं भाव प्रवणता मिलती है, जो शास्त्रीय गायन की समस्त विशेषताओं की सूक्ष्म अभिव्यक्ति है।[1]

खाँ साहब के वादन से तंत्रकारी अंग भी अनछुआ नहीं रहा। बाएँ हाथ की कलात्मकता के साथ-साथ दाएँ हाथ से तंत्रकारी की सभी विशेषताओं को मिजराब के प्रयोग से अपने वादन में पिरोया है। यह आधुनिक हिंदुस्तान शास्त्रीय संगीत की सबसे महान उपलब्धि है कि पं. रवि शंकर एवं उस्ताद विलायत खाँ साहब हमारे सामने कला के दो समानान्तर युगों को एक साथ उपस्थित कर रहे हैं और हम

दोनों कलाओं का रसास्वादन कर रहे हैं।[2]

उस्ताद विलायत खाँ ने अपने प्रयोगों के लिए सितार के तारों के क्रम में जो परिवर्तन किए हैं, उनके विषय में उनका कहना है कि ''मेरी शैली गायकी अंग के नाम से प्रसिद्ध है''[3]

उस्ताद विलायत खाँ साहब ने सितार में सात तारों की संख्या 5 कर दी इन्होंने दो तार निकाल दी एक तार खरज के पंचम वाली और दूसरी जोड़ी की तार।

''लेकिन थोड़े अर्से के बाद एक तार की और जरूरत महसूस होने पर पंचम के बदले इस्पात का नया तार जोड़ दिया''[4]

उस्ताद विलायत खाँ साहब ने सितार में मुख्य तारें छः और तरब की तारें ग्यारह रखी। सितार वाद्य में कुछ परिवर्तन और भी किए जैसे इनका सितार वजन में पं. रविशंकर जी की सितार की अपेक्षा हल्का है और आकार में थोड़ा छोटा है। ''खाँ साहब के सितार की तबली पं. रविशंकर शैली के सितार की तबली से कुछ मोटी है''[5]

उस्ताद विलायत खाँ साहब के सितार की मुख्यविशेषता बन्द जवारी वाली सितार है। जिसके कारण तार सप्तक में भी द्रुत लय में भी स्वर साफ-साफ स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ते हैं। पं. रविशंकर जी की शैली की अपेक्षाकृत इन्होंने सितार के पर दो पर्दों को मोटा रखा है। खाँ साहब ने ''उस्ताद बन्दे अली खाँ से गाायन एवं सुरवहार वाद्य की तालीम प्राप्त की''[6]

वादन की विशेषताएँ एवं शास्त्रीय संगीत में योगदानः-

उस्ताद विलायत खाँ साहब की वादन शैली जटिल मुरकियों, भिन्न-भिन्न प्रकार की गमक, तानों की भिन्नता और इनके साथ एक ही पर्दे पर पाँच स्वरों की मीण्ड़ निकालने की क्षमता वाली रही। गतकारी में लयकारी काकाम, विलम्बित लयमें तानों का बुना हुआ मनोहारी जाल, द्रु त लय की गतों में लयको बड़ी कुशलता से सपाट तानों और गमक की तानों में पिरोना इनके वादन की विशेषता रही। आलाप में गंभीरता और राग को जीवंत कर देना, और जोड़ झाले में अलग-अलग लयों से और वादन की बारीकियों से सजाना खाँ साहब की विशेषता थी। झाले और उल्टे झाले में खाँ साहब भिन्न-भिन्न छंदों का प्रयोग करते थे।

सितार वादन के क्षेत्र में बाएँ हाथ का जो काम बढ़ा है और मिजराब के एक ही आद्यात में मीण्ड़ द्वारा लंबी स्वरावली निकालकर ''गायकी अंग की दिलकश बारीकियों को सितार पर उतारने की प्रवृत्ति का विकास, उस्ताद विलायत खाँ की वादन शैली की ही देन है''[7]

उस्ताद विलायत खाँ साहब ने भारतीय शास्त्रीय संगीत में सितार वाद्य को एक नया आयाम दिया है। इन्होंने अनेकों उच्च कोटि के शिष्य संगीत जगत को दिए हैं जिनमें उस्ताद सुजात खाँ, पं. अरविंद पारिख, कल्याणी राय, पं. हरविन्दर शर्मा, उस्ताद नरिन्दर नरूला, वीरेंद्र कुमार इत्यादि प्रमुख कलाकार हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः-

1. भटनागर, डॉ. रजनी, सितार वादन की शैलियाँ/प्रकाशक-कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स 4697/5-21ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
2. भृगुवंशी, डॉ. रचना, हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में तंत्र-वादन शैलियाँ/प्रकाशक-कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स 4697/5-21ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
3. गौरी (डॉ.), तंत्री वाद्य सितार एवं वादनीय बंदिशे/प्रकाशक निर्मला पब्लिकेशन्स ए-139, गली नंबर 3, कबीर नगर, शाहदरा दिल्ली-942006
4. Kasliwal, Dr. Suneera, Classical Musical Instruments \Publishers- Rupa and Co., Daryagang, First Edition-2001, New Delhi
5. शर्मा, डॉ. योगिता, हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत के तंत्री वाद्यों में परिवर्तन एवं प्रवृत्तियाँ/कनिष्ठ पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स 4697/5-21ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
6. गर्ग, डॉ. मुकेश, रवि शंकर के जस का राज/नवभारतटाइम्स, दैनिक समाचार पत्र, 7अप्रैल 1999 दिल्ली।

सन्दर्भ सूची -

1. सितार वादन की शैलियां, डॉ. रजनी भटनागर, पृ. सं. 226
2. हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में तंत्र वादन शैलियाँ, डॉ. रचना भृगुवंशी, पृ. 206
3. सितार वादन की शैलियाँ, डॉ. रजनी भटनागर, पृ. सं. 227
4. तन्त्री वाद्य सितार एवं वादनीय बंदिशें, डॉ. गौरी
5. Classical Musical Instruments –Dr. Suneera Kasliwal Page-150-151
6. हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत के तन्त्री वाद्यों में परिवर्तन एवं प्रवृत्तियां, डॉ. योगिता शर्मा, पृ. सं. 49
7. रवि शंकर के जस का राज - डॉ. मुकेशगर्ग, नवभारत टाइम्स, दैनिक समाचार पत्र, 7 अप्रैल 1999, दिल्ली

ISSN 2278 - 0327

पंकज सुबीर के उपन्यास 'अकाल में उत्सव' में 'कर्ज से ग्रस्त किसान'

स्वीटी
शोधार्थी हिन्दी-विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की 70 प्रतिशत आबादी गाँवों में निवास करती है और उनका मुख्य व्यवसाय खेती का कामकरना है। इनकी सारी उम्मीदें खेती पर निर्भर करती है परिवार का भरण-पोषण, स्वास्थ्य, शिक्षा सभी सुविधा पाने के लिए खेती करते हैं। हमारे जीवन का आधार अन्न है, अन्न के बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। अन्न की पूर्ति के लिए हमें किसानों पर निर्भर रहना पड़ता है। एक किसान दिन-रात खेतों में मेहनत करके अन्न उगाता है इसलिए किसान का दूसरा नाम अन्नदाता है। किसान का कोई धर्म, जाति, मज़हब नहीं होता। किसी भी वर्ग का किसान सिर्फ किसान ही है। किसान को हम किसी धर्म, जाति के बंधन में नहीं बांध सकते। किसान की ही मेहनत का कारण है जिससे समस्त मानव जाति को अन्न प्राप्त हो जाता है। कृषि से हमारे देश की अर्थव्यवस्था भी चलती है, लेकिन फिर भी उसे फसल का उचित मूल्य नहीं मिल रहा है। प्राचीन काल से उचित मूल्य नहीं मिल रहा है। प्राचीन काल से ही किसान राजा, महाराजा, अंग्रेजों तथा सरकारों द्वारा पिसता आ रहा है इनके शोषण का शिकार होता आ रहा है। आज तक इनका शोषण व अत्याचार कम होने का नाम नहीं ले रहा है। किसान की स्थिति और भी दयनीय होती जा रही है। खेती करने वाला किसान कहलाता है। किसान का शाब्दिक अर्थ है- (1) खेतीहर या (2) काश्तकार। 'हिन्दी शब्द सागर' के 'द्वितीयभाग' में 'किसान' शब्द को संज्ञावाची पुल्लिंग के रूप में रेखाकिंत किया गया है। ''(सं० कृषाणा, प्रा० किसान) (1) कृषि या खेती करने वाला खेतीहर (2) गाँव में नई-बारी आदि जिसके घर कमाते है, उन्हें किसान कहते है।''[1] संस्कृत-हिन्दी शब्दकोश (वामन शिवराम आप्टे) के अनुसार, ''कृषक (कृष + क्वन) (1) हलवाहा हाली किसान, (2) फाली, (3)बैल। कृषणा-कृषिक (कृषि आनक् किकन् वा) हलवाहा किसान।''[2] स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने किसान के बारे में बताया है कि ''किसान कहने में बहुत तरह के लोग आ जाते हैं ऐसे लोग अपने आपको किसान कहते है, कहने की हिम्मत करते है जिनके पास हजारों बीघा रैयती है लेकिन सच पूछा जाए तो वे जमींदार ही है ...''[3] साधारणतया किसान उसको कहा जाना चाहिए,जिसकी प्रधान जीविका खेती हो इसका आशय यही है कि प्रधान रूप में खेती के बिना जिसकी जीविका चल न सके, वह किसान कहने का दावा नहीं कर सकता। ऐसी दशा में जो लोग बहुत ज्यादा रैयती जमीन रखते है और कुछ खेती करके बाकी का दूसरों को बंदोबस्त कर देते है। उनकी जीविका तो खेती के बिना भी चल ही जाती है। दूसरा लाखों रूपये या लाखों मन गल्ला लगान के रूप में ले लेते जो है विपरीत इसके, जिसके पास जरामरा अपनी जमीन हो या न भी हो, मगर दूसरों से ही बंटाई वगैरह के रूप में ही कुछ जमीन लेकर खेती करें और मौका पाकर गैरों की खेती पर मजदूरी करें, वह किसान होता है। भूमि जोतों के आधार पर किसान की श्रेणियाँ-

1. बड़ा किसान - जिसके पास 10 हेक्टेयर से अधिककृषि योग्य भूमि हो। उसे बड़ा किसान कहते है।

2. मध्यम किसान - जिसके पास 4 हेक्टेयर से 10 हेक्टेयर भूमि हो, उसे मध्यम किसान कहते है।[3]

3. अर्द्धसम किसान - जिसके पास 2 हेक्टेयर से 4 हेक्टेयर भूमि हो उसे अर्द्धसम किसान कहते है।[4]

4. लघु किसान - लघु किसान से हमारा तात्पर्य देश के उन किसानों से है जिनकी कृषि जोत का आकार अर्थात् कृषि योग्य भूमि 1हेक्टेयर से 2 हेक्टेयर के बीच हो उसे लघु किसान कहते है।

5. सीमांत किसान - सीमांत किसान से हमारा तात्पर्य देश के उन किसानों से है जिनकी कृषि जोत का आकार अर्थात् कृषि योग्य भूमि 'एक हेक्टेयर' से कम है।

6. भूमिहीन किसान - भूमिहीन किसानों से हमारा तात्पर्य उन किसानों से है जिनके पास अपनी कोई जमीन या कृषि योग्य भूमि नहीं हैपरन्तु वे दूसरों की भूमि पर खेती कार्य करते है या जिसका जीवन निर्वाह कृषि पर आधारित है। भारत एक कृषि प्रधान देश है कृषि हमारे आर्थिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का माध्यम है भारत में लोग कृषि को एक उत्सव के रूप में मनाते है। हर फसल के बोने और काटने पर उत्सव मनाएं जाते है परन्तु इन सबके अलावा भी किसान के पास अनेक खर्चे होते है और कृषि में किसान के पास पैसा फसल की कटाई के बाद ही आता है उस पर भी अगर कोई प्राकृतिक आपदा आ जाए तो किसान के पास कुछ नहीं रहता सिवाय कर्ज लेने के। किसान का एक बार कर्ज लेना, उसे सदा के लिए कर्जवान बना देता है यह समस्या देश की आजादी से पहले भी और आज भी यूँ ही बनी है। अनेक सरकार आई और गई। परन्तु इनका समस्याओं का हल किसी ने नहीं किया। अधिकांश किसान तो कर्ज से परेशान होकर आत्महत्या का रास्ता अपना लेते है। महाजनों से कर्ज लेने के बाद किसान हमेशा के लिए कर्ज का शिकार हो जाता है और महाजनों द्वारा फिर किसान का शोषण शुरू हो जाता है। आजादी से पहले भी किसान की स्थिति बहुत बेकार थी ये महाजन किसानों से मनमाना ब्याज वसूल करते थे यहाँ तक की इन्होंने ब्याज के लिए पहाड़े भी अलग बना लिए थे। ये पहाड़े किसान को तो छोड़ो आम आदमी को भी समझ

नहीं आते थे। ब्याज की दरें भी ऊँची लगाई जाती थी और फिर ब्याज पर ब्याज भी शुरू कर देते। इतना कर्ज हो जाने के बाद किसान उसे चुकाने में समर्थ नहीं हो पाता धीरे-धीरे कर्ज इतना बढ़ जाता कि आत्महत्या के अलावा कोई रास्ता नहीं बचता। पंकज सुबीर जी ने भी अपने उपन्यास 'अकाल में उत्सव' में कर्ज से ग्रस्त किसान की समस्या को उठाया है, अपने उपन्यास के द्वारा समाज में बड़े महाजनों द्वारा कैसे किसान का शोषण किया जाता है यह दिखाया गया है। पंकज सुबीर ने अपने उपन्यास 'अकाल में उत्सव' में एक छोटे से आदिवासी गांव में रहने वाला मुख्य पात्र रामप्रसाद के माध्यम से दिखाया है कि किस प्रकार सूदखोरों का सूद बड़े विचित्र तरीकों से चलता था। ''रामप्रसाद का पिता जब मरा तो जमीन के साथ बैंक का, सोसायटी का सूदखोरों काकर्ज भी छोड़ गया था। इलाके में सूदखोरों का सूद बड़े विचित्र तरीके से चलता था जैसे आपने यदि मुझसे अभी इस महीने की दस तारीख को मतलब ठीक महीने के बाद दो हजार रूपये वापस करेंगे। यह कि आप मुझसे दस हजार रूपये अभी ले रहे है, जिनको आप छः माह बाद एक हजार रूपये प्रति माह के हिसाब से ब्याज देकर लौटाने की बात कर रहे हैं, तो आपको अभी दस हजार नहीं मिलेंगे, आप दस हजार पर अंगूठा लगाएंगे और मिलेंगे आपको केवल चार हजार। छः हजार तो ब्याज के कट गए न भाई। अब छः महीने बाद केवल दस हजार ही लौटाने है आपको यह सूदखोर अपने कर्ज की वसूली अपने ही तरीके से करते है। यह वसूल सकते है इसलिए देते है किसान की किस्मत तो कर्ज से बंधी ही है तो उसे लेना ही है। इस प्रकार के कर्जों से बंधी ही है तो उसे लेना ही है। इस प्रकार के कर्जों के प्रकरण में उस समय की तात्कालिक आवश्यकता ही देखी जाती है, भविष्य में फसल से चुका देने की उम्मीद पर कर्ज ले लिया जाता है बाद में पता चलता है कि फसल आने से पहले ही कोई और दूसरा बड़ा खर्च सामने आ गया और कर्ज के स्थान पर पूँजी प्रवाह उस ओर करना पड़ा। कर्ज तो कर्ज था, कब तक देखता, अंततः वह जमीनों को हड़प कर अपना पेट भर लेता। छोटी जोत के किसान के सिर पर आपको हर प्रकार का कर्ज मिलेगा, जितना छोटा उसका रकबा, उतने तरह का कर्ज।''[4] इस प्रकार 'पंकज सुबीर' जी ने दिखाया है कि इतने कितने ही भारत में रामप्रसाद जैसे किसान होंगे जो इस प्रकार ऋण से ग्रस्त है और इन महाजनों द्वारा शोषित किये जाते है। संजीव जी का उपन्यास 'फाँस' में भी किसान के कर्ज से ग्रस्त होने का विवरण किया है जैसे की 'फाँस' नाम से ही मालूम होता है कि किस प्रकार एक दिन किसान के सिर पर इतना कर्ज हो जाता है कि वह उसके गले का फांस बन जाता है संजीव जी ने अपने उपन्यास में दिखाया है जब 'फाँस' उपन्यास की एक पात्र जब महाजन से कर्ज लेने के लिए जाती है तो महाजन साहब उसे कहते है, ''दो सात हो गए। पहले का कर्ज ही सूद-मूल मिलाकर एक लाख के करीब जा पहुँचा अब तुम कहती हो कि तुम्हें और पैसे चाहिए...। इतना बढ़ जाएगा की कभी उतार नहीं पाओगी, फिर खेत ही लिखा देना पड़ेगा। मेरे को समझी वहिणी।''[5] इस प्रकार संजीव जी ने भी अपने उपन्यास में यही दृश्य दिखाया है कि महाजनों से पैसे लेने के बाद किसी भी किसान से उतरता नहीं है, आखिर में उसका कोई न कोई जेवर या खेत गिरवी रख दिए जाते है और इन लोगों के पास गिरवी रखी चीज कभी वापस किसान के हाथ या उनके गिरवी रखें गहने लौट कर नहीं आते। किसान खेती से वो लाभ नहीं कमा पाता जो उसे मिलना चाहिए, दिन प्रतिदिन खेती घाटे का सौदा बनती जा रही है अपनी दैनिक क्रियाएं करने के लिए भी किसान को ऋण लेना पड़ा है और यह ऋण भी सस्ती दर वाला नहीं होता, महंगी दर पर किसान ऋण लेकर अपना परिवार व खर्च चलाता है बैक से भी एक बार ऋण लेने के बाद, दोबारा तभी मिलता है जब पहले वाला चुका दिया जाता है ऊपर से भ्रष्ट प्रशासन बिना रिश्वत के कोई काम नहीं करता। संजीव ने अपने उपन्यास में सही कहा है- ''इस देश का किसान कर्ज में ही जन्म लेता है, कर्ज में ही जीता है और कर्ज में ही मर जाता है।''[6] ऐसी ही समस्या का चित्रण पंकज सुबीर जी ने भी अपने उपन्यास में चित्रण किया है कि किस प्रकार रामप्रसाद के पिता ने बच्चों की शादी में तथा परिवार में मृत्यु से भूमि पाँच एकड़ से दो एकड़ रह गई। ''किसान के सिर पर एक नहीं कई-कई चक्र घूमते है। कर्ज, मौसम, बीमारियाँ और न जाने क्या-क्या। तब तक घुमते है, जब तक उसका बेटा आकर पूछता नहीं। बेटा पूछता है और बस चक्र पिता के सिर पर से उतर कर बेटे के सिर पर आ जाता है ...। एक बहन की शादी हुई। भागीरथ की पढ़ाई और उसका गौना पिता के बाद हुआ और इन सबमें पिता ने जो पाँच एकड़ जमीन छोड़ी थी वह और भी घटकर केवल दो एकड़ रह गई।''[7] यह समस्या पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती रहती है पहले ये सब काम पिता देखता था पर पिता की मृत्यु के बाद बड़ा बेटा कब बाप का स्थान ले लेता है, पता भी नहीं चलता। बड़ा बेटा पूरे घर की जिम्मेदारी सम्भालता है। शादी से लेकर गौने तक, जन्म से लेकर मृत्यु तक सारी जिम्मेदारी बड़े बेटे के कंधों पर आ जाती है फसल से पैसे तो छह महीने में आते है, थोड़ी-थोड़ी भूमि हर अवसर पर चली जाती है किसान के पास इसके अलावा कोई चारा नहीं बचता। जिस किसान के पास दो बेटे हो तो जमीन भी दो हिस्सों में बट जाती थी। ऐसे ही रामप्रसाद के भी तीन बेटे है। कमला और रामप्रसाद भी तीनों बेटों के बंटवारे उनके अलग-अलग घर के बारे में सोचते है। ''पन सोचनो तो पड़ोगो कि नी सोचनो पड़ेगो ? जमीन में तो कँइ नहीं होने वालो बच्चों का। तीन बच्चा है, तीन की तीन गिरस्ती बनेगी, तीन घर बनेगे, तो कँइ कराँगा फिर। अभी से सोच के तो रखो किकइँ कइँ करनी है।''[8] भारत का किसान अपने बारे में कम सोचता है अपनी आने वाली पीढ़ी के बारे में ज्यादा। इसी प्रकार की चिंता कमला और रामप्रसाद को भी थी कि कैसे उसके तीनों बेटों का घर और जमीन का बँटवारा होगा। तीनों का अलग-अलग मकान बनाना था। परन्तु अब खुद वे एक कच्चे मकान में रह रहे थे। लेकिन बच्चों के बारे में बहुत कुछ सोच रहे थे। जब किसान के सारे जेवर खत्म हो जाते है तो फिर जमीन का नम्बर आता है यही हाल अब रामप्रसाद का हो गया था। कमला की आखिरी तोड़ी बिकने के बाद अब जमीन की बारी आने वाली थी। ये समस्या

समाज में और किसान के जीवन में आज वैसी ही है। सरकार भी किसान के बारे में कुछ नहीं सोचती, किसान हमेशा मानसिक तनाव से ग्रस्त रहता है परन्तु सब अपने बारे में सोचते है, अपने लाभ के बारे में किसानों के बारे में कोई विचार नहीं करता। ''अभी तक बचा हुआ एक जेवर, तोड़ी के रूप में इनकी छलाँग था, इनकी उछाल था। लेकिन अब समय ने उसे भी खत्म कर दिया। अब कुछ भी शेष नहीं है। दोनों के सामने भविष्य एक काली सुरंग के रूप में खड़ा था। सुरंग जो अब जमीनों को निगलने के लिए अपनी दाढ़ै पैनीकर रही थी।''[9] जिस प्रकार पंकज सुबीर जी ने अपने उपन्यास 'अकाल में उत्सव' में दर्शाया है ऐसा आज भी किसानों के साथ हो रहा है और वह चाहकर भी कुछ नहीं कर सकते। किसान इस कर्ज के दलदल में फंसता जा रहा है। कर्ज में किसान इतना डूब जाता है कि उसे आखिर में मौत का रास्ता अपनाकर ही इससे छुटकारा मिलता है। सूदखोर, कर्ज देने वाले तो किसान के साथ बुरा व्यवहार करते ही है पर सरकार भी इनका शोषण करती है। बहुत से किसान अपनी जमीन पर बैंक से कर्ज ले लेते है परंतु कुछ बड़े अफसर इनकी जमीन पर कर्ज लेकर उन्हें टाइम पर नहीं भरते जिससे जमीन की कुर्की के कागज बैंक द्वारा किसान के पास भेजे जाते है तब किसान को मालूम होता है जिस किसान ने कभी जमीन पर कर्ज ही नहीं लिया, फिर उसकी कुर्की के नोटिस आए है। ऐसा ही अनेक किसानों के साथ हुआ है। ''यह जो कुर्की है, यह अपने नाम से ही किसान को डराती है, कुर्की में वसूली से ज्यादा डर इज्जत उतरने का होता है। किसान, कर्जा, क्लेक्टर, कुर्की चारों नामों को साथ लेने में भले ही अनुप्रास अलंकार बनता है, लेकिन किसान ही जानता है कि इस अनुप्रास में जीवन का कितना बड़ा संत्रास छिपा हुआहै।''[10] इस प्रकार जब कुर्की के नोटिस किसान के पास आता है तो किसान उसे देखकर ही डर जाता है। कुर्की से जमीन और सामान तो जाता ही है साथ ही किसान की इज्जत भी जाती है। पंकज सुबीर ने भी उपन्यास में कुर्की की समस्या को व्यक्त किया है कि कैसे किसान कुर्की की समस्या को व्यक्त किया है कि कैसे किसान कुर्की के नाम से डरते है। कुर्की तो अपने नाम से किसान को डराती है यह समस्या सिर्फ उपन्यास में ही नहीं, आज पूरे भारत में यह समस्या देखी जा रही है कि कैसे किसान बैंकों से पैसा लेने के बाद जब जमा नहीं कर पाते तो कुर्की के नोटिस घर पर आ जाते है उसके बाद कैसे किसान आत्महत्या कर लेते है। ऐसी ही एक घटना राजस्थान में हुई एक 40 साल के किसान ने कुर्की के डर से फांसी लगा ली। आज यह समस्या राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, पंजाब, बिहार, हरियाणा, झारखण्ड आदि राज्यों में देखी जा सकती है। संविधान में भी हर नागरिक को जीने का अधिकार है लेकिन सरकार कानून, नियम किसान के लिए कुछ नहीं करते। किसान के पास कर्ज चुकाने का एक ही रास्ता बचता है वह है मौत को गले लगाना। ''पहले चल सम्पत्ति की कुर्की होती है जिसमें साइकल, मोटर साइकल, टैक्ट्रर और दूसरा घर का सामान जब्त कर लिया जाता है यह केवल और केवल किसान की इज्जत उतारने के लिए किया जाता है ताकि वह डर से पैसा जमा करवादे। उसके बाद किसान पैसा जमा नहीं कर पाता है तो उसकी जमीन की कुर्की की जातीहै।''[11] बैंक का कर्ज न चुकाने की कीमत किसान के लिए बहुत दुखदायी होती है। एक-एक करके किसान के सारे सामान की नीलामी की जाती है और एक-एक सामान के साथ किसान की इज्जत की नीलामी की जाती है। यह दृश्य किसी के लिए मरे से कम नहीं है। किसान समाज के सामने लज्जित हो जाता है और शर्म के मारे किसी को मुँह दिखाने लायक नहीं रहता। उनके पास आखिरी रास्ता कुएँ में डूब जाना था फांसी गले लगाना या जहर खाना बज जाता है। इस दु:ख की घड़ी में किसान की किस तरह इज्जत नीलाम होती है, इसका विवरण पंकज सुबीर ने अपने उपन्यास में बहुत ही अच्छे ढ़ंग से किया है और यह समस्या आज अनेक किसानों के सामने आ रही है। यदि समय रहते सरकार द्वारा ठोस कदम नहीं उठाए गये तो शायद किसान वर्ग धीरे-धीरे समाप्त हो जाएगा। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि किसान का जीवन बहुत ही दयनीय है। अर्थ न होने के कारण उसे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। किसान को आर्थिक बदहाली और कर्ज के दलदल से निकालने के लिए सरकार भले ही लाख दावे करें, लेकिन जमीनी हकीकत यही है कि अन्नदाता इस जाल से निकलने के लिए जान देने को मजबूर है। अभी हाल ही में एक ऐसी घटना उत्तरप्रदेश के लखीमपुर खीरी जिले से एक किसान के फांसी लगाकर आत्महत्या कर लेने की घटना सामने आई। दिवंगत किसान की पत्नी ने कहा कि बैंक वालों का कर्ज न चुका पाने के कारण बैंक वालों ने घर कुर्क करने की धमकी दी थी जिससे तंग आकर किसान ने आत्महत्या कर ली। सरकार भी किसान से झूठे वादे करके सिर्फ वोट लेती है उसके बाद किसान की हालत देखने कोई नहीं आता, कर्ज माफी के बड़े-बड़े दावे करती है किसान उसी आस में रहता है कि शायद लोन माफ हो जाए, पर ऐसा नहीं होता। उसकी सारी आस पर पानी फिर जाता है आखिरकार उसकी कुर्की कर ली जाती है और किसान को मौत के मुँह में छोड़ दिया जाता है। पंकज सुबीर ने किसानों की समस्याओं को अपनी आँखों से देखा है तथा निर्मम पड़ताल अपने इस उपन्यास में की है बिना भेदभाव और डरे सरकारी तंत्र को बेनकाब किया है। आज अगर सबसे ज्यादा कोई ठगा जाता है तो वह सिर्फकिसान है, ये सबसे ज्यादा आत्महत्या कर रहे है सबसे ज्यादा बदहाल आज किसान है दुनिया का पेट भरता है और अपना सारा जीवन खेती में निर्लिप्त कर देता है फिर भी कर्ज की मार किसान को आत्महत्या करने के लिए विवश करती है बस पीछे एक सवाल छोड़ जाता है आखिर किसान कब तक ऐसा करने के लिए मजबूर रहेंगे। क्या कोई इनकी समस्याओं को हल नहीं करेगा ?

सन्दर्भ सूची

1. मूल सम्पादक श्यामसुंदर दास, 'हिन्दी शब्द सागर', द्वितीय भाग (3 भ्वैलिया तक शब्द संख्या 20000)बी०ए०, पृ० 656
2. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत-हिन्दी कोश, पृ० 299
3. स्वामी सहजानन्द सरस्वती, खेत, मजदूर और झारखण्ड के किसान, पृ० 59
4. पंकजसुबीर, अकाल में उत्सव, पृ० 8
5. संजीव,फांस, पृ० 139
6. वही, पृ०15
7. पंकज सुबीर, अकाल में उत्सव, पृ० 9
8. वही, पृ० 107
9. वही, पृ० 159
10. वही, पृ० 29
11. वही, पृ० 182

ISSN 2278 - 0327

हिन्दी साहित्य और ललित निबंध का विवेचन

नवीना
पी-एच. डी. शोधार्थी
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

शोध सार:-

हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल को गद्य काल के नाम से जाना जाता हैं। गद्य की विधाओं में कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध और अन्य छन्दमुक्त रचनाओं को शामिल किया जाता हैं। निबंध का उद्भव आधुनिक काल में ही हुआ है। हिन्दी साहित्य में निबंध लेखन पत्रकारिता से प्रभावित रहा। भारतेन्दु युग के सभी निबंधकार सम्पादक थे। निबंध के मुख्यत: चार भेद माने जाते हैं। वर्णनात्मक, कथात्मक या विवरणात्मक, विचारात्मक और भावात्मक निबंध। किंतु गणपतिचन्द्र गुप्त आत्मपरक अन्य भेद भी माना, जो ललित निबधों से सम्बंधित रहता था। भावात्मक और आत्मपरक निबंध में संवेदना और रागात्मकता की प्रमुखता होती है। इसमें निबंधकार का उद्देश्य अपनी अनुभूतियों को सरल तरीके से पाठकों के हृदय तरीके से पाठकों के अन्तर्गत आते है। ये विक्षेप, तरंग, धारा और प्रलाप शैली में लिखे जाते हैं। हिन्दी साहित्य में प्रमुख ललित निबंधकार कुबेरनाथ राय, विद्यानिवास मिश्र विवेक राय, हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और डॉ. सन्तराम देशवाल आदि प्रमुख हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में हिन्दी साहित्य में ललित निबंधों के स्वरूप का विस्तृत विवेचना करेंगे।

मूल शब्द:-ललित, रागात्मकता, आत्मपरक, संवेदना, वर्णनात्मक, विवरणात्मक, विचारात्मक।

प्रस्तावना:-

निबंध शब्द की व्युत्पत्ति 'नि' उपसर्ग में बंध को जोड़ने से बना है, जिसका अर्थ अभिलेख, लेख, प्रस्ताव, संदर्भ रचना इत्यादि है। संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर में रामचन्द्र वर्मा के अनुसार 'गद्य में लिखित साहित्यिक प्रबंध और रोचक गुंफन, लेख'[1] इसका अर्थ यह है कि अपने विचारों को बाँधना ही 'निबंध' कहलाता है। निबंध गद्य की आधुनिक विधा है। इसमें निबंधकार अपनी मन की प्रवृत्ति एवं रुचि के अनुसार विचारों की शृंखला शिथिल या सुगठित एवं व्यवस्थित दोनों ही तरह से कर सकता हैं। निबंध साहित्य के जनक फ्रेंच साहित्यिकार महत्व दिया।[2] वहीं अंग्रेजी-साहित्य के प्रथम निबंधकार लार्ड बेकन ने निबंध को बिखरावयुक्त चिन्तन कहा है। मानतेन ने अपने निबन्धों के लिए 'ऐसे' (मेंल) शब्द का इस्तेमाल किया जिसका अर्थ 'प्रयोग' होता है।

हिन्दीं साहित्यकारों में डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त के अनुसार 'जब किसी भी विषय या विचार का प्रतिपादन कल्पना एवं अनुभूति के सहयोग से आकर्षक शैली में किया जाता है। तो उसे साहित्यिक निबन्धों में स्थान दिया जाता है'[3]। भगीरथ मिश्र निबंध को प्रभावित करते हुए लिखा '' निबंध वह गद्य रचना है, जिसमें लेखक किसी भी विषय पर स्वच्छन्दतापूर्वक परंतु एक विशेष सौष्ठव, सजीवता, संहिति और वैयक्तिता के साथ अपने भावों विचारों और अनुभावों को व्यक्त करता है।''[4] हिन्दीं में प्रथम निबंध 'राजा भोज का सपना' शिवप्रसाद सितारे हिंद द्वारा लिखित माना जाता है। किंतु राजा शिवप्रसाद के बाद हिन्दी में निबंध की सुव्यवस्ति रूप में प्रारंभ होती है। इसी कारण भारतेन्दु को हिन्दीं में निबंध का वास्तविक जनक माना गया। अत: हिन्दी निबंध लेखन भारतेन्दु काल से ही मानना चाहिए।

हिन्दी साहित्य में निबंध के सिरमौर कहे जाने वाले आचार्य शुक्ल ने कहा है कि ''यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी है, भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबंधों में भी सर्वाधिक सम्भव है।''[5] यहाँ शुक्ल जी कविता लिखने की तुलना में गद्य लेखन में लय और तुक के बने-बनाए खांचे मौजूद होते हैं, किंतु गद्य लेखन की अन्य विधाओं जैसें कहानी, उपन्यास या अन्य की तुलना में निबंध लेखन कठिन कार्य है, क्योंकि निबंध लेखन में घटनाओं, पात्रों, चरित्रों और कल्पनाओं की स्वतंत्रता नहीं रहती। निबंधकार बिना किसी छिपाव के प्रत्यक्ष पाठक के सामने उपस्थित होता है। प्रत्येक क्षण भय रहता है कि पाठक ऊबकर पृष्ठ न पलट दे। ललित निबंध लेखन में लेखक अपने भावों और कल्पनाओं से पाठक को बाधें रखता है। कुबेरनाथ राय इसे स्वयं में पूर्ण विधा मानते है ''ललित निबंध ऐसी गद्य विधा है जो एक ही साथ काव्य और शास्त्र दोनों है। एक ही साथ आगे-पीछे के क्रम में नहीं। महाकाव्य भी शास्त्र और काव्य दोनों होता है। किंतु पहले वह काव्य है इसके बाद शास्त्र। प्रत्येक महाकाव्य के हृदय में कोई न कोई शास्त्र अर्थात् दर्शन अवश्य रहता है। वैसे ही ललित निबंध भी मौज-मस्ती-शौकीय आनन्द से जुड़ी वस्तु नहीं है। इसमें एक व्यक्त या अव्यक्त जीवन-दृष्टि रहती हैं। यह शुद्ध गद्य-काव्य न होकर एक दृष्टि-सम्पन्न विधा है। इसी से यह एक ही साथ काव्य और शास्त्र दोनों है। ललित निबंध

स्वयं में पूर्ण और सम्पूर्ण वाङ्मय है।[6]

ललित निबंधों में वैयाक्तिकता एक प्रमुख लक्षण है। ललित निबंध गद्यमयी सर्जनात्मक रचना होती हैं। जिसमें किसी विषयवस्तु के माध्यम से लेखक अपने हृदय की भावतरंगों को अभिव्यक्त करता है।

ललित निबंधों में बौद्धिक विवेचना गौण और भावात्मक विषय के लिए संवेगात्मक प्रतिक्रिया अधिक रहती है। इन निबंधों में पाठकों में रोमांच पैदा करनी की क्षमता होती है। तथ्यात्मक और बौद्धिक ज्ञान कम ही रहता हैं। इसी कारण इन निबंधों में वैयाक्तिकता की प्रमुखता होती है। इसी संदर्भ में डॉ. रमेशचन्द्र लवानिया कहते है, कि ''ललित निबंध गद्य साहित्य की वह विधा है, जिसमें निबंधकार किसी भी विषय को आधार बनाकर अपने व्यक्तित्व को स्वच्छन्द गति से ललित शैली में अभिव्यक्ति प्रदान करता है।''[7] यहाँ प्रयुक्त ललित शब्द को डॉ. रमेश कुन्तल मेघ एक विशेषण के रूप में देखते है। किंतु उनकी दृष्टि में ललित निबंध ''सर्जनात्मक साहित्य की जितनी भी विधियाँ हो सकती है, जिनसे सरसता और सौन्दर्य होता है। वे सब ललित विशेषण युक्त निबंध में स्थान पा जाती है।''[8]

हिन्दी साहित्य में डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने निबंध के पाँच प्रकार की व्याख्या की है। विचारात्मक निबंधों में गम्भीर विषयों को आधार बनाकर लिखे जाते हैं। दूसरी तरफ के निबंध भावात्मक निबंध जिनके अर्न्तगत भाव और मन की प्रधानता रहती है। इनमें वैयक्तिक, संस्मरणात्मक तथ्यों, हस्य-व्यंग्य और संवेदनशीलता रहती है। डॉ. रामचन्द्र द्वारा रचित करूणा, उत्साह जैसे मनोविकार से सम्बन्धित निबंध इसी श्रेणी के है। इन निबंधों में ललित निबंधों की झलक मिलती है। वर्णनात्मक निबंध में तथ्य, घटना, स्थान, वस्तु, दृश्य आदि का क्रमबद्ध वर्णन होता है। विवरणात्मक निबन्धों में ऐतिहासिक, पौराणिक और सामाजिक घटनाओं को आधार बनाया जाता है। अंतिम प्रकार आत्मपरक निबंध जिनमें निबंधकार का व्यक्तित्व संपूर्णता से उभरता है। वर्तमान काल में लिखे जाने वाले ऐसे निबन्धों में लालित्य का समावेश, विषयवस्तु शैली और भाषा में किया जाता है। निबंधकार की प्रखरता लोक, लोक संस्कृति एवं भाषा और शैली सौन्दर्य में दृष्टिगोचर होता है। डॉ. विवेकी राय, देवेन्द्र सत्यार्थी और डॉ. सन्तराम देशवाल हिन्दी के प्रमुख ललित निबंधकार है। वर्तमान समय में डॉ. सन्तराम देशवाल द्वारा रचित ललित निबधों में भारतीय लोक संस्कृति के मूलभूत तत्वों को समझने में सहायक सिद्ध होते हैं।

निष्कर्ष-

निबंध साहित्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को चित्रित कर रहा है। इसका क्षेत्र अत्यंत विस्तृत बन गया है। ललित निबन्धों के पाँच मुख्य तत्व भाव, विचार, संवेदना, शैली और कल्पना साहित्य की अन्य विधियों काव्य, कहानी, नाटक और आत्मकथा के तत्वों से प्रेरित करती है। यह अन्य विधाओं से कठिन किंतु लेखक अपना व्यक्तित्व निबंध के माध्यम से प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता रखता है।

संदर्भ सूची:-

1 मनोज कुमार मिश्रा, हिन्दी साहित्य का सरल एवं संक्षिप्त इतिहास, पृ. 315
2 डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य साहित्य, पृ. 70
3 मनोज कुमार मिश्रा, हिन्दीं साहित्य का सरल एवं संक्षिप्त इतिहास, पृ. 315
4 मनोज कुमार मिश्रा, हिन्दी साहित्य का सरल एवं संक्षिप्त इतिहास, पृ. 315
5 डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दीं का गद्य साहित्य, पृ. 439
6 श्रीराम परिहार, ललित निबंध स्वरूप एवं परम्परा, पृ. 37
7 श्रीराम परिहार, ललित निबंध स्वरूप एवं परम्परा, पृ. 45
8 सं. डॉ. कुमार विमल, अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ. 146
9 ललित निबंध, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा

ISSN 2278 - 0327

मैथिलीशरण गुप्त की नारी दृष्टि : साकेत, यशोधरा और विष्णुप्रिया के संदर्भ में

सुनील कुमार
शोधार्थी, हिंदी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ
एम.ए. हिन्दी, नेट, एचटेट, बी.एड., पी.जी.डी.सी.ए., एम. फिल.

शोध-सार- राष्ट्रीय नवजागरण के कुछ अहम मुद्दों में एक मुद्दा समाज में नारी की स्थिति या उसके अस्तित्व को लेकर सामने आया। नवजागरण काल सुधार और परिवर्तन का युग था। जब राजनेता और महान् समाज सुधारक समान भावना से राष्ट्र के हित के लिए लड़ रहे थे तभी द्विवेदी युग के महान् साहित्यकार मैथिलीशरण गुप्त ने साहित्य क्षेत्र में प्रवेश किया तब उनके सामने नारी अस्तित्व की समस्या आई। इनकी रचनाओं में तत्कालीन युग बोध में राष्ट्रीयता के साथ-साथ भारतीय संस्कृति एवं नारी का भी चित्रण हुआ है। समाज में नारियों की सोचनीय स्थिति पर गुप्त भी व्याकुल थे। साहित्य इतिहास के उत्तरमध्यकाल में तो नारी केवल राजदरबार की नर्तकी तथा राजा के समय व्यतीय की वस्तु मात्र बनकर रह गई थी, जिसका विरोध नवजागरण काल के दौरान दिखाई देता है। गुप्त जी रीतिकालीन नारी के स्थान पर प्राचीन कालीन नारी को पुन: प्रतिष्ठित करना चाहते थे। गुप्त जी ने उपेक्षिता नारियों को ही अपने काव्य का विषय बनाकर समाज में उनके प्रति सहानुभूति दिखाई है। इसी कारण उनके काव्य में वर्णित उर्मिला और कैकेयी (साकेत), यशोधरा (यशोधरा), उत्तरा (जयद्रथ वध), विष्णुप्रिया (विष्णुप्रिया), द्रौपदी (जय भारत) आदि तमाम नारियों के चरित्र में उनके त्याग, बलिदान, तप, करुणा, दया आदि गुणों का समावेश किया है। इनकी नारी-भावना विशेष रूप से विष्णुप्रिया, यशोधरा, साकेत काव्यों में मिलती है। इन काव्यों की नायिका पुरुष के विरह में तपती है। इनके नारी पात्र घोर संकट से जुझने के पश्चात् अपने कर्तव्य और कर्म से दूर नहीं रहती, बल्कि पूरी निष्ठा से उनका पालन करती है। गुप्त जी नारी विषयक अवधारणा अधिक विस्तृत और बहुपक्षीय थी इसी विस्तार में उन्होंने नारी को विभिन्न रूपों पत्नी, माता, पुत्री, भगिनी आदि का चरित्र-चित्रण किया है।

मुख्य शब्द : गौरवान्वित, अस्तित्व, स्वाभिमानी, मर्यादा, आदर्शवादिता, सहानुभूतिपूर्ण।

परिचय:- मैथिलीशरण गुप्त भारतीय नवजागरण के उन्नायक कवि थे। इनका जन्म सन् 1886 ई. में चिरगाँव, झाँसी के एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार में हुआ। काव्य रचना की भावना उन्हें विरासत में मिली। उन्हें भारत के उज्ज्वल और सम्मानित अतीत से विशेष अनुराग था लेकिन वर्तमान की उपेक्षा उन्होंने कभी नहीं की। उनके काव्य में प्राचीन और नवीन का समन्वय है। राष्ट्रकवि के नाम से विख्यात गुप्त जी ने भारतीय संस्कृति, स्वदेशानुराग तथा नारी दृष्टिकोण को कविता का विषय बनाया। भारतीय नारी की जिंदगी दीर्घकालीन दबाव और प्राचीन परंपराओं के कारण आदर्श और संस्कृति से हटकर शुष्क हो गयी थी, जिसका विरोध कर गुप्त जी ने स्त्री के प्रति सहानुभूति दर्शाई। रीतिकाल में नारी के केवल शृंगारिक रूप को ही महत्त्व दिया गया था, लेकिन गुप्त जी ने उनके विभिन्न रूपों, मनोभावों और चिन्तन को काव्य में गौरवमयी स्थान प्रदान किया है। भारतीय नारी के अबला जीवन की करुणामयी दशा और ममत्व की सहानुभूतिपूर्ण ढंग से रचना का विषय बनाया है। उनकी नारी पुरुष से अधिक त्यागमयी और गौरवान्वित है। ''साकेत'' महाकाव्य में आरम्भिक सर्गों में लक्ष्मण व उर्मिला के व्यक्तित्व को चित्रित करके उर्मिला को महाकाव्य का केन्द्र बनाया है। आरम्भ में वह प्रेमिका रूप में है किन्तु नवें-दसवें सर्ग में वह विरहणी रूप में सामने आती है। समाज में नारी को सम्मानित स्थान देने के लक्ष्य से 'भारत-भारती' के अतीत खण्ड में उनका चित्रण पतिव्रता के रूप में किया है। यशोधरा के माध्यम से गुप्त जी यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि स्त्री को कर्त्तव्य पथ में बाधक न समझकर सर्वदा सहायिका मानना चाहिए। 'विष्णुप्रिया' की नायिका पति के विरह में तपते हुए भी परिवार का पालन करती है यही उसका त्यागमय मूर्ति रूप सामने आता है। गुप्त जी ही ऐसे कवि थे जिन्होंने नारी के वियोग, त्याग, बलिदान, उसकी पहचान, अन्यायों के विरुद्ध इस आंदोलन को काव्य का विषय बनाकर नारी समाज के प्रति उदारता दिखाई

विश्लेषण:- गुप्त जी ने इतिहास पुराण में वर्णित कथा प्रसंगों के आधार पर कल्पना मिश्रित उज्ज्वल उदाहरण लेकर आदर्शनारी चरित्रों के माध्यम से असत् पर सत् की विजय दिखाई है। महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित ''कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता'' शीर्षक से मैथिलीशरण गुप्त का कवि हृदय उत्साहित और अनुप्रेरित हुआ और उन्होंने उपेक्षित नारियों के पुन: उत्थान एवं उद्धार का मार्ग अपनाया जिससे उनके व्यक्तित्व विकास में सहायता प्राप्त हुई।

गुप्त जी ने साकेत में उर्मिला के माध्यम से नारी समाज पर विचार किया कि पुरुषों के वैराग्य से स्त्री का क्या सम्बन्ध है और आधुनिक दृष्टि से इसका समाधान क्या हो। लक्ष्मण के प्रति उर्मिला का प्रेम तथा कर्तव्य पालन लक्ष्मण के वनगमन के पश्चात् नवम सर्ग में वर्णित है यहीं उर्मिला का विरह उमड़कर बाहर आता है। उर्मिला अपने पति की

मूर्ति को अपने हृदय मंदिर में स्थापित करके उसकी अर्चना के लिए स्वयं ही आरती बनकर विरह रूपी अग्नि से जलती रही –

'' मानस मन्दिर में सती, पति की प्रतिमा थाप,
जलती-सी उस विरह में बनी आरती आप
आँखों से प्रिय मूर्ति थी, भूले थे सब भोग,
हुआ योग से भी अधिक उसका विषम-वियोग।।'' [1]

गुप्त जी ने उर्मिला के त्याग और बलिदान को समाज के लिए प्रेरक माना है। कवि ने लक्ष्मण के विचारों से पूरी नारी जाति की महता पर प्रकाश डाला है। जब लक्ष्मण के वनगमन के समय उर्मिला स्वयं को अनाथ, अबला और शक्तिविहीन कहकर विरह में तपा रही थी तब लक्ष्मण उसे संबोधित करते हुए कहते हैं कि कौन तुम्हें अनाथ और अबला कहते हैं। संसार की समस्त शक्ति, वीरता, गंभीरता सब तुम पर न्यौछावर है। यहां भारतीय नारी के महत्त्व को दर्शाते हुए कवि लिखते हैं –

'' अवश-अबला तुम? सकल बलवीरता,
विश्व की गम्भीरता, ध्रुव धीरता,
बलि तुम्हारी एक बांकी दृष्टि पर
मर रही है, जी रही है सृष्टि पर।।'' [2]

गुप्त जी नारी को पुरुष का पूरक अंग मानते हुए उसे स्वतन्त्र व्यक्तित्व, स्वाभिमानी, स्वावलंबी बनाना चाहते हैं उसे समाज का महत्त्वपूर्ण अंग स्वीकारते हुए सांस्कृतिक व मर्यादावादी बनाना चाहते हैं। नारी के बिना एक परिवार और समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती लेकिन फिर भी उसकी स्थिति निस्सहाय और निरीह तथा दयनीय है। स्त्री के बिना पुरुष का अस्तित्व संभव नहीं है। वह तो जीवन जीने की प्रेरणा, शक्ति की प्रतिमूर्ति है। 'यशोधरा' की स्थिति देखकर कवि पूरी नारी जाति के लिए लिखते हैं –

'' अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।।'' [3]

गुप्त जी भारतीय समाज की नारी को दायित्वों और कर्तव्य पालन को निर्वाह करते हुए प्रतिष्ठित किया है। विष्णुप्रिया सामान्य गृहिणी है। 'विष्णुप्रिया' में स्त्रियों को त्यागी, बलिदानी, तपस्विनी एवं परिवार व समाज कल्याण के लिए पतिव्रता एवं व्रतधारणी होना आवश्यक माना है। यही भारतीय संस्कृति की मान्यताएं है। चैतन्य महाप्रभु को धर्म प्रसार एवं मानव कल्याण के लिए गृह त्याग करना पड़ता है। जब वे विष्णुप्रिया से गृहत्याग की आज्ञा माँगते है तो वह समस्त नारी-जाति की विवशता और लाचारी का बोध कराते हुए कहती है कि मैं कुछ और कर भी नहीं सकती। रोना ही भाग्य में लिखा कर आई थी। अपने पति की भर्त्सना करते हुए –

'' कौन योग पूर्ण होगा त्याग कर मुझको?
धर्म के विरूद्ध ही तुम्हारा यह कर्म है।।'' [4]

चैतन्य महाप्रभु जब अपनी भक्ति साधना के लिए गृह-त्याग देते हैं तब विष्णुप्रिया पति के विरह को सहते हुए भी परिश्रम करके अपने पारिवारिक कर्तव्यों का निर्वाह करती है। गुप्त जी ने उसके चरित्र को स्वाभिमानी और कुशल गृहिणी के रूप में स्थापित किया है। गौरांग प्रभु जब अपनी साधना पूर्ण करके घर वापिस आते है तो वह अपना सम्पूर्ण दु:ख, त्याग भूलाकर स्नेह पूर्व उनका स्वागत करती है और प्रिय के आदेश से ईश्वर में ध्यानमगन करती है तब चैतन्य महाप्रभु उनकी साधना और तप-त्याग से प्रभावित होकर कहते हैं –

'' हाय! प्यारी विष्णुप्रिया! बोले हंसकर ही
तुम अवरोधिनी नहीं, अब हो प्रबोधिनी।'' [5]

गुप्त जी की काव्य कृति 'यशोधरा' में यशोधरा भी विरही एवं दयनीय जीवन जीने को मजबूर है। गौतम बुद्ध जब अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिए गृह त्याग देते हैं तथा अर्धांगिनी यशोधरा को निद्रावस्था में ही छोड़ बिना अनुमति लिए चले जाते हैं तब यशोधरा स्वयं को अपमानित और तिरस्कृत समझती हुए कहती है कि नारी के बिना संसार का सृजन सम्भव नहीं है फिर भी उसे सिद्धि मार्ग में बाधा समझते हुए बताना भी नहीं चाहते। यशोधरा स्वयं के अपमान और विरह को सहन नहीं कर पाती और वह कहती है –

'' सिद्धि हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात,
पर चोरी-चोरी गये, यही बड़ा व्याघात,
सखि वे मुझसे कहकर जाते,
कह, तो क्या वे मुझसे अपनी पथ-बाधा ही पाते।।'' [6]

इनके नारी पात्र न सिर्फ विरहिणी बनकर विरह ही का आलाप करती है बल्कि पति वियोग में रहते हुए भी अपने कर्मों का पालन करती है। यशोधरा को जब बिना बताए गौतम बुद्ध चले जाते है वह दु:खी होती है उसके सामने सम्पूर्ण नारी जगत का कष्ट आता है तब वह अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए संघर्ष करते हुए आदर्शवादिता का पालन करते हुए जागरूकता का भाव समाज के सामने प्रस्तुत करती है। पति के त्याग के बाद उसे माता और पिता दोनों के दायित्वों का पालन करते हुए पुत्र राहुल के साथ जीवन जीना पड़ता है। विरह वेदना के साथ-साथ यशोधरा में अटल विश्वास, गम्भीर स्वर, पारिवारिक कर्तव्य और त्याग को सहज स्वीकार और सहन किया है। स्वयं को मोक्ष-प्राप्ति के मार्ग में बाधा समझे जाने और बिना बताये पति द्वारा छोड़कर जाने का कष्ट उन्हें अस्वीकार है और इसी का विरोध करते हुए कहती है –

'' सिद्धि-मार्ग का बाधा नारी! फिर अभी क्या गति है?
पर उनसे पूछूँ क्या, जिनकी मुझसे आज बिरति है,
अर्ध विश्व में व्याप्त शुभाशुभ मेरी भी कुछ मति है।
मैं भी नहीं अनाथ जगत में, मेरा भी प्रभु पति है।
यदि मैं पतिव्रता तो मुझको कौन भार-भय-भारी?
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी।।'' [7]

यशोधरा के माध्यम से गुप्त जी पूर्ण भारतीय नारी समाज का संघर्ष,

त्याग, स्वाभिमान और नवीन विचारों से भर दिया है।

नारी न सिर्फ अव्वल है समय आने पर वह अन्यायों और अत्याचारों का विरोध भी करती है। गुप्त जी भारतीय संस्कृति की मर्यादा की रक्षा करते हुए महा..... के त्याग के पीछे छिपी नारी की वेदना को सामने लाते है। कवि स्पष्ट करते है समाज ने नारी को अबला की संज्ञा दी है लेकिन वह समाज की प्रेरक शक्ति भी है। 'साकेत' में उर्मिला लक्ष्मण के विरह को सहते हुए आदर्श भारतीय नारी का चित्रण प्रस्तुत करती है। विरह की अवस्था में अपने कर्म से विचलित नहीं होती। कभी-कभी आवेश में आकर वह कह देती है कि प्रिय आकर उसकी सुध ले लेकिन अगले ही क्षण वह उन्हें कर्तव्य बोध कराते हुए कहती-

'' भूल अवधि-सुध प्रिय से
कहती जगती हुई कभी-आओ।
किंतु कभी सोती तो
उठती वह चौंक बोलकर-जाओ।।'' [8]

उर्मिला चौदह वर्ष तक पति से वियोग होने के पश्चात् भी अपनी मान-मर्यादा को बनाए रखती है। गुप्त जी स्पष्ट करते है कि भले ही समाज में नारी को कमजोर, अबला, शक्तिविहीन तथा मार्ग में बाधक समझा जाए लेकिन वह अपने हर रूप में कर्त्तव्यपरायण है। पुरुषों की तरह वह भी अपनी मातृ भूमि के लिए बलिदान कर सकती है। उर्मिला के स्वर में वह गूँज स्पष्ट सुनाई देती है जब शत्रुघ्न द्वारा लंका जैसी स्वर्ण नगरी लूटने का आदेश मिलता है तब वह कहती है नहीं, उस पापी, अन्यायी रावण का स्वर्ण महल भले ही समुद्र में पलायन करदो लेकिन घर में मत लेकर आना। अपनी मातृभूमि की मर्यादा का सदैव तुम ध्यान रखना -

'' नहीं नहीं, पापी का सोना
यहाँ न लाना, भले सिन्धु में वहीं डूबेगा।
मातृभूमि का मान ध्यान में रहे तुम्हारे
लक्ष लक्ष भी एक लक्ष रखो तुम सारे।।'' [9]

गुप्त पत्नी के साथ-साथ माता के रूप में भी आदर्श प्रस्तुत करते हैं। राम वनगमन जाते समय माता कौशल्या से आशीर्वाद लेकर विदा माँगते है तब वह अपने मन में कष्ट लेकर भी वीर माता के समान राम को विदा करती है। वह अनुग्रह करते हुए धर्म की मर्यादा को बनाए रखने का संदेश देते हुए कहती है -

'' जाओ, बेटा! वन ही
पाओ नित्य धर्म-धन ही
जो गौरव लेकर जाओ
लेकर वही लौट आओ।।'' [10]

उन्होंने कैकेयी जैसी नारी को भी अन्य माताओं के समान सम्मान दिया है। 'साकेत' से पूर्व या पश्चात् के सभी काव्यों में कैकेयी को कलंकित, स्वार्थी, अन्यायी, पानी नारी के रूप में चित्रित किया है, लेकिन गुप्त जी ने साकेत में उसे कल्पना के माध्यम से पश्चाताप की अग्नि से पवित्र उज्ज्वल माता का रूप प्रदान किया है। कैकेयी पश्चाताप करते हुए भरत से कहती है -

'' मैं स्वयं पति धातिनी हू हाय!
जीव जीवन-मृत्यु का व्यवसाय
तो सुनो, यह क्यों हुआ परिणाम
प्रभु गये सुरधाम, वन को राम
मांग मैं ने ही किया कुल केतु
राजसिंहासन तुम्हारे हेतु।।'' [11]

गुप्त जी की नारी भावना को हम डॉ. आशा गुप्त के शब्दों में समझ सकते हैं- ''गुप्त जी की दृष्टि में नारी व्यक्तित्व के दो पक्षों को स्पष्ट रूप से लक्ष्य किया है पहला पक्ष है नारी का पत्नित्व एवं मातृत्व और दूसरा पक्ष है नारी की स्वतन्त्र सत्ता और महत्ता। ये दोनों जब नारी के जीवन में सहायक और उन्नायक बने, गुप्त जी को स्थिति अभीष्ट जान पड़ती है।''[12]

निष्कर्ष - मैथिलीशरण गुप्त की नारी सम्बन्धी काव्य कृतियों को अध्ययन करते समय हमें ऐसा महसूस होता है कि कवि 'नारी मुक्ति आंदोलन' के वक्ता थे। हिन्दी साहित्य के इतिहास में गुप्त जी ही ऐसे कवि थे जिन्होंने इस आंदोलन को क्रांतिकारी रूप देकर कविता का विषय बनाया। उन्होंने नारियों को पुरुष के बराबर माना। समाज में उन्हें हर क्षेत्र में अग्रणी रहने की प्रेरणा दी है। उन्होंने अपनी सभी काव्य कृतियों में नारी के त्यागमय रूप को स्पष्ट किया है और उनके प्रति सहानुभूति रखकर पुरुषों को जागृत करने का प्रयास किया है कि वे अपनी इच्छा से स्त्रियों को उनका अधिकार दे। उर्मिला, यशोधरा, विष्णुप्रिया जैसी नारियों ने जो विरह वेदना सहते हुए तपस्विनी जीवन जीते हुए अपने पतियों को जो सम्मान, यश, प्रतिष्ठा दिलवाई उनका श्रेय इन नारियों को ही जाता है। गुप्त जी ने अपनी रचनाओं द्वारा जो जागृति भारतीय समाज में पैदा की उसकी गूंज आज भी सुनाई देती है जिससे पुरुष नारियों के प्रति अपनी कठोरता को कम कर सके और उन्हें प्रतिष्ठित जीवन दे सकें।

संदर्भ-

1. गुप्त जी, साकेत, पृष्ठ -144
2. वही, पृष्ठ -9
3. मैथिलीशरण गुप्त, यशोधरा, पृष्ठ-40
4. मैथिलीशरण गुप्त, विष्णुप्रिया, साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी, पृष्ठ-42
5. वही, पृष्ठ-83
6. मैथिलीशरण गुप्त, यशोधरा, साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी, पृष्ठ-24
7. वही, पृष्ठ-83
8. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, पृष्ठ-1
9. वही, पृष्ठ-272-273
10. वही, पृष्ठ - 51
11. वही, पृष्ठ - 100-101
12. डॉ.आशा गुप्त, मैथिलीशरण गुप्त का काव्य-सांस्कृतिक अध्ययन, पृ.- 53

ISSN 2278 - 0327

वास्तुशास्त्र में वेध स्वरूप

डॉ. मृत्युञ्जय कुमार तिवारी

सहायक आचार्य, ज्योतिष विभाग

श्री कल्लाजी वैदिक विश्वविद्यालय, निम्बाहेडा (राज.)

मनु महाराज का कथन है- '*सर्वं वेदात प्रसिद्ध्यति*'[1] अर्थात् वेद सभी प्रकार के ज्ञान विज्ञान के मूल स्रोत हैं। सभी वेदों का विस्तार पुराण साहित्य है एवं इन वेदों के उपवेदों में स्थापत्य वेद अर्थात् वास्तु शास्त्र का अपना महत्व है। शास्त्रों का मूल उद्देश्य मानव कल्याण ही है इसमे संशय नहीं है। सभी जीव अपने अपने प्रकार से निवास के लिए निश्चित प्रकार का आवास बनाते हैं जैसे गुफा, घोसला, बिल, जाल आदि। परन्तु मानव शीत-ग्रीष्म-वर्षादि ऋतुओं से सुरक्षा के लिये भवन का निर्माण करता है क्योंकि गृहस्थ के सारे श्रौत स्मार्त्तादि कर्मों की सिद्धि भवन से ही संभव है इसे ही घर, भवन, सदन कहा गया है कहा भी है-'*गार्हस्थस्य क्रिया सर्वा न सिद्धयन्ति गृहं विना*'। इसीलिए सर्व प्रयत्न से घर बनवाना ही गृहस्थ के लिए श्रेयस्कर है। घास, मिट्टी, पत्थर, धातु, ईट आदि के भवन बनाये जाते हैं, इनमें भी ईट का घर बनाना ऋषियों ने सर्वाधिक पुण्यशाली कहा है, तमिल भाषा के काव्य ग्रन्थ कुरल काव्य में श्री एलाचार्य ने गृह की प्रसंशा करते हुए मुक्त कंठ से कहा है -

यत्र धर्मस्य साम्राज्यं प्रेमाधिक्या दृश्यते ।
तद्गृहे तोषपीयूषं सफलाश्च मनोरथाः।[2]

अर्थात् जिसके घर में स्नेह एवं प्रेम का निवास है, जिससे धर्म का साम्राज्य है, वह सम्पूर्णतया संतुष्ट रहता है, उसके सब उद्देश्य सफल होते हैं। इसी भावना को ध्यान में रखकर निर्माण की गई वस्तु श्रेयस्कर है। वही घर अथवा आलय है, अन्य रचनाएं तो तृणवत् त्याज्य है। किसी भी गृहस्थ का आवासगृह बनाने का लक्ष्य यह होना चाहिए कि उसके निवास कर्ता सुख, समाधान, संतोष के साथ जीवन यापन करें तथा धर्माचरण करते हुए '*अतिथि देवो भवः*'[3] परंपरा का निर्वाह करें। गृहस्थों का जीवन विवेक एवं श्रद्धा पर आधारित होना चाहिए। रसोईघर, स्नानगृह, शौचालय, पुष्प वाटिका, वृक्षारोपण, कूपखनन, कृषि, उद्योग इत्यादि पर वास्तु संबंधी संकेत इस शास्त्र के अंतर्गत प्राप्त होते हैं। गृह निर्माण के कार्यारम्भ करने से पूर्व यदि वास्तु शास्त्र सम्बंधित नियमों को भली प्रकार समझ लिया जाए तो यह स्वामी के लिए हितकारक होता है। भगवान् योगेश्वर श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भागवद्गीता में स्वयं कहा है-

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवप्नोति न याति परमां गतिम्।।

अर्थात् जो शास्त्र की आज्ञा को जानकार विधिवत् पालना के साथ कार्य करता है उसे ही इह लोक और परलोक में सिद्धि प्राप्त होती है अर्थात् चार पुरुषार्थों में अंतिम मोक्ष भी यहीं से संभव है शास्त्र की आज्ञा को न मानकर उसके विपरीत आचरण करने वाला न सुख को प्राप्त करता है न सिद्धि को ही भजता है। एक अच्छी वास्तु का निर्माण स्वामी को सुख-समाधान तथा शांति प्रदान करता है। उपयुक्त वास्तु का निर्माण करने के पूर्व निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए -

1. उपयुक्त दिशा का निर्धारण
2. उपयुक्त भूमि का चयन
3. उपयुक्त दिशाओं में रचना विन्यास का क्रम
4. वास्तु का आकार एवं आयु (मजबूती)

इस प्रकार हम देख पाते हैं कि वास्तु निर्माण का कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व भूमि का शोधन, परीक्षण इत्यादि कार्य कर लेना आवश्यक है। निर्माण सामग्री अपनी स्थिति के अनुरूप उत्कृष्ट प्रकार की लेना लाभदायक सिद्ध होता है। भूमि का धरातल, क्षेत्र, परिकर इत्यादि का विचार करके ही निर्माण की जाने वाली वास्तु का उपयुक्त मानचित्र, अच्छे जानकार अथवा मानचित्रकार अथवा इंजीनियर से बनवाना चाहिए। संसार का प्रत्येक जीव सुख शांति पूर्वक अपना जीवन यापन करना चाहता है उसके लिए वह विविध प्रकार के प्रयास भी करता है। अपने लिए अनेक सुख-सुविधाओं की व्यवस्था भी करता है। जिनमे मुख्य है भवन निर्माण। भवन बनवाते समय भी भूमि चयन, भूमि परिक्षण, भूमि का आकार, प्रकार, भूमि प्लव, भवन वेध आदि का विस्तृत विचार किया जाता है। क्योंकि कहा गया है-

करहीनं न कर्तव्यं प्रसादं मठ मन्दिरम्।
स्त्रीनाशः शोकः संतापौ स्वामि सर्व धनक्षयः।।[4]

अर्थात् देवालय प्रसाद आलेय मठ मंदिर बड़े छोटे वास्तु नियमों के विरुद्ध होना कष्टकर होता है ऐसा होने से स्त्रीनाश, शोक, संताप स्वामीनाश एवं धननाश निश्चित होता है। इनमें भी भवन वेध का दोष अधिक माना गया है।

निर्माण की गई वास्तु में किसी प्रकार का वेध नहीं माना चाहिए। मुख्य प्रवेशद्वार के समक्ष किसी मार्ग, द्वार, कूप, वृक्ष, स्तंभ आदि का होना अथवा यथोचित स्थान पर परिमाण सहित न होना वेध कहा जाता है। वेध का आशय बाधा से है, इनके निम्नलिखित सात प्रकार हैं-

1. तल वेध
2. कोण वेध
3. तालू वेध
4. कपाल वेध
5. स्तंभ वेध
6. तुला वेध
7. द्वार वेध

तल वेह कोणवेहं तालुयवेहं कपालवेहं च ।
तह थंभ तुलावेहं दुवारवेहं च सत्तमयं।। [5]

1. तल वेध

जिस वास्तु की भूमि कहीं सम कहीं विषम हो अथवा द्वार के सामने कुंआ हो, तेल निकालने की घानी हो, पानी का रहट हो, गन्ने का रस निकालने का यंत्र हो, कुंए या दूसरे के घर का रास्ता अपने घर से जाता हो तो वह तलवेध कहलाता है। ऐसा वास्तु घर में रोग, सफेद दाग की बीमारी, चर्मरोग, कुष्ठरोग, आदि रोगों की वृद्धि करने वाला होता है।

2. कोण वेध

घर के कोने यदि समकोण 90 अंश के समान न होकर कम अधिक हों तो कोण वेध होता है। घर के निवासी परिवारजनों में अशुभ घटना, परेशानियां, वाहन दुर्घटना आदि की आशंका रहती है।

3. तालु वेध

एक ही खंड में पीढ़े ऊंचे-नीचे होने पर तालुवेध होता है। इससे चोरी का भय होता है।

4. शिर वेध

द्वार के ऊपर की पटरी पर गर्भ यानी मध्य भाग में पीढ़ा आये तो शिर वेध होता है। इससे घर में दरिद्रता तथा शारीरिक, मानसिक क्लेश होता है ।

5. स्तम्भ वेध

घर के मध्य भाग में स्तम्भ हो या घर के मध्य भाग में अग्नि या जल का स्थान हो तो घर में स्तम्भ वेध या हृदय शल्य होता है। इससे वंशनाश, कुल भय की संभावना रहती है।

6. तुला वेध

घर के ऊपर-नीचे की मंजिल में पीढ़े कम ज्यादा हों तो तुला वेध होता है। यदि पीढ़े समान संख्या में हैं तो दोष नहीं रहता है। इससे घर में अशुभ फलदायक घटनाएं होती हैं।

7. द्वार वेध

घर के द्वार के सामने या मध्य में कोई वृक्ष, कुंआ, स्तम्भ हो अथवा किसी के मकान का कोना अपने घर के सामने हो या गाय आदि पशु बांधने का खूटा गाड़ा गया हो तो द्वार वेध होता है। द्वार के सामने या बीच में सदा कीचड़ जमा रहता हो अथवा दरवाजे पर शूकर आदि बैठे रहते हों तो द्वार वेध होता है। दूसरों के घर का रास्ता अपने घर से जाता हो अथवा घर का गंदा पानी निकालने की नाली मूल द्वार के मध्य में हो अथवा ब्रह्मा के मंदिर के द्वार के ठीक सामने अपने घर का द्वार हो तो भी द्वार वेध होता है।

इगयेहेण य कलहो कमेण हाणिं च जत्थ वो हुति।
तिहु भूआण निवासो चउहि खओ पंचहि मारी।। [6]

एक ही घर यदि एक वेध से दूषित देतो कलह होती है। एक ही घर यदि दो वेध से दूषित है तो अतिहानि होती है। एक ही घर यदि तीन बेध से दूषित है तो भूतों का वास होता है। एक ही घर यदि चार वेध से दूषित है तो लक्ष्मी नाश होती है। एक ही घर यदि पांच वेध से पूषित है तो महामारी व भयंकर पीड़ा होती है।

इन वेधदोषों के अतिरिक्त भी आधुनिक परिप्रेक्ष्य में कई प्रकार के वेध स्वत: ही दिखाई देते है, जिनका विचार भी यहां प्रस्तुत है-

कूपवेध- मुख्य द्वार के सामने आने वाली भूमिगत पानी की टंकी, बोर, कुआँ, शौचकूप आदि कूपवेध होते हैं और धन हानि का कारण बनते हैं।

स्वरवेध- द्वार के खुलने बंद होने में आने वाली चरमराती ध्वनि स्वरवेध कहलाती है जिसके कारण आकस्मिक अप्रिय घटनाओं को प्रोत्साहन मिलता है।

ब्रह्मवेध- मुख्य द्वार के सामने कोई तेलघानी, चक्की, धार तेज करने की मशीन आदि लगी हो तो ब्रह्मवेध कहलाती है, इसके कारण जीवन अस्थिर व निवासियों में मनमुटाव रहता है।

वास्तुवेध- द्वार के सामने बना गोदाम, स्टोर रूम, गैराज, आऊटहाऊस आदि वास्तुवेध कहलाता है जिसके कारण सम्पत्ति का नुकसान हो सकता है।

मार्गवेध- मुख्य द्वार भूखण्ड की लम्बाई या चौड़ाई के एकदम मध्य में नहीं होना चाहिए, वरन किसी भी मंगलकारी स्थिति की तरफ थोड़ा ज्यादा होना चाहिए। मुख्य द्वार के समक्ष कीचड़, पत्थर ईंट आदि का ढेर निवासियों के विकास में बाधक बनता है। मुख्य द्वार के सामने लीकेज आदि से एकत्रित पानी रहने वाले बच्चों के लिए नुकसानदायक होता है। मुख्य द्वार के सामने कोई अन्य निर्माण का कोना अथवा दूसरे दरवाजे का हिस्सा नहीं होना चाहिए। मुख्य द्वार के ठीक सामने दूसरा उससे बड़ा मुख्य द्वार जिसमें पहला मुख्य द्वार पूरा अंदर आ जाता हो तो छोटे मुख्य द्वार वाले भवन की धनात्मक ऊर्जा बड़े मुख्य द्वार के भवन में समाहित हो जाती है और छोटे मुख्य द्वार वाला भवन वहाँ के निवासियों के लिए अमंगलकारी रहता है। मुख्य द्वार के पूर्व, उत्तर या ईशान में कोई भट्टी आदि नहीं होना चाहिए और दक्षिण, पश्चिम, आग्नेय अथवा नैऋत्य में पानी की टंकी, खड्डा कुआँ आदि हानिकारक है। परिवार के मुखिया के समक्ष रूकावटें पैदा होने का कारक है।

भवन वेध- मकान से ऊँची चारदीवारी होना भवन वेध कहलाता है। जेलों के अतिरिक्त यह अक्सर नहीं होता है। यह आर्थिक विकास

में बाधक है। दो मकानों का संयुक्त प्रवेश द्वार नहीं होना चाहिए। वह एक मकान के लिए अमंगलकारी बन जाता है।

छाया-वेध- किसी वृक्ष, मंदिर, ध्वजा, पहाड़ी आदि की छाया प्रात: 10 से सायं 3 बजे के मध्य मकान पर पड़ने को छाया वेध कहते हैं। यह निम्न 5 तरह की हो सकती है।

मंदिर छाया वेध- भवन पर पड़ रही मंदिर की छाया शांति की प्रतिरोधक व व्यापार व विकास पर प्रतिकूल प्रभाव रखती है। बच्चों के विवाह में देर व वंशवृद्धि पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालती है।

ध्वज छाया वेध- ध्वज, स्तूप, समाधि या खम्भे की छाया के कारण रहवासियों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

वृक्ष छायावेध- भवन पर पड़ने वाली वृक्ष की छाया रहवासियों के विकास में बाधक बनती है।

पर्वत छायावेध- मकान के पूर्व में पड़ने वाली पर्वत की छाया रहवासियों के जीवन में प्रतिकूलता के साथ शोहरत में भी नुकसानदायक होती है।

भवन कूप छायावेध- मकान के कुएँ या बोरिंग पर पड़ रही भवन की छाया धनहानि की द्योतक है।

द्वारवेध के ज्यादातर प्रतिरोध जिस द्वार में वेध आ रहा है उसमें श्री पर्णी/सेवण की लकड़ी की एक कील जैसी बनाकर लगाने से ठीक होते पाये गये हैं।

वेध दोष परिहार

देवालय और मकान के मध्य पदि राजमार्ग, कोट, किला आदि आये तो वेध दोष नहीं होता। यदि मध्य में दीवाल हो तो स्तम्भों के पद का वेध दोष भी निराकरण हो जाता है।

राजमार्गान्तरे वेधो न प्राकारन्तरेऽपि च।
स्तंभ पदादि वेधस्तु नाभित्यंतरतो भवेत्।।
उच्छ्रायभूमिं द्विगुणां त्यक्त्वा चैत्ये चतुर्गुणाम्।
वेधादि दोषो नैवं स्याद् एवं स्वष्टमतं यथा।।[7]

घर की ऊंचाई से दुगुनी और मंदिर की ऊंचाई से चार गुनी भूमि को छोड़कर कोई वेध आदि दोष हों तो दोष नहीं गिना जाता। दूसरे के घर का रास्ता अपने घर के मुख्य द्वार से जाता है तो रास्ते का द्वार वेध होने से विनाश कारक होता है। मुख्य द्वार के सामने वृक्ष का वेध होने पर बालकों के लिए हानिकारक है।

एक ही घर यदि दो वेध से दूषित है तो अतिहानि होती है। एक ही घर यदि तीन वेध से दूषित है तो भूतों का वास होता है। एक ही घर यदि चार वेध से दूषित है तो लक्ष्मी नाश होती है। एक ही घर यदि पांच वेध से दूषित है तो महामारी, भयंकर पीड़ा होती है।

रथ्यांविद्धं द्वारं नाशाय कुमारदोपदं तरुणा।
पंकद्वारे शोको व्ययोऽम्बुनि: स्त्राविणि प्रोक्त:।।
कूपेनापस्मारो भवति विनाशश्च देवताविडे ।
स्तंभेन स्त्रीदोषा: कुलनाशो ब्रह्मणाभिमुखे।।
स्तंभ पदादि वेधस्तु नाभित्यंतरतो भवेत्।।[8]

देवालय और मकान के मध्य पदि राजमार्ग, कोट, किला आदि आयें तो वेध दोष नहीं होता। यदि मध्य में दीवाल हो तो स्तम्भों के पद का वेध दोष भी निराकरण हो जाता है। दूसरे के घर का रास्ता अपने घर के मुख्य द्वार से जाता है तो रास्ते का द्वार वेध होने से विनाश कारक होता है। मुख्य द्वार के सामने वृक्ष का वेध होने पर बालकों के लिए हानिकारक है। मुख्य द्वार के सामने कीचड़ का वेध होने पर परिवार के लिए शोककारक है। मुख्य द्वार के सामने जल निकास नाली का वेध होने पर धन का विनाश होता है। मुख्य द्वार के सामने महादेव या सूर्य मंदिर होने पर गृहस्वामी का विनाश होता है। मुख्य द्वार के सामने स्तम्भ का वेध होने पर स्त्रियों के लिए नाशकारक है। मुख्य द्वार के सामने कुए का वेध होने पर अपस्मार रोग (वायु विकार) होता है।

वापी मण्डप गेहानां तृतीय स्तम्भ वर्जनम्।
शिल्पिनो नरकं यान्ति, स्वामी सर्वधन क्षयम्।।[9]

वापी, मंडप, घरों में तीन खम्भे नहीं लगाना चाहिए। घर में सम संख्या में खम्भे लगाना चाहिए। विषम संख्या में खम्भे लगाने का फल यह है शिल्पी नरक जाता है तथा स्वामी दुखी होता है। उसका सारा धन नष्ट जाता है।

द्विकोणं गोमुखाश्येव धननाश: पतिव्रज:।
त्रिकोणं मृत्युदं ज्ञेयं पड्यां धर्म नाशकम्।।[10]

कोने वाले मकान से धन नाश होता है। गोमुख मकान से गृहपति को गृह त्याग कर परदेश गमन करना पड़ता है। तीन कोने वाला घर मृत्यु या मृत्युतुल्य कष्ट देता है। छह कोनों वाला मकान धर्म नष्ट करता है।

इस प्रकार स्वत: ही सिद्ध है कि वास्तु शास्त्र में भवन आदि के निर्माण में वेध का विचार करना नितांत आवश्यक है जिसका विस्तृत वर्णन हमारे त्रिकालदर्शी ऋषियों ने स्वकृत ग्रंथों में उल्लेख किया है।

सन्दर्भ सूची -

1. मनुस्मृति - 12.97
2. कुरल 5/5
3. तैत्तरीयोपनिषद्
4. पञ्चरत्न 200
5. वास्तुसार प्र. 1 गा. 116
6. वास्तुसार प्र.1 गा 124
7. आचार दिनकर
8. वृहद्संहिता
9. वास्तु चिंतामणि
10. वास्तु चिंतामणि

ISSN 2278 - 0327

डॉ. उर्मिला अग्रवाल के नाटक 'स्वप्न पुरुष' में हमसफर के चयन में कशमकश

सीमा देवी
हिन्दी-विभाग
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

वैवाहिक जीवन को सुखमय और सफल बनाने के लिए हमसफर की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विवाह पूर्व व्यक्ति अपने मन में अपने भावी हमसफर की छवि गढ़ता है और उसी अनुरूप हमसफर की कामना भी करता है। भारतीय संस्कृति में अधिकतर वैवाहिक संबंध माता-पिता द्वारा तय किए जाते हैं और जब हमसफर अपेक्षित आशाओं पर खरा नहीं उतरता तो मन हताशा और निराशा के अंधेरे में भटकने लगता है। लेखिका ने अपने नाटक में दीपा और तूलिका नामक पात्राओं के माध्यम से जीवन की वास्तविकताओं के उन बोझिल क्षणों और आत्मसंघर्ष की उन स्थितियों को चित्रित किया है जो अब तक सर्वथा अछूती रही है। लेखिका ने दांपत्य जीवन के संबंधों की धूप-छांही रंगों को बड़ी गहरी सामाजिक संस्कृति से पकड़कर प्रस्तुत किया है। इसका कारण यह है कि नारी मन की पीड़ा को नारी ही समझ सकती है।

लेखिका ने नाटक में हमसफर के चयन में कशमकश को बड़े ही जीवंत रूप से प्रस्तुत किया है। भावी वर-वधू का चयन परिवारजनों द्वारा किया गया हो या चुनाव करने का अवसर स्वयं को प्राप्त हुआ हो कशमकश का सामना तो करना ही पड़ता है। प्रस्तुत नाटक में लेखिका ने हमसफर चयन संबंधी कशमकश को नाटक की पृष्ठभूमि बनाया है। दीपा और तूलिका पात्राओं के माध्यम से लेखिका ने नारी मन की अबूझ पहेली को सामने लाकर विचित्र नारी मनोविज्ञान से परिचित करवाया है। पति-पत्नी का संबंध प्रेम पर आधारित होता है वहीं से आत्मविश्वास संबंधों की घनिष्ठता और कर्त्तव्य की अन्य भावना जागृत होती है किंतु जब इन संबंधों में शुष्कता आ जाती है तो मन विचलित रहता है। जीवन की उमंग समाप्त हो जाती है और नीरसता अपने पैर पसार लेती है। प्रस्तुत नाटक की पात्र दीपा भी इसी पीड़ा से जूझ रही है उसका पति भौतिक सुख-सुविधाओं को जुटाने में इतना व्यस्त रहता है कि उसके पास अपनी पत्नी (दीपा) की कोमल भावनाओं को अनुभूत करने का समय नहीं। दीपा भरे-पूरे परिवार में रहते हुए भी अकेलेपन से जूझती है उसके भीतर की पीड़ा को लेखिका इस प्रकार व्यक्त करती है-

''दीपा: (खोयी-खोयी सी) मैं शायद खुद भी नहीं जानती, मैं क्या सोचती हूँ। इतना सन्नाटा उग जाता है मन में कि कोई भी पुकार उस सन्नाटे को नहीं तोड़ पाती। किसी का पुकारना केवल कानों तक पहुँचता है, दिल तक नहीं। सब-कुछ खोखला लगता है। मन बेचैन होता है और फिर अपने से ही लड़ने लगता है। मन की किसी भी तरह की कमजोरी पर अपने से नफरत होने लगती है।

तूलिका: ये क्या बात हुई भला। इंसान है मन में कभी भी कोई कमजोरी जाग सकती है। उसके लिए अपने से नफरत क्यों ?

दीपा: (उसी तरह) पता नहीं, लगता है मैं खुद को ही नहीं समझ पाती, ऊपर से खूब हँसती हूँ, लेकिन मन को कोई हँसी छू नहीं पाती, अब तो लगता है मेरी संवेदनाएँ भी मरने लगी हैं। बस लगता है कोई मुझसे बात न करें। मैं किसी से न बोलूँ। चुप बैठी रहूँ। कभी-कभी तो लगता है दिमाग भी जड़ हो गया है, कोई सोच नहीं उभरती वहाँ, न दिल में भाव जागते हैं, न दिमाग में विचार। कुछ बचा है तो बस सन्नाटा। पता नहीं कब तक जिया जाएगा इस शून्य में ...।''[1]

दीपा के पति का चुनाव उसके माता-पिता द्वारा किया गया है। नाटक में वह अत्यंत संवेदनशील युवती का प्रतिनिधित्व करती है जो अपने पति के साथ कुछ सुखमय पल व्यतीत करना चाहती है किन्तु उसका पति अपने व्यवसाय को बढ़ाने में लीन रहता है। वह दीपा के मन के रीतेपन को समझ ही नहीं पाता। हेमंत (दीपा का पति) से उपयुक्त प्रेम और सम्मान न मिलने पर दीपा जब मनु के संपर्क में आती है तो वह उसकी ओर आकर्षित होती है किंतु जब उसे ज्ञात होता है कि मनु उसकी मित्रता का गलत फायदा उठाकर उसे छलना चाहता है तो वह आहत होती है और कहती है -

''दीपा: (कड़ाही में पकौड़े तलते हुए) तुमने तो मित्रता निभाने की बात कहीं थी मनु ... फिर ऐसा क्यों किया ? क्यों तोड़ा इस तरह मुझे ... ? तुम नहीं जानते कि मेरी रेगिस्तान-सी जिंदगी में तुम एक नखलिस्तान की तरह थे। चिलचिलाती धूप-सी जिंदगी में एक शीतल हवा का झोंका समझा था मैंने तुम्हें। लेकिन तुम तो ऐसी आँधी बन गए कि मेरा सब कुछ ही उड़ाकर ले गए। मेरा सुख-चैन, मेरा विश्वास, सब-कुछ ही तो। (सोचते-सोचते अतीत में खो जाती है)'' ...[2]

प्रस्तुत उदाहरण से लेखिका ने विवाहेतर होने वाले संबंधों के मूल से छिपे कारणों पर भी निशाना साधा है। जब हमसफर से अपेक्षित प्रेम और स्नेह नहीं मिलता तो किसी परपुरुष और परस्ती की ओर सहज आकर्षण जैसी समस्या उत्पन्न हो जाती है जो कि वैवाहिक संबंध के लिए घातक सिद्ध हो सकती है।

''कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं, जिन्हें अपनी इच्छानुसार अर्धांगनी का चयन करने की छूट होती है। परंतु इस विडंबना को क्या कहिए कि वे यह सोचकर डरते रहते हैं कि जिसे वे अर्धांगनी बनाने जा रहे हैं, यदि वह उनकी अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतरा तो, यदि वह वैसा नहीं निकला जैसे उन्होंने सोचा था तो ... ? इसी ऊहापोह में उलझे वे विवाह को ही स्थगित करते जाते हैं। बार-बार एक ही प्रश्न उनके

मन में टकराता है। व्यक्ति की सूरत तो देखी जा सकती है, सीरत कैसे जानी जाए? कहीं ऐसा तो नहीं कि प्यार के सारे वादे झूठे हों, कहीं वे छले तो नहीं जाएँगे? कहीं ऐसा तो नहीं कि हम घनी छाह की लालसा में किसी वृक्ष के नीचे जा बैठे और फिर पता लगे कि उस वृक्ष की तो जड़ें ही इतनी कमजोर हैं कि छाँह देने के स्थान उस वृक्ष के अपने ऊपर गिरकर जख्मी कर देने का ख्याल ही जिंदगी दूभर कर देगा।''[3]

पात्र तूलिका इसी श्रेणी में आती है। वह यह निश्चित नहीं कर पाती कि राजन उसके लिए उपयुक्त है या नहीं। उसके मन में उसके पति शंका रहती है कि कहीं वह ठगी तो नहीं जाएगी। उसके हृदय के इस भय को लेखिका ने कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है –

''तूलिका: मैं निर्णय नहीं ले पा रही हूँ कि वह जीवन-साथी के रूप में उपयुक्त रहेगा या नहीं। राजन तो मम्मी-पापा को भी साथ रखने को तैयार है। मुझे ही डर सा लगता है।

दीपा: कैसा डर तूली?

तूलिका: लगता है कहीं ऐसा न हो कि जो सपना आज मेरी आँखों को अपनी आभा से जगमगा रहा है, हकीकत बनते ही वह काँटों-सा चुभने लगे। बस लगता है कहीं मैं शादी करके गलत तो नहीं करूँगी और ...''[4]

तूलिका एक परिपक्व सोच की युवती है जो अपने भावी वर में भी दृढ़ता और परिपक्वता के भावों की आशा करती है जब दीपा तूलिका से उसके स्वप्न पुरुष के बारे में पूछती है तो वह कहती है –

''दीपा: (प्रश्नवाचक स्वर में) फिर भी कुछ तो श्वेत-श्याम चित्र बना ही होगा। रंग भले ही न भरें हों उसमें। अच्छा क्या बहुत सुदर्शन पुरुष की कामना है तुझे ...।

तूलिका: (सोच की मुद्रा में) बहुत सुदर्शन जैसी कामना तो नहीं। देखने में ठीक-ठाक हो तो भी चलेगा ...।

दीपा: फिर अच्छा पढ़ा-लिखा ऊँची डिग्री वाला या गाड़ी-बँगले का स्वामी कोई अमीर ...।

तूलिका: (देख दीपा की ओर रही है, पर है किसी विचार में डूबी) देखो, दीपा ये सब शायद हर किसी की कल्पना में होता है या यूँ कहूँ कि ये सब मिल जाना हर किसी को अच्छा लगता है, पर अपने स्वप्न पुरुष के बारे में मेरी ऐसी कोई कल्पना नहीं है।

दीपा: (आग्रह से) तो बता न, क्या है तेरी कल्पना ?

तूलिका: (दीपा की ओर देखते हुए) देखो दीपा, मुझे लगता है मेरा स्वप्न पुरुष पैसे से धनी हो या न हो, व्यक्तित्व का धनी जरूर हो। कंधे चौड़ें भले ही न हों, सबल हो। हाईट भले ही न हो, किरदार ऊँचा हो और सबसे बड़ी बात वह कर्म में विश्वास रखता हो। केवल भाग्य की बात कर रोने-झींकने वाला न हो (कुछ रूककर) क्या बहुत ज्यादा चाहती हूँ मैं ?''[5]

प्रस्तुत नाटक में दीपा और तूलिका के संवादों के माध्यम से लेखिका स्वप्न पुरुष, स्वप्न स्त्री जैसी अवधारणा से बाहर निकलकर वास्तविकता के धरातल पर विचार करने को विवश करती है। लेखिका कल्पना और वास्तविकता में तालमेल बैठाने की पक्षधर है, वह नहीं चाहती कि हम सुनहरे सपनों को त्यागकर रंगहीन जीवन व्यतीत करें परन्तु वह मात्र सपनों में खोए रहने का भी समर्थन नहीं करती।

''दीपा: (गंभीर होकर) देखो तूली, सपने देखना बुरी बात नहीं है। यदि इंसान सपने न देखे तो जिंदगी ही बेरौनक हो जाए। लेकिन सपनों के आकाश पर चलने की कोशिश में तो अक्सर जिंदगी के कदम लड़खड़ा जाते हैं। चलने के लिए तो हकीकत की जमीन ही सही है, सपनों को तो आकाश की तरह छाया ही करने दो। हाँ यथार्थ की जमीन पर चलकर सपनों के आकाश को छूने की कोशिश जरुर करनी चाहिए और ...''[6]

''दीपा: और इंसान को इंसान नहीं समझो। मानकर चलो कि उसमें भी कमजोरियाँ हो सकती हैं। अच्छाई और बुराई दोनों का मिला-जुला रूप है वह और यह तो संभव ही नहीं कि किसी व्यक्ति की अच्छाई-अच्छाई ग्रहण करने की सोचो। किसी भी रिश्ते को उसकी पूर्णता में ही स्वीकार करना होता है।''[7]

''दीपा: मैंने तो पहले ही कहा था कि मैं स्वप्न पुरुष या स्वप्न सुंदरी जैसी अवधारणा को महत्व नहीं देती, क्योंकि यह सोच हमें रिश्तों को स्वीकार करना नहीं, उनमें गुण और अवगुण खोजना सिखाती है और हम अपनी कल्पना के विपरीत जीवन -साथी को पाकर कुंठित हो अपनी भी और दूसरे की जिंदगी बर्बाद करने पर उतारू हो जाते हैं।''[8]

''इंसान न तो मिट्टी का लोंदा है, जिसे अपनी इच्छा के चाक पर चढ़ाकर मनचाहा आकार दिया जा सके और न ही वह मोम का पुतला है, जिसे गलाकर और अपने इच्छित साँचे में डालकर एक नई प्रतिमा का निर्माण किया जा सके। सच तो यह है कि हर इंसान का अपना एक स्वतंत्र व्यक्तित्व है, अपनी स्वतंत्र सोच है, जिसे बदलना कुछ हद तक ही संभव हो सकता है। वास्तविकता यह है कि जीवन को यदि सुखमय बनाना है तो दोनों पक्षों को एक-दूसरे की इच्छाओं का सम्मान करना होगा, जो जैसा है, उसे उसी रूप में स्वीकार करना होगा।''[9]

मूलरूप से लेखिका का मानना है कि हमें अपने हमसफर चयन में सावधानी तो रखनी चाहिए ताकि अपने हमसफर से रखी अपेक्षाओं के पूरा न होने पर हमें घोर निराशा का सामना न करना पड़े। कोई भी पुरुष सम्पूर्ण नहीं होता तो हम एक सम्पूर्ण अर्धांगनी की कल्पना कैसे कर सकते हैं यदि हम ऐसा करते हैं तो अपने संबंधों से मिली पीड़ा के लिए हम स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ. उर्मिला अग्रवाल, स्वप्न पुरुष, पृ. 39-40
2. वही, पृ. 75
3. वही, पृ. 8
4. वही, पृ. 82
5. वही, पृ. 23
6. वही, पृ. 84
7. वही, पृ. 85
8. वही, पृ. 85
9. वही, पृ. 7

ISSN 2278 - 0327

'सूखा बरगद' उपन्यास में चित्रित समाज पर राजनीति प्रभाव

पुष्पा
शोध छात्रा (हिन्दी विभाग)
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,
रोहतक–124001

शोध–सार

सम्प्रदाय शब्द 'दा' धातु में 'सम' व 'प्र' उपसर्ग तथा 'घञ्' प्रत्यय लगाने पर बना है और साम्प्रदायिक शब्द 'सम्प्रदाय' शब्द में 'ठक्' प्रत्यय लगाने में निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है – किसी विशेष सम्प्रदाय से संबंध रखने वाला, परस्पर विरोधी और विद्वेषी सम्प्रदायों से संबंध रखने वाला। इसके साथ ही साम्प्रदायिकता का अर्थ है – साम्प्रदायिक होने का भाव, केवल अपने सम्प्रदाय की श्रेष्ठता और हितों का विशेष ध्यान रखना और दूसरे सम्प्रदायों से द्वेष करना।[1]

सम्प्रदायिक – वि. (सं.) किसी संप्रदाय संबंधी, संप्रदाय का, धार्मिक।[2]

सोहनलाल द्विवेदी –

मसजिद से मन्दिर लड़ते हैं
गिरजा से लड़ते बिहार मठ
धर्म अनर्थ कर रहा कितना
करते हैं अधर्म पामर शठ। [3]

आमतौर पर लोग धर्म को सम्प्रदाय से सम्बन्धित मानकर दूसरे धर्म के व्यक्तियों के साथ में मनमुटाव लड़ाई झगड़ा कर लेते हैं। यह तब होता है जब एक सम्प्रदाय में साम्प्रदायिक भावना पनपने लगती है तो उसको देखते हुए दूसरा सम्प्रदाय अपनी जातीय अस्मिता के प्रति जागरुक हो जाता है। इसी तरह एक–दूसरे की होड़ करते करते साम्प्रदायिक हो उठता है।

1. भारत–पाक विभाजन और साम्द्रायिकता

भारत देश के स्वतन्त्र होते ही उसका विभाजन दो राष्ट्रों में हो गया – भारत व पाकिस्तान। जिन साम्प्रदायिक परिस्थितयों से बचाव के लिए विभाजन का कदम उठाया वे स्थिति और भी अधिक तूल पकड़ गई तेज हो गई। इस घटना ने भारतीय राष्ट्रीयता, समाज राजनीति और संस्कृति के विकास एवं स्वरूप को बहुत अधिक प्रभावित किया।

इस उपन्यास के पात्र अब्दुल वहीद खाँ अपने बच्चों सुहेल और रशीदा को बताते हैं कि देश के विभाजन का मुकदमा अंग्रेजी अदालत में चलता था। हिन्दू जनता के लोग भी और मुसलमान जनता के भी दोनों लोग इसे जीतना चाहते थे।

ये मुकदमा जीतने के लिए आम आदमी से लेकर पढ़ लिखे नेता भी घटिया से घटिया हरकत पर उतर आए। कल तक जो लोग अच्छी तरह से रह रहे थे वे लोग भी एक दूसरे के खिलाफ झूठी गवाही देने को तैयार थे। इन दोनों धर्मों की लड़ाइयों ने दंगों का रूप ले लिया था। ''मुसलमान ने फतह पाली, हिन्दू विजयी हो गया।''[4] गांधी जी का सपना था कि मुल्क में हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई आपस में मिलकर रहें भी एक तरह से पूरा हो गया और जिन्नाह साहब का ख्वाब कि मुसलमानों को एक अलग मुल्क हो भी ताबीर पा गया।[5] अब लोग देश को छोड़कर नहीं जाना चाह रहे थे शरणार्थी बनकर उनके परिवार यहां से वहां गए।

''मुसलमान चाँद–तारे के चरचम साए में पाकिस्तान चले गए, कुछ तो नहीं जाना चाहते थे, फसादों में हलाक हुए। इस तरह जो हिंदू अपना घर–बार छोड़कर एकदम से बना दी गई। एक सरहद के पार किसी सूरत में जाने पर राजी न था, उसे मार–मारकर अपना घर छोड़ने पर मजबूर किया गया।[6] मंजूर एहतेशाम जी ने इस उपन्यास में विभाजन के पश्चात् भारत में रह गए मुसलमानों की स्थिति का चित्रण किया है। मुसलमानों के दिलों के अन्दर असुरक्षा का भाव, यही असुरक्षित भावना थी जो साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दे रही थी। ''हम जैसे मुसलमान जिनकी जात का कोई सीधा नुकसान इस बंटवारे से नहीं था या ऐसे ही हिन्दू, फटी आंखों कानों से सब कुछ देखते–सुनते और अगर किसी ने इससे बढ़कर कुछ कहना भी चाहा तो नफरत की तेज धार में उसके पाँव उखड़ गए।[7]

धर्म के आधार पर साम्प्रदायिकता

धर्म–निरपेक्ष राष्ट्र भारत में मुख्य रूप से दो मुस्लिम और हिन्दू हैं। 'सूखा बरगद' उपन्यास में धर्म के आधार पर फैलने वाली साम्प्रदायिकता की ओर भी संकेत मिलता है। 'रंगपंचमी' और 'अलविदा' का जुमा एक ही दिन पड़ने कारण किसी ने किसी दूसरे व्यक्ति पर रंग डाल दिया। इसी बात को लेकर हिन्दू और मुसलमान आपस में लड़ बैठते हैं और साम्प्रदायिक दंगे होने शुरू हो जाते हैं। रशीदा कहती है, ''उन दिनों होली रमजान में पड़ती थी संयोगवश 'अलविदा का जुमा' और 'रंग पंचमी' एक ही दिन पड़ गए और नतीजे में शहर का पहला हिंदू–मुस्लिम फसाद[8] हिन्दु और मुसलमानों

के झगड़े के कारण शहर में कर्फ्यू लगा दिया गया। जीवन अस्त-व्यस्त हो गया। झगड़ों में शामिल व्यक्तियों को पुलिस उठा ले गई। रशीदा के माध्यम से लेखक ने आमजन के ऊपर साम्प्रदायिकता और कर्फ्यू के प्रभाव को दिखाया है। ''सड़कों पर पुलिस की लारियों की आवाज, गश्त करते सिपाहियों के कदमों की आहट और दिमाग में हर पल खुद को फैलाकर बड़ा करता सब कुछ धकेलकर बाहर निकलता खालीपन खतरा है खतरा है। दुश्मन मौके की तलाश में है खतरा है।[9] अब्दुल वहीद और खां और उसकी बेटी खुशीदा का मानना है कि धर्म के नाम पर होने वाली साम्प्रदायिकता का धर्म के ठेकेदार हैं। ये लोग धर्म एवं सम्प्रदाय का सहरा ले कर इहलोक एवं परलौक की बातें करते हैं लेकिन वास्तव में ये केवल छलावा है धोखा है। इनका मत है कि दूसर के धर्म को अपनाना नरक में जाना होता है। रशीदा कहती है ''आखिर ऐसा क्यों है कि जिसकी खाल पर होली का रंग लग जाएगा, वह जहन्नुम में जलेगा।''[10] एक ओर असगर और माम जैसे मजहबी लोग सुअर को माध्यम बनाकर साम्प्रदायिक भावनाओं को तूल देते हैं। वे नेताओं पर महासभाई तथा हिन्दुओं द्वारा मुसलमानों को सुअर खिलाने का आरोप लगाते हैं - ''पंडित नेहरू मुस्लिम भाई अंदर ही अंदर महासभाई और हम से कहा सुवर खाएं। क्यों खाएँ?[11] इसी तरह धर्म को आधार बनाकर साम्प्रदायिक भावनाओं को तुल दिया जाता है। जब भोपाल को मध्य प्रदेश की राजधानी बनाया गया ता धर्म के ठेकेदारों ने इसे भी मुसलमानों से जोड़कर देखा और सामान्य जनता को सच्चाई से दूर रखा। माम कहता है कि ''इस शहर को राजधानी बनाया ही इसीलिए गया था कि यहाँ मुसलमानों का पत्ता साफहो जाए।''[12]

भाषा के आधार पर साम्प्रदायिकता

साम्प्रदायिकता को फैलाने का एक आधार भाषा ही है। 'मंजूर एहतेशाम' के उपन्यास 'सूखा बरगद' में भाषिक साम्प्रदायिक तथा मध्यवर्गीय मुस्लिम समाज पर इसका प्रभाव दर्शाया गया है। और इस समस्या का समाधान भी प्रस्तुत किया है। शुरुआत में हिन्दी और उर्दू को लेकर कोई भी तनाव नहीं था। हिन्दी और उर्दू में लिखने वाले सम्प्रदाय के लोग भी पाठक भी थे और लेखक भी थे। बाद में इनकी भाषा को लेकर विवाद उत्पन्न होने लगा था। सुहेल कहता है- प्रेमचन्द उर्दू के, कृष्णचन्द्र उर्दू के, दत्त भारती उर्दू के, उपन्द्रनाथ अश्क उर्दू के बताओ हिन्दी ने पैदा कौन सा लेखक किया है? विजय- ''तुम्हारा मतलब है इन लोगों के अलावा किसी ने कुछ लिखा ही नहीं? चंद्रधर शर्मा गुलेरी, अज्ञेय भारती, यशपाल यह लोग कुछ मतलब ही नहीं रखते?''[13] बुजुर्ग मुसलमानों का मानना है कि ''हमारी तो इस टूटी-फूटी उर्दू और अंग्रेजी में ही बीत जाएगी। फारसी तो बेचारी हो गई बेकार।''[14] यहाँ पर उपन्यास में दिखाया गया है कि समय के साथ-साथ भाषाओं को और साम्प्रदायिक रूप दे दिया गया। हिन्दी और संस्कृत बोलने पर भी दबाव बना रहे हैं, सुहेल कहते है, ''हम हिन्दी तक राजी हुए तो कहने लगे अब तो तुम्हें संस्कृति भी सीखनी पड़ेगी। क्या होगा इस मुल्क में मुसलानों का।[15] देश की उन्नति के लिए हिन्दू और मुसलानों का एक होना बहुत जरूरी है। इसीलिए हिन्दू और मुसलमानों की भाषा भी एक ही होनी चाहिए।'' देश को एक मिली-जुली भाषा चाहिए जिसे सब अपना समझ सकें, उसके लिए सबको थोड़ी-थोड़ी कुर्बानी देनी हागी। बात हिन्दू और मुसलमानों की नहीं वर्गों की है।''[16]

राजनेताओं की दल-बदल नीति

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय राजनीति को ना जाने क्या बीमारी लगी नेताओं ने दल-बदल का जैसे एक रोग लग गया हो। आज संसद सदस्य हो या फिर नेता विधायक ही क्यों न हो जिस तरफ उसे अपना व्यक्तिगत स्वार्थ पूरा होता दिखाई देगा वह उसी पार्टी में शामिल हो जाता है।

'सूखा बरगद' उपन्यास में रजब अली एक ऐसा ही नेता है जो अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए दल-बदल की नीति अपनाता रहता है। मध्य प्रदेश में कांग्रेस सरकार दल-बदल का शिकार होकर अपना ही नुकसान करा लेती है और गिर जाती है। रजब अली को नई पार्टी 'संयुक्त विधायक दल' में राज्य मंत्री बना दिया जाता है। रजब अली सरकार गिरने के बाद जनसंघ में शामिल हो जाता है। मुसलमान जिस संघ को हिन्दूओं की हिमायती पार्टी मानते हैं। सुहेल रजब अली जैसे नेताओं पर तंज करता हुआ कहता है कि ''मैंने इतने साल साथ रहकर झक मारी है। कल तक कांग्रेसियों के जूते चाट रहा था, उनके साथा शामिल होने का आज जनसंघ का हामी और वफादार बनता है साला।''[17]

नेताओं के प्रति असन्तोष

सामान्य तौर पर नेताओं के लिए आम जनता में प्यार, प्रेम एवं उनके प्रति श्रद्धा की भावना देखने को मिलती है। लेकिन जब जनता की इन्हीं भावनाओं को नेताओं के द्वारा तोड़ा जाता है, चोट पहुँचाई जाती है तो नेताओं के प्रति असन्तोष की भावना देखने को मिलती है। कुछ नेता जिन्होंने सब कुछ देश के लिए बलिदान कर दिया। स्वतन्त्रता संग्राम में न्यौछावर कर दिया तो वे दिवंगत हो गए। अली हुसैन साहब ऐसे ही इन्सानों के विषय में कहता है, ''वह सिरफिरे, वह दीवाने, वह पागल अब इस दुनिया में नहीं रहे जो अपना घर जला के कारवां को रोशन करते थे। जिनके लिए कौम पहले थी, पर्द बाद में।''[18] आक्रोश नेताओं के प्रति दर्शाया है। जो जनता के विकास की कसौटी पर खरे न उतरने के कारण दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है।

शासन व्यवस्था और कानून के प्रति असन्तोष

शासन की व्यवस्था को बनाए रखने के लिए संविधान बनाया गया था ताकि न्याय व कानून की शरण में आम जनता को अपना हक मिले लेकिन आज कानून पैसों वालों की जेब में है। नेताओं के इशारों पर चलता है। विवेचित उपन्यास में कांग्रेसी नेता रहीम मियाँ अफीम

की स्मगलिंग करता है। सुहेल को ऐसा लगता है कि कानून के द्वारा वह पकड़ा जाएगा।

रहीम के द्वारा पैसे लेने पर पुलिस के बारे में कहता है कि पुलिस अगर इतनी सच्ची और ईमानदार होती तो क्या बात थी। रहीम मियाँ कभी के सजा पा गए होते।''[19]

राजनीति धर्मवाद या जातिवाद

धर्मवाद से अभिप्राय है केवल अपने धर्म से लगाव रखना, केवल अपने धर्म के व्यक्तियों की ही रक्षा करना। कर्मवाद शब्द राजनैतिक लोग ज्यादा प्रयोग करते हैं, जिससे तनाव पैदा होता है। चुनाव के समय धर्म या जाति का सबसे अधिक महत्त्व होता है। उसी के नाम पर उसी की दुहाई दी जाती है। यही राजनीतिक जिन्दगी की सच्चाई है कि हर दल, समूह, धर्म, जाति के प्रति सतर्क हैं। विवेचित उपन्यास में दर्शाया गया है कि धर्मवाद को बढ़ावा देने में जिनके पास सत्ता है उनका पूरा हाथ होता है। रजब अली धर्म का सहारा लेकर भोली जनता को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। वह स्वयं मुस्लिम होने के कारण मुस्लिम जनता के समक्ष धर्म और रक्त संबंधों की बात करता है। एक बार कॉलेज के फंक्शन में चीफगेस्ट बनकर जाता है। कॉलेज के युवाओं को संबोधित करता हुआ दुख:-शरीक भाई कहता है ''हम दूध शरीफ नहीं। दूध मेरे भाईयों, मेरे मोहसिनों, मेरे बाग के बागवानों हमारा मुकद्दर नहीं कि पीकर पलते, हमसे हमारी माओं की छातियों से दु:ख चूस-चूसकर पिया है और वही दु:ख हमारे रगों-रेशों में दौड़ता हमारी परवरिश करता है। हम लोगों का बुनियादी भरोसा रिश्ता है। वही रिश्ता है जो हमें आपस में बांधता है। ... और यही रिश्ता हमारी एक दूसरे के दु:ख में साझेदारी आगे भी।[20]

निष्कर्ष

मंजूर एहतेशाम ने ऐसी परिस्थितियों का वर्णन किया है जिसका सीधा सा असर जनता पर पड़ा विभाजन के समय आम जनता को जिन परेशानियों का सामना करना पड़ा वे शायद ही भूल पाए होंगे। कोई भी अपनी जगह को छोड़कर नहीं जाना चाहता था। उनकी यादें वहाँ से जुड़ी हुई थी। भाषाई आधार पर भड़काया गया और ना जाने क्या-क्या किया गया। एहतेशाम जी ने इस उपन्यास के माध्यम से राजनेताओं ने अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए आम जनता का कितना शोषण किया है उसका यथार्थ चित्रण किया है।

संदर्भ-सूची

1. रामचन्द्र वर्मा, संक्षिप्त हिन्दी सागर, पृ. 968
2. डॉ. महेन्द्र कुमार मिश्रा, हिन्दी विश्वकोश, पृ. 1841
3. संपादक हरिवंश राय शर्मा, राजपाल बृहत सुभाषित कोश, पृ. 715
4. मंजूर एहतेशाम, सूखा बरगद, पृ. 68
5. वही, पृ. 68
6. वही, पृ. 69
7. वही, पृ. 69
8. वही, पृ. 42
9. वही, पृ. 42
10. वही, पृ. 42
11. वही, पृ. 55
12. वही, पृ. 55
13. वही, पृ. 47
14. वही, पृ. 48
15. वही, पृ. 175
16. वही, पृ. 88
17. वही, पृ. 157
18. वही, पृ. 160
19. वही, पृ. 90
20. वही, पृ. 130

ISSN 2278 - 0327

हरिशंकर परसाई की रचनाओं में सामाजिक यथार्थ

राधेश्याम यादव
शोध छात्र, हिन्दी विभाग
का०हि०वि०वि०, वाराणसी

किसी भी देश के सामाजिक परिवेश पर तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का सीधा प्रभाव पड़ता है। भारत में भी राजनीतिक परिवर्तन के साथ समाज में भी बहुलांश परिवर्तन देखने को मिला। कुछ परिवर्तन सकारात्मक रूप में देखने को मिला। तो कुछ परिवर्तन नकारात्मक रूप में देखने को मिला। हरिशंकर परसाई ने इन्हीं परिवर्तनों को अपनी रचनाओं में यथार्थ रूप में वर्णित किया है। इनकी रचनाओं में स्वातंत्र्योत्तर भारत के सामाजिक यथार्थ को बखूबी देखा जा सकता है। किस तरह से आजादी के बाद समाज में अनैतिकता, दो मुहाँपन, कथनी और करनी में अंतर, भाई-भतीजावाद, भ्रष्टाचार, घुसखोरी, धार्मिक पांखड, अन्धविश्वास, जात-पात जैसी अनेक विसंगतिया बढ़ती गयी। स्त्रियों तथा दलितों के प्रति भेदभाव कम होने के बजाय और बढ़ता ही गया। मनुष्य जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं गेहूँ, चावल, अनाज, घर, मकान, कपड़े जैसी जरूरी चीजों की किल्लत बढ़ती गयी। सरकारी अफसर, कर्मचारी तथा कोटेदार किस प्रकार से गरीबों का हक मारते गये। मध्यवर्गीय जीवन में किस प्रकार से अनेक विसंगतियों ने अपना कब्जा कर लिया। इन अनेक सामाजिक विसंगतियों को परसाई ने अपनी रचनाओं में यथार्थ रूप में वर्णन किया है।

गुड़ की चाय परसाई जी का एक चर्चित निबंध है। देश की आजादी के बाद जरूरत की वस्तुओं तथा अनाजों की कालाबाजारी घटने के बजाय और बढ़ने लगी। इस निबंध के माध्यम से परसाई जी ने चीनी के कालाबाजारी की समस्या को केन्द्रीत करके व्यंग्य किया है। इसके लिए वे हास्य और व्यंग्य की कलात्मक शैली का प्रयोग करते हुए लिखते हैं-''कल एक के घर चाय पी रहा था, तो लग रहा था, जैसे मृत्यु-भोज में शरीक हूँ। उस आदमी ने बड़ी पीड़ा से कहा-क्या करें, शक्कर मिलती ही नहीं। ऐसा भाव था जैसे इसकी माँ मर गयी हो। और यह रहा है-भैया, हमारी माता शक्कर देवी की मृत्यु हो गयी। मैं कहता रहा-राम-राम बड़ा बुरा हुआ। क्या बीमारी थी माताराम को ? वह जवाब देता-बीमारी कुछ नहीं थी। चार-पांच दिन पहले तक माता जी बाजार में चल फिर रहीं थी। फिर अफसरों और कालाबाजारियों ने उन्हें मार डाला।''[1]

परसाई जी ने इन छोटी से छोटी चीजों को भी अपने साहित्य में महत्व दिया है। कालाबाजारी को उद्घाटित करने वाली रचनाओं में गेहूँ का सुख तथा अन्न की मौत को भी देखा जा सकता है कि किस प्रकार से अनाजों की कालाबाजारी की जाती है। गेहूँ का सुख-इस निबंध में परसाई जी गेहूँ के कालाबाजारी को उद्घाटित करते हुए लिखते है-''तब, जब गेहूँ के निर्यात पर प्रतिबंध था। एक जून का आटा अंगोछे में बाँधकर चलने वाले को सजा हो जाती थी। और उधर हजारों बोरे गेहूँ रातो-रात सीमा पार हो जाते थे।''[2] अन्न की मौत रचना में बाजार में गेहूँ की कमी के सन्दर्भ में परसाई लिखते हैं कि ''बाजार में जब गेहूँ का दाना न मिलता हो तब कोई मित्र पच्चीस-तीस किलों गेहूँ दे दे तो देश का भविष्य एकदम उज्जवल दिखने लगता है।''[3] खैर यह गेहूँ सड़ा निकला। यहीं परसाई जी करूणा का भाव पैदा करते हैं। सामान्य मनुष्य की जरूरत की चीजें कितनी कठिनाई से मिलती हैं। निम्न मध्यवर्गीय जीवन की इस त्रासदी को परसाई ने बखूबी समझा है।

परसाई की इन रचनाओं के सन्दर्भ में विश्वनाथ त्रिपाठी ऐसे लेखकों पर व्यंग्य करते हैं जो गंभीर साहित्य लेखन की बात करते हैं। निम्न मध्यवर्गीय जीवन की छोटी-छोटी आवश्यकताओं को जो नजर अंदाज कर देते हैं त्रिपाठी जी लिखते है-''तथाकथित गंम्भीर साहित्य में गेहूँ, चावल, चीनी जैसी मामूली चीजों को कोई खास महत्व नहीं दिया जाता। प्रगतिशील साहित्य में ही कभी-कभी इनकी चर्चा होती है।''[4] परसाई जी समाज के अभावग्रस्त जन पीड़ा को गहराई से अनुभव किया। इस अनुभव के लिए परसाई समाज से हमेशा जुड़े रहते थे। आज भी हम समाज में ऐसी स्थिति को देखते हैं कि गेहूँ, चावल, चीनी, मिट्टी के तेल के लिए मध्यवर्गीय व्यक्ति किस प्रकार धूप में लंबी कतारों में खड़ा रहता है।

हरिजन को पीटने का यज्ञ-इस निबंध में दो प्रमुख समस्याओं को उठाया गया है। देश की आजादी के इतने वर्षों बाद आज भी दलितों के प्रति लोगों की मानसिकता में बदलाव नहीं आया है। आज भी सवर्णों के द्वारा हरिजनों पर जुल्म और अत्याचार की घटनाएं सुनने को मिलती रहती हैं। ''दो समाचार अखबारों में पिछले दिनो छपे। दोनों घटनाएं इंदौर के आस-पास की हैं। दोनों घटनाएं महान हैं। दोनों हमारे गौरव को बढ़ाती हैं। इंदौर के पास एक करोड़ की लागत से यज्ञ हुआ। धन्य है ! उसी के आस-पास एक हरिजन दूल्हा घोड़े पर सवार होकर निकला तो सवर्णों ने उसे और बारातियों को पीटा। यह भी धन्य है! एक ही क्षेत्र में दो पवित्र कर्म हो गयें।''5 दलितों के प्रति होने वाले अत्याचार पर परसाई जरूर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त

करते थे। इसी सन्दर्भ में डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी का यह कथन देखा जा सकता है। ''परसाई के मन में दलितों के साथ होने वाले अन्याय के प्रति किसी भी दलित की अपेक्षा कम घृणा नहीं थी। लेकिन वे दलित-प्रश्न को अन्य प्रश्नों से अलग करके सिर्फ वहीं नहीं देखते। वे दलित समस्या को अन्य समस्याओं से जोड़कर देखते थें।''[6] इस निबंध में दूसरी समस्या जो है वह ब्राम्हणों द्वारा फैलाऐ गए कर्मकाण्ड तथा अपने धंधे को चलाने के लिए लोगों को परम्परावादी, अज्ञानी, अंधविश्वासी बनाए रखना। इसीलिए परसाई लोगों को जागरूक करते हुए लिखते हैं-''यह अनायास नहीं है। इसके पीछे योजना है। जनता को पिछड़ा बनाएं हुए रखना, उसकी समझ को वैज्ञानिक न होने देना, उसे अंधविश्वासी और दकियानूस रखना।''[7]

एक मध्यवर्गीय कुत्ता-यह एक लघुकथात्मक व्यंग्य रचना है। इस रचना के माध्यम से मध्यवर्गीय व्यक्तियों के दोहरे चरित्र पर व्यंग्य किया गया है। किस प्रकार से मध्यवर्गीय व्यक्ति धूर्तता और दिखावटीपन करता है। वह अपने स्वार्थ के लिए किसी भी वर्ग के साथ हो लेता है। जो उच्च वर्ग का झूठा दिखावा भी करते हैं और सर्वहारा वर्ग को उसके साथ होने का विश्वास भी दिलाते हैं। इसी चालाकी में वह दोनों वर्गों का विश्वास खो बैठता है। परसाई लिखते हैं-''यह कुत्ता उन सर्वहारा कुत्तों पर भौंकता भी है और उनकी आवाज में आवाज भी मिलाता है। कहता है-'मैं तुझमें शामिल हूँ।' उच्च वर्गीय झूठा रोब भी और संकट के आभास पर सर्वहारा के साथ भी-यह चरित्र है इस कुत्ते का। यह मध्यवर्गीय चरित्र है। यह मध्यवर्गीय कुत्ता है। उच्च वर्गीय होने का ढोंग भी करता है और सर्वहारा के साथ मिलकर भौंकता भी है।''[8] इस रचना में ऐसे अमीरजादों पर भी व्यंग्य किया गया है जो कुत्ता पालना अपनी शान समझते हैं और घर के फाटक पर लिखवा देते हैं। 'कुत्तों से सावधान'।

वैष्णव की फिसलन-हरिशंकर परसाई की एक लघुकथात्मक व्यंग्य रचना है। इस रचना में परसाई जी ने धर्म के नाम पर धंधा करने वालों की पोल खोली है परसाई कहते हैं-वैष्णव दो घंटे भगवान विष्णु की पूजा करते हैं। फिर गादी-तकीये वाली बैठक में आकर धर्म को धंधे से जोड़ते हैं। धर्म से धंधा जुड़ जाये इसी को योग कहते हैं।''[9] समाज में जो कुछ भी होता है, उसके कुछ कारण होते हैं, दैविक, अध्यात्मिक अथवा अकस्मात, संयोगवंश कुछ भी नहीं होता है। जहां ऐसा होता हुआ दिखता है, वहां समाज और व्यवस्था में छल हो रहा होता है। वैष्णव का फिसलन इस छल को समझने के लिए श्रेष्ठ उदाहरण है। मांसाहार के प्रबंध करने का आदेश लेने जब वैष्णव साष्टांग विष्णु के सामने लेटता है तो इसकी शुद्ध आत्मा से आवाज आती है-''मूर्ख गांधी जी से बड़ा वैष्णव इस युग में कौन हुआ ? गांधी जी का भजन है, 'वैष्णव जन तो तेणे कहिये, जे पीर पराई जाणे रे।' तू इन होटलों में रहने वालों की पीर क्यों नहीं जानता ? उन्हें इच्छानुसार खाना नहीं मिलता। इनकी पीर तू समझ और उस पीर को दूर कर।''[10] हम देख सकते हैं कि किस प्रकार वैष्णव अपने होटल को ज्यादा चलाने के लिए, तथा ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए भगवान विष्णु के नाम पर अनेक तर्क गढ़ता हैं। इस रचना के सन्दर्भ में अमिता पाण्डे का यह कथन सटीक है कि ''अगर समाज में घटित घटनाओं की कार्य-कारण श्रृंखला की समझ न हो तो ऐसा लिखा ही नहीं जा सकता।.....वैष्णव होते हुए भी धन संग्रहित करना, व्यापार करना, होटल में मांस मदिरा का उपयोग कराना, कैब्रे-डांस, वेश्यावृत्ति कराना-कार्य है, तो कारण है-अपने दो नम्बर के पैसे के इस्तेमाल से बने होटल को और ज्यादा सुलभ बनाना।''[11] परसाई जी लोगों को सचेत करते हैं कि किस प्रकार पूंजीवादी तर्क और धार्मिक आस्था मिलकर आम जनता को बेवकूफ बनाते हैं। इसलिए परसाई जी इस रचना के अंत में लिखते है कि वैष्णव ने धर्म को धंधे से खूब जोड़ा है।

'वो जरा वाइफ है ना' तथा 'एक लड़की पांच दिवाने' स्त्री विमर्श से सम्बन्धित रचना है। सदियों से चली आ रही पुरुषों की इस मानसिकता पर व्यंग्य किया गया है कि हर पुरुष स्त्री स्वतंत्रता की बात तो करता है, लेकिन जब सबसे पहले अपने घर की स्त्री की स्वतंत्रता की बात आाती है तो वह तमाम तरह के बहाने बनाने लगता है। 'वो जरा वाइफ है ना'-में उन सज्जन व्यक्तियों पर व्यंग्य है जो दूसरों की औरतों को आजादी दिलाना चाहते हैं लेकिन जब अपनी पत्नी की बात आती है तो 'वो जरा वाइफ है ना' कहकर कन्नी काट लेते हैं। परसाई जी लिखते हैं-''हमारी मुसीबत यह है कि हम हमेशा दूसरे की बीवी की खोज करते हैं। दूसरे की स्टेज पर आ जाए, अपनी न आए। दूसरे की नहीं आती तो कहते हैं कि बड़े पिछड़े हुए लोग हैं। हम पिछड़े हुए नहीं है, जिन्होंने उसका मुरब्बा बनाकर घर में रख छोड़ा है ?''[12]

वहीं एक लड़की पांच दिवाने में मध्यवर्गीय समाज की स्थिति बताई गई है। जहां माँ को बच्चे पैदा करने से फुर्सत ही नहीं मिलती और बड़े बच्चे जवानी की दहलीज पर कदम रख देते हैं। इस कहानी में बड़ी लड़की घर का पूरा काम करती है। जिसके कारण उसे घर के बाहर भी जाना पड़ता है। समाज का वातावरण ऐसा है कि आस-पास के लोग घूर-घूर कर उसे एहसास करा देते है कि वह बड़ी हो गयी है। ''मोहल्ला ऐसा है कि लोग बारह-तेरह साल की बच्ची को घूर-घूर कर जवान बना देते हैं। वह समझने लगती है कि कहां घूरा जा रहा हैं वह उन अंगों पर ध्यान देने लगती है।''[13] परसाई जी का व्यंग्य पुरुष समाज के उस काईयापन पर प्रहार करता है जो स्त्री के प्रति उसके नजरिए को दर्शाता है।

अकाल उत्सव-परसाई जी की यह एक लम्बी तथा बेहतरीन कहानी है। इस कहानी में नेताओं, मंत्रियों तथा अफसरों द्वारा अकाल में राहत कार्य के नाम पर किये जाने वाले लूट-खसोट एवं भ्रष्टाचार का पर्दाफास किया गया है। साथ ही सदियों से चले आ रहे इस प्रथा पर भी व्यंग्य किया गया है कि वर्षा कराने के लिए इन्द्रदेव को प्रसन्न

करना पडेगा। जिसके लिए अनेक कर्मकाण्ड किए जाते हैं। परसाई जी ने समाज के ऐसे कर्मकाण्डों और अन्धविश्वासों पर तगड़ा व्यंग्य किया है।

देश में अकाल पड़ा हो तो गरीबों की स्थिति और भी दयनीय हो जाती है। लेकिन दूसरी ओर व्यवस्था के प्रपंच के चलते कुछ लोग इसे उत्सव की तरह मनाते हैं। अकाल उत्सव में परसाई जी लिखते हैं-''बड़ी प्रार्थना होती हैं। जमाखोर और मुनाफाखोर साल भर अनुष्ठान कराते हैं। स्मगलर महाकाल को नरमुण्ड भेंट करता हैं इंजीनियर की पत्नी भजन गाती है। 'प्रभु कष्ट हरो सबका' भगवन, पिछले साल अकाल पड़ा था तब सक्सेना और राठौर को आपने राहत कार्य का प्रभार दिलवाया था। प्रभो इस साल इधर भी अकाल कर दो और इनको राहत कार्य का इंचार्ज बना दो। तहसीलदारीन, नायबीन, ओवरसीयरीन सब प्रार्थना करती हैं।.....इसे भी मनाने की निश्चित विधि होती हैं, जैसे दूसरे उत्सवों की होती है।''[14] इस कथा में अकाल राहत कार्य के बहाने सरकारी पूंजी को गबन करने के मामले की चर्चा अभी हाल ही हुए कोरोना नामक वैश्विक आपदा में देखने को मिली। अकाल उत्सव के सन्दर्भ में प्रेमजन्मेजय लिखते हैं- ''परसाई की एक रचना 'अकाल उत्सव' मैं जब भी इस रचना को पढ़ता हूँ रोंगटे खड़े हो जाते हैं। रचना का शीर्षक ही सृजनात्मक अभिव्यक्ति है। प्रस्तुत व्यंग्य के द्वारा परसाई की रचनात्मक शक्ति तथा उनकी वैचारिकी सोच की झलक मिल जाती है।''[15]

'संस्कारों और शास्त्रों की लड़ाई'-में परसाई दोमुहेंपन का सख्त विरोध करते हैं। कथनी और करनी में फर्क करने वालों पर जब उनकी कलम चलती है तो उसकी धार देखते ही बनती है। समाज में क्रान्ति और प्रगतिशीलता का ढोल पिटने वाले के असली चेहरे को बेनकाब करते हुए वे कहते हैं-''मेरा एक दोस्त है, वैज्ञानिक दृष्टि वाला। आधुनिक बुद्धिवादी। कट्टर मार्क्सवादी है।...तुम्हें इतना भी नहीं मालूम है।...मैंने कहा, 'मैं समझा इसमें द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है, जिसका संगम में विसर्जन होगा।''[16] तथाकथित बुद्धजीवियों में व्याप्त दोहरे चरित्र के सत्य का ऐसा बेबाक उद्घाटन परसाई के ही बूते की बात थी।

'दो नाक वाले'-नामक रचना में परसाई जी समाज के विडम्बनात्मक स्थिति पर विसाक्त व्यंग्य का बाण छोड़ते हैं। देश में हुए वैज्ञानिक आविष्कारों एवं औद्योगिक क्रांति के बावजूद भी समाज परम्परा ग्रस्त है। विवाह जैसे प्रसंगों में आज भी कितनी तरह की धार्मिक विधियां होती हैं जिसमें ब्राह्मण काफी रूपये ऐंठते हैं। परसाई लिखते हैं कि-''मैं उन्हें समझा रहा था कि लड़की की शादी में टीमटाम में व्यर्थ खर्च मत करो। पर वे बुजूर्ग कह रहें थे, आप भी ठीक कहते है, मगर रिश्तेदारों में नाक कट जायेगी।''[17] 'दूसरे के ईमान के रखवाले'-यह निबंध सामाजिक विसंगतियों को उद्घाटित करता है। इस निबंध में परसाई ऐसे व्यक्तियों पर व्यंग्य करते हैं जो हमेशा दूसरे की ईमान की चिंता करते रहते हैं। उन्हें आदर्श का पाठ पढ़ाने लगते हैं। इसी को केन्द्रित करके परसाई लिखते हैं-''देखता हूँ हर आदमी दूसरे के ईमान के बारे में विशेष चिंतित हो गया... अपना दरवाजा तो आप खुला छोड़ आये हो।''[18] परसाई तो दूरद्रष्टा थे ही इसीलिए उन्होंने केवल इस यथार्थ को महसूस ही नहीं किया बल्कि उसका पोस्टमार्टम ही कर डाला।

निष्कर्ष रूप में हम देख सकते हैं कि किस प्रकार हरिशंकर परसाई ने स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में व्याप्त विसंगतियों को अपनी रचनाओं में यथार्थ रूप में वर्णित किया है तथा अपने व्यंग्य के प्रहार से इन विसंगतियों को दूर करने की कोशिश की है। स्वातंत्र्योत्तर भारत की शायद ही कोई राजनैतिक-सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण घटना हो जिस पर परसाई जी की कलम न चली हो। परसाई जी ने अपने समय के लेखकों में सबसे अधिक पाठकों को शिक्षित एवं जागरूक किया है। परसाई की व्यंग्य रचनाओं के सन्दर्भ में यह कह सकते हैं कि व्यंग्य जीवन का सबसे बड़ा यथार्थ है क्योंकि यथार्थ भी व्यंग्य बनकर यथार्थ हो जाता है। जिस तरह से परसाई आमजन के प्रतिनिध लेखक हैं वैसे ही परसाई की प्रतिनिधि व्यंग्य रचनाएं आम जीवन का प्रतिनिधित्व करती हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. प्रतिनिधि व्यंग्य: हरिशंकर परसाई, राजकमल प्रकाशन, 23वां संस्करण 2019, नई दिल्ली, पृ0 19
2. वही, पृ0 27
3. वही, पृ0 28
4. देश के इस दौर में: विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, सं. 2000, पृ. 19
5. प्रतिनिधि व्यंग्य: हरिशंकर परसाई, राजकमल प्रकाशन, 23वां संस्करण 2019, नई दिल्ली, पृ0 110
6. भारतीय साहित्य के निर्माता हरिशंकर परसाई: विश्वनाथ त्रिपाठी, साहित्य अकादमी प्रकाशन, प्र०सं०2007, नई दिल्ली, पृ0 100
7. प्रतिनिधि व्यंग्य: हरिशंकर परसाई, राजकमल प्रकाशन, 23वां संस्करण 2019, नई दिल्ली, पृ0 112
8. वही, पृ0 47
9. वही, पृ0 73
10. वही, पृ0 74
11. हरिशंकर परसाई के साहित्य में व्यक्ति, समाज और इतिहास: अमिता पाण्डेय, साहित्य भण्डार प्रकाशन, पृ0 85
12. प्रतिनिधि व्यंग्य: हरिशंकर परसाई, राजकमल प्रकाशन, 23वां संस्करण 2019, नई दिल्ली, पृ0 123
13. वही, पृ0 91, 92
14. हिन्दी व्यंग्य की धार्मिक पुस्तक: सम्पा० प्रेमजनमेजय, किताब प्रकाशन, प्र०सं० 2017, पृ0 21
15. प्रतिनिधि व्यंग्य: हरिशंकर परसाई, राजकमल प्रकाशन, 23वां संस्करण 2019, नई दिल्ली, पृ0 64
16. वही, पृ0 79, 80
17. वही, पृ0 83
18. वही, पृ0 44

ISSN 2278 - 0327

'अछूत' उपन्यास में दलित चेतना का अध्ययन

सुमन
शोधार्थी, हिंदी विभाग
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

सारांश– दलित चेतना वर्णव्यवस्था के तहत जारी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दमन के प्रतिरोध और प्रतिकार की चेतना है। प्रतिरोध का आशय है– उस यथास्थितिवादी व्यवस्था को आदर्श मानने से इन्कार करना, जो सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्तर पर मानवीय गरिमा के भौतिक विकास के अवसर सभी को प्राप्त नहीं होने देना चाहती। प्रतिकार का अर्थ है–सदियों के सामाजिक अपमान उत्पीड़न को अपनी नियति मानने से इंकार करते हुए सामूहिक स्व के पक्ष में खड़ा होना। इस प्रकार दलित चेतना जातिवाद दंश से उपजा है जो साहित्य के स्तर पर अंधश्रद्धा, आत्मा, ईश्वर और उस पर आधारित समस्त नैतिकता और धर्मसत्ता को अस्वीकार करता है। दलितों को समझे बिना उनकी चेतना को कैसे समझा जा सकता है, दलित शब्द को लेकर विभिन्न विद्वानों ने अपनी राय दी है। वामपंथियों की दृष्टि में दलित का अर्थ सर्वहारा है जो दक्षिणपंथियों की दृष्टि में दलित गरीब है। अर्थात् जो आर्थिक रूप से वंचित हो शोषित हो, वह दलित है।

डॉ. रमेश तिवारी के अनुसार – ''निम्नवर्गीय जातियों तथा अछूतों की दशा में सुधार की स्थिति का निर्माण तब तक नहीं हो सकता जब तक वे स्वयं संगठित होकर अपने में सामाजिक संगठन की शक्ति अर्जित नहीं कर लेते।''[1]

डॉ. श्योराज सिहँ बैचैन के अनुसार – ''दलित वह है जिसे संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है। 1933 के दरम्यान उस समय की सरकार ने जो जातीय निर्णय लिया उसमें 'डिप्रैस्ड क्लासेज' शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ है – पद दलित। वास्तव में पद दलित शब्द दलित के पयार्यवाची के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इसी समय भारत में समाजवादी विचारधारा का प्रयोग प्रादुर्भाव पैदा हुआ और इस विचारधारा के अंतर्गत जो वर्ग आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से दबा हआ, कुचला हुआ एवं शोषित था उसको महत्व प्राप्त हुआ और उस वर्ग को ही दलित के रूप में देखा गया था।''[2]

दलित चेतना का अविर्भाव आज का नहीं, अपितु सदियों पुराना है क्योंकि वेद विरोधी नास्तिक दर्शन और अभिजात्य वर्ग की सामंती भाषा के विरोध स्वरूप जनपक्षधर संस्कृति की सजनात्मक भाषा पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश में साहित्य की रचना से ही दलित चेतना का आविर्भाव स्वीकार किया जा सकता है। दलित आंदोलन बीसवीं सदी का आंदोलन है जो मराठी से हिंदी में आया। दलित चित्रण की अविच्छिन्न धारा हिन्दी साहित्य में प्रवाहित होने लगी। वह गोरखनाथ, कबीर, रैदास, दादू से होते हुए आधुनिककाल में अपना स्थान बना लेती है। इसमें संपूर्ण हिंदी साहित्य ही आ जाता है। दलित चेतनात्मक मूल्य आक्रोश, चीख, पीड़ा, चुभन, घुटन एवं शोषण के दर्द को हिंदी उपन्यासों में उकेरा है।

शब्द-कुँजी – दलित, समस्या, समाज, अपमान, घृणा, जाति, तिस्कार।

अछूत उपन्यास डॉ. मुल्कराज आनन्द द्वारा रचित 'अनटचेबल' का अनुवाद है। इसमें अस्पृश्यता की भावना का चित्रण किया है। यह समस्या भारतीय समाज में युगों से चली आ रही है। इसी भावना ने व्यक्ति–व्यक्ति के बीच दूरी बढ़ाई और सामाजिक पथ को भी अवरूद्ध किया। इस उपन्यास में जमादार लक्खा के परिवार का चित्रण किया गया है। लक्खा का बड़ा बेटा बक्खा के एक दिन में घटित होने वाली विभिन्न घटनाओं का मार्मिक चित्रण किया है। इसमें बुलाशहर के लक्खा का बेटा बक्खा के जीवन में एक दिन में घटित होती है। बक्खा के दिन की शुरूआत उसके पिता लक्खा की डांट से शुरू होती है। लक्खा ने कहा–'ओए बखिया! ओए सूअर की औलाद! उठ।' बापू की खर्राटे से टूटी आवाज आयी।' उठ और शौचालयों पर पहुंच जा वरना सिपाही नाराज हो जाएंगे।'[3] लेकिन बक्खा ने अपने पिता की डांट को अनसुना कर दिया।

बुलाशहर में रातें ज्यादा ठंडी होती हैं। इसी कारण वह एक पतले कम्बल में सिकुड़ कर दुबारा झपकी लेने लगा। तभी बाहर से सिपाही चरत सिंह की आवाज आई–'ओए बक्खा! ओए तू बदमाश! भंगी की औलाद! आ और मेरे लिए शौचालय साफकर।'[4] चरत सिंह की आवाज सुनकर बक्खा ने कम्बल को उतार फेंका और झट से खड़ा हो गया। वह हवलदार चरत सिंह जो 38वीं रेजिमेंट का प्रसिद्ध हॉकी खिलाड़ी है वह बवासीर का मरीज है। वह बक्खा पर चिल्लाते हुए यह आरोप लगाता है कि तेरे कारण ही मुझे यह बीमारी हुई। बक्खा को अंग्रेजी रहन–सहन पसंद है। एक बार वह अपने चाचा के साथ ब्रिटिश रेजिमेण्ट में गया था। वहां वह अंग्रेज सिपाही के रहन–सहन, खान–पान एवं मानवीय व्यवहार से बहुत प्रभावित हुआ। बक्खा को अंग्रेजों जैसे कपड़े पहनना पसंद है। वह शौचालयों की सफाई करने के बाद भी साफ-सुथरा रहता है। एक बार चरत सिंह ने उसके कपडों के बारे में कहा–'ओए बक्खा! तू जैण्टलमैन होता जा रहा है। तूने यह वर्दी कहां से ली ?'[5] बक्खा ने मुस्कराते हुए कहा कि साहब यह आपकी ही कृपा है क्योंकि हम निम्न जाति वालों को उच्च जाति वाले लोगों की नकल करने का अधिकार नहीं है। चरत सिंह ने बक्खा को दोपहर में अपने घर आने का निमंत्रण दिया। वह उसे हॉकी देता है। वह जानता

है कि बक्खा हॉकी का अच्छा खिलाड़ी है। चतर सिंह के हृदय परिवर्तन को देखकर बक्खा मन ही मन मुस्कुराता है। वह सोचता है कि हॉकी नयी होगी या पुरानी। वह चरत सिंह के प्रति कृतज्ञता भाव से भर गया। जो कृतज्ञता उसे अपने बाप-दादा से विरासत मिली है।

बक्खा अपने काम के प्रति समर्पित है। वह दोपहर तक बिना रूके शौचालयों की सफाई करता है। काम करते-करते उसकी कमर अकड़ जाती है, गला सूख जाता है। फिर भी आराम नहीं करता। वह भोला व विनम्र स्वभाव का है। दोपहर को अपना काम खत्म करने के बाद वह पहुंचता है तो उसे घर में पानी नहीं मिलता। उसकी बहन सोहनी पानी लेने के लिए उच्च वर्ग के कुएँ पर जाती है। वहां उसे पानी भरने के लिए इंतजार करना पड़ता है। वे इंतजार करते हैं कि कोई उन्हें पानी दे। निम्न वर्ग को पानी के लिए उच्च वर्ग पर निर्भर रहना पड़ता है। बगैर स्वार्थ के उनका कोई काम उच्च वर्ग वाले नहीं करते। पंडित पानी के बदले बक्खा की बहन को अपने मंदिर में सफाई करने के लिए बुलाता है और उस पर गंदी नजर डालता है। बक्खा पंडित का विरोध करता है। वह मंदिर के आंगन की सफाई करने के लिए जाता है। लेकिन पंडित यह आवाज लगाता है कि इसने हमें भ्रष्ट कर दिया। लेकिन सच्चाई यह है कि पंडित ने उसकी बहन को स्पर्श करने की कोशिश की। जब सोहनी ने इसका विरोध किया तो उसने कहा कि इसने हमें भ्रष्ट कर दिया। निम्न जाति वालों को मंदिर, मस्जिद में जाने का अधिकार नहीं था।

बक्खा शहर की सफाई करने के बाद बाजार वाली गली से गुजरता है तो उसे तरह-तरह के पकवान, मिठाई दिखाई देती है। वह मिठाई खाना चाहता है लेकिन उसके पास इतने पैसे नहीं हैं कि वह रसगुल्ले, गुलाबजामुन खरीद सके। उसने जलेबी खरीदी। वह जलेबी खाते-खाते जा रहा था कि अचानक एक व्यक्ति ने चिल्लाना शुरू कर दिया कि इसने मुझे भ्रष्ट कर दिया। निम्नजाति वालों को रास्ते पर चलते समय भी लोगों को सचेत करना पड़ता है कि हम आ रहे हैं। पूरा दिन काम करने के बाद उन्हें भरपेट खाना भी नसीब नहीं होता। बक्खा ने गली में आवाज लगाई, 'भंगी के लिए रोटी मां, भंगी के लिए रोटी।'[6] किसी ने उसकी आवाज नहीं सुनी। वह थक हारकर एक मकान के सामने लकड़ी के तख्त पर बैठ गया। अनिंद्रा में उसने स्वप्न में अपने आपको एक बैलगाड़ी में जाते देखा, शहर में बारात निकलते हुए ढोल-नगाड़े बजते हुए, सुदर्शन सुनार को जेवर बनाते हुए देखा, फिर उसने अपने आप को एक स्कूल में देखा। जहां अध्यापक बच्चों को पढ़ा रहा है। उसने एक तपस्वी को देखा जो दस हजार वर्ष का बूढ़ा लग रहा था। तभी उसे अलख की आवाज सुनाई दी, जिससे बक्खा जाग गया। उसने लेटे हुए साधु को देखा जो उसे घूर रहा था। तभी एक महिला ने चिल्लाते हुए कहा, 'तू खसमां नूं खांणे, तेरा सत्यानाश हो, तू मर जाए, तूने मेरे घर को भ्रष्ट कर दिया! क्या यह तेरे बाप का घर है, जो तू यहां आकर आराम करने लग गया।'[7] बक्खा ने माफी मांगते हुए कहा कि मैंने रोटी के लिए आवाज लगाई थी लेकिन किसी ने नहीं सुनी। महिला ने उससे कहा कि नमकहराम तूने मेरे घर को भ्रष्ट कर दिया। महिला ने साधु को देखकर अपनी गालियों को रोका, साधु जी जरा धीरज रखो, आपके लिए भोजन लाती हूं। बक्खा के लिए रोटी को महिला ने ऊपर से फेंका। जो नाले के पास से उसने उठाई। दिनभर में घटने वाली सभी बातों को याद करके वह बहुत दुखी हो गया। उसने सोचा कि उन्हें काम के बदले सिर्फ अपमान मिलता है। वह कहता है कि नहीं करना मुझे ऐसा काम। अगर वह इन सब बातों को अपने पिता से बताएगा तो वह उसे ही गलत समझेगा।

दिनभर की बातों को भुलाने के लिए वह हॉकी खेलने के लिए जाता है। मैदान में एक बाबू के दो बेटे, धोबी का बेटा रामचरण, छोटा, शस्त्र बनाने वाले का बेटे नियामत और अस्मत, दर्जी का बेटा इब्राहिम और 31वीं रेजिमेण्ट के लड़के भी थे। बक्खा ने सभी को अपनी नयी हॉकी स्टिक दिखाई। छोटा ने अपनी टीम के ग्यारह खिलाड़ियों को चयन किया। मैदान बच्चों से भर गया। यह बड़ा अद्भुत दृश्य था। बक्खा गेंद को घुमाते-फिराते हुए 31वीं पंजाबी लड़कों के गोल तक ले गया। पंजाबी टीम यह देखकर उसका विरोध करती है। झगड़ा बढ़ता है। सभी चीखने-चिल्लाने, एक दूसरे को मारने लगते हैं। 38वीं डोगरा टीम ने बक्खा की टीम पर पत्थर फेंकने शुरू कर दिए। लेकिन रामचरण के हाथ से फेंका हुआ पत्थर जब बाबू के छोटे बेटे को लगा तो वह बेहोश होकर जमीन पर गिर गया। बक्खा ने उसे अपनी बांहों मे उठाया और उसके घर तक ले गया। अपने बच्चे की हालत देखकर उसकी मां छाती पीटने लगी और रोते हुए बोली - 'उसे मुझे दो! मेरा बच्चा मुझे दे। मेरे बच्चे को जख्मी करने के अलावा तूने मेरे घर को भी भ्रष्ट कर दिया।'[8] महिला के बड़े बेटे ने अपनी मां को कहा कि उसने चोट नहीं मारी। लेकिन वह समझने को तैयार ही नहीं थी। बक्खा का बच्चे से बहुत लगाव था। जब वह घर गया पहुंचकर ये सब बातें अपने पिता को कहता है तो वह इसका पक्ष लेने की बजाय उसे घर से बाहर निकाल देता है। उसका पिता उसे हराम की औलाद कहता है। वह कहता है कि पूरा दिन खेलना कूदना और कोई काम नहीं है तुझे।

बक्खा बिना पीछा देखे घर से भाग जाता है। वह एक पेड़ के नीचे बैठ जाता है। उसने एक सिपाही को शौचालय की तरफ जाते हुए देखा। उसको देखकर वह छिप गया। वह अकेला और शांति पाना चाहता था। वह सोचता है कि अक्सर उसका पिता उसे घर से बाहर निकाल देता है। एक बार उसकी मां की मृत्यु के बाद भी उसे पूरी रात घर से बाहर निकालकर उसके बापू ने अंदर से ताला लगा लिया था। रातभर वह ठंड में ठिठुरता रहा। वह सोचने लगा कि यही बापू है जो हकीम से प्रार्थना करके मेरे लिये दवा लाया था। इसी बात को लेकर कई दिनों तक उसने अपने पिता से बात नहीं की। वह घर से बाहर पहाड़ियों पर चला गया। तभी वहां पर स्थानिय आर्मी का कर्नल हचिंसन उसके पास आया। उसने बक्खा की उदासी के बारे में पूछा। कर्नल ईसाई धर्म का पक्का समर्थक है। वह उसके पिता के पास भी आता था। वह उन्हें धर्म परिवर्तन करके अच्छा जीवनयापन करने की सलाह देता था। लेकिन उसके पिता ने अपने पुरखों के धर्म को छोड़ने से

इंकार कर दिया। उसने बक्खा से पूछा कि तुम बीमार हो। उसने सोचा कि दोपहर को चरत सिंह और अब कर्नल मेहरबान। मैं कोई स्वप्न तो नहीं देख रहा। कर्नल ने बक्खा को यीशू मसीहा के बारे में बताया। बक्खा ने पूछा क्या यीशू मसीहा परमात्मा है। जैसे हिन्दुओं के परमात्मा राम हैं। जिसकी पूजा उसके मां-बाप करते आए हैं। बक्खा ने फिर से पूछा की यीशू मसीहा कौन है। कर्नल ने बताया कि यह उच्च व निम्न वर्ग में भेदभाव नहीं करता, उसकी नजर में सभी समान हैं। कर्नल ने बक्खा से कहा कि आओ मेरे सामने अपने पापों को स्वीकार करो। जब तुम्हारी मृत्यु होगी तब यीशू मसीहा तुम्हे स्वर्ग पहुंचा देंगे। वह कर्नल की बातों से उब चुका था। बक्खा ने सोचा कि ये यीशू मसीहा कोई अच्छा आदमी होगा और वो ब्राह्मण और भंगी को समान समझेगा। उसने राम-कृष्ण की कहानी सुनी थी लेकिन यह यीशू मसीहा कौन है, यह मुझे कर्नल साहब ही बताएंगे। इससे पहले कि दोनों चर्च में पहुंचे कर्नल की पत्नी चीखने, चिल्लाने लगी। कर्नल की पत्नी का गुस्सा देखकर बक्खा वहां से भाग गया। मैरी ने कर्नल को कहा कि तुम पूरा दिन भंगियों और चमारों के साथ बिताते हो। उसको यह लगा कि हर कोई हमें ही गलत समझता है।

अब बक्खा शहर की ओर चल रहा था। रेलवे स्टेशन पर उसने पूल के नीचे से रेलगाड़ी की आवाज सुनी। उसने वहां पर कुछ लोगों को यह कहते हुए सुना कि महात्मा गांधी बुलाशहर में आने वाले हैं। वह भी गांधी का भाषण सुनने के लिए भीड़ के पास एकत्रित होता है। गांधी ने अछूतों की समस्या एवं अस्पृश्यता पर भाषण दिया। गांधी ने कहा कि कुंए, मंदिर, सड़के, स्कूल में सभी को जाने का अधिकार मिलना चाहिए। भाषण के बाद भीड़ तीतर-बीतर हो गई। वह पेड़ पर बैठा मुस्कुरा रहा था। उसे लगा कि उसकी अंतर्मन को छू लिया। वह कोई अच्छा आदमी होगा। भाषण के बाद वकील सरशा गांधी के विचारों की आलोचना करता है। कवि सशीर महात्मा को भावुक मानता है। सशीर मानता है कि भारत में फलशिंग टायलेट बनाए जाए तो अस्पृश्यता की भावना अपने आप खत्म हो जाएगी। इसी के साथ बक्खा इस भाषण में सुनी हुई बातें अपने पिता को कहने के लिए घर पहुंचता है। उसने कुछ लोगों को आधुनिक कमोड के बारे में बातें करते हुए सुना था जिससे व्यक्ति के मल को फलश द्वारा पानी में बहाया जा सकता है। उसे लगा कि आधुनिक तकनीकी वाला कमोड आयेगा तो उनको अमानवीय जीवनावस्था से मुक्ति मिलेगी। उसे उस दिन अहसास होता है कि मुक्ति धर्म परिवर्तन करने में नहीं बल्कि आधुनिकता को अपनाने में है।

निष्कर्ष :-

मुल्कराज आनन्द द्वारा रचित उपन्यास 'अछूत' में सफाई कर्मियों की त्रासदी का वर्णन किया है। इस उपन्यास में बक्खा के जीवन में चार घटनाओं का वर्णन किया है। सबसे पहले उसके दिन शुरूआत उसके घर के बाहर सिपाही चरतसिंह के चिल्लाने की आवाज आती है। वह अपनी बीमारी का कारण बक्खा को मानता है। दूसरी घटना मंदिर के आंगन की सफाई करते हुए पंडित कालीनाथ के भ्रष्ट हो गया, भ्रष्ट हो गया की आवाज से मंदिर में अफरा-तफरी का माहौल हो गया। लेकिन इसका कारण था सोहनी। जिसने पंडित के छेड़ने का विरोध किया तो उसने भ्रष्ट करने का आरोप लगाया। तीसरी घटना एक बाबू के बेटे का खेलने के दौरान घायल होने पर उसकी मां द्वारा बक्खा का अपमान करना। इन घटनाओं का बक्खा के मन में घृणा पैदा हो जाती है। वह सोचता है कि उन्हें काम बदले सिर्फ अपमान मिलता है। इन घटनाओं को भूलाने की कोशिश में वह घर से बाहर निकलता है उसे पता चलता है कि बुलाशहर में गांधी की सभा होने वाली है। वहां पर सभी को समान अधिकार मिलने चाहिएं जैसी बातों का पता चलता है। ये सभी घटनाएं घटित होने पर भी बक्खा पर दलित चेतना को कोई प्रभाव नहीं पड़ता। बक्खा जब गली से गुजरता है तो एक व्यक्ति उसके पास से गुजरते हुए उसके संपर्क में आता है। वह उस पर भ्रष्ट करने का आरोप लगाते हुए भीड़ को इकट्ठा कर लेता है। वह बक्खा के मुंह पर थप्पड़ मारकार उसे अपमानित करता है। दूसरी घटना मंदिर के पुजारी पंडित कालीनाथ भ्रष्ट कर दिया, भ्रष्ट कर दिया चिल्लाता है। मंदिर में मौजुद लोगों को लगता है कि बक्खा ने मंदिर में प्रवेश किया है। लेकिन बात कुछ और ही थी। तीसरी घटना उसके साथ जब घटित होती है कि जब वह रोटी मांगने के लिए एक गली में जाता है। उसकी आवाज को कोई नहीं सुनता। वह आवाज लगाकर एक घर के बाहर एक तख्ते पर लेट जाता है। उस घर की मालकिन उस पर भ्रष्ट करने का आरोप लगाती है और रोटी को ऊपर से ही फेंकती है। वह रोटी नाले के पास गिरती है। वह उसे उठाकर घर की ओर चलता है। चौथी घटना हॉकी के खेल के दौरान बाबू के छोटे बेटे के सिर पर चोट लगने से वह बेहोश हो जाता है। वह उसे अपनी बांहों में उठाकर उसे घर पर पहुंचाता है लेकिन उसकी मां भ्रष्ट करने का आरोप लगाती हुई उसे अपमानित करती है। इन सभी घटनाओं का बक्खा पर गहरा प्रभाव पड़ता है। वह सोचता है कि हमें काम के बदले हमेशा अपमानित होना पड़ता है। इन सभी घटनाओं के बाद भी बक्खा ने दलित चेतना विकसित नहीं हो पाती। उसके चरित्र ने दलित चेतना का सतत् अभाव नजर आता है।

संदर्भ

1. डॉ० रमेश तिवारी, हिन्दी उपन्यास साहित्यिक अध्ययन, पृ० स० 81-82
2. डॉ० श्योराज सिहँ बैचैन, अर्थात: त्रैमासिक पत्रिका, अप्रैल 1992, पृ० स० 24
3. डॉ० मुल्कराज आनन्द, अछूत, 1992, पृ० स० 8
4. वही, पृ० स० 10
5. वही, पृ० स० 11
6. वही, पृ० स० 59
7. वही, पृ० स० 62
8. वही, पृ० स० 103

ISSN 2278 - 0327

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'फरिश्ते निकले' में चित्रित नारी समस्याएँ

सन्तोष
पी-एच०डी० शोधार्थी, हिन्दी विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

शोध आलेख-सार

प्राचीन काल से ही हमारे समाज में नारी की दशा दयनीय रही है। हिंदू समाज में अनेक कुप्रथाएं प्रचलित थी, जिनके कारण नारी की स्थिति और भी बदतर हो गई थी। उदाहरण के लिए पूरे भारत में बाल-विवाह, परदा-प्रथा, बेमेल-विवाह तथा विधवा पुनर्विवाह का न होना आदि समस्याएँ फैली हुई थी। शिक्षा के प्रसार के कारण धीरे-धीरे परिस्थितियाँ बदलने लगी आधुनिक काल में अनेक समाज सुधारकों ने जैसे 'राजा राममोहन राय', स्वामी विवेकानंद, रविंद्रनाथ टैगोर, भारतेंदु हरिश्चन्द्र आदि ने इन कुप्रथाओं को समाज से निकाल फैंकने का बीड़ा उठाया और समाज में फैली सती प्रथा जैसी विकृत परंपराओं का खंडन एवं विरोध किया। लेकिन आज भी नारी की दशा दयनीय बनी हुई है।

नारी के बिना समाज की कल्पना करना बहुत कठिन है। समाज में रहना नारी ही सिखाती है। नारी एक घर नहीं दो घरों का सुधार करती है। समाज में नारी मानव धर्म को निभाती है। समाज के माध्यम से हमें जीवन मूल्यों की जानकारी प्राप्त होती है। आधुनिक समाज में परिवर्तन होने के कारण नारी जीवन में भी परिवर्तन हुए। जिसके कारण बहुत-सी नई समस्याएँ उनके सम्मुख उपस्थित होती है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'फरिश्ते निकले' में नारी की समस्याएँ चित्रित की है जैसे बाल विवाह, अनमेल विवाह, बांझ की समस्या, नारी विक्रय, दहेज की समस्या, विधवा की दयनीय स्थिति आदि।

विवाह एक सामाजिक संस्कार है। जिसमें बंधकर नारी-पुरुष दाम्पत्य जीवन व्यापन करते है और सृष्टि के निर्माण में सहायक बनते है। इन विवाह संस्थाओं का रूप वैदिक समाज से भिन्न रूप ले रहा है। लेकिन जब ये बन्धन मनुष्य की उन्नति और सर्वतोन्मुखी विकास में बाधक हो तो इसका क्या महत्व रह जाता है। समाज में विवाह का रूप कुरूप हो गया है। इसमें लड़की की इच्छा को प्रधानता नहीं दी जाती थी। लड़की के लिए घर का चुनाव माता-पिता ही करते है। माता-पिता लड़की का कम उम्र में ही विवाह कर देते है। इस प्रकार हम बाल-विवाह करके अपनी लड़की की जिन्दगी बर्बाद कर रहे हैं।

गाँवों में अशिक्षित माता-पिता अपनी बेटी का विवाह बचपन में ही कर दिया करते हैं। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'फरिश्ते निकले' में बाल-विवाह का चित्रण हुआ है।

'ऐ मोहब्बत तेरे अंजाम पै ... उद्धरण' में दिखाया गया है कि वीर की दादी का बाल विवाह होता है - ''ब्याह हो गया, गौना पाँच साल बाद होना था। तब तक दुल्हन अठारह की और उमर सिंह उन्नीस वर्ष के हो जाते।''[1]

'फरिश्ते निकले' उपन्यास में बेला के पिता की मृत्यु हो जाती है। माँ बेटी दोनों बेसहारा हो जाती हैं, तब उनकी सहायता शुंगर सिंह करता है। लेकिन शुंगर सिंह की नजर बेला पर थी, वह बेला से विवाह करना चाहता है। शुगर सिंह गाँव वालों की सहायता से बेला से विवाह करने में सफल भी हो जाता है। बालिका वधु ... उद्धरण' में दिखाया गया है - ''शुगर सिंह के पक्के घर के पक्के आँगन में खड़ी एक बालिका वधू हाथों में सुहाग के कचारा (काली चूड़ियाँ) पाँवों में बिछिया और गले में लाल धागे से बँधी तबिजिया। साथ में सोने का हार भी।''[2]

प्राचीन काल से ही अनमेल विवाह नारी के लिए एक भयानक समस्या रही है। आधुनिक युग में भी यह समस्या समाप्त नहीं हुई है। वर-वधू में यदि किसी कारण मेल स्थापित न हो तो वह परिवार नरक बन जाता है। हम आधुनिक समय के परिवारों में भी इस समस्या को देख सकते है। इस संबंध में पं. बालकृष्ण भट्ट ने लिखा है - ''दृष्टि फैलाय कर देखिए तो इसी अनमेल विवाह के कारण कौन-सा ऐसा घराना है जहाँ दिन-रात की दाँता किट-किट नहीं हुआ करती।''[3]

अनमेल विवाह में एक किशोर लड़की का विवाह वृद्ध आदमी से होता है। अनमेल विवाह दहेज प्रथा तथा आर्थिक निर्धनता के कारण समाज में प्रचलित हुआ। अनमेल विवाह किसी न किसी रूप में दु:खद ही रहता है। ऐसे विवाह में नारी को अन्दर ही अन्दर घुटन सहनी पड़ती है, क्योंकि वह खुलकर कुछ व्यक्त नहीं कर पाती।

मैत्रेयी पुष्पा अनमेल विवाह के सन्दर्भ में स्त्रियों के प्रति होने वाली क्रूरता की पराकाष्ठा को हमारे सामने रखती है और यह बताती है कि ये क्रूर प्रथाएँ किसी प्रकार नारी का शोषण करती है।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'फरिश्ते निकले' के विवरण 'बालिका वधू' में अनमेल विवाह की स्थिति दिखाई गई है। यथा - 'बालिका वधू' में बेला बलबीर से कहती है - ''हमारी बात कोई क्यों नहीं सुन रहा बलबीर ? अम्मा कह रही थी कि अब ऐसे मर्द पैदा हो रहे है जो अत्याचार को ही धरम मानते हैं, मनमानी करने को अपना पेशा समझते हैं, जो दूसरों को अपने हंटर से हाँकने में अपनी जिन्दगी सुकारथ करके

देख रहे हैं। नहीं तो इस गाँव में कोई भी बेला के ब्याह को गैरकानूनी न बताता ? कोई भी मोंड़ी की अवस्था पर गौर न करता ? अच्छी-भली पढ़ती हुई मोड़ी की दुर्दशा करने पर तुले हैं यहाँ के लोग। इसी को अपना धरम मान रहे हैं।''[4] ग्यारह वर्षीय बेला की सगाई पैंतालीस वर्ष के शुगर सिंह के साथ होती है। अरे मर्द की उमर और पुरानी दीवार जितना पानी खाये उतनी ही पुख्ता होती है। आदमी ही तो साठा पर पाठा होता है। मोड़ी की कच्ची अवस्था का क्या रोना ? अच्छी खुराक खिलाएगा तो साल भर में ... मोड़ी को लुगाई बनते देर लगती है ? मर्द का हाथ ही ...।[5]

'बालिका वधू' विवरण में सावित्री (सब्बी वीबी) जो तेरह वर्ष की थी, उसका वर पैंतालिस से ज्यादा का आंका जा रहा था। उसकी पहली पत्नी प्रसव के दौरान मृत्यु को प्राप्त हो गई थी। उसकी बड़ी लड़की का विवाह हो चुका था। ऐसे ही अनमेल विवाह शिवदेवी का होता है। उसका विवाह एक बूढ़े व्यक्ति से होता है। रामदेई चाची की बहन शकुन्तला का विवाह पचास वर्ष के नत्थूराम से तय हो गया। शकुन्तला के ब्याह में गीत गाए जा रहे थे।

''बिन मेल बिगरि गयौ खेल / बूढ़े के संग जोड़ी ना मिलै
बारह बरस की मेरी बहना / बासठ के भरतार
तो से पिता कहूँ कि भरतार / लगै मेरौ बवा सौ''[6]

अत: हम कह सकते है कि आज भी अनमेल विवाह की समस्या ऐसी ही बनी हुई है। आज भी समाज बहुत से जोड़े अनमेल विवाह के दिखाई देते है।

प्राचीन समय से ही जब एक नारी को संतान पैदा नहीं होती तो उसे बांझ मान लिया जाता है। यह समस्या आधुनिक युग में भी बनी हुई है। संतान पैदा न होने पर सारा दोष नारी को ही दिया जाता, पुरुष में कोई कमी नहीं निकालता। बच्चे पैदा न होने पर नारी पर बहुत से अत्याचार किए जाते है, उसे घर से निकाल दिया जाता है। कई बार उसे मौत के घाट भी उतार देते है।

मैत्रेयी पुष्पा ने बांझ की समस्या को 'फरिश्ते निकले' के विवरण 'बालिका वधू' में दिखाया है। बेला को बांझ कहा जाता है लेकिन शुगर सिंह में ही कोई कमी है। गाँव वाले शुगर सिंह का साथ देते है और बेला को ही दोषी मानते है।

''शुगर सिंह को दोषी माननेवाले उस गाँव में तो नहीं थे। औरत की तरह वहाँ बेला ही बाँझ प्रचारित होने लगी। हाय-हाय करते हुए शुगर सिंह पर तरस खानेवाले बेला के तन्दुरुस्त शरीर को जब-तब कोसते-हथिनी हो रही है खा-खा के। औलाद के नाम पर मुसटिया तक पैदा नहीं कर पाई।''[7]

बेला के बचपन का दोस्त बलवीर उससे मिलने आता है, तब उसे बेला की स्थिति का पता चलता है। वह अपने गाँव से एक मिडवाइफ को बेला के पास भेजता है। ''इस मिडवाइफ ने बेला को चैक किया था और शुगर सिंह के सामने कहा था - कौन कहता है कि यह औरत बाँझ है ? यह तो सौ पूत जन दे।''[8]

'बालिका वधू' विवरण में दिखाया गया है कि सब्बी बीबी गर्भ के नाम पर जोरो साबित होती है। ''पति की उम्र ढलान की ओर थी और बीबी थी उसे सम्मिलन के लिए मनचाही छूट नहीं देती थी। मेरी बहन इसी अपराध में गाय-भैंस की तरह पिटती।''[9]

'बालिका वधू' विवरण में सब्बी बीबी के अनमेल विवाह के कारण उसे सन्तान पैदा नहीं हुई। ''इधर सब्बी ने यज्ञ में आहुति क्या डाली वह तो बाँझ होती चली गई है, लोगों ने कहा। यह किताबें पढ़ने लगी है। घर का हिसाब-किताब खँगालती है। सच में बीबी ने जब जीजा से पूछा कि तुम्हारे बराबर की कोई औरत मेरी जगह होती तो अब तक बच्चा हो जाता न ? मुझसे शादी क्यों की ?''[10]

'फरिश्ते निकले' उपन्यास में 'बेला बहू का प्यार विवरण में बेला के ऊपर बाँझ का थपा लगा दिया जाता है, तब बेला कहती है - ''मैं बाँझ नहीं हूँ। मुझे बच्चा चाहिए कि नहीं चाहिए, लेकिन यह अपमान भरा शब्द मेरे वजूद पर मत चिपकाओ। मेरी अन्तरात्मा कहती है औरत की जिन्दगी से यह कलंक की गठरी उतार लो।''[11]

प्राचीन काल से ही गरीब व्यक्ति धन के अभाव में अपनी लड़की को बेच भी देता है। कई बार माता-पिता की मृत्यु होने पर लड़की के रिश्तेदार भी उसका सौदा कर देते है। नारी विक्रय की यह समस्या गंभीर बनी हुई है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यास 'फरिश्ते निकले' में नारी विक्रय की स्थिति का चित्रण किया है -

'बालिका वधू' विवरण में ''उन्हीं दिनों रामदेई चाची की बहन शकुन्तला का ब्याह पचास वर्ष के नत्थूराम से तय का मोल भरा है। बहरहाल नेग-शगुन होने लगे। ढोलक बजाकर गीत गाए जाने लगे। गीत जो आज तक मैं नहीं भूली वह सब्बी बीबी से होता हुआ बेला बहू की कहानी तक ज्यों का त्यों आता है। मवेशी तो बिकते हैं, शकुन्तला मवेशी की तरह बिक गई। विक्रेता अक्सर गरीब लोग होते हैं और लड़की उनके लिए बड़ा बोझ होती है। बोझ की कीमत मिले तो सोने में सुहागा। छोटी उम्र की लड़कियाँ आसानी से बिक जाती हैं, ग्राहक भी ज्यादा लगते हैं। कारण कि कमसिन लड़कियों को अपनी तरह ढाला जा सकता है।''[12]

'फरिश्ते निकले' उपन्यास के विवरण 'पीतल की गाड़ी: रईसों का खटका' उद्धरण में नारी विक्रय की स्थिति को दिखाया गया है। लोहापीटा लोगों की जाति में लड़की की कीमत लगाई जाती है, ''रामप्यारी काकी असली बात पर आ गई, दोस की बात कौन कह रहा है, लेन-देन की बात का सवाल है।''

'लेने-देन की बात ? अरे जो रेट चल रहा है, वो ही तो देना है।' समधिन की आवाज सपाट थी ...

'सो हमारा छोकरा भी बेसकीमती है चोर-उचक्का नहीं।' समधिन ने हिसाब बराबर किया और ठोड़ी को टटोलती हुई मर्दों के समूह की ओर देखने लगी।

देखकर जो भाँपा, औरतों के बीच उगल दिया, ''दस हजार बोले हैं। लो, सरबत पिलाया जा रहा है।'' [13]

अत: स्पष्ट है कि समाज में नारी विक्रय की समस्या आर्थिक विषमता की देन है। एक गरीब व्यक्ति मजबूर होकर अपनी लड़की को बेचता है, लेकिन धीरे-धीरे समाज में इस मजबूरी को रिवाज में परिवर्तित कर देते है। यह रिवाज लौहमानवों की जाति में देखी जाती है।

भारतीय विधवा के जीवन की स्थिति अत्यन्त दयनीय बनी हुई है। विधवा हिन्दू समाज में अपशकुन एवं दुर्भाग्य का प्रतीक मानी जाती है। विधवा के प्रति न कोई सहानुभूति दिखाता है और न उसके दु:खों के प्रति कोई ध्यान देता है। समाज में विधवा को उसके पति की मृत्यु का कारण मान कर कोसा जाता है, व्यंग्य किए जाते है। उसे समाज के तानों का सामना करते हुए अपना सारा जीवन व्यतीत करना पड़ता है। समाज द्वारा उसके सामने लक्ष्मण रेखा खींची जाती है, वह उसे पार नहीं कर सकती।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'फरिश्ते निकले' के विवरण 'बालिका वधू' विधवा की दयनीय दशा का वर्णन किया गया है - यथा बेला के पिता बान सिंह की मृत्यु के बाद उसकी अम्मा सुध-बुध खो बैठी है, ''अम्मा शोक मनाने की रस्म निभाते हुए ही लुट गई, मगर उनकी तारीफों में बढ़ोतरी होती गई कि जब से बान सिंह मरा है, उसकी औरत अपने होश-हवास खो बैठी है भाई। ऐसी पतिव्रताओं से ही धरती टिकी है, ऐसी सतियों की ही आसमान तक जय-जयकार है। कलजुग में सतजुगी औरत !'' [14]

समाज नारी के बिना नहीं चल सकता और यही समाज उसके सामने ऐसी परिस्थितियों उत्पन्न कर देता है कि उसे जीवन जीने से मर जाना आसान लगता है।

दहेज एक सामाजिक समस्या है, जो आज बहुत तेजी के साथ समाज में फैलती जा रही है। दहेज का अर्थ है - वह धन जो विवाह के समय लड़की के परिवार की तरफसे वर को दिया जाता है, अर्थात् यह लड़की के परिवार द्वारा नकद, वस्तुओं और गहनों के रूप दिया जाता है।

प्राचीन समय में माता-पिता अपनी लड़की को उसके विवाह के अवसर पर कुछ उपहार देते थे। परन्तु धीरे-धीरे इस उपहार ने दहेज प्रथा का रूप ले लिया। कुछ लोग दिखावा करने के लिए भी अधिक से अधिक धन अपनी बेटी के साथ वर पक्ष को देने लगे तथा कुछ मजबूरी के कारण अपनी बेटी की शादी में वर पक्ष को धन देने लगे। इस तरह दहेज प्रथा एक गम्भीर समस्या बन गई। इस दहेज रूपी कुप्रथा के कारण कितनी ही बेटियों को जिन्दा जला दिया जाता है तथा घर से निकाल दिया जाता है। दहेज जैसी कुप्रथा के कारण अनेक समस्याएँ समाज में फैल गई है जैसे नारी विक्रय तथा अनमेल विवाह की समस्या आदि।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'फरिश्ते निकले' के विवरण 'पीतल की गाड़ी' - रइसों का खटका में दहेज की स्थिति दिखाई गई है। उजाला के रिश्ते के लिए आए लड़के वाले लेन-देन की बात करते है। ''लेन-देन की बात ? अरे जो रेट चल रहा है, वो ही तो देना है। समधिन की आवाज सपाट थी।''[15]

निष्कर्ष

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यास में महिलाओं की जिन समस्याओं का निरूपण किया है, वे समस्याएं सारे संसार की महिलाओं की ही समस्याएँ है। नारी चाहे दुनिया के किसी कोने में रहती हो, किसी भी धर्म को मानती हो, उसमें त्याग की भावना बचपन से ही भर दी जाती है। शिक्षा के अभाव में कुछ व्यक्ति अपनी लड़की का विवाह कम उम्र में कर देते थे। आज कुछ हद तक इस स्थिति में सुधार हुआ है लेकिन भारत के कुछ स्थानों पर आज भी बाल विवाह होते है। धन के अभाव में अनमेल विवाह, नारी विक्रम जैसी समस्याएँ भी समाज में देखी जाती है। पति की मृत्यु के बाद विधवा नारी की रक्षा करने वाला कोई नहीं होता। उसे दुनिया भर के रंगों को त्याग कर सफेद कपड़े धारण करने पड़ते है। प्राचीन समय में जो विधवा नारी की दशा थी, उसमें बहुत कुछ परिवर्तन हुआ है। दहेज प्रथा से मुक्त होने के लिए सभी व्यक्तियों को संकल्प लेना होगा तभी इस कुप्रथा को समाप्त कर सकते है। विधवा नारी को पुनर्विवाह का अधिकार प्रदान कर तथा उसके लिए सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान कर सुरक्षित रखा जा सकता है। कुल मिलाकर मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'फरिश्ते निकले' में नारी की सभी समस्याओं का जो चित्रण किया गया है वह हृदय को छूने वाला है। इस उपन्यास को पढ़ते समय पाठक में इन कुरीतियों के प्रति आक्रोश भर जाता है, जो इन कुरीतियों को समाज से समाप्त करने के लिए संघर्षरत हो जाता है।

सन्दर्भ सूची

1. मैत्रेयी पुष्पा, फरिश्ते निकले, पृ. 200
2. मैत्रेयी पुष्पा, फरिश्ते निकले, पृ. 29
3. डॉ ? राजेन्द्र शर्मा, हिन्दी गद्य के निर्माता बालकृष्ण भट्ट, पृ. 265
4. मैत्रेयी पुष्पा, फरिश्ते निकले, पृ. 29
5. मैत्रेयी पुष्पा, फरिश्ते निकले, पृ. 24
6. मैत्रेयी पुष्पा, फरिश्ते निकले, पृ. 39
7. मैत्रेयी पुष्पा, फरिश्ते निकले, पृ. 33
8. मैत्रेयी पुष्पा, फरिश्ते निकले, पृ. 34
9. मैत्रेयी पुष्पा, फरिश्ते निकले, पृ. 39
10. मैत्रेयी पुष्पा, फरिश्ते निकले, पृ. 39
11. मैत्रेयी पुष्पा, फरिश्ते निकले, पृ. 59
12. मैत्रेयी पुष्पा, फरिश्ते निकले, पृ. 38-39
13. मैत्रेयी पुष्पा, फरिश्ते निकले, पृ. 172
14. मैत्रेयी पुष्पा, फरिश्ते निकले, पृ. 18
15. मैत्रेयी पुष्पा, फरिश्ते निकले, पृ. 172

ISSN 2278 - 0327

रहस्यवाद के विविध आयाम

डॉ. सत्यमुदिता स्नेही
सहायक आचार्या, संस्कृत
राजकीय महाविद्यालय, बावडी, जोधपुर

कूट शब्द–नेति–नेति, गुह्यतम, रहस्य, आदेश, गूढम्, अनिर्वचनीय, शिवतत्त्व।

रहस्यवाद का दृष्टान्त उपनिषद् दर्शन से प्राप्त होता है। कुछ विद्वानों ने उपनिषद् के विचारकों को ईश्वरवादी तो कुछ ने सर्वेश्वरवादी कहा है। कुछ विद्वानों ने कहा है कि उपनिषद् में व्यक्तित्वपूर्ण ईश्वर की चर्चा है तो कुछ विचारकों ने माना कि उपनिषद् में व्यक्तित्वशून्य ईश्वर की चर्चा है। कुछ विचारक उपनिषद् के ऋषियों को आशावादी मानते हैं तो कुछ ने उपनिषद् के आचार्यों को निराशावादी कहा है। इस प्रकार उपनिषद् की उपर्युक्त व्याख्या से हमें मानने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि उपनिषद् दर्शन रहस्यवाद से परिपूर्ण है।

रहस्यवाद वह विचारधारा है, जिसके द्वारा इस व्यष्टि–समष्टि रूप दृश्यमान कार्य जगत् के कारण की खोज की जाती है, अर्थात् क्या व्यष्टि रूप व समष्टि रूप कार्य का कारण अलग–अलग है? या कि एक ही है? क्या यह दृश्य, भौतिक, स्थूल जगत् ही अन्तिम तत्त्व है? 'रहस्यवाद' में इसी सूक्ष्मतत्त्व की खोज, विश्लेषण, विवेचन व इसको जानने का प्रयास किया जाता है तथा यह भी देखा जाता है कि तत्त्वज्ञान होने के पश्चात् तत्त्वज्ञानी व्यक्ति के आचरण पर कैसा प्रभाव पड़ता है। उपनिषद् को 'रहस्यविद्या' कहने का भी यही औचित्य है। इस सूक्ष्मतत्त्व की खोज करने में ही मानव जीवन की सार्थकता है–

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति।।[1]

तथा

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञास्व। तद्ब्रह्मेति।[2]

समस्त संसार कारण कार्य के नियम से बद्ध है, अतः 'जगत् का मूल कारण तो अवश्य ही मानना पड़ेगा' यह विचार कर ऋषियों ने उस अदृश्य तत्त्व को 'रहस्य' पद से सुशोभित किया। रहस्य पद 'रहस्य' शब्द से निष्पन्न है, जिसका अर्थ गोपनीय है। रहसि भवम् इति रहस्यम्, यहाँ रहस् शब्द से भाव अर्थ में तद्धित का यत् प्रत्यय किया गया है।[3] ऋषियों ने जिस ज्ञान को एकान्त में रहकर स्वयं की अनुभूति से जाना, उसे उन्होंने महत्त्वपूर्ण तथा गूढ़ माना। अतः भारतीय परम्परा में उसे **नेति–नेति**[4]**, गुह्यतम**[5]**, रहस्य**[6]**, आदेश**[7]**,, गूढम्** [8]**,** इत्यादि पदों से अभिहित किया गया है। पाश्चात्य दार्शनिक प्लेटो के संवादों में उसे 'अनिर्वचनीय शिवतत्त्व' (The Idea of Good) कहा गया है।

रहस्यवाद का विश्लेषण

दर्शन परिभाषा कोश के अनुसार रहस्यवाद वह मत है, जिसके अनुसार परम सत् अपरोक्षानुभूतिगम्य है। इसका ज्ञान बुद्धि, तर्क एवं भाषा से परे है।[9] रहस्यवाद की अवधारणा प्रायः सभी धर्मों में पायी जाती है। उपनिषद्, सूफीमत तथा ईसाई धर्म में रहस्यवाद का स्पष्ट उल्लेख दिखाई देता है। प्लोटिनस, स्पिनोजा, डीन ईज, आर. ए. जोन्स, हेनरी बर्गसाँ (H. Bergson) ए इवलिन अंडरहिल (Evelyn Underhill) इत्यादि प्रमुख रहस्यवादी दार्शनिक हुए है। विलियम जेम्स तथा स्टेस (W.T. Stance) ने रहस्यवाद को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। रहस्यवाद में निम्नलिखित तत्त्व दिखाई देते हैं–[10]

1. परमतत्त्व अद्वैत तथा एक है। अद्वैतवाद में इस परम सत् को 'निर्गुण ब्रह्म' कहा गया है। परन्तु ईश्वरवादी इस परम सत् को 'ईश्वर' संज्ञा देते है।
2. रहस्यानुभूति के काल में भक्त–भगवान्, साधक–ब्रह्म, इन दोनों का आत्मसात् तथा तादात्म्य (Identity) हो जाता है। उपनिषदों की मुख्य उक्ति है–'तत्त्वम् असि' जिसमें साधना की चरम अनूभूति में साधक अपने को ब्रह्म में लीन अथवा विलीन कर देते हैं। इस जीवन–काल में एकीभवन की अनुभूति क्षणिक होती है। ईश्वरवादी, रहस्यानुभूति के काल में ईश्वर के साथ तादात्म्य कर लेता है। परन्तु चूंकि ईश्वर स्वयं व्यक्तित्वपूर्ण है, इसलिए इस तादात्म्य से अर्थ होता है कि भक्त ईश्वर के बहुत सन्निकट हो जाता है तथा स्वयं को ईश्वर को समर्पित कर देने के बाद भक्त में अपनी स्वतंत्र इच्छा नहीं रहती है। भक्त की इच्छा ईश्वर के आदेश के पालन में परिणत हो जाती है। रामानुज के अनुसार भक्त में कैंकर्य–भाव आ जाता है। गीता के अनुसार भक्त ईश्वर के आदेश–पालन के लिये ईश्वर का साधन हो जाता है।
3. रहस्यानुभूति में रहस्यवादी कहते हैं कि उन्हें परम सत् तथा ईश्वर का साक्षात् ज्ञान हो जाता है। इस साक्षात्कार में किसी प्रत्यय, भावना, बिम्ब इत्यादि का कुछ भी स्थान नहीं रहता है। इस प्रकार की अनुभूति को रसेल ने Knowledge by acquaintance कहा है। बृहदारण्यकोपनिषद् में बताया गया है कि जिस प्रकार भार्या के साथ आलिङ्गन की पराकाष्ठा में भीतर–बाहर का ज्ञान नहीं रहता, परन्तु चेतना रहती है। उसी प्रकार ब्रह्म के साथ साक्षात्कार कर लेने पर भी सभी भेदभाव विनष्ट हो जाते हैं।[11]

4. चूंकि रहस्यवाद में परम सत् तथा ईश्वर की अनुभूति को साक्षात् कहा जाता है, इसलिए रहस्यवाद में बौद्धिकता की आलोचना भी की जाती है। इस अबौद्धिक अनूभूति को व्यक्त करने के लिए विरोधाभास, उलटबाँसी, मूकभाषा इत्यादि का व्यवहार किया जाता है। यथा- ईशावास्योपनिषद् में ब्रह्म के स्वरूप को विरोधाभास के द्वारा व्यक्त किया गया है-

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके,
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यत:।[12]

अर्थात् वह ब्रह्म चलता भी है और नहीं भी, दूर भी है और समीप भी, सबके अन्दर भी और सबके बाहर भी है। शारीरक भाष्य में वाष्कलि द्वारा पूछे जाने पर बाह्व ने कहा 'आत्मा शान्त है।'[13] इसी प्रकार जब राजा मिलिन्द ने भदन्त नागसेन से पूछा कि निर्वाण का क्या स्वरूप है? तब भदन्त नागसेन ने मौन धारण कर लिया। तीन बार आग्रह करने के बाद नागसेन ने कहा- राजन्! मैं आपको बता रहा था कि 'निर्वाण शांतम्।'[14]

5. रहस्यानुभूति आत्मनिष्ठ नहीं कही जा सकती है, क्योंकि रहस्यवादी किसी न किसी सत्ता का उल्लेख करते हैं, जिसके साथ आत्मसात् कर रहस्यवादी को अपना अनुभव होता है। मीरा को भगवान् श्रीकृष्ण का, सूफियों को ईश्वर का तथा अद्वैतवादियों को ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। इसलिए रहस्यवाद को प्रज्ञानात्मक भी कहा जाता है।

रहस्यवाद के भेद

रहस्यवाद सबन्धी संपूर्ण विवेचन को हम तीन भागों में बांट सकते हैं- 1. तत्त्वमीमांसीय रहस्यवाद 2. ज्ञानमीमांसीय रहस्यवाद 3. आचारमीमांसीय रहस्यवाद

1. तत्त्वमीमांसीय रहस्यवाद - तत्त्वमीमांसीय रहस्यवाद वह विचारधारा है, जिसके द्वारा इस व्यष्टि-समष्टि रूप दृश्यमान कार्य जगत् के कारण के रूप में एक मात्र चेतन तत्त्व की सत्ता स्वीकार की जाती है, अर्थात् व्यष्टि रूप व समष्टि रूप कार्य का कारण अलग-अलग नहीं है, वह एक ही है। यह दृश्य, भौतिक, स्थूल जगत् अन्तिम तत्त्व नहीं है। औपनिषदिक दर्शन के अनुसार अन्तिम मूलतत्त्व ब्रह्म है तथा प्लेटो के अनुसार मूलतत्त्वविज्ञानरूप शिवतत्त्व है। तत्त्वमीमांसीय रहस्यवाद में मूलतत्त्व के स्वरूप को रहस्यमूलक बतलाया जाता है। छान्दोग्य उपनिषद् 3-5-1 तथा 3-5-2 में मूलतत्त्व को गुह्य कहा गया है। कठोपनिषद् में आत्मा (ब्रह्म) को प्राणी की गुहा में स्थित बतलाया गया है- *आत्मास्य जन्तो: निहितो गुहायाम्*।[15] *सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म*[16], विज्ञानं ब्रह्म[17] इत्यादि वाक्य उस रहस्यमय तत्त्व का ही निर्देश करते हैं।

2. ज्ञानमीमांसीय रहस्यवाद - ज्ञानमीमांसीय रहस्यवाद के अनुसार उस रहस्यमय तत्त्व के ज्ञान की प्राप्ति का मार्ग भी रहस्य है, उसे इन्द्रिय से नहीं जाना जा सकता है। क्योंकि वह गूढ़ है। इस ब्रह्मज्ञान की अनुभूति श्रवण व मनन के पश्चात् निदिध्यासन के द्वारा प्राप्त होती है। यथा- *आत्मा वा अरे द्रष्टव्य: श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य:। आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्।*[18] *बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है कि एष: सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते।*[19] यही कारण है कि आत्मतत्त्व की प्राप्ति में आचार्य का महत्त्व बतलाया गया है। वेदान्तसार में भी कहा गया है कि शिष्य ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय के पास जाता है।[20] इस प्रकार आत्मज्ञान की प्राप्ति दो साधनों से संभव है-

1- ब्रह्मनिष्ठ आचार्य द्वारा और

2- प्रतिपादक ग्रन्थ - उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता आदि द्वारा।

3-आचारमीमांसीय रहस्यवाद - आचारमीमांसा में नैतिक आदेश तथा तत्त्वज्ञानी व्यक्ति के आचरण दोनों को सम्मिलित किया जाता है। कठोपनिषद् में ब्रह्म को 'परमां गतिं' कह कर ब्रह्म साक्षात्कार को जीवन का परम लक्ष्य बतलाया गया है।[21] ब्रह्म साक्षात्कार होने के पश्चात् तत्त्वज्ञानी व्यक्ति का आचरण भी ब्रह्मवत् हो जाता है, अर्थात् '*ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।*'[22] वह *सचक्षुरचक्षुरिव सकर्णोऽकर्ण* की तरह व्यवहार करता है। उसे सभी प्राणियों में ब्रह्म का ही अंश दिखाई देता है-

''*सुषुप्तवज्जाग्रति यो न पश्यति द्वयं च पश्यपपि चाद्वयत्वत:।*
तथा च कुर्वपपि निष्क्रियश्च य: स आत्मविपान्य इतीह निश्चय''[23]

उस एक तत्त्व का साक्षात्कार कर लेने पर शोक तथा मोह के लिए कोई अवकाश नहीं रहता-

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानत।
तत्र को मोह: क: शोक एकत्वमनुपश्यत।।[24]

तत्त्वज्ञानी जीवित रहते (शरीर धारण करते) हुए भी मुक्त अर्थात् जीवन्मुक्त हो जाता है। उपनिषद् और वेदान्त के अन्य ग्रन्थों में जीवन्मुक्त का वर्णन रहस्यवादी दृष्टि से किया गया है।[25] प्लेटो भी जीवन्मुक्त के समान ही रहस्यवादी आचरण करते थे। उन्हें सभी प्राणियों व जड वस्तुओं में विज्ञानरूप शिवतत्त्वका ही अंश दिखाई देता था।

रहस्य अर्थ में विभिन्न शब्दों का प्रयोग - मुण्डकोपनिषद्, कैवल्योपनिषद्[26] तथा श्वेताश्वतरोपनिषदों में वेदान्त शब्द का प्रयोग रहस्य अर्थ में हुआ है। मुण्डकोपनिषद् के अनुसार-'उपनिषदों का विषय वेदान्त विज्ञान है।'[27] श्वेताश्वतरोपनिषद् कहती है कि वेदान्त में परम रहस्य है।[28] तथा श्वेताश्वतरोपनिषद्[29] में ही 'उपनिषद्' शब्द भी आया है और दोनों का अर्थ समान ही है। शंकरभगवत्पाद ने अपनी चतु:सूत्री में भी अनेक स्थानों पर 'वेदान्त' शब्द का प्रयोग 'उपनिषद्' अर्थ में ही किया है।[30] उन्होंने 'वेदान्तशास्त्र' शब्द का प्रयोग भी उपनिषद् के अर्थ में किया है।[31] 'ब्रह्मसूत्र' के चतुर्थ सूत्र के भाष्य में उन्होंने मात्र 'शास्त्र' शब्द को वेदान्त और वेदों का पर्याय मान कर प्रयोग किया है।[32] यहाँ 'शास्त्र' का अर्थ सामान्य रूप से जीवब्रह्मैक्य प्रतिपादक साहित्य ही समझना चाहिये। शंकराचार्य जी ने 'वेदान्त', 'वेदान्तशास्त्र' तथा 'शास्त्र' शब्दों का सामान्य प्रयोग उपनिषद् अर्थ में किया है।

अमरकोश के अनुसार उपनिषद् का अर्थ, 'धर्म' अथवा रहस्य समझा जाता रहा।[33] सामान्य प्रचलन 'धर्म' के अर्थ में कम और 'रहस्य'

के अर्थ में अधिक है। तैत्तिरीयोपनिषद् में इस शब्द का प्रयोग 'रहस्य' अर्थ में दृष्टिगोचर होता है।[34] यही 'रहस्य' अर्थ रहस्य-विषयक ग्रन्थों के रूप में परिवर्तित हो गया, जो श्वेताश्वतरोपनिषद् के '*तदेतद् वेदगुह्योपनिषत्सु गूढम्*' [35] सदृश मन्त्रों में स्पष्ट है।[6] उपनिषदों की गुह्यार्थकता अथवा रहस्यमयता का आधार इसकी आचार्य से ही प्राप्ति की अपेक्षा है। उपनिषदों में भी निर्देश किया गया है कि आचार्यवान् पुरुष ही इसे जान सकता है[37] और आचार्य को भी चाहिये कि वह इस गुह्यज्ञान को जिस किसी को भी न दे।[38] न तो इसे तर्क से जाना जा सकता है, न प्रवचन से, न मेधा से और न बहुत श्रवण से[39], न सभी इसका उपदेश दे सकते हैं और न सभी ग्रहण ही कर सकते हैं।[40] इसी से उपनिषदों में कहीं (प्रश्नोपनिषद् में) महर्षि पिप्पलाद के पास सुकेशा आदि ऋषियों के जाने का वर्णन हैं, कहीं (केन तथा कठ उपनिषदों में) नचिकेता का यम के पास और कहीं (छान्दोग्य में) रैक्व के पास अश्वपति सदृश राजा के जाने का वर्णन है अत: गुरुगम्य होने से इसका रहस्यविद्या कहा जाना संगत है।

मुण्डकोपनिषद् में इसी रहस्यविद्या को ब्रह्मविद्या, अक्षरतत्त्व-बोधिका पराविद्या, केनोपनिषद् में 'विद्या' और ईशोपनिषद् में 'विद्या' तथा 'सम्भूति' नामों से अभिहित किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता में इसे ही विद्याओं में श्रेष्ठ अध्यात्म-विद्या कहा गया है।[41]

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि वेदान्त, उपनिषद्, वेदान्तशास्त्र, वेदान्तमीमांसा, अध्यात्मविद्या, रहस्यविद्या, ब्रह्मविद्या, ब्रह्ममीमांसा आदि का प्रतिपाद्य एक ही है और ये शब्द परस्पर समानार्थक हैं। वेदान्त के अन्तर्गत उपनिषदों का ही ग्रहण सर्वप्रथम अपेक्षित था, किन्तु बाद में तदुपजीवी व्यासरचित 'ब्रह्मसूत्र' का भी समावेश हुआ और क्रमश: उस पर लिखे गये भाष्योपभाष्य और तदनुसार रचित गीता, संक्षेपशारीरक, पञ्चदशी आदि स्वतन्त्र प्रकरणग्रन्थ भी जुड़ते चले गये।

सन्दर्भ सूची -

1. केनोपनिषद् 2.5
2. तैत्तिरीयोपनिषद् 3.1
3. रहस्यं, त्रि, (रहसि भवम्। रहस्+दिगादित्वात् यत् इत्युज्वल: 4.2.4) गोपनीयम्। रहसि भवम्। इति मेदिनी अमरश्च। शब्दकल्पद्रुम (भाग-4)
4. य औपनिषदो पुरुष: नेति नेति व्यपदिष्ट:, शांकरभाष्य बृहदारण्यको.4.1
5. इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ। एतद् बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत।। -गीता 15.20
6. बृहदारण्यकोपनिषद्, शांकरभाष्य 5.5.3
7. येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति कथं नु भगव: स आदेशो भवतीति, छान्दोग्य 6.1.3
8. एष सर्वेषु भूतेषु गुढात्मा न प्रकाशते, शां.भा.बृहदारण्यकोपनिषद् 2.1.20
9. दर्शनशास्त्र परिभाषाकोश, पृ-. 228
10. सामान्य धर्मदर्शन एवं दार्शनिक विश्लेषण, या. मसीह, पृ. 60
11. बृहदारण्यकोपनिषद्, 4..3.21
12. ईशावास्योपनिषद्, 5
13. शारीरक भाष्य, 3.2.17, पृ.157
14. मिलिन्दप्रश्न 4.8.65
15. कठोपनिषद्, 1.2.20
16. तैत्तिरीयोपनिषद्, 2.1.1
17. तैत्तिरीयोपनिषद्, 3.5.1
18. बृहदारण्यकोपनिषत्, 4.5.6
19. बृहदारण्यक उपनिषद, 2.1.20 का भाष्य
20. अयमधिकारी जननमरणादिसंसारानलसन्तप्तो प्रदीप्तशिरा जलराशिमिवोपहार-पाणि: श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं गुरुमुपसृत्य तमनुसरति ''समित्पाणि: श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्'' इत्यादिश्रुते:। वेदान्तसार, अधिकारी विवेचन।
21. कठोपनिषद् 2.6.10
22. मुण्डकोपनिषत्, 3.2.9
23. वेदान्तसार, जीवन्मुक्त विवेचन।
24. ईशावास्योपनिषद्, 7
25. भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशया:। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।-मुण्डकोपनिषद्, 2.2.8
26. कैवल्योपनिषद् - 3
27. वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्था: । मुण्डक- 3.2.6
28. वेदान्ते परमं गुह्यं पुराकल्पे प्रचोदितम् । श्वेता. उ. 6.22
29. तपोमूलं तद्ब्रह्मोपनिषत्परम् । श्वेता. उ. 1.16
30. 'तथापि न वेदान्तवेद्यमशनायाद्यतीतम्', 'सर्वे वेदान्ता आरभ्यन्ते', 'अधितवेदान्तस्य ब्रह्मजिज्ञासोपपत्ति:।' ब्र. सू. भा. 1.1.4
31. जगदुत्पत्तिस्थितिलयकारणं वेदान्तशास्त्रदेवावगम्यते। ब्र.सू.भा. 1.1.4
32. इति ब्रह्मात्मभावस्य शास्त्रमन्तरेण अनवगम्यमानत्वात् । तस्मात् सिद्धं ब्रह्मण: शास्त्रप्रमाणकत्वम्। शास्त्रप्रमाणकं ब्रह्मशास्त्रेण ब्रह्म समर्थ्यते। तथाहि शास्त्रतात्पर्यविद आहु: - ब्र. सू. भा. 1.1.4
33. धर्मे रहस्युपनिषत् स्यात् - अमरकोश 3.5.93
34. एषा वेदोपनिषत्। -तैत्तिरीयोपनिषत् 1.11.6
35. श्वेताश्वतरोपनिषद्, 5.3
36. श्वेताश्वतरोपनिषद्, 1.16, तथा इत्युपनिषत्- तै. उप. 3.10
37. आचार्यवान् पुरुषो वेद। छा. उप. 6.14.2,
38. वेदान्ते परमं गुह्यं पुराकल्पे प्रचोदितम्।, श्वेता. 6.22
नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्रयाशिष्याय वापुन:।। श्वेता. 6.22
39. कठोपनिषद्, 1.2.9, 1.2.23
40. कठोपनिषद्, 1.2.7, 1.2.8
41. श्रीमद्भगवद्गीता, 10-32

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. ईशादि नौ उपनिषद् (सानुवाद शाङ्करभाष्य सहित), गीताप्रेस, गोरखपुर, सं- 2066
2. छान्दोग्योपनिषद्, (सानुवाद शाङ्करभाष्य सहित), गीताप्रेस, गोरखपुर, 1995
3. बृहदारण्यकोपनिषद् (सानुवाद शाङ्करभाष्य सहित), गीताप्रेस, गोरखपुर, सं- 2055
4. ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य, जगदीशलाल शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 1995
5. श्रीमद्भगवद्गीता, (शांकरभाष्य), गीताप्रेस, गोरखपुर, 2000
6. *Exploring Mysticism*, Frits Staal, Penguin Publications London, 1975.
7. ग्रीक तथा मध्ययुगीन दर्शन, नरेन्द्र प्रसाद तिवारी, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 1990
8. भारतीय दर्शन, वाचस्पति गैरोला, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1966
9. पाश्चात्य दर्शन का समीक्षात्मक इतिहास, या- मसीह, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 2004-
10. पाश्चात्य दर्शन, चन्द्रधर शर्मा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1990-
11. उपनिषदों की कहानियाँ, भगवान सिंह, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2006-

ISSN 2278 - 0327

सिद्ध सिद्धांत पद्धति में चक्र की अवधारणा : एक विमर्श

निधि शुक्ला
पी-एच. डी. शोधार्थी
निर्वाण विश्वविद्यालय, जयपुर

भावना श्रीवास्तव
सहायक प्राध्यापक, योग विभाग
निर्वाण विश्वविद्यालय, जयपुर

संक्षेपिका-योग ज्ञान के महासमुद्र की भाँति है, जिसके विस्तृत योग साहित्य में योग के अनेक अमृतरूपी विषय जिसमें ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, लययोग, मंत्रयोग, राजयोग के साथ हठयोग के विभिन्न विषयों जैसे- आसन, प्राणायाम, मुद्रा-बंध, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि तथा नादानुसंधान की चर्चा विस्तृत रूप से देखने को मिलती है। हठयोग में इन प्रमुख योग साधना पद्धतियों के साथ-साथ चक्र तथा कुण्डलिनी को भी साधना का केन्द्र माना है। चक्र तथा कुण्डलिनी की व्याख्या अनेक उपनिषदों, नाथ साहित्यों, बौद्ध ग्रंथों तथा तंत्र ग्रंथों में भी मिलती है। हठयोग के ग्रंथों में मुख्यत: हठप्रदीपिका, हठरत्नावली, सिद्ध सिद्धांत पद्धति आदि में वर्णित है।

विभिन्न योग ग्रंथों में चक्रों की संख्या अलग-अलग बताई गई है। कुछ ग्रंथों में छ:, कुछ में सात, कुछ में नौ तथा कुछ में दस चक्रों का वर्णन है। बौद्ध ग्रंथों में 5 चक्रों का उल्लेख है। प्रमुख छ: चक्रों के नाम कमश: मूलाधार चक्र, स्वादिष्ठान चक्र, मणिपुर चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्धि चक्र तथा आज्ञा चक्र है। इनके अतिरिक्त सातवाँ चक्र सहस्त्रार चक्र है। सिद्ध सिद्धांत पद्धति में नौ चक्रों के नाम क्रमश: ब्रह्म चक्र, स्वादिष्ठान चक्र, नाभी चक्र, अनाहत चक्र, कण्ठ चक्र, तालु चक्र, भूचक्र, निर्वाण चक्र तथा आकाश चक्र है। प्रस्तुत शोधपत्र में हठयोगिक ग्रंथ सिद्ध सिद्धांत पद्धति के अनुसार चक्रों की व्याख्या की जाएगी।

मुख्य शब्द: चक्र, हठयोग, कुण्डलिनी, योग।

प्रस्तावना

चक्रों को ऊर्जा के मुख्य बिंदु के रूप में जाना जाता है। यह सूक्ष्म शरीर में उर्जा के अतिसघन केन्द्र होते है, जो ध्यान तथा उच्च अभ्यासों को करने में सहायक होते है। योगीजन आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग में निचले चक्रों को क्रमश: जाग्रत करते हुए सिर पर मुकुट की भाँति विराजित चक्र की ओर अग्रसर होता है। इन्हीं चक्रों को भेदन करते हुए कुण्डलिनी शक्ति शिव तक पहुँच पाती है।

चक्र का सामान्य परिचय

योग ग्रंथों में चक्रों का अर्थ तथा परिभाषाओं के वर्णन के साथ प्रत्येक चक्र की शरीर में स्थिति, प्रत्येक चक्रों में दलों की संख्या, चक्रों का विभिन्न रंगों, पंचतत्वों तथा दलों के साथ संबंध को भी दर्शाया है। इसके अतिरिक्त चक्रों के जागरण का शरीर, मन तथा साधक की चेतना पर पड़ने वाले प्रभावों को भी स्पष्ट किया गया है। चक्र शब्द संस्कृत की 'चक्र' धातु से बना है जिसका अर्थ 'पहिया' होता है। बौद्ध के थेरवाद में 'कक्का' का अर्थ पहिए के रूप में प्रयुक्त किया गया है। चक्रों की व्याख्या योग के प्राचीन ग्रंथों के अतिरिक्त अनेक पाश्चात्य विद्वानों तथा मनोवैज्ञानिको के ग्रंथों में भी मिलती है। विभिन्न प्राचीन ध्यान परंपराओं में चक्रों को ध्यान के प्रमुख केन्द्र बिंदु के रूप में प्रयुक्त किया गया हैं। चक्र ऊर्जा प्रवाह के मार्ग कहे जाते है।

जिस प्रकार प्रकाश की किरणों के स्पर्शमात्र से कमल के फूल खिल जाते है उसी प्रकार मन की रश्मियों के द्वारा शरीरस्थ आभ्यान्तरिक केंद्र या चक्र प्रकाशित होकर दृश्यगत होने लगते है, कदाचित इसी आधार पर इन केंद्रों या चक्रों को कमल की संज्ञा दी गयी है। स्थूल शरीर में इन चक्रों को बिना बिजली के दीपों की संज्ञा दी गयी हैं किन्तु जैसे ही इन दीपों में बिजलीधारा प्रवाहित होती हैं तब ये दीप प्रज्जवलित हो उठते हैं, इसी प्रकार सुप्तावस्था में स्थित कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती हैं तदुपरान्त शरीरस्थ चक्र अपने वर्गों के साथ प्रकाशित दिखाई पड़ने लगते है। दिव्यदृष्टि प्राप्त योगी को ही इन प्रकाशित चक्रों के स्वरूप का अनुभव प्राप्त होता है।

सिद्ध सिद्धांत पद्धति का सामान्य परिचय

सिद्ध सिद्धांत पद्धति, हठयोग का प्रमुख ग्रंथ है। जिसके लेखक गोरक्षनाथ जी है। यह ग्रंथ छ: अध्यायों में विभाजित है। जिनके नाम क्रमश: पिण्ड उत्पत्ति, पिण्ड विचार, पिण्ड संवृत्ति, पिण्ड आधार, पिण्डपद समरस भाव, नित्यावधूत लक्षण है। जिनमें 9 चक्र, 16 आधारों, 3 लक्ष्य, 5 आकाश, अष्टांग योग, व्यष्टि तथा समष्टि पिण्ड, 7 समुद्र, 8 पर्वत, 9 नदियाँ, 9 खंड, कुल तथा अकुल शक्तियाँ, कुण्डलिनी के 3 भेद, दस वायु तथा योगी की वेशभूषा आदि जैसे गहन विषयों पर उपदेश दिया गया है।

सिद्ध सिद्धांत पद्धति में चक्र

हठयोग ग्रंथ सिद्ध सिद्धांत पद्धति में चक्रों की संख्या 9 कही गई है। जिनके नाम क्रमश: ब्रह्म चक्र, स्वादिष्ठान चक्र, नाभी चक्र, अनाहत चक्र, कण्ठ चक्र, तालु चक्र, भूचक्र, निर्वाण चक्र तथा आकाश चक्र है।

नवचक्रं कलाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपंचक्रम् ।

सम्यगेतन्न जानाति स योगी नामधारकः।। सि.सि.प. 2/31

यहाँ योगी के लक्षणों का वर्धन करते हुए कहा है कि प्रत्येक योगी को नौ चक्रों, सोलह आधारों, 3 लक्ष्यों, तथा 5 व्योम को कमशः जानना चाहिए। इनको जानने वाला साधक ही वास्तविक योगी है।

प्रस्तुत शोधपत्र में अब हम हठयोग ग्रंथ सिद्ध सिद्धांत पद्धति में चक्रों के वर्णन को क्रमशः देखते है।

1. ब्रह्म चक्र

आधारे ब्रह्मचक्रं त्रिधावर्त भगमण्डलाकारं तत्र मूलकंदः तत्र शक्ति पानाकाशं ध्यायेत् तत्रैव कामरूपं पीठं सर्वेकामप्रदं भवति ।।2/1।।

मूलाधार में ब्रह्म चक्र है, आधार अर्थात् गुदा के निकट जिसे मूलाधार कहा जाता है में इसका आकार स्त्रियों की योनिमंडल के समान है, वहाँ मूलकंद का स्थान कहा गया है। यहाँ पर तीन फेरों से युक्त अग्नि के आकार की शक्ति का ध्यान करना चाहिए। इस स्थान पर कामरूप पीठ का स्थान है। यह अग्निमण्डल से चार अंगुल ऊपर है तथा मेद्र अर्थात् लिंगमूल के नीचे है। प्रतिकात्मक रूप से यह चक्र तपती हुई स्वर्ण धातु के समान कांतिमय एवं बिजली जैसी चमक धारण किये हुए है। चक्र के मध्य में कामरूपी योनि स्थित है जिसे सिद्ध पुरुषों द्वारा 'कुण्डलिनी शक्ति' कहा गया हैं। इसी स्थान से वायु, अग्नि, बिन्दु, नाद, सोऽहं मंत्र या हंस तथा मन की उत्पत्ति होती है। कामरूप पीठ पर ध्यान सभी मनोकामनाओं को पूरा करने वाला है। इस चक्र के भेदन से सुप्त कुण्डलिनी का जागरण होता है तथा वह उपर की ओर गमन करती है।

2. स्वादिष्ठान चक्र

द्वितीयं स्वाधिष्ठानचक्रं तन्मध्ये पश्चिमाभिमुखं लिंग प्रवालाकुंरसदृशं ध्यायेत् तत्रैवउड्यानपीठं जगदाकर्षणं भवति ।।2/2।।

दूसरे चक्र का नाम स्वाधिष्ठान चक्र है। यह ब्रह्म चक्र के ऊपर स्थित होता है। जिसके बीच में पश्चिम अर्थात् पीछे की ओर मुख किए हुए एक लिंग स्थित है, इस लिंग का आकार मूंगे के अंकुर के समान है। इस स्थान पर ही उड्डयान की स्थिति कही गई है। इस उड्डयान पीठ पर ध्यान करने के निर्देश है। यहाँ ध्यान करने से संसार का ध्यान साधक की तरफ आकृष्ट होने लगता है। कुण्डलिनी ब्रह्म चक्र के भेदन के बाद स्वाधिष्ठान चक्र तक पहुँचक्रर उसका भेदन करती है।

3. नाभी चक्र

तृतीयं नाभि चक्रम्। पंचावर्त सर्पवत् कुण्डलाकारम् । तन्मध्ये कुण्डलिनी शक्तिं बालार्ककोटिनिभं ध्यायेत् ।

सा मध्यमा शक्तिः सर्वसिद्धिदा भवति।। 2/3।।

तीसरा चक्र का नाम चक्र है। इसमें पाँच आवृत्त अर्थात् फेरे लगाए हुए हैं, इसका आकार सर्प की कुण्डलिनी के समान है। उसके मध्य में उगते हुए करोडों सूर्य की कांति के समान कांति से युक्त है उसका ध्यान करना चाहिए। यह पाँच फेरे वाली शक्ति मध्यमा शक्ति कहलाती है। इस मणिपुर चक्र के कन्द में अनेकों सूक्ष्म नाड़ियों उपस्थित हैं इनमें से प्रमुख दस नाड़ियाँ एक अत्यन्त सूक्ष्म एवं प्रमुख 'सुषुम्ना नाड़ी' को घेरे हुए है। यह मध्यमा शक्ति का ध्यान सभी प्रकार की सिद्धि को प्रदान करने वाली होती है।

4. अनाहत चक्र

चतुर्थम् अनाहतचक्रम् (हृदयचक्रम्) हृदयाधारम्, अष्टदलकमलम् अधोमुखम् ।

तन्मध्ये कर्णिकायां लिंगकारां ज्योतिरूपां ध्यायेत् ।

सैव हंसकला । सर्वेन्द्रियाणि वश्यानि भवन्ति।। 2/477

चौथे चक्र का नाम अनाहत चक्र है, जिसे हृदय चक्र के नाम से भी जाना जाता है। कमल की आकृति होने के कारण चक्र को कमल भी कहते है। जिसकी आठ पंखुड़ियों वाले इस चक्र की पंखुड़ियों का मुख नीचे की ओर है। इसके बीच में लिंग के आकार का ज्योति को हंसकला कहा जाता है। यह जीवात्मा ही शरीर के सभी कार्यों को जानता व कर्ता हैं। इस प्रकार जीवात्मा स्वाधीन रूप से मानव शरीर में निवास करती है। जिस समय यह जीवात्मा हृदय चक्र के मध्यस्थान में आती है उस समय यह सर्वज्ञानी होती हैं तथा नाचती, गाती पढ़ती हुई आनन्द मनाती है। इसके ध्यान से सभी इन्द्रियाँ वश में हो जाती है। अर्थात् प्रत्याहार के अग्यास का निर्देश है।

5. कण्ठ चक्र

पंचमं कण्ठचक्रं चतुरडगुलम् । तत्र वामे इडा चन्द्रनाडी दक्षिणे पिंगला सूर्यनाडी। तन्मध्ये सुषुम्णां ध्यायेत्। सैव अनाहतकला। अनाहतसिद्धिर्भवति।।5।।

पाँचवा कंठ चक्र है, इसका विस्तार चार अंगुल है। इस चक्र में बायी तरफ चन्द्रनाड़ी तथा दायी तरफ सूर्यनाडी पिंगला है। इन दोनों के मध्य में सुषुम्ना नाड़ी का स्थान है। इसे अनाहत कला कहते है। इस पर ध्यान से अनाहत सिद्धि साधक प्राप्त हो जाती है।

6. तालु चक्र

षष्ठं तालुचक्रम्, तत्र अमृतधाराप्रवाहः। घण्टिकालिंगम्मूजरंध्र राजदन्तं शंखिनी विवरम्, दशम क्षरमई तत्र शून्यं ध्यायेत् । चित्तलयो भवति ।।6।।

छठे चक्र को तालु चक्र कहते है, यहाँ से अमृत की धारा प्रवाहित होती है। खेचरी मुद्रा इस अमृत का पान करने के निर्देश दिए गए है। निर्देश है कि तालु मूल में लटकता हुआ पतला मांस का पिंड जिसे घंटिका मूल भी कहा जाता है के मूल स्थान में एक बिल है जिसे रातदंत के नाम से विभुषित किया गया है। यह बिल लिंग मुख से ब्रह्मरंध्र तक जाने वाली शंखिनी नाडी का विवर कहलाता है। इसे ही दशम क्षर के नाम से जाना जाता है। इस स्थान पर शून्य का ध्यान करना चाहिए जिसका फल चित्त के लय के रूप में देखा जाता है। अर्थात् अंत में समाधि की प्राप्ति हो जाती है।

7. भ्रूचक्र

सप्तमं भ्रूचक्रम् मध्यममई अष्टगुष्ठमात्रम्, तत्र ज्ञाननेत्रम्।
दीपशिखाकारं ध्यायेतई वाक्सिद्धिः भवति ।।7।।

सातवाँ चक्र भ्रूचक्र के नाम से जाना जाता है, इसके अन्य नाम आज्ञा तथा मध्य चक्र भी है। इसका आयतन अर्थात् आकार एक अंगूठे के बराबर है। इस स्थान पर ज्ञाननेत्र का स्थान बताया गया है। इस स्थान पर दीपक की शिखा के जैसे ज्योति का ध्यान साधक को करना चाहिए। भौंहों के मध्य, मस्तिष्क एवं नाक के मूल भाग में स्थित आज्ञा चक्र को अमृतस्थान कहा गया है। इस स्थान को 'उड्डयाण महापीठ' भी कहा जाता है, इसी पीठ पर यह आज्ञाचक्र उच्चपदस्थ है। सुषुम्ना नाड़ी के माध्यम रो इरा अमृतरथान में प्राणवायु का लय केवल योगाभ्यास द्वारा ही संभव हो सकता है। जिसके परिणाम के रूप में साधक को वाक्सिद्धि मिल जाती है अर्थात् वह जो कहता है वह वैसा ही होने लगता है। अर्थात् वरदान और श्राप देने की शक्ति साधक को मिल जाती है।

8. निर्वाण चक्र

अष्टमं ब्रह्मरन्ध्र निर्वाणचक्रम्, सूचिक्राग्रभेद्यम् ।
धूमशिखाकारम् ध्यायेत् तत्र जालन्धरम्पीठम् ।
मोक्षप्रदं भवति ।।8।।

ब्रह्मरंध्र के नाम से जाना जाने वाला यह आठवाँ चक्र है जिसे निर्वाण चक्र कहते है। ब्रह्मरंध्र में रंध्र का तात्पर्य छिद्र से है। ये रंध्र अत्यंत सूक्ष्म होते है जिनमें से केवल सूई का अग्र भाग ही निकालना संभव है अन्य कोई वस्तु नहीं। साधक को इस ब्रह्म रंध्र में धुएँ की शिखा का ध्यान एकाग्रता पूर्वक करना चाहिए। इस प्रकार निर्वाण चक्र में ध्यान करने से साधक को मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। कुण्डलिनी, सुषुम्ना नाड़ी, तथा प्राण रूपी इन तीनों शक्तियों को चालित करके शशिमण्डल अर्थात् सहस्त्रार चक्र का भेदन करना चाहिए।

9. आकाश चक्र

नवमम् आकाशचक्र। षोडशदलकमलम् उर्द्धमुखम्। तन्मध्ये कर्णिकायाम् त्रिकुटाकारा तदूर्द्ध त्रशक्तिः, तां परमशून्यां ध्यायेत्, तत्रैव पूर्णगिरिपीठमई। सर्वेच्छा सिद्धिर्भवति ।9।।

नवाँ चक्र आकाशचक्र है, इस चक्र में पंखुड़ियों की संख्या 16 है। इस कमल में पंखुड़ियों का मुख उपर की ओर होता है। इस कमल की कर्णिका के मध्य में त्रिकुट के आकार की असकी उद्धर्वशक्ति का निवास होता है। जो आकार से रहित अर्थात् शून्य है। अतः साधक को इस आकाशचक्र का ध्यान करना चाहिए। इस चक्र में पूर्णगिरि पीठ की स्थिति कही गई है। इसका ध्यान सभी इच्छाओं की प्राप्ति कराने वाला कहा गया है।

उपसंहार– मानवीय शरीर में षट्चक्रों के स्थान रीढ़ की हड्डी के मध्य में तथा रीढ़ की हड्डी के ऊपर सुषुम्ना नाड़ी में गुंथी हुई स्थिति में है। तीन प्रमुख नाड़ियाँ शीर्ष प्रदेश में स्थित सहस्त्रार चक्र से स्नायुओं के रूप में रीढ़ की हड्डी के बीच से तथा बाहर से गुदाद्वार तक फैली हुई होती हैं। इन तीनों नाड़ियों के द्वारा बोध और चेष्टाएं होती हैं। नवचक्रमण्डल का भेदन का उद्देश्य ज्ञानरूपी दीपक को प्रकाशित करना है। प्रसन्न एवं स्वस्थ मन से स्वाभाविक स्थिति में गुणरहित होकर प्राणायाम के अभ्यास द्वारा षट्चक्रों का भेदन करना चाहिए। जो योगी या साधक मानव शरीरस्थ इन नौ चक्रों तथा साथ ही मूलाधार आदि षड् आधारों, त्रिलक्ष्यों में अंतर्लक्ष्य, मध्यलक्ष्य, बहिर्लक्ष्य एवं व्योमपंचक को सही रूप या सम्यक् रूप से नहीं जानता हैं, वह केवल नाम के लिये योगी कहलाता है अर्थात् योगवेत्ता को इन नौ चक्रों, त्रिलक्ष्यों, षड् आधारों, व व्योमपंचक व्योमपंचक का ज्ञान अत्यावश्यक रूप से होना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भारती, परमहंसस्वामी अनंत, सिद्ध सिद्धांत पद्धति, चौखम्भा ओरियन्टालिया, दिल्ली, पृ.सं.–37
2. मलिक, कल्याणी, सिद्ध सिद्धांत पद्धति, पूजा ओरियंटल बूक हाउस, 1954, पृ.सं.– 38
3. शास्त्री, द्वारकादास स्वामी, सिद्ध सिद्धांत पद्धतिः, चौखम्भा सूरभारती प्रकाशन, 2014, पृ.सं.–26
4. घरोटे, एम.एल., सिद्ध सिद्धांत पद्धतिः ए ट्रिटाइस आन द नाथ फिलॉसोफी बाय गोरक्षनाथ, कैवल्सधाम लोनावाला प्रकाशन, 2019, पृ.सं.–45
5. दूबे, राघवेन्द्र, सिद्ध सिद्धांत पद्धतिः, सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालयः, वाराणसी, 2008ए पृ.सं.–41–73
6. शास्त्री, केशवलाल वी., उपनिषत्सञ्चयनम्: ईशाद्यष्टोत्तरशतोप–निषदः, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली, 2014, पृ.सं.–126
7. शुक्ल, रमेशचन्द्र, चक्र एवं कुण्डलिनी, पुस्तक महल, 2020, पृ.सं.–9
8. श्रीवास्तव, सी.एम., चमत्कारी कुण्डलिनी शक्ति एवं ध्यान योग, मनोज प्रकाशन, दिल्ली, 2004, पृ.सं.–89
9. गुप्त,ओमप्रकाश, स्मृति–वक, कोशल प्रकाशन, दिल्ली 2020
10. प्रकाशानंद, महायोगी, कुण्डलिनी शक्ति जागरण एवं षट्चक्र रहस्य, रणधीर प्रकाशन, 2019, पृ.सं.–27
11. श्री अरविंद, मानव चक्र, श्री अरविंदो आश्रम प्रकाशन, पुंदुचेरी, 2018, पृ.सं.–3
12. कुण्डलिनी योग, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, 2005, पृ.सं.– 55

ISSN 2278 - 0327

विद्यया विन्दतेऽमृतम्

डॉ. जी. एल. पाटीदार
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

उद्देश्य

'*विद्यया विन्दतेऽमृतम्*' इस श्रुतिवाक्य का सरल तरल शब्दों में व्याख्यायित करने का सुगम प्रयास ही इस आलेख का उद्देश्य है। क्योंकि यह मानव कल्याण का ध्येय (प्रतीक) वाक्य है, जिसको कई विद्याकुलों एवं लब्ध प्रतिष्ठित शिक्षा संस्थानों ने प्रतीक वाक्य के रूप में अपनाया हैं। यह सम्पूर्ण मानवता का प्रतीक वाक्य है क्योंकि यह उपनिषद् वाक्य है। श्रुति वाक्य है। आप्त वाक्य है। आर्ष वाक्य है। हमारी सनातन ज्ञान परंपरा में वेद को शब्द प्रमाण रूप में स्वीकृत किया गया है।

प्रयोजन

श्रुति कहती है कि '*अक्रन्कर्म कर्मकृत:*'[1] अर्थात् कर्मशील लोग अपने अभीष्ट कर्म को करते रहते हैं। लोक लोकोत्तर जगत् में ज्ञान की शांति और लक्ष्य का भेदन तथा दु:ख की निवृत्ति और आनंद की प्राप्ति का प्रयास ही परम प्रयोजन एवं प्रधान कर्म है। ज्ञान की ओर निरंतरता जैसे उपनिषद् वाक्य में कहा है– '*असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माह्यमृतं गमय*।'[2] मुझे असत् से सत्, अन्धकार से प्रकाश, मृत्यु से अमृत की ओर ले चलो। ये जो मृत्यु से अमृत का मार्ग है, वही ज्ञानयोग एवं ध्यानयोग का मार्ग है। जन्म और मृत्यु के बीच का जो काल है जिसे हम जीवन कहते है, उसको जानने का ज्ञान ही विद्या है और उससे प्राप्त ज्ञान से ईश्वर विषय चिंतन मनन अनुमान तक पहुँचना अमृत पान है। यहाँ विद्या से अमृत प्राप्ति के सफ़र को जानना ही परम प्रयोजन है। जीवित आत्मा हमेशा इस ज्ञानविद्या की पिपासु रही है।

व्याख्या

यह उपनिषद् वाक्य केनोपनिषद् के द्वितीय खण्ड का चतुर्थ मन्त्र का चतुर्थ पाद है। '*विद्यया विन्दतेऽमृतम्*' [3] यहाँ विद्यया शब्द तृतीय एकवचन करण कारक, करण का अर्थ '*साधकतमं करणम्*'[4] क्रिया की सिद्धि में जो सहायक हो उसे करण कारक कहा जाता है, यहाँ अमृत प्राप्ति के लक्ष्य को सिद्ध करने में विद्या अत्यंत सहायक है अत: विद्या में करण कारक हुआ। विन्दते शब्द विद् धातु लट्लकर प्रथम पुरुष एकवचन आत्मनेपदी है। इसका अर्थ है, जानना या ज्ञान प्राप्त करना आदि। इसलिए पूरा अर्थ हुआ– विद्या से अमृतत्त्व की प्राप्ति होती है। यह मूल मन्त्र केनोपनिषद् का श्रुतिवाक्य है, पूर्णश्रुति मन्त्र इस प्रकार है, यथा–

प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते।
आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्।।[5]

प्रतिबोधविदितं मतं हि अमृतत्वं विन्दते। आत्मना वीर्यं विन्दते। विद्यया अमृतं विन्दते।[6] अर्थात् जब यह ऐसे प्रत्यक्ष बोध के द्वारा जाना जाता है, जो इसे प्रतिबिम्बित करता है, तभी व्यक्ति इसका विचार बना पाता है, क्योंकि उससे व्यक्ति को अमृतत्त्व की उपलब्धि होती है, उपलब्धि के लिए व्यक्ति को आत्मा से वीर्य शक्ति प्राप्त होती है तथा विद्या से अमृतत्त्व की प्राप्ति होती है। इस विषय में कहा भी है–

यह ब्रह्म का लक्षित स्वरूप ही, वास्तविक ऋत ज्ञान है ।
अमृत स्वरूपी ब्रह्म तो, महिमा महिम है महान है।।
जो ब्रह्म बोधक ज्ञान शक्ति, ब्रह्म से प्राप्तव्य है।
उस ज्ञान से ही ब्रह्म का ऋत ज्ञान जग ज्ञातव्य है।।[7]

अन्यश्रुति वाक्य में भी कहा गया है कि– '*विद्ययामृतमश्नुते*'[8] अर्थात् विद्या से अमृतत्त्व प्राप्त करता है। जिसके दर्शन शिक्षा के क्षेत्र में यदाकदा सर्वत्र हो जाते हैं। कई शिक्षण संस्थाओं एवं विद्याकुलों द्वारा इसे भी अपने प्रतीकों में उत्कीर्ण करके अपनाया भी गया है। वस्तुत: यह ईशोपनिषद् में उपलब्ध एक मंत्र का अंतिम वाक्यांश है। मंत्र इस प्रकार है–

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।[9]

विद्यां च अविद्यां च तद् उभयं सह वेद स: अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया अमृतम् अश्नुते। उक्त मंत्र का गूढार्थ समझने के लिए प्रथमत: इस बात पर ध्यान देना होगा कि यहां पर विद्या शब्द विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। सामान्यत: किसी भी प्रकार का ज्ञान प्राप्त करना विद्या अर्जित करना माना जाता है। प्राचीन भारतीय शास्त्रों में द्यूतविद्या, चौरविद्या जैसे विषयों का भी उल्लेख मिल जाता है। किंतु इन विद्याओं की व्यापक सामाजिक संदर्भ में वही अर्थवत्ता नहीं है जो व्याकरण, विज्ञान, चिकित्सा आदि के अध्ययन में निहित है। वस्तुत: द्यूतविद्या जैसे अशुभ विषयों को अन्य हितकर विधाओं की तरह विद्या शब्द से संबोधित किया जाना ही अप्रिय लगता है। इन्हें अविद्या कहना अधिक उचित होगा। अविद्या का तब अर्थ होगा ऐसा ज्ञान जो जानने योग्य नहीं है, यद्यपि उस ज्ञान के अस्तित्व को अस्वीकार नहीं

किया जा सकता है।

उक्त मंत्र में अविद्या का अर्थ कुछ कुछ ऐसा ही है, वस्तुत: उसकी परिधि और अधिक व्यापक मानी गयी है। मंत्रद्रष्टा के अनुसार असल विद्या तो वह है जिससे जानने योग्य का ज्ञान मिले। वैदिक चिंतकों की दृष्टि में परमात्मा ही वस्तुत: 'विद्य' अर्थात् 'जानने योग्य' है। मनुष्य का अंतिम ध्येय तो ईश्वर प्राप्ति है ओर उसी में लीन हो जाना है। आध्यात्मिक प्रकृति के इस ज्ञान का अर्जन ही विद्या है। जो कोई ज्ञान परमात्मा तक पहुंचने का मार्ग नहीं दिखाता है वह विद्या कहे जाने योग्य नहीं है। लौकिक प्रयोजनों की सिद्धि से जुड़े अन्य सभी ज्ञान मार्ग ऐहिक महत्ता तो रखते हैं, किंतु विद्या के उपर्युक्त सीमित अर्थ के अनुसार 'विद्या' कहे जाने योग्य नहीं हैं। ऐसा ज्ञान इस संसार में भौतिक उपलब्धि प्रदान करेगा, किंतु वह आध्यात्मिक उन्नति का आधार सिद्ध नहीं होगा। इसलिए उसे अविद्या नाम से संबोधित किया जाना चाहिये।

विद्या-अविद्या के इस भेद को रेखांकित करने के साथ-साथ वैदिक चिंतक अविद्या के महत्त्व को स्वीकारते हैं। असल में अविद्या तथा विद्या दोनों को ही मनुष्य ने सम्यग् रूप से स्वीकारना चाहिए और उनके माध्यम से उसे क्रमश: ऐहिक जीवन तथा पारलौकिक अस्तित्व को सार्थक बनाना चाहिए। यही संदेश इस मंत्र में दिया गया है।

बुद्धिमान मनुष्य विद्या एवं अविद्या दोनों को ही एक साथ जानता है। वह अविद्या के सहारे मृत्युमय इस संसार को पार करता है, अर्थात् उसका उपयोग करते हुए सार्थक ऐहिक जीवन जीता है। तभी भौतिक कष्टों तथा व्यवधानों से मुक्त होकर वह विद्या पर ध्यान केंद्रित करते हुए देहावसान के उपरांत सच्चिदानंद परमात्मा के रूप में प्राप्य अमृतत्त्वपूर्ण परलोक का भागीदार बनता है।

श्रुति वाक्य '*विज्ञायामृतमश्नुते*।'[10] विद्या को (ब्रह्म को) जानकर अमृत का अनुभव करता है। विद्या में ही वह ज्ञान निहित है जो हमें मानव से मनुष्य की यात्रा करता है, इसी विद्या का आत्मा साक्षात्कार कर मनुष्य इसलोक में ज्ञानवान बनकर व परलोक के अमृत तत्त्व का पान करता है। उस ज्ञान का पान परम आचार्य करता है इसीलिए श्रुति कहती है- '*महान् देवस्तमसो निरमोचि।*'[11] श्रेष्ठ विद्या दाता आचार्य देव अविद्यारूपी अन्धकार से छुड़ाता है। और भी उपनिषद् कहता है कि '*आचार्याद्धयेव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापयती*'[12] आचार्य से सीखी हुई विद्या ही सब से उत्तम एवं फलप्रद होती है। यहाँ पर भी विद्या प्राप्ति आचार्य से ही बताई गयी है। तथा ज्ञान प्राप्ति का प्रथम पुरुष तो आचार्य ही है, साथ ही पुरुषार्थ और धर्मपूर्वक अर्जित विद्या ही उत्तम फल वाली होती है। वेद में भी कहा है कि '*इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्*'[13] मेरी ब्रह्मशक्ति ज्ञान और क्षत्रशक्ति पुरुषार्थ दोनों ऐश्वर्य को प्राप्त करें। वेद भी दुखों की मुक्ति के लिए विद्या ज्ञान का संदेश देता हुआ ईश्वर उपासना के साथ वेद विद्या को आत्मसात करने का उपदेश देता है-

अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्,
सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते।।14

प्राचीन समय में विद्या की अपनी विशेष महत्ता थी। कई ग्रन्थों में इसकी महत्ता का वर्णन मिलता है। जैसे-

ज्ञान तृतीयं मनुजस्य नेत्रं समस्तनन्त्वार्थ विलोकिदक्षम्।
तेजोऽनपेक्षं विगतान्तरायं प्रवृत्ति मत्सर्व जगत्त्रयेऽपि।।[15]

अर्थात् ज्ञान मनुष्य का तीसरा नेत्र है उस शिक्षा रूपी ज्ञान से ही मानव सम्पूर्ण तत्त्वों के अर्थों को देखने में सक्षम हो जाता है। ज्ञान से उसके सभी व्यवधान दूर हो जाते है ज्ञान के तेज से वह सभी प्रवृत्तियों को सही दिशा में ले जाता है। अर्थात् विद्या का स्थान सबसे ऊँचा है। जैसे कहा भी गया है कि- '*सा विद्या या विमुक्तये*'[16] अर्थात् ज्ञान वह है जो मनुष्य को मुक्ति प्रदान करें। और भी कहा है-

नास्ति विद्या समं चक्षु नास्ति सत्यं समं तप:।
नास्ति राग समं दुखं नास्ति त्याग समं सुखं।।[17]

अर्थात् विद्या के समान आँख नहीं है, सत्य के समान तपस्या नहीं है, आसक्ति के समान दु:ख नहीं है और त्याग के समान सुख नहीं है। विद्या ही वह नेत्र है जो हमें सही मार्ग बताता है। पंचतन्त्र में भी विद्या के बारे में यह कहा गया है कि- '*बुद्धिर्यस्य बलं तस्य*'[18] अर्थात् जिसमें बुद्धि है, वही शक्तिशाली बलशाली होता है। बुद्धि विद्याजन्य है। सुभाषित में भी यह कहा गया है कि-

मानेव रक्षति पितेव हिते नियुक्ते
कान्तेव चाभिरमयत्य पनीय खेदम्।
लक्ष्मी तनीति वितनोति च दिक्षु कीर्ति
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या।।[19]

विद्या माता के समान रक्षा करती है, पिता के तुल्य भलाई में लगाती है, पत्नी के सदृश खेद दूर करके आनन्द देती है, लक्ष्मी को बढाती है तथा चारों ओर यश फैलाती है, विद्या कल्पलता के समान क्या-क्या मनोरथ सिद्ध नहीं करती है। विद्या मानव के कल्याण में क्या क्या नहीं करती। पाणिनीय शिक्षा में शिक्षा को नाक कहा है जैसे मुख की शोभा नाक से होती है उसी प्रकार व्यक्ति की शोभा शिक्षा से होती है, यथा-

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् सांगमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।।[20]

और भी कहा है कि '*उत्तमं हि धनं विद्या दीयमानं न हीयते*।' उत्तम धन विद्या है जो देने पर भी कम नहीं होती है। इसी विद्या का अर्जन सदा करें। विदुरनीति में कहा गया है कि- '*योगेन रक्ष्यते धर्मा विद्या योगेन रक्ष्यते*' अर्थात् योग से विद्या और धर्म रक्षित होते है। विद्या की रक्षा का श्रेष्ठ उपाय योग है। तथा विद्या की हमें अमरता का मार्ग बताती है।

निष्कर्ष-

उपनिषद् कहता है कि ' *तदेतदमृतं सत्येन च्छन्नम्*'[21] अर्थात् वह यह अमृत सत्य से आच्छादित है, सत्य की खोज ही विद्या का आधार है। विद्या से अमृत तत्त्व की प्राप्ति होती है, यहां पर विद्या शब्द साधारण अर्थ में नहीं है, अमृतत्त्व का मतलब किसी द्रव्य से भी नहीं है, अमृत्व का तात्पर्य अमरता से है अर्थात् संसार का हर वह ज्ञान जो हमें अमरता की ओर ले जाए या उस तक पहुंचाने का सामर्थ्य जिसमें है वह विद्या है। उपनिषदों में विद्या के विषय में बहुधा चर्चा हुई है विद्या वह ज्ञान है जो अज्ञानता को दूर करता है और प्रकाश का आभास कराता है साधारण अर्थ में विद्या प्राप्त करना किसी पात्रता या कौशल को प्राप्त करना कहा जाता है। विद्या से ही हम जीव जगत् और ईश्वर विषयक चिंतन को समझ पाते हैं। विद्या में ही वह ज्ञान है जो हमें उस परमतत्त्व की प्राप्ति या उसके अभिज्ञान को समझने का सामर्थ्य प्रदान करती है। इस प्रकार अविद्या हमें मृत्यु की ओर ले जाती है मृत्यु से तात्पर्य मरण से नहीं है, यहां मृत्यु से तात्पर्य अज्ञानता के कारण पदार्थ ज्ञान से अनभिज्ञ होना ही मृत्यु की ओर ले जाना है। इसीलिए विद्या को अमृतत्त्व की प्राप्ति का साधन बताया है। विद्या भी परा और अपरा रूप से दो प्रकार की होती है। सांसारिक जगत् के समस्त पदार्थों का ज्ञान और भौतिक जगत् में उपलब्ध ज्ञान को प्राप्त करना अपरा विद्या कहा जाता है। संसार से परे ईश्वर तत्त्व के विषय में ज्ञान को प्राप्त करना परा विद्या कहा जाता है। इसीलिए ज्ञान रूप से अमरता की जो बात की है वह यह है कि हमें संपूर्ण जीव जगत् और ब्रह्म के रहस्य का ज्ञान हो जाए तो हमारी विद्या सार्थक है। संपूर्ण दर्शनों में ईश्वर विषयक चिंतन पर पहुंचने का माध्यम कोई भी प्रमाण रहा हो पर वहां तक पहुंचाने का माध्यम केवल विद्या ही है। ज्ञ से ज्ञात की यात्रा कराने का सामर्थ्य विद्या में ही निहित है। विद्या इहलोक और परलोक दोनों के लिए सुखदायक है। विद्या से इहलोक लोग में कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता है और परलोक में ईश्वर विशेष चिंतन मनन का ज्ञान होता है। ज्ञ और विज्ञ के सफर को पार करने का साधन भी विद्या ही है। इस प्रकार जो विद्या ईश्वर विषयक हमारे सारे भ्रमों को दूर करती है वह विद्या मानव मात्र के लिए कल्याणकारी ही है इस प्रकार की विद्या को ही प्राप्त करना चाहिए। आज के युग में उपनिषदों के विचार उतने ही स्वीकार्य हैं, जितने उस समय। प्राचीन मनीषियों एवं ऋषियों की चिंतन क्षमता असामान्य थी। उनका वैचारिक श्रेष्ठ चिंतन रोटी-दाल के जुगाड़ तक ही सीमित नहीं था। भूख प्यास से ऊपर की चिंताएं भी उनके मन मानस पर चिंतनशील रहती थी। आज का बौद्धिक अस्तर कमजोर हुआ है, इसीलिए विद्या का स्थान शिक्षा ने ले लिया है। जो हमेशा कमजोर होने का अहसास कराती है। श्रेष्ठ शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी रोजगार के अवसर उपलब्ध नहीं है, यही कारण है कि हम शिक्षा को अवसर की दृष्टि से देख रहे है और अवसर अवसाद की और ले जा रहा है।

तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये।
आयासायापरं कर्म विद्यऽन्या शिल्पनैपुणम्।।[22]

' *सा विद्या या विमुक्तये*'[23] यह पौराणिक वाक्य विष्णु पुराण के प्रथम स्कंध उन्नीसवें अध्याय के 41वें श्लोक के अनुसार कर्म वह है जो बंधन में डाले, विद्या वह है जो मुक्त कर दे। संसार की सारी बाध्यताओं से मुक्त कर दे वही विद्या है इसीलिए कहा भी है कि विद्या मुक्ति ही नहीं अपितु विनम्र भी बनाती है- विद्या ददाति विनयम्, अर्थात् विद्या विनय प्रदान करती है। विद्या से व्यवहार में नम्रता आती है। इसी श्रेष्ठ विद्या का पान अवश्य करना चाहिए। इसलिए कहा है कि ' *आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्*' [24] अर्थात् विद्या से अमृतत्त्व की प्राप्ति होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. यजुर्वेद-3.47
2. बृहदारण्यकोपनिषद्-1.3.28
3. केनापनिषद्-2.4
4. अष्टाध्यायी पाणिनिमुनि-1/4/42
5. केनापनिषद्-2.4
6. केनापनिषद्-2.4
7. http://nilambarwiki.appspot.com/poem73/73520
8. केनापनिषद्-2.4
9. ईशावास्योपनिषद्-11
10. प्रश्नोपनिषद्-3.12
11. ऋग्वेद-5.1.2
12. छान्दोग्योपनिषद्-4.9.3
13. यजुर्वेद- 32.16
14. यजुर्वेद, 40.11, ईशो-14
15. सुभाषितरत्नसंग्रह, पृष्ठ संख्या- 194
16. विष्णुपुराण, 1.19.41
17. महाभारत, 12/339/6
18. पंचतंत्र, लिंगभेद, 217
19. सुभाषितरत्नसंग्रह, पृष्ठ संख्या- 30
20. पाणिनीयशिक्षा, 41-42
21. बृहदारण्यकोपनिषद्-1.6.3
22. विष्णुपुराण, 1.19.41
23. विष्णुपुराण, 1.19.41
24. केनापनिषद्-2.4

ISSN 2278 - 0327

म.प्र. एवं केन्द्रीय बोर्ड के विद्यार्थियों के जीवनमूल्यों के विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाओं का अध्ययन

नीतू जैन
शोधछात्रा- शिक्षा विभाग
ओरियंटल यूनिवर्सिटी, इंदौर म.प्र.

डॉ. वीरेन्द्र जैन
एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग
ओरियंटल यूनिवर्सिटी, इंदौर म.प्र.

भूमिका-

मानव के जीवन के सुन्दरतम विकास में अनेक तत्त्वों का योग रहता है। मूल्य उनमें एक आवश्यक तत्त्व है, जिनके बिना सुखद, शांतिपूर्ण वैयक्तिक, सामाजिक जीवन और न आध्यात्मिक जीवन ही संभव है। अत: मूल्यों की महत्ता का अनुमान स्वयं ही लगाया जा सकता है। वास्तव में मूल्य जीवन को बहुआयामी रूप देने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जितने भी महान् व्यक्तित्व हुए हैं, उन सभी का जीवन मूल्यों से ही लवरेज रहा है। वर्तमान व्यक्तियों का जीवन भी इससे असंपृक्त नहीं है। जीवन के उत्थान और पतन में मूल्यों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। एक सामान्य व्यक्ति भी अपने जीवन में कुछ-न-कुछ अंशों में मूल्यों का पालन अवश्य ही करता है। यह पालन चाहे स्वेच्छा से हो अथवा दण्ड के भय से। इससे भी यही प्रमाणित होता है कि मूल्य हमारे जीवन के आवश्यक एवं अपरिहार्य तत्त्व हैं। इस विषय में कतिपय विद्वानों के मत दृष्टव्य हैं-

मूल्य शिक्षा पर कतिपय विद्वानों के मत -

आलपोर्ट के अनुसार-''मूल्य एक मानव विश्वास है जिसके आधार पर मनुश्य वरीयता प्रदान करते हुए कार्य करता है।''

लेविन (1964) के अनुसार 'लालच की भावना में उच्चतम रुकावट सकारात्मक रूप में शारीरिक दण्ड की प्रक्रिया से है और नकारात्मक रूप से विचार और तर्कशक्ति की प्रक्रिया है।'

सी.वी. गुड का मानना है-''मूल्य वह चारित्रिक विशेषता है जो मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और सौन्दर्यबोध की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। लगभग सभी विचार मूल्यों के अभीष्ट चरित्र को स्वीकार करते है'

इन परिभाषाओं के अवलोकन से ज्ञात होता है कि जीवन मूल्य व्यक्ति के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन करने के लिए एवं जीवन जीने की कला सिखाने में एक सशक्त माध्यम है। इनके विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाओं का अवलोकन करना दृष्टव्य शोध का विषय है।

जीवन मूल्यों के किताबी ज्ञान मात्र कार्यकारी नहीं हो सकता है। प्राचीन काल में कहा जाता था कि पढ़ोंगे लिखोगे तो बनाओगें नवाब, खेलोगे कूँदोगे तो होगे खराब। सम्पूर्ण बल अध्ययन पर ही होता था, लेकिन शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान के आगमन से इस सम्प्रत्यय में परिवर्तन हुआ। शिक्षा के लिए बालक न होकर बालक के लिए शिक्षा का सम्प्रत्यय प्रारंभ हुआ। जिसमें बालक की रूचिओं और योग्यताओं के अनुसार शिक्षा का अनुसरण करने का विधान किया जाने लगा। पाठ्यचर्या बौद्धिक विषयों तक ही सीमित रहती थी, किंतु वर्तमान में इसकी सीमा बहुत विस्तृत हो गई है। आज पाठ्यचर्या में वे सब अनुभव सम्मिलित किए जाते हैं, जो किसी बालक को किसी शैक्षिक संस्था में कक्षा, पुस्तकालय, प्रयोगशालाओं, खेल के मैदान और साहित्य तथा सांस्कृतिक क्रियाओं से प्राप्त होते हैं। आधुनिक काल के निखिल शिक्षाशास्त्री इस बात पर सहमत हो गए हैं कि यदि इन क्रियाओं के द्वारा ही योग्य रूप से छात्रों का मार्गदर्शन किया जाए तो इसके परिणाम लाभप्रद होंगे। शिक्षण के क्षेत्र में पूर्व में इन्हें पाठ्येतर क्रियाओं के नाम से जाना जाता था, किंतु शनै:-शनै: मनौवैज्ञानिकों शोधों के परिणामों के कारण, इन्हें पाठ्यचर्या का अभिन्न अंग समझा जाने लगा। इन क्रियाओं द्वारा विद्यार्थी का सर्वांगीर्ण विकास होता है। पाठ्य सहगामी क्रियाओं की अवधारणा को दो भागों में बांटा जा सकता है- प्राचीन अवधारणा और आधुनिक अवधारणा।

प्राचीन अवधारणा-

पुरा काल में पाठ्य सहगामी क्रियाओं को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। जैसे पाठ्येतर प्रवृतियां, कक्षेतर प्रवृतियां तथा पाठ्य सहगामी क्रियाएँ। उस समय की शिक्षा अत्यंत संकुचित एवं व्यवहारिक थी। संगीत, नाटक, भ्रमण, स्काउटिंग, वाद विवाद, खेलकूद जैसी क्रियाओं को अशैक्षिक क्रियाएँ माना जाता था।

आधुनिक अवधारणा-

शिक्षा दर्शन की विचारधाराओं में परिवर्तन के साथ ही अतिरिक्त पाठ्यक्रम क्रियाओं के संबंध एवं दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ और वर्तमान में इन्हें अतिरिक्त क्रियाएँ न मानकर सहगामी क्रियाएँ माना जाने लगा। धीरे-धीरे यह सहगामी क्रियाएँ शिक्षा का आवश्यक अंग बन गई। इन क्रियाओं को पाठ्य सहगामी क्रियाएँ या पाठ्येतर क्रियाएँ कहा जाने लगा।

वर्तमान में सहगामी क्रियाओं का महत्त्व-

वर्तमान काल में आधुनिकीकरण के कारण गाँवों लोग शहरों की ओर आगमन हुआ, जिससे लोगों को गाँवों के स्वच्छंद व विस्तृत स्वच्छ वातावरण से रहित एक छोटे से मकान में निवास करने से उसकी सभी स्वतंत्रताएँ खत्म होने लगी। न खेलने के लिए मैदान हैं, न ही तैरने के लिए नदी, न पेड़, न जंगल, न ही छात्र नेतृत्व न उनकी मंडलियाँ। अत: छात्रों का पूर्ण विकास कैसे हो ? इसलिए विद्यालय में पाठ्य सहगामी क्रियाओं को बिना अध्ययन में सरसता उत्पन्न नहीं होती है। इन क्रियाओं से विद्यालयी जीवन में नवीनता उत्पन्न होती है। विद्यार्थियों के सर्वाङ्गीण विकास के लिए आवश्यक है कि पाठ्य सहगामी क्रियाओं पर पर्याप्त बल दिया जाए। माध्यमिक शिक्षा आयोग एवं राष्ट्रीय शिक्षा आयोग ने पाठ्य एवं पाठ्येतर प्रवृत्तियों को पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग माना है। पाठ्य सहगामी क्रियाओं का विद्यार्थियों के लिए बहुत महत्त्व है, इसे निम्न प्रकार से समझा जा सकता है।

नैतिक प्रशिक्षण- पाठ्य सहगामी क्रियाओं द्वारा नैतिक प्रशिक्षण के लिए वास्तविकता प्रदान की जाती है जिसमें भाग लेकर बालक उन गुणों को सीखता है जो चरित्र निर्माण के लिए आवश्यक है।

सामाजिक प्रशिक्षण- सामाजिक जीवन का विकास करना शिक्षा का मुख्य लक्ष्य है। पाठ्य सहगामी क्रियाएँ इस उद्देश्य की प्राप्ति में बहुत सहयोग प्रदान करती हैं। समाज सेवा शिविर, स्काउटिंग, स्कूल, श्रमदान तथा रेडक्रॉस आदि के द्वारा बालकों में सामाजिकता का विकास किया जा सकता है।

किशोरावस्था की आवश्यकताओं की पूर्ति- किशोरावस्था तनाव व तूफान की अवस्था है। विद्यार्थी की मानसिक दशा अत्यंत भावुक हो उठती है उसे अनेक प्रकार के मानसिक विकार घेर लेते हैं। इन क्रियाओं के द्वारा बालक की संपूर्ण शक्ति को रचनात्मक कार्यों में लगाकर शोधित किया जा सकता है।

अवकाश के समय का सदुपयोग- पाठ्य सहगामी क्रियाओं के माध्यम से बालक अपनी रुचि अनुसार कार्यों को कर सकता है। वह अतिरिक्त समय में वाद विवाद, खेलकूद आदि करके समय का सदुपयोग सीखता है।

विद्यार्थियों की रुचि का विकास- रुचि सीखने की प्रक्रिया का आधार है। विभिन्न प्रकार की पाठ्य सहगामी क्रियाएँ विद्यार्थियों में कुछ विशेष रूचि यों को उत्पन्न करने में बहुत सहायक है। यह विभिन्न रुचियां व कुशलताएं विद्यार्थी के जीवन को सफल बनाती हैं।

शारीरिक विकास- पाठ्य सहगामी क्रियाएँ विद्यार्थियों के शारीरिक विकास में सहायक है, खेलकूद, तैराकी, एनसीसी, ड्रिल तथा परेड आदि स्वस्थ शारीरिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है।

नेतृत्व की भावना का विकास- पाठ्य सहगामी क्रियाओं के द्वारा विद्यार्थियों में धैर्य आत्मविश्वास साहस कार्य के प्रति उत्साह विश्वास तथा तत्परता की भावना का विकास होता है।

मनोरंजन प्रदान करना- कक्षा के वातावरण को रुचिकर बनाने में पाठ्य सहगामी क्रियाएँ सहायक है। विद्यार्थियों में श्रम के प्रति नया दृष्टिकोण उत्पन्न होता है। वे प्रसन्नता पूर्वक स्वयं करके सीखता है।

शोध की आवश्यकता-

जीवन में जीवन मूल्यों के विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाएँ की अनिवार्यता स्वयं सिद्ध है। आज विश्व के हर कोने में बालक के समग्र विकासों केन्द्र में किया जाए तो पाठ्य सहगामी क्रियाएँ ही इसके लिए उपादेयता प्रदान करने में सक्षम प्रतीत होती है ? क्या जीवन मूल्य जो व्यक्ति व समाज में सकारात्मक क्षमताओं और अन्य प्रकार के व्यवहार को विकसित करते हैं, दैनिक जीवन में कौशल, व्यक्तित्व के सभी आयामों को समझने में योग्य भूमिका दे सकती हैं ? इसके माध्यम से छात्र जिम्मेदारी, अच्छी या बुरी दिशा में जीवन का महत्त्व, लोकतांत्रिक जीवनयापन, संस्कृति की समझ, सांस्कृत्यानुकून सोच आदि को समझ सकते हैं। इन सभी गुणों का विकास भी पाठ्य सहगामी क्रियाएँ के द्वारा किया जा सकता है, ये शोध का विषय निर्धारित किया गया है।

शोध की उद्देश्य-

- म.प्र. बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत् बालक और बालिकाओं के जीवनमूल्यों के विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाएँ का अध्ययन करना।
- केन्द्रीय बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत् बालक और बालिकाओं के जीवनमूल्यों के विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाएँ का अध्ययन करना।
- म.प्र. एवं केन्द्रीय बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के जीवनमूल्यों के विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाएँ का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध की परिकल्पनाएँ - प्रस्तुत शोध के लिए शोधकर्त्री ने शून्य परिकल्पनाओं का निर्माण किया जो इस प्रकार हैं-

- म.प्र. बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत् बालक और बालिकाओं के जीवनमूल्यों के विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाएँ में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
- केन्द्रीय बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत् बालक और बालिकाओं के जीवनमूल्यों के विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाएँ में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
- म.प्र. एवं केन्द्रीय बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के जीवनमूल्यों के विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाएँ में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

शोध का परिसीमन

प्रस्तुत शोध को शोध की दृष्टि से परिसीमित किया गया है। यह शोध भारत के मध्यप्रदेश राज्य के इंदौर जिले के राज्य सरकार एवं केन्द्र सरकार द्वारा संचालित माध्यमिक स्तरीय विद्यालय के विद्यार्थियों

तक सीमित होगा।

- न्यादर्श के रूप में म.प्र. बोर्ड के कुल 351 विद्यार्थियों तथा केन्द्रीय बोर्ड में अध्ययनरत कुल 257 विद्यार्थियों से प्रदत्तों का संकलन किया गया है।
- जीवन मूल्य के रूप में आठों जीवन मूल्य शारीरिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, साहचर्य, सौन्दर्य, चारित्र, ज्ञानात्मक, धार्मिक, और मनोरंजनं को लिया गया है।

शोध का प्रारूप

प्रस्तुत शोध को वर्णनात्मक शोध विधि के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि को लिया गया है, तथा असंभाव्य न्यादर्श की सुविधाचयन विधि के द्वारा प्रदत्तों का संकलन किया गया। उक्त आठ जीवनमूल्यों के विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाओं के योगदान को ज्ञात करने के लिए स्वनिर्मित उपकरण को तैयार किया गया था। प्रदत्तों को मध्यमान, मानक विचलन प्रतिशत और टी परीक्षण के द्वारा व्यवस्थित किया गया। जिसका विवरण प्रस्तुत है–

म.प्र. बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत् के बालक एवं बालिकाओं के आठों जीवन मूल्यों पर पाठ्य सहगामी क्रियाओं का तुलनात्मक प्रतिशतीय निरूपण–

म.प्र. बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत् के बालक और बालिकाओं के जीवन मूल्यों के के आठों मूल्यों पर पाठ्य सहगामी क्रियाओं की प्रभाविता को ज्ञात करने के लिए पूर्वोक्त पंच बिन्दु मापनी का प्रयोग कर प्रदत्तों का संकलन किया गया। पंचबिन्दुओं के माध्यम से प्राप्त प्रदत्तों को नियमानुसार अंक प्रदान किए तथा उनका प्रतिशतीय निरूपण किया जिसका विवरण तालिका क्र. 1 में प्रस्तुत किया जा रहा है–

तालिका 1– म. प्र. बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत् बालक और बालिकाओं के आठों जीवन मूल्यों पर पाठ्य सहगामी क्रियाओं का तुलनात्मक प्रतिशतीय विश्लेषण

चर	शारीरिक	आर्थिक	साहचर्य	सौन्दर्य	चारित्र	ज्ञानात्मक	धार्मिक	मनोरंजन
बालक	71.79	59.31	58.79	58.64	62.43	58.99	60.95	64.41
बालिका	72.88	59.65	59.74	58.98	63.18	58.34	61.55	63.45

तालिका क्र.1 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि म.प्र. बोर्ड के कुल 351 विद्यार्थियों से प्रदत्तों का संकलन किया गया, जिसमें 214 बालक और 137 बालिकाएँ हैं। इन विद्यार्थियों के जीवन मूल्यों के विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाओं की प्रभाविता को ज्ञात किया गया।

जीवन मूल्यों के आठों मूल्यों पर म. प्र. बोर्ड के विद्यार्थियों का सबसे अधिक प्रतिशत शारीरिक मूल्य पर बालिकाओं का 72.88 प्रतिशत और बालिकाओं का 71.79 प्रतिशत आया है। इसके बाद मनोरंजन मूल्य पर बालकों का 64.41 प्रतिशत और बालिकाओं का 63.45 प्रतिशत आया है। जो कि द्वितीय स्थान पर है। इसके बाद चारित्र मूल्यों पर बालिकाओं का 63.18 प्रतिशत और बालकों का 62.43 प्रतिशत आया है, जो कि तृतीय स्थान पर है। तदुपरान्त धार्मिक मूल्य पर बालिकाओं का 61.55 प्रतिशत और बालकों का 60.95 प्रतिशत आया है, जो कि चतुर्थ स्थान पर हैं। इसके बाद आर्थिक मूल्य पर बालिकाओं का 59.65 प्रतिशत और बालकों का 59.31 प्रतिशत आया है, जो कि सभी मूल्यों में पाँचवें स्थान पर है। साहचर्य मूल्य पर बालिकाओं का 59.74 प्रतिशत और बालकों का 58.79 प्रतिशत आया है। जो छठवे स्थान को अलंकृत करता है। ज्ञानात्मक मूल्य पर बालकों का 58.99 प्रतिशत और बालिकाओं का 58.34 प्रतिशत आया है। जो कि सातवें स्थान पर शोभित है। सबसे कम सौन्दर्य मूल्य पर बालिकाओं का 58.98 प्रतिशत और बालकों का 58.64 प्रतिशत आया है।

पाठ्य सहगामी क्रियाओं को अधिकांश तिरोहित दृष्टि से देखा जाता है कि ये समय को खराब करने का कारण हैं। इनका आयोजन विद्यालय में अनिवार्य रूप से न होकर एक ऐच्छिक प्रवृत्ति के रूप में होता है, और कभी नही होता, तो भी इस पर खेद नहीं होता है। उसी मंच से बालक के सर्वाङ्गीण विकास के नारे लगाए जाते हैं और पाठ्य सहगामी क्रियाओं को उपेक्षित समझा जाता है। इस शोध के आधार से ये घोषणा की जा सकती है कि म.प्र. बोर्ड में अध्ययनरत बालक और बालिकाओं के प्राप्तांकों का प्रतिशत 55 प्रतिशत से अधिक ही आया है। अर्थात् हर दो छात्रों में से एक का मानना है कि सर्वाङ्गीण विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाओं का योगदान है। इस विषय में आरेख क्र. 1 पर विश्लेषित किया जा रहा है।

आरेख क्र. 1 के निर्दशन से ज्ञात होता है कि बालकों के प्राप्तांक सौन्दर्य मूल्य पर सबसे कम है उसके बाद सहचर्य मूल्य पर, फिर ज्ञानात्मक मूल्य पर, तदुपरान्त आर्थिक मूल्य फिर धार्मिक मूल्य पर, चारित्रिक मूल्य पर, फिर मनोरंजन मूल्य पर और सबसे अधिक शारीरिक मूल्य के विकास में प्राप्तांकों का प्रदर्शन किया है। बालिकाओं ने सबसे कम अंक ज्ञानात्मक मूल्य फिर सौन्दर्यात्मक मूल्य पर, फिर आर्थिक और साहचर्य पर तथा धार्मिक और चारित्र मूल्य के बाद मनोरंजन मूल्य सबसे अधिक शारीरिक मूल्यों के विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाओं की उपयोगिता को स्वीकार किया गया है।

आरेख 1– म. प्र. बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत् बालक और बालिकाओं के आठों जीवन मूल्यों पर पाठ्य सहगामी क्रियाओं का तुलनात्मक प्रतिशतीय विश्लेषण

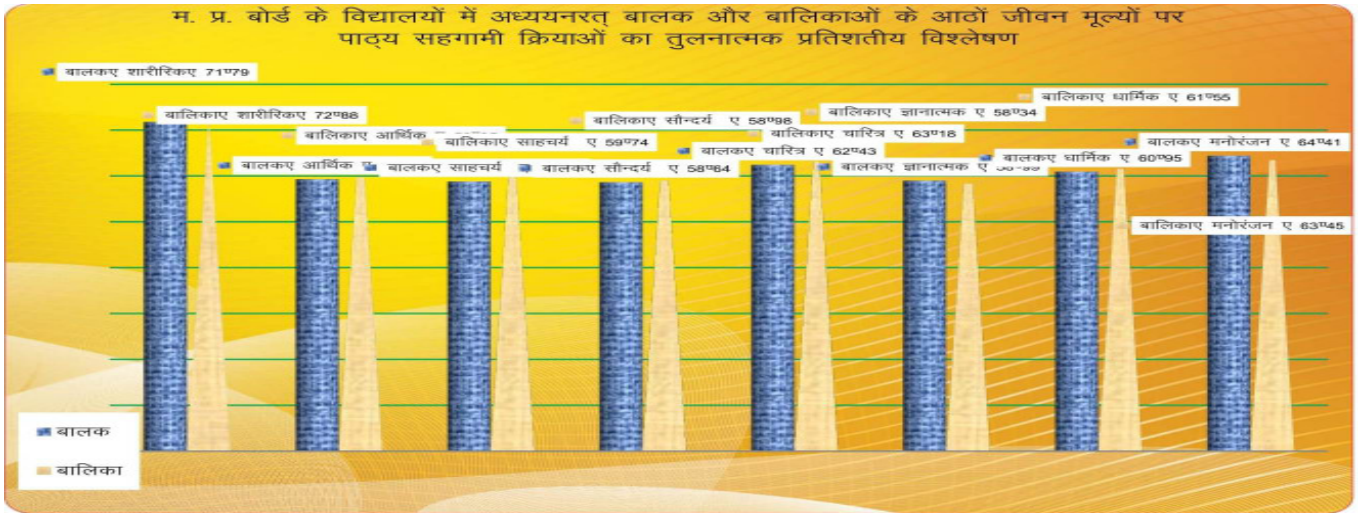

2 केन्द्रीय बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत् के बालक एवं बालिकाओं के आठों जीवन मूल्यों पर पाठ्य सहगामी क्रियाओं का तुलनात्मक प्रतिशतीय निरूपण–

केन्द्रीय बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत् के बालक और बालिकाओं के जीवन मूल्यों के के आठों मूल्यों पर पाठ्य सहगामी क्रियाओं की प्रभाविता को ज्ञात करने के लिए पूर्वोक्त पंच बिन्दु मापनी का प्रयोग कर प्रदत्तों का संकलन किया गया। पंचबिन्दुओं के माध्यम से प्राप्त प्रदत्तों को नियमानुसार अंक प्रदान किए तथा उनका प्रतिशतीय निरूपण किया जिसका विवरण तालिका क्र. 2 में प्रस्तुत किया जा रहा है–

तालिका 2- केन्द्रीय बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत् बालक और बालिकाओं के आठों जीवन मूल्यों पर पाठ्य सहगामी क्रियाओं का तुलनात्मक प्रतिशतीय विश्लेषण

चर	शारीरिक	आर्थिक	साहचर्य	सौन्दर्य	चारित्र	ज्ञानात्मक	धार्मिक	मनोरंजन
बालक	73.50	73.13	80.64	69.15	78.72	68.10	82.53	73.01
बालिका	74.18	69.87	79.96	69.91	80.76	68.36	82.44	74.62

तालिका क्र.2 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि जीवन मूल्यों के आठों मूल्यों पर केन्द्रीय बोर्ड के विद्यार्थियों का सबसे अधिक प्रतिशत धार्मिक मूल्य पर बालक और बालिकाओं के क्रमशः 82.53, 82.44 प्रतिशत आया है। इसके बाद सहचर्य मूल्य पर बालकों का 80.64 प्रतिशत और बालिकाओं का 79.96 प्रतिशत आया है। जो कि द्वितीय स्थान पर है। इसके बाद चारित्र मूल्यों पर बालिकाओं का 80.76 प्रतिशत और बालकों का 78.72 प्रतिशत आया है, जो कि तृतीय स्थान पर है। तदुपरान्त मनोरंजन मूल्य पर बालिकाओं का 74.62 प्रतिशत और बालकों का 73.01 प्रतिशत आया है, जो कि चतुर्थ स्थान पर हैं। इसके बाद शारीरिक मूल्य पर बालिकाओं का 74.18 प्रतिशत और बालकों का 73.50 प्रतिशत आया है, जो कि सभी मूल्यों में पाँचवें स्थान पर है। आर्थिक मूल्य पर बालकों के 73.13 प्रतिशत और बालिकाओं का 69.87 प्रतिशत आया है। जो छठवे स्थान को अलंकृत करता है। सौन्दर्य मूल्य पर बालिकाओं का 69.91 प्रतिशत और बालकों का 69.15 प्रतिशत आया है, जो कि सातवें स्थान पर शोभित है। सबसे कम ज्ञानात्मक मूल्य पर बालिकाओं का 68.36 प्रतिशत और बालकों का 68.10 प्रतिशत आया है।

पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन विद्यालय में अनिवार्य रूप से न होकर एक ऐच्छिक प्रवृत्ति के रूप में होता है, और कभी नही होता, तो भी इस पर खेद नहीं होता है। उसी मंच से बालक के सर्वांगीर्ण विकास के नारे लगाए जाते हैं और पाठ्य सहगामी क्रियाओं को उपेक्षित समझा जाता है। इस शोध के आधार से ये घोषणा की जा सकती है कि म.प्र. बोर्ड में अध्ययनरत् बालक और बालिकाओं के प्राप्तांकों का प्रतिशत 55 प्रतिशत से अधिक ही आया है। अर्थात् हर दो छात्रों में से एक का मानना है कि सर्वांगीर्ण विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाओं का योगदान है। इस विषय में आरेख क्र. 2 पर विष्लेषित किया जा रहा है।

आरेख क्र. 2 के विलोकन से ज्ञात होता है कि बालकों के प्राप्तांक ज्ञानात्मक मूल्य पर सबसे कम है उसके बाद सौन्दर्य मूल्य पर, फिर मनोरंजन मूल्य पर, तदुपरान्त आर्थिक मूल्य फिर शारीरिक मूल्य पर, चारित्रिक मूल्य पर, फिर साहचर्य मूल्य पर और सबसे अधिक धार्मिक मूल्य के विकास में प्राप्तांकों का प्रदर्शन किया है। बालिकाओं ने सबसे कम अंक ज्ञानात्मक मूल्य फिर आर्थिक फिर सौन्दर्यात्मक मूल्य पर, और शारीरिक, मनोरंजन साहचर्य पर तथा सर्वाधिक धार्मिक मूल्य के विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाओं की उपयोगिता को स्वीकार किया गया है।

आरेख 2– केन्द्रीय बोर्ड के विद्यालयों में अध्ययनरत् बालक और बालिकाओं के आठों जीवन मूल्यों पर पाठ्य सहगामी क्रियाओं का तुलनात्मक प्रतिशतीय विश्लेषण

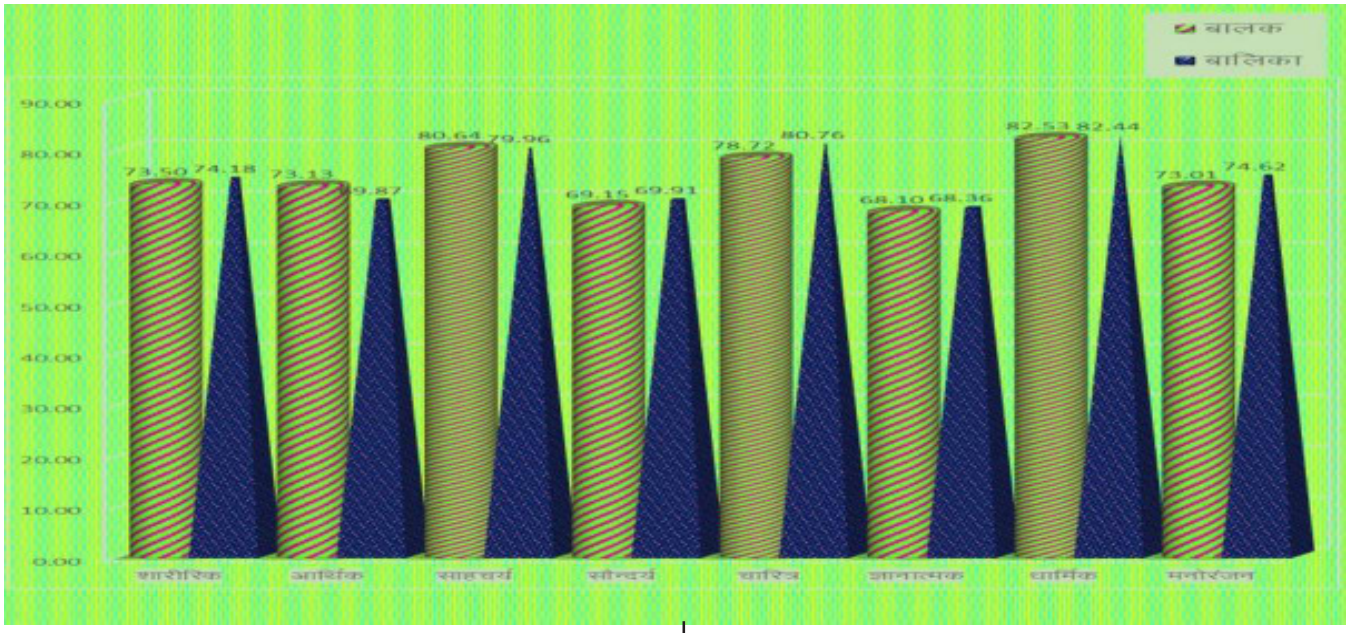

3. म. प्र. बोर्ड में अध्ययनरत बालक एवं बालिकाओं के जीवन मूल्यों के विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाओं में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका क्रमांक 3

चर	मध्यमान	कुलसंख्या	मनक-विचलन	मध्यमानों का अंतर	t मान
म.प्र. बोर्ड के बालक	105.7	214	71.06	14.51	0.478
म.प्र. बोर्ड के बालिका	105.28	137	56.55		

0.01 तालिका मूल्य 2.330, 0.05 तालिका मूल्य 1.646 df 349

तालिका क्रमांक 3 में अवलोकन से ज्ञात होता है कि म. प्र. बोर्ड में अध्ययनरत बालक एवं बालिकाओं के जीवन मूल्यों के विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाओं का विवरण दिया है। उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर 0.478 टी मान, 0.05 स्तर के मान, एवं 0.01 स्तर के मान से कम है। जिसके कारण शून्य परिकल्पना 0.05 स्तर एवं 0.01 स्तर पर स्वीकृत की जाती है। अत: म. प्र. बोर्ड में अध्ययनरत बालक एवं बालिकाओं के जीवन मूल्यों के विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाओं का अन्तर सार्थक नही है। अत: शून्य परिकल्पना को दोनों स्तरों पर स्वीकृत किया जाता है।

4. केन्द्रीय बोर्ड में अध्ययनरत बालक एवं बालिकाओं के जीवन मूल्यों के विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाओं में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका क्रमांक 4

चर	मध्यमान	कुलसंख्या	मनक-विचलन	मध्यमानों का अंतर	t मान
केन्द्रीय बोर्ड के बालक	106.28	163	66.55	26.35	1.704
केन्द्रीय बोर्ड की बालिका	104.59	90	40.2		

0.01 तालिका मूल्य 2.330, 0.05 तालिका मूल्य 1.46 df– 251

तालिका क्रमांक 4 में अवलोकन से ज्ञात होता है कि केन्द्रीय बोर्ड में अध्ययनरत बालक एवं बालिकाओं के जीवन मूल्यों के विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाओं का विवरण दिया है। उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर 1.7.4 टी मान, 0.05 स्तर के मान से अधिक है एवं 0.01 स्तर के मान से कम है। जिसके कारण शून्य परिकल्पना 0.05 स्तर अस्वीकृत एवं 0.01 स्तर पर स्वीकृत की जाती है। अत: केन्द्रीय बोर्ड में अध्ययनरत बालक एवं बालिकाओं के जीवन मूल्यों के विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाओं का अन्तर 0.1 स्तर पर सार्थक नही है और 0.5 स्तर पर सार्थक है। अत: शून्य परिकल्पना को अस्वीकृत किया जाता है।

5. म.प्र. एवं केन्द्रीय बोर्ड में अध्ययनरत विद्यार्थियों के जीवन मूल्यों के विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाओं में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका क्रमांक 5

चर	मध्यमान	कुलसंख्या	मनक-विचलन	मध्यमानों का अंतर	t मान
म.प्र. बोर्ड के विद्यार्थी	105.54	351	65.26	7.62	0.221
केन्द्रीय बोर्ड के विद्यार्थी	105.68	253	57.64		

0.01 तालिका मूल्य 2.330, 0.05 तालिका मूल्य 1.46 df–602

तालिका क्रमांक 5 में अवलोकन अवलोकन से ज्ञात होता है कि म. प्र. एवं केन्द्रीय बोर्ड में अध्ययनरत विद्यार्थियों के जीवन मूल्यों के विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाओं का विवरण दिया है। उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर 0.221 टी मान, 0.05 स्तर के मान, एवं 0.01 स्तर के मान से कम है। जिसके कारण शून्य परिकल्पना 0.05 स्तर एवं 0.01 स्तर दोनों पर स्वीकृत की जाती है। म.प्र. बोर्ड में अध्ययनरत विद्यार्थियों के जीवन मूल्यों के विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाओं एवं केन्द्रीय बोर्ड में अध्ययनरत विद्यार्थियों के जीवन मूल्यों के विकास में पाठ्य सहगामी क्रियाओं में कोई अन्तर सार्थक नही है। अत: शून्य परिकल्पना को दोनों स्तरों पर स्वीकृत किया जाता है।

शैक्षिक निहितार्थ–

शिक्षा के क्षेत्र में प्राचार्यों, शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं अभिभावकों के लिए जीवन मूल्यों के विकास में प्रेरणा दी जानी चाहिए। इस अमृतमयी सांस्कृतिक धरोहर का हस्तान्तरण, ज्ञान के आदान प्रदान से संभव है। जिसकी पहचान बनाए रखने के लिए छात्राओं में इसके प्रति आदतीकरण को विकसित करने की आवश्यकता हे जो कि इन क्रियाओं के माध्यम से पूर्ण होती है। अत: इस प्रत्यय का सहकार लेकर शिक्षक विद्यार्थियों के ज्ञान वृद्धि के साथ–साथ उनके व्यवहार परिमार्जन में भी वृद्धि करने हेतु प्रेरित करना चाहिए।

प्रस्तुत शोध में जैसे देखा गया है कि म. प्र. बोर्ड में अध्ययनरत विद्यार्थियों हो या केन्द्रीय बोर्ड में उनके जीवन में प्रभावशील कारक के रूप में जीवन मूल्यों का विकास ये अपरिहार्य कारक हैं, और उस कारक के विकास में सहगामी क्रियाएँ अपनी अद्वितीय भूमिका का निर्वाहन करते हैं। अत: कहा जा सकता है–

- शोध में प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर अभिभावक जीवन मूल्य, सहगामी क्रियाओं की उपयोगिता और संचार के साधनों का योग्य प्रयोग के प्रति सजग हो सकेंगे।
- जीवन मूल्यों के विकास में सहगामी क्रियाओं की उपयोगिता, और संचार के साधनों से अभिभावक अपने बच्चों के व्यवहार ने आए परिवर्तनों के कारणों को समझ सकेंगे।
- सहगामी क्रियाओं के सही उपयोग का लाभ दैनिक जीवन एवं पारिवारिक जीवन की समस्याओं के समाधान में विद्यार्थी ले सकेंगे।
- विद्यालयों में संचालित होने वाली समस्त क्रियाएँ विद्यार्थियों के समय को नष्ट करने के लिए रचा गया उपाक्रम न होकर, उनके सभी प्रकार के सामाजिक एवं पारिवारिक विकास में अभूतपूर्व भूमिका का निर्वन करने में सक्षम हैं।
- अभिभावक गण भी जीवन मूल्यों के विकास में इन सहगामी क्रियाओं को समय और धन की बर्बादी न समझे, अपितु इनके योग्य प्रयोग के प्रति सजग हो सकेंगे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. अग्रवाल आर. एन. और अस्थाना बी. (1987), मनोविज्ञान ज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर।
2. अग्रवाल वाई. पी. (1998), शैक्षिक अनुसंधान एक परिचय, नई दिल्ली : आर्य बुक डिपो।
3. उमेश (2010), आधुनिक भारतीय शिक्षा एक सर्वेक्षण, नई दिल्ली : इंडियन पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स।
4. कपिल, डी. एच. के (2005), सांख्यिकीय के मूल तत्व, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर।
5. कुमार, अनिल (2004), शिक्षा मनोविज्ञान, नई दिल्ली : डिस्कवरी पब्लिशिंग हाऊस।
6. गुप्ता, एस.पी, .आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2006
7. गैरेट, एच.डी. (1989), शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकीय, लुधियाना : ग्यारहवां सस्करंण कल्याणी पब्लिशर्स।
8. गैरेट, हेनरी ई (1972), शिक्षा व मनोविज्ञान में सांख्यिकीय, नई दिल्ली : कल्याणी पब्लिशर्स।
9. https://mhrd.gov.in/ICT-Initiatives-I-share-for-India
10. https://digitalindia.gov.in/di-initiatives
11. https://iasscore.in/

ISSN 2278 - 0327

तरुकथा (लघुकाव्य) में शरद् ऋतु का वर्णन

रंजेश्वर झा
विश्वविद्यालय-संस्कृत-विभाग
ल.ना.मि.वि.दरभंगा, बिहार

स सृष्टिवन्द्यो महतां सुधीनां गुरूर्मनीषी कविरामचन्द्रः।
यत्कात्य पीयूष रसप्रवाह स्वादामितानन्दमयो हि लोकः।।

मिथिला महीमणि विद्याभासुर महाकवि विद्यावाचस्पति पूज्यपाद आचार्य पं. स्वर्गीय रामचन्द्र मिश्र[1] प्रणीत कतिपय महाकव्यादि ग्रन्थों में ''तरूकथा''[2] लघुकाव्य एक उत्कृष्ट श्रेणी के काव्य रूप में परिणत है। इसमें महाकवि ने सहकार (आम्रवृक्ष विशेष) के कथन के माध्यम से काव्योचित समग्र गुणों से युक्त इस काव्य की रचना की है, यहाँ ऋतुओं का वर्णन अति मनोरम व पदलालित्यपूर्ण है। यद्यपि महाकवि ने सभी ऋतुओं का वर्णन साङ्गोपाङ्ग किये है, तथापि शरद् ऋतु की एक पृथक् छटा देखने को प्रतीत होती है। अथ च वर्तमान सन्दर्भ शरद् ऋतु का वर्णन करना अपेक्षित है।

तरूकथाकार शरद् ऋत[3] का वर्णन प्रारम्भ करते है-

वर्षा ऋतु के व्यतीत होने पर घना नील वर्ण के निरभ्र गगन मण्डल रूप परिघानीय वस्त्रों से आच्छादित (आवृत) सद्य: खिलने वाले कमल कुसुमरूप करकमल वाली, सिंहार के फूलों के हार से आभूषित ग्रीवा प्रदेश वाली, द्युलोक की दिव्यवनिता, नवपरिणीता वधू की तरह सम्पूर्ण शृंगार प्रसाधनों से अलङ्कृत मन्दहास करती शरद् नायिका मानों वह भासमान मुखमण्डल आकाश मण्डल से उतरकर धारामण्डल पर आयी-

दिवोऽबलाया धननीलवासो, वृताङ्गयष्टेमुखमन्तरिक्षे।
प्रकाशमानं जालदाऽत्ययेन, शरत्समारम्भमिव व्यनक्ति।।[4]
विकासिपङ्के रुहपाणिपद्मा, स्फुटत्सितांशुस्मयमानवक्त्रा।
शृंगार हार द्युतिभासिकण्ठी, शरन्नवीनेव वधूरूपैति।।[5]

पृथ्वीरूपी अधिमंच आने वाली इस (शरद्) नायिका के प्रस्फुटित होने वाले कमल ही प्रमुदित मुख, कर एवं चरण हैं। मानसरोवर से आए हुए राजहंस ही इसके मधुर ध्वनि वाले पायल हैं। प्रकृति प्रदत्त धवलता ही इसके धवल वसन हैं तथा इसके ललाटपटल चन्दन के बिन्दु (बिन्दी) से सुशोभित हैं ऐसा लगता है जैसे सज-धजकर धरांचल के मंचस्थल को सुशोभित करने आयी है।

इस समय समस्त वातावरण शरद् ऋतु की नायिका के आगमन से प्रसन्न है। नदियाँ प्रभूत जलधारा के सेवन से परिपुष्ट हुई मानो पुन:स्वास्थ्य लाभ कर लिया हैं अब यह धीरे-गम्भीर है अर्थात् न तो वर्षाकाल के समान उद्धत है और न ही ग्रीष्मकाल के समान स्वल्पसलिला। यह अन्तर्मन से प्रमुदित है। कहीं-कहीं श्वेत कुमुदिनी के फूलों से यह निर्मल नैसर्गिक उच्चहास करती दिखती है। इन कुसुमों पर शोभायमान प्रेमी चकोरयुगल मानों इस सरिता गायिका के श्लिष्ट पयोधर युगल हैं -

नदी क्वचित् संयभितस्वरूपा, मिलत्कुचद्वन्द्वचकोर युग्मा।
स्फुटत्कुमुद्वत्यमलोच्चहासा, प्रसीददन्तः करणेव तस्यै।[7]

इसके तटों पर एकत्र हुई पक्षियों की पंक्ति के कलरव इसके कमर में करघनी प्रतीत होती है। पास वाले ग्राम में रहने वाले लोग नदीखात में अगाध जल प्रवाह को देखकर आसन्न निर्धारित मार्गों, जहाँ अब जलराशि कम हो चुकी है- से सहर्ष जाने लगे। भगवती लक्ष्मी भी चारमासों से सोये हुए भगवान् विष्णु भी अब (देवोत्थान एकादशी के दिन) जगने वाले हैं, सोने के समय यह धरांचल कीचड़ से सना मलिन नहीं था, अत: अब उनके उठने के समय भी यह पङ्कमुक्त एवं सुशोभित दिखें, एतदर्श सारे वातावरण को सुसज्जित एवं मनोरम करने की शघ्रता करने लगी-

विहाय शय्यां जगदेकमर्त्ता, धरां विलोकेत न पङ्कलिप्ताम्।
इतीव चेतस्यनुचिन्तयन्त्या, श्रियाऽऽशु तत्संस्कृतये प्रयेते।।[8]

इस समय कुछ खेतों में जल सूख चुका है तो कुछ में जल शेष है। ऐसी स्थिति में धरारूपी नायिका कहीं तो नूतन वधु के समान क्षेत्रगत बीजों को छिपाती घूँघट लिए सी दिख रही है तो कहीं पङ्कलिप्त पैरों को हिलाती हुई दिखाई पड़ती है। आज आकाश मण्डल भी नवपरिजीता वधू के समान सुसज्जित प्रतीत होता है। इसकी शोभा को शरद नायिका भी अपनी स्वाभाविक सुषमा से चमत्कृत कर रही है। यह नायिका यथेच्छ विस्तीर्ण तटरूप नितम्बवाली सर्वत्र, स्वच्छ जलरूप निर्मल अंगवाली, विकसित कमलदलस्वरूप बडी-बड़ी आँखों, वाली, पूर्ण चन्द्रोपमुखी अत्यन्त ही नैसर्गिकी प्रसन्नता से भरी हुई है:-

'' वसन्तमाप्वान्तिम कालखण्डादमी, अनाहार मिवावरन्तः।
परापतन्तीव मृदुस्वनन्तो, मधुव्रताः शारदभालतीषु।।''[9]

इस समय निर्मल (पङ्कमुक्त) जल में मंजन करने वाली युवतियाँ जब उस स्वच्छ जल में एक साथ अपना प्रक्षालित मुखमण्डल देखती है तो ऐसा लगता है जैसे स्वयं शरद् नायिका अपने अनेक प्रतिबिम्बों को एक साथ निहार रही है –

कृताभिषेका मुखमीक्षमाणा, नदी जलोऽच्छे ललना विभान्ति।
निजं तनूं व्यूह्य निदर्शयन्त्याः स्वरूपभेदाः शरदो यथा स्युः।।[10]

इधर नदी प्रवाह रूपी नायक भी अत्यन्त निर्मल जल वाली इस ऋतु में स्नान की कामना से आने वाली ललनाओं के अंग प्रत्यङ्गों के स्पर्श सुख की अभिलाषा लिए अपने जल को और स्वच्छ करने (निखारने) के लिए विगत दिनों से प्रयत्नशील रहा है, इसकी निर्मलता को देखकर ऐसा प्रतीत होता है। शारदीय चन्द्रमा की सुषमा तो कहना ही क्या?[11] बहुत दिनों से सोए पति के अवबोधित होने के कारण लक्ष्मी का खिला मुखमण्डल देखकर मानो आज महीमण्डल के सारे कमल ही नहीं वरन् सारी-दृष्टि ही खिल उठी है:-

चिरं शयानस्य जगन्नियन्तुः, समुन्मिमीलेव यदेतदक्षि।
जहास तेनाऽखिल लोकमाता, ततो जहासेव समाऽपि सृष्टिः।।[12]

पुष्पों के बीच स्पर्धा करती हुई मल्ली। मल्लिका (चमेली फूल) हँसने लगी। (इठलाने लगी)। कुमुदिनी फूलों के खिलने के बहाने सरोवर हंसने लगा अर्थात् खिले हुए कुमुदिनी के फूलों से परिपूर्ण सरोवर हंसता हुआ-सा रहने के कारण की चड आदि से मुक्त निर्मल रास्ते हंसने लगे अर्थात् कीचड़ आदि दोषों से मुक्त सूखे सुहावने मार्ग पर निश्चिन्त होकर चलने वाले पथिकों एवं पशुगणों के दिखने लगे। (समीप के दीपावली पर्व में की गई सफाई एवं सजावट क कारण चमकते हुए) घरों की बहुलता से गाँव-गाँव चमकते हुए से दिखने लगे-

मल्लीमिषत्पुष्पतया जहास, कुमुद्वती हासमिषात् तडागः।
जहास पन्थाः सितसैकतत्वात् पुरावली सौधपरम्पराभिः।।[13]

शरद ऋतु में बादलों के दूर चले जाने के कारण निर्मल आकाश मण्डल हँसता हुआ सा प्रतीत होता है। चन्द्रमा के द्वारा फैलायी गयी-चाँदनी की आभा से सारी दिशाएँ हंसती हुई सी लगती हैं। इस प्रकार लगता तो ऐसा है कि हंसती हुई लोकमाता लक्ष्मी का अनुसरण करती हुई (आज) सारी सृष्टि ही हंस रही है।

वियज्जहासेव धनापसृत्या, दिशाऽपि भासा ततया हिमांशोः।
मन्ये समस्ताऽपि चराचरात्मसृष्टिर्जगन्मातरमन्वकार्षीत्।।[14]

इस समय जब चराचर शरद् की सुषमा का आनन्द लाभ ले रहा है, सहकर (आम्रवृक्ष) निरपेक्षभावेन सर्वदा संसार के पर्यावरण रक्षणरूप स्वधर्म के पालन में तत्पर है-

दिगम्बरः पार्श्वचरोक्षराजो, वृतो व्रतत्याऽगजया सदैव।
प्रदूषणं विश्वविषं निषव्य, प्रनृत्यदङ्गोऽनिशमुग्रमूर्द्धाः।।[15]

तरूकथा के नायक सहकार का कथन है कि मैं सर्वदा चुपचाप रहकर तपस्या (सबों के लिए कल्याणकारी साधना) में निरत हूँ, फिर भी मुझे किसी ने देवता नहीं कहा। मैं राजा के समान पृथ्वी से (Tax) कर के रूप में इसे ग्रहण करता हूँ मेरी पत्रावलियाँ मेरे छात्र एवं चँवर के रूप में हैं। माङ्गलिक कृत्यों एवं युद्धप्रस्थान के समय मंगल की कामना से वनितावर्ग एवं सैन्यवर्ग मेरे चरणों में शीश झुकाते हैं। मैं अपने आश्रम में परस्पर विरुद्ध स्वभाव वाले पशु-पक्षी आदि जीवों को वासस्थानादि देने के ब्याज से युयुत्सुओं (युद्ध की कामना वाले योद्धाओं) को अपने संरक्षण में रखता हूँ। पुनश्चः मैं राजा की भाँति ही सर्वदा अपना शीश उठाए हुए, निर्भय रहकर शीतातपवर्षा आदि ऋतुओं के प्रभाव से कभी विचलित नहीं होता, फिर भी लोग क्या मेरा राजोचित सत्कार करते हैं। मुझमें ऋषि का समग्र आचरण विद्यमान है किन्तु लोग मुझे ऋषि का आदर क्यों नहीं देते? वसुन्धरा की सन्तान होते हुए भी मैंने कभी वसु (धन) संग्रह की चेष्टा नहीं की।[16] इस प्रकार सर्वदा निष्काम कर्मयोगी की भाँति मेरी जीवन यात्रा है।

महाकवि ने सहकार को इस कथन के माध्यम से गीता के छठे अध्याय में वर्णित योगी की तरह आचरण करने वाला बतलाया है –

योगी युन्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः।। [17]

इस तरह महाकवि विद्यावाचस्पति रामचन्द्र मिश्र ने अपनी कवित्व प्रतिमा से पद की लालित्यता, रस, अलंकार, रीति, गुण एवं छन्दोयोजनादि सहित समस्त काव्य लक्षणों से युक्त वाक्य का प्रयोग किया है, जो कोई प्राचीन महाकवि कालिदासादि से तनिक भी कम नहीं, इसलिए तो तरूकथा प्रभाव्याख्याकार का यह कथन दर्शनीय है:-

नन्वयं रामचन्द्रः स्वयमेव कालिदासोऽवतीर्णोऽस्ति।
प्रतिपद कवनीय चातुयञ्चेतस्यञ्चयति तद्रूपम्।।[18]
।। इत्यक्तिः सफला जायेत।।

संदर्भ सूची

1. वि.वा.आ. रामचन्द्र मिश्र - का.सिं.द.सं. विश्वविद्यालय के भूतपूर्व साहित्य विभागाध्यक्ष थे इनका पूर्णपरिचय इनके द्वारा लिखित ''स्मृतिरेखा'' ग्रन्थ देखना चाहिए।
2. यह महाकवि वि.वि.आ. रामचन्द्र मिश्र की अग्रिम कृति ''तरूकथा'' लघुकाव्य है, इसकी प्रभाव्याख्या विगत वर्ष में म.ल.सिं. महाविद्यालय-सरिसब-पाही के संस्कृत विभागाध्यक्ष डॉ. कृष्णकान्त झा के द्वारा किया गया है।
3. तरूकथा में कुल 239 पद्य हैं, जिसमें 173-209 तक शरद् ऋतु

का वर्णन है।

4. तरूकथा प्रभाव्याख्या – 173वाँ पद्य।
5. तरूकथा प्रभाव्याख्या– 174वाँ पद्य।
6. तरूकथा प्रभाव्याख्या– 175वाँ पद्य।
7. तरूकथा प्रभाव्याख्या– 182वाँ पद्य।
8. तरूकथा प्रभाव्याख्या– 185वाँ पद्य।
9. तरूकथा प्रभाव्याख्या– 187वाँ पद्य।
10. तरूकथा प्रभाव्याख्या– 191वाँ पद्य।
11. शास्त्रों में शरद् ऋतु की चन्द्रमा का विशेष महत्व है जैसे आचार्य– विश्वनाथ–साहित्यदर्पण के मंगलाचरण में कहते हैं ''शरदिन्दुसुन्दर .....।
12. तरूकथा प्रभाव्याख्या– 198वाँ पद्य।
13. तरूकथा प्रभाव्याख्या– 199वाँ पद्य।
14. तरूकथा प्रभाव्याख्या– 200वाँ पद्य।
15. तरूकथा प्रभाव्याख्या– 203वाँ पद्य।
16. तरूकथा प्रभाव्याख्या– 209वाँ पद्य।
17. श्रीमद्भगवद्गीता 6–10 श्लोक।
18. तरूकथा प्रभाव्याख्या के समर्पण में उद्धृत डॉ. कृष्णकान्त झा के द्वारा।

ISSN 2278 - 0327

आधुनिक युग में नरेंद्र कोहली कृत 'सेतु-भंजन' उपन्यास में रामसेतु की प्रमाणिकता

वीरेंद्र
(JRF NET M.Phil)
पी-एच.डी. शोधार्थी
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
अस्थल बोहर, रोहतक, हरियाणा

शोध सार -

भारत-श्रीलंका को जोड़ने वाले रामसेतु का रामकथा में विवरण मिलता है। किंतु राम सेतु की प्रमाणिकता को लेकर काफी समय से विवाद चल रहा है कि यह कल्पना मात्र है या यथार्थ। इसी विषयवस्तु को आधार बनाकर उपन्यास की रचना की गयी है। जहाँ एक तरफ यह आस्था का प्रतीक है, तो वहीं दूसरी तरफ आधुनिकता, भौतिक और वैज्ञानिक साक्ष्यों की भी बात है। अनेक राजनीतिक दलों ने समय-समय पर अपने स्वार्थ के लिए रामसेतु का इस्तेमाल करते आए हैं और इन राजनीतिक स्वार्थों के बीच उलझे इसके रहस्य को उजागर करने में कल्पित पात्र वरुणपुत्री का सहारा लिया गया है। आलोच्य उपन्यास में पौराणिक घटनाओं, मिथकों, फैंटेसी और वैज्ञानिक तर्क का अद्भुत मिश्रण प्रस्तुत करते हुए रामसेतु की प्रमाणिकता को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है

मूल शब्द-राम सेतु, मिथक, फैंटेसी, सश्राधारी, पुरातत्व

प्रस्तावना

सेतु-भंजन उपन्यास के माध्यम से नरेंद्र कोहली ने रामसेतु की आधुनिक युग में प्रमाणिकता को लेकर उठने वाले संशयों को वैज्ञानिकता, तर्क, मिथकों, राजनीतिक घटनाओं और पौराणिक कथाओं के समिश्रण से अद्भुत कृति का लेखन किया है। रामकथा से संबंधित उपन्यासों में ये एकमात्र उपन्यास है, जिसमें लेखन ने फैंटेसी शैली का प्रयोग किया है। रामसेतु जहाँ एक तरफ आस्था और श्रद्धा का प्रतीक है तो दूसरी तरफ वैज्ञानिक और भौतिक प्रमाणों की बात उठती है। समय-समय पर अनेक राजनीतिक पार्टी अपने फायदे के लिए रामसेतु का इस्तेमाल करते हैं। कल्पित पात्र वरुणपुत्री के माध्यम से लेखक ने इन्हीं राजनीतिक चालों के माध्यम से उजागर किया है।

रामसेतु के संबंध में डॉ. कोहली का मत है कि हमारे अपने देश में रामसेतु के संदर्भ में हमारे ही पुरातत्व विभाग ने शासक दल के आदेश पर हाईकोर्ट में यह शपथपत्र दे दिया कि रामकथा से संबंधित चरित्रों में कोई प्रमाणिकता नहीं है। लेखक ने रामसेतु के संबंध में वर्तमान सरकारों के नजरिये को उपन्यास में निर्भयता से दर्शाया है। दिल्ली में सत्ताधारी पार्टी की बैठक खत्म हो गई थी। किंतु प्रधानमंत्री अपना सिर पकड़े बैठे थे। क्योंकि उन्हें पार्टी का भविष्य अंधकार में लग रहा था। जिन लोगों को वे पार्टी में लेकर आए थे, चुनाव लड़ना सिखाया और बड़े-बड़े भ्रष्टाचार पर भी आंखें बंद रखी। आप सब के सब छोड़ जाने को तैयार हैं। उन्हें ज्ञान हो गया था कि उनकी पार्टी के नेता उन्हें प्रधानमंत्री नहीं हाईकमान को ही मानते हैं। अब तो जब नुकसान हो जाएगा तो सारा दोषोरोपण प्रधानमंत्री के सिर पर लगा दिया जाएगा।

उपन्यास में तमिलनाडु के सबसे बड़े दल 'देशोत्थान' के अध्यक्ष दयासागर प्रधानमंत्री से मिलने आते हैं। अपने पार्टी के समर्थन देने का प्रस्ताव देते हैं। उसके बदले में 'रामसेतु' को तुडवाकर उसके स्थान पर 'सेतु समुद्रम्' बनवाने को कहते हैं। राम सेतु तूटने से हिंदुओं की भावनाएँ आहत होगी और वे हमारे विरूद्ध वोट करेंगे। आप इस के बदले में कुछ और देकर बहला दीजिए। दयासागर कहता है कि आप ब्रह्मसमाजी हैं और मैं नास्तिक। हमें क्या मतलब रामसेतु से। प्रधानमंत्री द्वारा पूछे जाने पर कि आप राम सेतु क्यो तुड़वाना चाहते हो तो दयासागर कहता है ''रामसेतु के कारण हमारे पूर्वी लंका के साथियों को सीधे हिंद महासागर से उनका क्षेत्र नहीं जुड़ पाता। इसी कारण वह वैश्विक पतन नहीं बन सकता। जिसके कारण संसार से व्यापार नहीं हो सकता, व्यापार न होने के कारण समृद्धि नहीं आएगी। उसे वैश्विक पतन बनाना चाहते हैं, ताकि व्यापार का विकास हो सके। रामसेतु बड़े जल पोतों को रोकता है। सबसे बड़ी मुश्किल दु:शासन को हथियार पहुँचाने में आती है। राम सेतु बाधा ही बाधा है''[1] प्रधानमंत्री दयासागर के प्रस्ताव को हाई-कमान के समक्ष रखते है तो हाईकमान कहती है कि जब राम के धरती पर पैदा होने के प्रमाण नहीं है। जब राम ही नहीं तो रामसेतु कैसा ? प्रधानमंत्री नासा द्वारा रामसेतु की प्रमाणिकता के विषय में कहते हैं। इसी तथ्य को लेखक ने उपन्यास की काल्पनिक पात्र वरुणपुत्री के माध्यम से कही मैं आस्था कि नहीं, केवल भौतिक परमाणों की बात कर रही हूँ। भूगोल की दृष्टि से, सेतु-निर्माण के समय जिस भूमि पर, राम ने शिव की

आराधना की, वही रामेश्वरम् तो आज भी है। वहीं से आगे समुद्र तट पर धनुषकोडि रेलवे स्टेशन था, जो 1960 ई. के समुद्री तूफान में नष्ट हो गया। रामनाथ के राजा ने 'सेतुपति' की उपाधि ले रखी थी। कहीं कुछ था, तभी तो राजा सेतुपति था। अमेरिकी उपग्रह द्वारा लिए गए चित्रों में भी स्पष्ट रूप से सेतु दिखाई पड़ता है। इस संदर्भ में तरुण विजय द्वारा प्रस्तुत उदाहरण है:-''But this is what NASA says about the bridge, exploring space with a camera by NASA's [193] Gemini X1, this photograph from an altitude of 410 miles encompassess all of India, an area af 1,250,000 square miles George M Low, then the deputy director, Manned spacecraft center, NASA, notes, Bombay is on the west coast, directly left of the spacecraft'scan – shaped antenna, New Delhi is just below the horizon near the upper left. Adam's Bridge between India and aeylon, at the right, is clearly visible"[2]

इस पर हाईकमान कहती है कि वह एडम ब्रिज है, न कि राम सेतु। जहाँ काल चक्कर में प्रत्येक भौतिक प्रमाण नष्ट हो जाते हैं चाहे वह चट्टान का बना क्यों न हो। यहाँ तो रामसेतु सतरह लाख वर्ष पुरानी घटना पर आधारित है। फिर भी आश्चर्य है कि राम-सेतु बचा हुआ है, जिसका प्रमाण अमेरिका की नासा संस्थान ने भी प्रमाणिक माना और विभिन्न रामकथाओं में इसके प्रमाण उपलब्ध है। चाहे वह मूल रामायण हो या कंबन और कृतिवास रामायण या रामचरितमानस सभी में राम सेतु निर्माण के साक्ष्य उपलब्ध है। वाल्मीकि ने यंत्रों के विषय में कुछ नहीं बताया, किंतु इतना भर कहा है कि यह वानर यंत्रों के द्वारा कर रहा है। स्पष्ट है कि वृक्षों को घसीटना सामान्य बात है, और पर्वत-खंडों का परिवहन कुछ कठिन और भिन्न। वानरों की सहायता से नल पहले दिन चौदह योजन, दूसरे दिन बीस योजन, तीसरे दिन इक्कीस योजन, चौथे दिन बाईस योजन और पांचवे दिन तेईस योजन लंबा सेतु बाधता है।''[3]

रामसेतु की प्रमाणिकता के विषय में अंग्रेजों के शासन में यह स्वीकार किया गया कि रामसेतु 1480 ई. तक विद्यमान था।''1803 की ग्लॉसरी ऑफ मद्रास प्रेसेडेंसी में यह तथ्य स्वीकार किया गया है कि सन् 1480 ई. तक यह न केवल वर्तमान था, वरन् वह प्रयोग में था और उस पर से लोग यात्रा किया करते थे।''[4]

रामसेतु के विरोधियों का बल इस बात पर है कि रामसेतु मनुष्य निर्मित नहीं है। रामायण के अनुसार राम के द्वारा सागर को शस्त्र से सुखाने की संभावना को देखते हुए, सागर ने राम को ऐसा स्थान बता दिया जहाँ से हनुमान जी लंका गए थे। जहाँ समुद्रतल पर प्राकृत शिलाएं रही होंगी जिनकों आधार बनाकर उनके ऊपर शिलाओं, वृक्षों अन्य संसाधनों से पानी के ऊपर उठा दिया, जिससे लंका तक जाने का मार्ग बन गया। किंतु NASA जैसी प्रमाणिक संस्थान के द्वारा उपलब्ध साक्ष्यों के पश्चात् भी राजनीतिक तुष्टिकरण के कारण पुरातात्विक विभाग के अधिकारी हो या वामपंथी चिंतक या तथाकथित बुद्धिजीवी, सत्य का अन्वेषण करना उनका उद्देश्य नहीं है। उनका उद्देश्य इस देश की संस्कृति को नष्ट करके यहाँ की आस्थावादी सनातन परंपरा का अपमान करना है। ''महर्षि अरविंद ने सौ वर्ष पहले ही कहा था गांव, की वह सबसे दुर्भाग्यपूर्ण दिन था, जब इस देश के तथाकथित पढ़े-लिखे, पश्चिमीकृत ने हमारे स्थित सारे प्राचीन ग्रंथों को कपोल कल्पना मान लिया था''[5]

निष्कर्ष-

उपर्युक्त विवेचना में सेतु भंजन उपन्यास के माध्यम से रामसेतु से संबंधित पौराणिक, वैज्ञानिक और भौतिक तथ्यों के माध्यम से रामसेतु के प्रमाणिक होने के तथ्य से सिद्ध करते कि किस प्रकार राजनैतिक दल अपने मतलब के लिए रामसेतु की प्रमाणिकता पर आक्षेप लगाते हैं उन्हें देश की जनता की भावनाओं और सांस्कृतिक, धार्मिक मान्यताओं से कोई फर्क नहीं पड़ता, व उनके आदर्श, पूज्य प्रतीकों को झूठे प्रमाणों से उन्हें असत्य घोषित करने पर तूले रहते हैं।

संदर्भ सूची

1. डॉ. नरेंद्र कोहली राम सेतु भजन, पृ. 32
2. वही, पृ. 83
3. वही, पृ. 77
4. वही, पृ. 76
5. डॉ. नरेंद्र कोहली, मेरे राम, मेरी रामकथा, पृ. 21
6. डॉ. नरेंद्र कोहली,सेतु भजन उपन्यास, राजपाल प्रकाशन, 2021(पहला संस्करण)
7. डॉ. नरेंद्र कोहली, मेरे राम, मेरे राम कथा, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2014
8. दैनिक भास्कर, समाचार पत्र, इंदौर,12 सितंबर 2007

ISSN 2278 - 0327

महर्षि कणाद का वैशेषिक दर्शन एक अध्ययन

प्रियंगम जी झा
संस्कृत स्नातकोत्तर -विभाग
ल.ना.मि.वि., दरभंगा, बिहार

भारतदेश पुराकाल से ही दार्शनिक देश के रूप में सुविख्यात है, जहाँ कपिल, कणाद गौतम आदि परम महर्षियों का विशिष्ट योगदान रहा है। सम्प्रति आधुनिक जगत् में पुरमाणु जैसे सूक्ष्म पदार्थों के द्वारा ही अनेक यंत्रों का निर्माण होता है, जिसमें महर्षि कणाद का वैशेषिक दर्शन परम सराहनीय है। प्रस्तुत शोधपत्र वैशेषिक दर्शन का एक अध्ययन अपेक्षित है।

राष्ट्र निर्माण में महर्षि कणाद का योगदान परमदर्शनीय है। भारतीय दर्शन को प्राचीनतम ऋषियों-मुनियों द्वारा निरन्तर चिन्तन से निस्सृत मानव जीवन का अनुपम निधि माना जाता है। दर्शन के क्षेत्र में मिथिला का योगदान अप्रितम है। भारतीय दर्शन ब्रह्मविद्या अध्यात्मविद्या के रूप में मुण्डकोपनिषद् में वर्णित है -

'' *स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्नाय ज्येष्ठ पुत्राय प्राह*''[1]

''दृशिर् प्रेक्षणे''[2] धातु से करण अर्थ में ''ल्युट्''[3] प्रत्यय के द्वारा दर्शन शब्द सिद्ध होता है। जिसकी व्युत्पत्ति- '' *दृश्यते अनेन इति दर्शनम्*'' इस विग्रह से भाव अर्थ में दर्शन शब्द का अर्थ है नेदिष्ट निस्सन्दिग्ध ज्ञान, सुस्पष्ट और विशद् प्रत्यक्ष अपरोक्ष अनुभूति तथा करण व्युत्पन्न दर्शन शब्द का अर्थ है- उस साक्षात्कार का साधन जिसके द्वारा अदृश्य आत्मा, ईश्वर, स्वर्ग, मोक्ष, प्रभृतिज्ञान की अवाप्ति हो, उसे दर्शनशास्त्र कहते हैं। इस शास्त्र के द्वारा दृश्यमान् जगत् का सत्य, स्वरूप तथा अदृश्य परात्पर परमेश्वरादि का ज्ञान प्राप्त होता है।

भारतीय दर्शन को सामान्यत: दो भागों में विभक्त किया गया है- (1) वैदिक दर्शन और (2) अवैदिक दर्शन। वैदिक दर्शन को आस्तिक दर्शन कहते हैं। इसी प्रकार अवैदिक दर्शन को नास्तिक दर्शन कहा जाता है। पुन: ये दोनों छ:छ: भागों में विभाजित किये गये हैं। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, सौत्रान्तिक, वैभाषिक, माध्यमिक तथा योगाचार बौद्ध- ये छ: नास्तिक दर्शन की कोटि में परिगणित किये हैं। उक्त नास्तिक दर्शन अन्तिम चारों बौद्धों के पृथक-पृथक सिद्धान्त हैं। फलत: दोनों ही दृष्टियों से भारतीय दर्शन ''षड्समुच्चय'' की संज्ञा अवाप्त करता है।

इन षड् आस्तिक दर्शनों में शास्त्रीय प्रमाण के आधार पर द्वितीय दर्शन वैशेषिक दर्शन हैं। वैशेषिक दर्शन भारतीय दर्शन के प्राचीनतम सम्प्रदायों में परिगणित हैं। इसके प्रवर्तक कणाद मुनि परम्परा से वैशेषिक दर्शन के प्रथम उपदेष्टा माने जाते हैं।

महर्षि कणाद वैशेषिक दर्शन के प्रथम प्रस्तौता के रूप में उपनिषद् महाभारत, रामायण एवं पुराणों में भी प्रामाणिकता के साथ उल्लिखित हैं। पुराणों में संकेतित सिद्धान्तों के दार्शनिक विवेचन का श्रेय इन्हें ही है। सम्भवत: प्रारंभ में पौराणिक वैशेषिक वेदान्त के साथ सम्मिश्रित था। उन्हें वैशेषिक दर्शन के रूप में प्रमाणिक ढ़ंग से सर्वप्रथम कणाद मुनि ने ही प्रस्तत किया है। त्रिकाण्डकोष[4] में इनका नाम ''काश्यप'' मिलता है तथा किरणावली में[5] उदयनाचार्य ने इन्हें कश्यप मुनि का पुत्र बतलाया है। अत: इनका गोत्र कश्यप होने में संदेह नहीं है। श्री हर्ष ने नैषधीय चरित में कणाद दर्शन को औलूक की संज्ञा दी है -

ध्वान्तस्य वामोरू विचारणायी वैशेषिकं चारूमतं मतं मे।
औलूकमाहु: खलु दर्शनं सत् क्षमं तमस्तत्वनिरूपणाय।।[6]

वायुपुराण में कणाद को प्रभास निवासी सोम शर्मा का शिष्य और शिव का अवतार बतलाया गया है।[7] अत: कणाद मुनि काश्यपगोत्री सोम शर्मा के शिष्य तथा उलूक नामधारी थे। ''कणाद'' का अर्थ कण भक्षण करने वाला है। ये कपोत की वृत्ति का आश्रयण कर सड़क पर गिरे हुए कणों को। (अन्न के कणों को) खाया करते थे। अतएव ''कणाद'' संज्ञा स्वीकृत आहार निमित्तक है यह कथन प्राचीन आचार्यों- व्योमशिव तथा श्रीधर का है। परमाणुवाद के पुरस्कर्ता होने के कारण भी किन्हीं के मत में कणाद संज्ञा की सार्थकता है।

वैशेषिक दर्शन का इतिहास कणाद सूत्रों से प्रारंभ होता है। कणाद का वैशेषिक सूत्र दस अध्यायों में है जिनमें से प्रत्येक दो पाठों में विभक्त है। यद्यपि इसमें वैशेषिक दर्शन में माने हुए विभिन्न पदार्थों की व्याख्या ही मुख्य उद्देश्य है तथापि अनुसंगत कई सामान्य दर्शनिक समस्याओं की भी चर्चा है। इस पर सबसे प्राचीन उपलब्ध तथा व्याख्या प्रशस्तपाद की है। प्रशस्तपाद का पदार्थ धर्मसंग्रह जो पाँचवी शताब्दी की रचना है। वैशेषिक दर्शन का एक उच्चकोटि का शास्त्रीय ग्रन्थ है। यह एक ग्रन्थ वैशेषिक मत का नये प्रतिपादक हैं और उसका काफी विस्तार कर देता है। इस दर्शन के इतिहास में पहली बार सृष्टि सिद्धान्त और ईश्वर के स्रष्टा होने का स्पष्ट वर्णन पाया जाता है। ऐसी नवीनताओं के कारण इस ग्रनथ को एक भाष्य के स्थान पर वैशेषिक मत को एक स्वतंत्र प्रमाणिक ग्रन्थ के रूप में देखना अधिक उचित है।

अनेक लेखकों ने इसकी व्याख्या की है, जिसमें सर्वाधिक महत्व उदयन और श्रीधर का है। वैशेषिक सूत्र पर शङ्कर मिश्र का उपस्कार भी प्रसिद्ध रचना है। श्रीमत्केशव मिश्र की तर्कभाषा लौगाक्षी भास्कर की तर्ककौमुदी, जगदीश का तर्कामृत तथा श्रीमदन्नं भट्ट नामक दक्षिणी लेखक के तर्कसंग्रह में न्याय और वैशेषिक के समन्वय की परम्परा का बीज यद्यपि वात्स्यायन में ही है तथापि शिवादित्य की सप्तपदार्थी में उकसा परिष्कृत रूप प्राप्त होता है। न्याय वैशेषिक में जो एकीकरण हुआ, उसमें गौतम के चार प्राणों और वैशेषिक के सात पदार्थों की स्वीकृत कर समझौता हुआ। नव्य-न्याय में भी चार प्रमाण तथा सप्तपदार्थ स्वीकृत हुए।

वैशेषिक सूत्र के रचयिता कश्यप कणाद के अभ्युदय और नि:श्रेयस को संसिद्ध करने वाले साधन का नाम ''धर्म'' है। उनके अनुसार द्रव्यादि छ: पदार्थों, अर्थात् प्रमिति विषयों के तत्वज्ञान से नि:श्रेयस् की समुपलब्धि होती है। इन छ: पदार्थों में स्वरूप तत्व, अभिधान, प्रतिपादन, योग्यता और ज्ञेयता समान रूप से है। वैशेषिक दर्शन में ''अभाव'' नामक सातवाँ पदार्थ भी माना गया है। ''पदार्थ'' शब्द की रचना और प्रयोग समग्र संसार के दर्शन के इतिहास में एक अपूर्व आविष्कार है। दर्शन के जितने आलोच्य विषय हैं, सभी को एक ही शब्द के द्वारा व्यक्त करने का श्रेय महर्षि कणाद को है। दो हजार वर्षों से पहले कणाद ने जिस शब्द का प्रयोग किया उससे व्यापकतर शब्द का अभी तक किसी ने प्रयोग नहीं किया। जिसके अन्दर भावात्मक और अभावात्मक समस्त विषयों का समावेश हो। यह बहुत ही स्वाभाविक है कि ''पदार्थ'' शब्द को प्राय: सभी भारतीय दार्शनिक ने अपना लिया है। वैशेषिक पदार्थ भी सूक्ष्मयुक्ति का एक आश्चर्य निदर्शन है। यह भारतीय-दर्शन के क्षेत्र में एक अनुपम देन है।

वैशेषिक की व्याख्या अनेक प्रकार से की गई है। व्युत्पत्ति के आधार पर वैशेषिक शब्द विशेष शब्द से तद्धति में ''ठक''[8] प्रत्यय तथा का इक् [9] आदेश हो इस प्रकार वैशेषिक शब्द-विशेष शब्द से निकला निष्पन्न होता है। श्रीमाधवाचार्य के अनुसार ''विशेषण'' के प्रणीत को ही वैशेषिक कहते हैं।[10] वैशेषिक शब्द विशेष से निकला है।''

इस दर्शन में विशेष नामक पदार्थ परमाणु हैं, क्योंकि वे अन्तिम अविभाज्य पदार्थ हैं। इसी विशेष मूलक भिन्नता को मानने के कारण कणाद प्रणीत दर्शन ''वैशेषिक'' कहलाता है। द्रष्टव्य सर्वदर्शन संग्रह में -

द्विन्वे च पाकजोत्पत्ति विभाग च विभागजे।
यस्य न स्खलिगे बुद्धिस्तं वै वैशेषिको विदु:।।[12]

वैशेषिक दर्शन जगत् की सत् वस्तुओं अर्थात् ऐसी वस्तुओं के लिए जिनकी सत्ता ''पदार्थ'' शब्द का व्यवहार करते है। पदार्थ शब्द का व्युत्पत्ति लक्ष्य अर्थ है पदस्थ अर्थ या पद का अर्थ। पद की परिभाषा है - ''सुप्तिङन्तं पदम्''[3] अर्थ उसे कहते हैं 'जिसे इन्द्रियाँ ग्रहण करे अर्थात् अर्थ से तात्पर्य उस वस्तु से जो इन्द्रिगोचर हो - ''ऋच्छन्ति इन्द्रियाणि यं सोऽर्थ:''[14] इस प्रकार पदार्थ शब्द का अर्थ है, अभिधेय या ज्ञेय वस्तु किसी नाम को धारण करने वाली वस्तु। कोई भी वस्तु जिसकी मसितष्क अथवा दृश्य जगत् में सत्ता हो, जिसकी और शब्द संकेत करते हो या जो शब्दों द्वारा संकेतित की जा सके वह पदार्थ है।

तर्कदीपिका में ''*अभिधेयत्वं पदार्थ सामान्यलक्षणम्*''[15] कहकर अभिधेयत्व अर्थात् नाम की योग्यता रखने को पदार्थ कहते हैं।

सप्तपदार्थों में ''प्रमिति विषया: पदार्थों''[16] कहकर पदार्थ का लक्षण बतलाया है। प्रमिति अर्थात् ज्ञान का विषय कहलाता है। इसके अनुसार ज्ञेयत्व अर्थात् ज्ञान के विषय होने की योग्यता रखना पदार्थ का लक्षण है।

इस प्रकार पदार्थ के अन्तर्गत प्रत्येक सत् या सत्तायुक्त वस्तु आ जाती है, चाहे वह बाह्य विषय के रूप में हो या आन्तरिक विषय के रूप में। वैशेषिक दर्शन पदार्थ शास्त्र का लक्षण सप्तपदार्थी में प्रमिति विषयत्व और तर्कदीपिका में अभिधेयत्व दिया जाता है।

कणादमुनि ने पदार्थों की संख्या छ: मानी है- द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष और समय। महर्षि कणाद तथा प्रशस्पाद ने स्पष्टत: अभाव का उल्लेख नहीं किया है, परन्तु उनके अनुयायी लोग ''अभाव'' को वैशेषिक का सॉतवां पदार्थ अङ्गीकृत किये। यथा -

द्रव्यंगुण तथा कर्म, सामान्यं सविशेषकम्।
समवाय: तथाऽभाव:, पदार्था: सप्तकीर्तिता:।।[17]

इन सातों पदार्थों को भाव और अभाव दो रूपों में विभाजित कर देते हैं -

द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय ये छ: पदार्थ भाव पदार्थ है और सातवाँ पदार्थ अभाव पदार्थ कहलाता है।

अथ च वैशेषिक दर्शन के परमाणु शब्द पर विचार कर लेना चाहिए। तत्वों का विवेचन वैशेषिक का मुख्य प्रतिपाद्य है। अणुवाद के प्रतिपादन में वैशेषिक का योगदान अविस्मरणीय है। यद्यपि अणु की रचना न्यायसूत्र में भी है।[18] तथापि वैशेषिक ने अणुवाद का विस्तृत विवेचनकर भारतीय पदार्थ शास्त्र की भित्ति प्रशस्त की। ''परमाणु'' शब्द का वाच्यार्थ है सबसे छोटा अणु अर्थात् जिससे छोटा कोई अन्य पदार्थ नहीं हो, वही न्यूनतम पदार्थ परमाणु है। यह सूक्ष्मातिसूक्ष्म है, न्यूनतम है, निशवयव है। इसलिए अविनाशी है, क्योंकि विनाश तो सावयव पदार्थों का ही सम्भव है जो निरावयव है, वह नित्य है और अविभाषी होगा। ये परमाणु ही जगत् की सृष्टि तथा संहार के कारण हैं। परमाणुओं का विस्तार ही जगत् है, संयुक्त परमाणुओं से ही जगत् की रचना होती है। परमाणु जब विभ्रम हो जाते हैं तो जगत् का प्रलयारम्भ हो जाता है। बौद्धमत पुद्गल को परमाणु माना है तो जैन पुद्गल द्रव्यस्वरूप को परमाणु माना है। समस्त

पदार्थ पुद्गल द्रव्यस्वरूप परमाणुओं के परिणाम हैं।[19] लेकिन बौद्ध क्षणभंगी के समर्थक होने के कारण पुद्गल परमाणु भी क्षणिक हैं। परमाणु विषयक वैशेषिक के मत में विशिष्टता है। पाकज प्रक्रिया का निरूपण एवं निर्वचन अन्य कहीं नहीं पाया जाता है। यह एक मात्र वैशेषिक दर्शन में ही उपलब्ध है। रूप, रस, गन्ध और स्पर्श इन चारों की पाकजता पृथ्वी में ही अंगीकार किया है। पाकज प्रक्रिया की प्रतीति अन्यत्र किसी भी दर्शन में देखने को नहीं मिलती है।

पाश्चात्य यूनानी ल्यूसिपिअस तथा डिमोक्रिड्स भी परमाणु को मानते हैं।[20] यूनानी दर्शन में परमाणुओं का संयोग यन्त्रवत् होता है, परन्तु वैशेषिक में परमाणु समयायि कारण परमाणु द्वय संयोग असमवायि कारण तथा अदृष्ट ईश्वर की इच्छा सृष्टि का निमित्त कारण है। यूनानी मत में ईश्वर को निमित्त कारण नहीं माना गया है।

वैशेषिक दर्शन के अनुसार परमाणुओं में गुणत्मक तथा परिणामात्मक दो भेद हैं, जबकि यूनानी विचार सिर्फ परिणामात्मक भेद को ही स्वीकार करते हैं। इस प्रकार वैशेषिक का परमाणुवाद भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों से अधिक व्यापक है।

न्यायदर्शन की तरह वैशेषिक भी वस्तुवादी है।

यह ईश्वर के साथ-साथ अनेक जीवात्माओं तथा परमाणुओं का अस्तित्व भी स्वीकार करता है। इस तरह या ईश्वरवादी होते हुए भी अनेकवादी है। यहाँ ईश्वर को सृष्टिकर्ता मानते हुए जीवात्माओं की स्वतंत्र सत्ता को भी स्वीकार किया गया है। प्रमाण मीमांसा का अनुशीलन करने वाले नैयायिकों ने तथा तत्व पदार्थों की मीमांसा करने वाले वैशेषिक विचारकों के मुक्ति के निमित्त तत्वों और पदार्थों के ज्ञान की पूर्ण महत्ता व्यक्त कर अज्ञान से बन्धनकारी घोषित किया।

अतएव वर्तमान संदर्भ में वैशेषिक दर्शन के पदार्थ शास्त्र का अध्ययन प्रासंगिक है। इस प्रकार दर्शन के विकास में महर्षि कणाद का अमूल्य योगदान रहा है। इसका अध्ययन मनन एवं चिन्तन आधुनिक वैज्ञानिक युग में परम अपेक्षित है। इति शिवम्।। इत्युक्ति: सफला जायते।

संदर्भ सूची

1. मुण्डकोपनिषद्-(सर्वदर्शनटीका)।
2. ''दृशि ''प्रेक्षणे'' तिङन्त भ्यादिप्रकर-वै.सि.कौ.चौ. वि.वा.-2011।
3. पाणिनिसूत्र- ''करणाधिकरणयोश्च'' से ल्युट् तथा युवोरनाकौ 7-1- से त्युट् के अन आदेश इस प्रकार दर्शन शब्द निष्पन्न हुआ।
4. त्रिकण्डकोष (अमरकोष-तृतीयकाण्ड-विशेष्यनिध्नवर्ग-61-पद्य) व्याख्या हिन्दी- व्याख्या - पृ 237, प्रकाशक- चौ. वि. भ. वा.-2015।
5. उदयनाचार्यकृत ''किरणावली- में।
6. श्रीहर्षकृत नैषधीयचरितमहाकाव्ये - 22-36 में।
7. वायुपराण में-
8. पाणिनि सूत्र- विनयादिभ्यष्ठक् 5-4-34 से विशेष शब्द से ठक् प्रत्यय।
9. ठस्येक-7-3-50 सूत्र से ठक् के इक आदेश एवं तद्धितेचामादे-7-2-11-7 सूत्र से विशेष में आदि अच् का वृद्धि = वैशेषिक।
10. श्रीमाद्यवाचार्य के सर्वदर्शन संग्रह-
11. Encyclope·ia of Religion an· Ethics जिला- 12 पृ. - 570।
12. सर्वदर्शन संग्रह -
13. ''पाणिनि सूत्र ''सुप्तिङन्तं पद्म - 1-4-14।
14. वैशेषिक दर्शन में-
15. तर्कदीपिका
16. सप्तदार्थी -
17. द्रष्टव्य - भारतीय दर्शन- श्री ममता मिश्रा (प्रकाश-कला-प्रकाशन-वा0पृ.132)।
18. गौतम न्याय सूत्र-4-2-16-17 ''न प्रलयोऽणु सद्भावात् परं वा त्रुटे:।
19. तत्वार्थ सूत्र- 5-22- ''स्पर्श रस गन्ध वर्णवन्त: पुद्गला:''।
20. फ्रेंकथिली, हिस्ट्री ऑफ फिलोसॉफी, पृ. 48।

ISSN 2278 - 0327

प्रेमचंद द्वारा रचित उपन्यास निर्मला की प्रासंगिकता

रितु रानी
(UGC-NET)
पीएच.डी.शोधार्थी, हिंदी विभाग,
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

शोध सार:-

उपन्यास हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है और साथ ही साथ आधुनिक भी। इसका उद्भव पहले यूरोप में हुआ, उसके उपरांत बांग्ला साहित्य के माध्यम से उपन्यास विद्या हिंदी साहित्य में आयी। उपन्यास दो शब्दों के योग ''उप'' और ''न्यास'' से मिलकर बना है उप का अर्थ गौण, और न्यास का अर्थ है -स्थापना करना, उपन्यास साहित्य में यथार्थ और आदर्श से परिपूर्ण उपन्यासों का श्रीगणेश मुंशी प्रेमचंद ने किया। इक्कीस वर्ष की आयु में उन्होंने लिखना आरंभ किया और लेखन की शुरूआत उन्होंने उर्दू में नवाब राय के नाम से की। प्रेमचंद ने अपने साहित्य में जन समाज की समस्याओं का जीता जागता वर्णन किया हैं उनके साहित्य को पढ़ते दृश्य भी साथ-साथ आँखों के सामने आते जाते हैं।

उनकी पहली कृति सोजेवतन को ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर लिया था, इसके उपरांत उन्होंने हिंदी भाषा को अपने लेखन का माध्यम बनाया और प्रेमचंद के नाम से लिखना शुरु किया। प्रेमचंद जी ने सरस्वती प्रेस की स्थापना की और 1930 में हंस पत्रिका का संपादन किया। इन्होंने उपन्यास विद्या में अनेक उपन्यासों की रचना की।

'सेवा सदन' उनके द्वारा रचित पहला उपन्यास है उनके अन्य प्रमुख उपन्यासों में प्रतिज्ञा, गबन, वरदान, निर्मला, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्मभूमि, कायाकल्प और गोदान है गोदान इनका अंतिम उपन्यास है। उनका साहित्य जीवंत प्रतीत होता है। उन्होंने जिस तरीके से सामान्य वर्ग की समस्याओं का वर्णन अपने साहित्य के माध्यम से किया है उसकी तुलना अन्य के साथ करना व्यर्थ है। उन्होंने किसानों की समस्या, शोषण वर्ग, नारी की समाज में दशा का यथार्थ चित्रण अपने साहित्य में किया है। प्रस्तुत शोध पत्र में ''प्रेमचंद द्वारा रचित उपन्यास: निर्मला की प्रांसगिकता'' की विवेचना की जा रही है।

मूल-शब्द:-प्रांसगिकता, गौण, जीवंत चित्रण।

प्रस्तावना:-

प्रेमचंद जी का मूल नाम धनपतराय श्रीवास्तव था उर्दू साहित्य में वे नवाबराय के नाम से लिखा करते थे उनको प्रसिद्धि प्रेमचंद के नाम से प्राप्त हुई। हिंदी साहित्य जगत में प्रेमचंद के उपन्यास सम्राट व कलम का सिपाही नाम से जाना जाता है क्योंकि जैसा साहित्यिक वर्णन इनके द्वारा किया गया वैसा अन्य किसी के द्वारा नहीं किया गया। प्रेमचंद यथार्थवादी उपन्यासकार व साहित्यकार थे निर्मला उपन्यास मुंशी प्रेमचंद द्वारा रचित ऐसा हिंदी प्रसिद्ध यथार्थवादी हिंदी उपन्यास हैं। प्रेमचंद ने मध्यम वर्ग की समस्याओं का वर्णन अपनी साहित्यिक विधाओं में किया हैं।

इन्होंने निर्मला उपन्यास में अनमेल विवाह व दहेज की समस्या का चित्रण करके जनसमाज की मानसिक स्थिति के ऊपर करारा व्यंग्य किया है। इस उपन्यास का मुख्य पात्र निर्मला है। क्योंकि उसी के इर्द-गिर्द उपन्यास की पूरी कहानी घूमती है।

उपन्यास की शुरुआत उदय भानुलाल के परिचय से होती है जो कि पेशे से वकील है और उदार हृदय व्यक्तित्व रखता है उनकी पत्नी कल्याणी और चार बच्चे हैं जिनमें दो बेटियां निर्मला व कृष्णा और दो बेटे सूर्यभान व चंद्रभान है उदयभानु लाल अपनी बड़ी बेटी निर्मला का विवाह मालचन्द्र सिन्हा के बेटे भुवनमोहन सिन्हा के साथ तय कर देते हैं। लेकिन उदयभानु लाल की आकस्मिक मृत्यु होने के पश्चात् भालचंद्र गरीबी का आलम देखकर तथा अपशकुन बताकर अपने पुत्र का विवाह निर्मला के साथ करने से इंकार कर देता है क्योंकि वह सोचता है कि पिता के अभाव में दहेज कौन देगा? यह कितनी विडंबना है। पैसे के अभाव में निर्मला का विवाह एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति के साथ कर दिया जाता है जिसकी आयु उससे कई गुना अधिक है। अपनी पूर्व पत्नी के तीन बेटे हैं लेकिन निर्मला के परिवार के पास इतना पर्याप्त धन नहीं है कि वे उसका विवाह किसी अच्छे कुल में कर सके। इसलिए उसकी शादी एक ऐसे व्यक्ति के साथ कर दी जाती है जो कि उसके पिता की आयु का है सोचने की बात है कि इस समय उसकी दशा क्या रही होगी। क्या विवाह इतना आवश्यक है? निर्मला एक सुंदर सुशील और चरित्रवान लड़की है परंतु फिर भी उसे अनादर भाव से देखा जाता है वह कहती है कि-

''निर्मला ने कातर नेत्रों से देखते हुए कहा-दीदी जी कहने की बात पर बिना कहे रहा नहीं जाता। स्वामी जी ने हमेशा मुझे अविश्वास की दृष्टि से देखा लेकिन मैंने कभी मन में भी उनकी उपेक्षा नहीं की।''

वह अपने पति के प्रति अपना पूर्ण जीवन न्योछावर कर देती है

वह इसे ईश्वर की इच्छा समझकर सब सहन करती है फिर भी उस पर विश्वास नहीं किया जाता सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है वह अपनी सारी इच्छाएं व खुशियों का त्याग करके भी दोषी बना दी जाती है। इन परिस्थितियों से लड़ते हुए वह थक गई है वह कहती है-

''निर्मला ने विरक्त भाव से कहा- जिसे रोने के लिए जीना हो उसका मर जाना ही अच्छा।''

''अगर संसार का यही सुख है,
जो इतने दिनों से देख रही हूं,
तो उससे जी भर गया।''

इन सब बातों को सोचते हुए एवं विपरीत परिस्थितियों समाज से जूझते हुए उनका सामना करते हुए निर्मला के प्राण पखेरू उड़ जाते हैं और वह इस दु:ख भरे संसार को छोड़कर मृत्यु को प्राप्त करती है। उपन्यास में लेखक ने निर्मला की निर्मम दशा के माध्यम से समाज पर करारा व्यंग्य किया है क्योंकि यह प्रथा दहेज की समाज में आज भी कई हिस्सों में व्याप्त है निर्मला में बेमेल विवाह और दहेज प्रथा की दुखान्त एवं बहुत ही मार्मिक कथा है। प्रेमचंद ने निर्मला पात्र को आधार बनाकर महिलाओं की दयनीय दशा को चित्रित करने का प्रयास किया है जिसे वह सफल भी हुए हैं इस उपन्यास को प्रेमचंद का प्रथम मनोवैज्ञानिक उपन्यास भी कहा जा सकता है।

निष्कर्ष

मुंशी प्रेमचंद जी का साहित्य उनके कई वर्षों का सामाजिक व सांस्कृतिक दस्तावेज है जिसमें उन्होंने उस दौर के लोगों की समस्या उनका विचार-मनन करने का तरीका, महिलाओं के प्रति उनका नजरिया का यथार्थ वर्णन किया है और यह समाज में आज भी व्याप्त है स्त्री-पुरुष की समानता का प्रश्न आधुनिक युग में भी प्रासंगिक बना हुआ है, वैसे तो हमारे समाज व देश ने बहुत तरक्की कर ली है पर कई जगह पर औरतों की दशा अब भी दयनीय बनी हुई है। मुंशी प्रेमचंद जी निर्मला के माध्यम से बाल विवाह व इसके दुष्परिणामों पर प्रकाश डाला है। बाल विवाह के कारण लड़कियों को कठिन परेशानियाँ से होकर गुजरना पड़ता है खेलने की उम्र में उनका विवाह कर दिया जाता है। निर्मला के द्वारा भारतीय महिलाओं की सामाजिक भारत की मध्यवर्गीय महिलाओं की दयनीय हालत का चित्रण प्रेमचंद ने बहुत ही सफल ढंग से किया है। यह सामाजिक बंधुओं को मिटा डालने के लिए एक बड़ी चुनौती है अब यदि कोई लड़की विवाह न करना चाहे, अकेला रहना चाहे, तो लोग यह स्वीकार नहीं करते। माता-पिता भी नहीं समझ पाते। निर्मला में देश की समस्या अपने यथार्थ रूप में सामने आई है धन अभाव में माता-पिता अपने कन्या विवाह के लिए योग्य वर खोज नहीं सकता है उनके लिए यह कठिन समस्या बन जाता है तो यह समस्या आधुनिक युग में भी प्रासंगिक जान पड़ती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्रेमचंद, उपन्यास निर्मला, प्रकाशक संस्थान, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद नई दिल्ली पटना पृष्ठ संख्या 139
2. प्रेमचंद, उपन्यास निर्मला, प्रकाशक संस्थान, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नई दिल्ली पटना पृष्ठ संख्या 140
3. डॉ. रामचंद्र तिवारी, हिंदी गद्य का साहित्य
4. hi.m.wikipedia.org/

ISSN 2278 - 0327

महर्षि कपिल एवं उनका सांख्यदर्शन

संगम जी झा
संस्कृत-स्नातकोत्तर-विभाग
ला.ना.मि.वि. दरभंगा बिहार

भारतीय संस्कृत-साहित्य में दर्शनशास्त्र का एक पृथक् स्थान रहा है। सृष्ट्यारम्भकाल से ही महर्षियों द्वारा दर्शनशास्त्र की रचना होती चली आ रही है, जिसमें दर्शनशास्त्र का उत्स महर्षि भगवान् कपिल से सांख्यदर्शन के रूप में प्रारंभ हुआ, प्रकृत आलेख महर्षि कपिल एवं उनके सांख्यदर्शन को दर्शाना है।

दर्शन के विकास में महर्षि कपिल का प्रमुख योगदान रहा है। भारतीय परम्परा में दर्शन शब्द की विवेचना करते हुए कहा गया है कि ''दृश्य''[1] धातु से करण अर्थ मे ''ल्युट्''[2] प्रत्यय करके होती है। जिसकी व्युत्पत्ति- *दृश्यते अनेन इति दर्शनम्* किसी भी प्रकार की विचिकित्सा उपस्थित होने पर तथ्य-ज्ञान हेतु दिव्य-दृष्टि की अवाप्ति हो, उसी की आख्या ''दर्शनशास्त्र'' है। इस आलौकिक भारतीय दर्शन को सामान्यत: दो भागों में विभक्त किया गया है। आस्तिकदर्शन और नास्तिकदर्शन। पुन: ये दोनों भी छ:-छ: भागों में विभक्त किए गये हैं। सांख्यदर्शन, न्याय, वैशेषिक, वेदान्त, मीमांसा तथा योगदर्शन ये छ: आस्तिक दर्शन के रूप में स्वीकृत किया गया है एवं चार्वाक, जैन, बौद्ध (माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक दर्शन ये छ: नास्तिक दर्शन के कोटि में परिगणित किये गये हैं। फलत: दोनों ही दृष्टियों से भारतीय दर्शन ''षड्समुच्चय'' की संज्ञा अवाप्त करता है। सांख्य एवं योग इन दोनों भी ईश्वर के अतिरिक्त सभी तत्व समान हैं। सांख्य यदि ज्ञानमार्ग है तो योग अनुशासन का मार्ग। परिणामस्वरूप इन दोनों को एक ही श्रेणी में प्रतिष्ठापित किया जाता है।

दर्शन के विकास में शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर महर्षि कपिल प्रथम दार्शनिक माने गये हैं। सांख्यदर्शन के प्रथम उपदेष्टा कपिल मुनि माने जाते हैं। इनके द्वारा लिखे गये दर्शनशास्त्र का प्रथम ग्रन्थ ''सांख्यदर्शन'' है एवं द्वितीय ग्रन्थ ''तत्वसमास'' है।

सांख्यदर्शन प्राचीनतम सम्प्रदायों में परिगणित है। महर्षि कपिल सांख्यदर्शन के प्रथम प्रस्तोता के रूप में उपनिषद महाभारत, रामायण एवं पुराणों भी प्रमाणिकता के साथ प्रख्यापित है।

उपनिषेदों में संकेतित सिद्धान्तों के दार्शनिक विवेचन का श्रेय इन्हें ही है। सम्भवत: प्रारंभ में औपनिषदिक सांख्य वेदान्त के साथ सम्मिश्रित था। उन्हें सांख्ययोगदर्शन के रूप में प्रामाणिक ढंग से सर्वप्रथम कपित मुनि ने ही प्रस्तुत किया है। श्वेताश्वतरोपनिषद् का यह वचन इस संदर्भ में दर्शनीय है -

'' ऋषि प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैबिभर्त्ति जायमानं च पश्येत्''[3]

इसके अतिरिक्त श्रीमद्भागवत में सांख्य शास्त्र के प्रवक्ता कपिल तथा योगदर्शन के प्रवक्ता हिरण्यगर्भ बतलाते गये हैं। यथा -

सांख्यस्य वक्ता कपिल: परमर्षि: स उच्यते।
हिरण्यगर्भो योगस्य वेत्ता नान्य पुरातन:।।[4]

अवतारी पुरुषों के अवतरण क्रम में कपिल मुनि का सांख्य प्रवर्तक के रूप में उल्लेख किया गया है -

कपिलस्तत्वसंख्याता भगवानात्ममायया।
जात: स्वयमज: साक्षादात्मप्रज्ञसये नृणाम्।।[5]
पञ्चम: कपिलो नाम सिद्धेश: कालविप्लुतम्।
प्रोवाचाऽसुरये सांख्यं तत्वग्रामविनिर्णयम्।।[6]

वाल्मीकि रामायण और महाभारत में कपिल मुनि को सांख्यशास्त्र के प्रथम प्रवक्ता और विष्णु के अवतार के रूप में स्मरण किया गया है। इस अवतार का उद्देश्य आततायी सगरपुत्रों का भस्मीकरण था। मनुपुत्री देवहूति के पुत्र थे। इसी क्रम में मिथिलांचल का एक लोकोक्तियाँ हैं -

मनुपुत्र्या देवहूव्या गर्भज: कपिलो मुनि:।
मिथिलायां कर्दभर्षे: पुत्ररत्न: समागत:।।[7]

विष्णु के अवतार कपिल मुनि को सांख्यशास्त्र के प्रथम प्रवक्ता के रूप में माना गया है। इन प्रमाणों और साक्ष्यों के आधार पर यह मानना युक्तिसंगत होगा कि महर्षि कपिल मिथिला के थे और सांख्यशास्त्र के प्रथम उपदेष्टा हुये। सांख्य की व्याख्या अनेक प्रकार से की गई है। व्युत्पत्ति के आधार पर सांख्य शब्द ''सम्'' उपसर्ग पूर्वक ''चक्षिङ्''[8] ''आङ्''[9] प्रत्यय लगकर निष्पन्न होता है। सम्यक् ख्याति अर्थात्- सम्यक दर्शन या सम्यक् ज्ञान सांख्य शब्द का व्युत्पत्यर्थ होता है। कुछ दार्शनिकों ने सांख्य शब्द के दो अर्थ किये हैं - सांख्य तथा ज्ञान। यथा-

सङ्ख्यायन्ते गणयन्ते येन तत् साङ्ख्यै: संख्यायते।
प्रकृति पुरुषा न्यताख्याति रूपोऽवबोधे सम्यक् ज्ञायते येन तत्साङ्ख्यम्।

इतना ही नहीं इसकी प्राचीनता इस बात से और भी अधिक

स्पष्ट होती है कि साङ्ख्य योग के सिद्धान्तों के संकेत छान्दग्योपनिषद में[10] प्रश्नोपनिषद् में[11] कठोपनिषद् में[12] श्वेताश्वेतरोपनिषद् में[13] प्राप्त होते हैं। भगवत् पतंजलि के महाभाष्य में[14] और श्रीमद्भगवद्गीता में[15] इनका उल्लेख प्राप्त होता है। भगवान् श्रीकृष्ण का यह वचन परमदर्शनीय है –

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीनां च नारदः।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः।। [16]

अर्थात् सिद्धों में कपिल मुनि हूँ। भारत के भूतपर्व राष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्[17] महर्षि कपिल का समय बुद्ध से एक शताब्दी पूर्व निर्धारित किये हैं।

अमरकोष में सांख्यशब्द का अर्थ चर्चा या विचारणा किया गया है– ''चिन्ताभोगो मनस्कारः चर्चा संख्या विचारणा''[18]। इस प्रकार ज्ञानार्थक और माननार्थक संख्या शब्द से सांख्य शब्द का निर्माण होता है। गणवाचक संख्याशब्द से भी ''सांख्य'' शब्द बनता है– संख्याते गणितम्[19], युद्धवाचक संख्यशब्द से भी सांख्यशब्द होता है – ''मृद्यमास्कन्दनं सख्यं समीकं सांपरायिकम्''[20]। मत्स्यपुराण में [21] कपिल के संख्य का नाम गणना के आधार पर किया गया है। ब्रह्मपुराण में[22] सांख्यदर्शन को परिसंख्यान नाम से अभिहित किया गया है। इस प्रकार संख्यावाचक तत्वों का विवेचन करने के कारण गणनावाचक संख्याशब्द से सांख्यशब्द की निष्पत्ति मानी जाती है। कुछ अन्य दार्शनिकों की दृष्टि से सांख्य का संबंध तत्वों की संख्या से है, क्योंकि सांख्यदर्शन में महदादि पच्चीस तत्वों की गणना की गई है। इसलिए भागवत में भी इसे तत्वसंख्यान एवं तत्वगणना कहा गया है। कुछ दर्शनिकों की दृष्टि में यह तत्वज्ञान प्रकृति और पुरुष शरीर और आत्मा जड़ और चेतन के पार्थक्य का ज्ञान है। इसी सांख्य या विवेकज्ञान के कारण इस दर्शन का नाम ''सांख्य'' पड़ा है। सांख्ययोग सिद्धान्तों के संकेत वेद, उपनिषद, स्मृति, रामायण, महाभारत आदि पुरातन कृतियों में अनेक उदाहरणों द्वारा उपलब्ध होते हैं।

वेद–वेदान्त, उपनिषदों और पुराणों में इनकी चर्चा, विशिष्टता, गम्भीरता और प्राचीनता का प्रख्यापक है। सांख्य विभिन्न आधिकारिक विद्वानों के लिए सदा सर्वदा से विवेच्य विषय बना रहा है। सांख्य सिद्धान्त सूक्ष्म परिशीलन से हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि सांख्य त्रिस्तरीय है– प्रारंभिक युगीन सांख्य, मध्ययुगीन सांख्य और उत्तरयुगीन सांख्य। श्रुति एवं स्मृति में सांख्य एवं योग क्रमशः ज्ञान के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।।[23]

अर्थात्– इसमें सांख्ययोगियों की निष्ठा तो ज्ञान योग से की गयी है। आदि शङ्कराचार्य ने सांख्यदर्शन को वेदान्त दर्शन का प्रधान प्रतिपक्षी बलताया है। इस पर कुछ मनीषियों का कहना है कि सांख्य अपने प्रारंभिक रूप में श्रुतिमूलक एवं ईश्वरवादी था। कालान्तर में जैन तथा बौद्धों के अत्यधिक प्रभाव के कारण सम्भव है कि अनीश्वरवादी तथा वस्तुवादी बन गया होगा। सभवतः वादरायण और शंकराचार्य ने इसी मध्ययुगीन द्वितीय स्तर के सांख्य का खण्डन किया होगा। आगे चलकर उत्तरयुगीन सांख्यों ने जिनमें सोलहवीं शताब्दी के विज्ञानभिक्षु प्रभृति प्रमुख है सांख्य ने ईश्वरवाद को पुनरूज्जीवित किया। वादरायण एवं शंकराचार्य सांख्यदर्शन को द्वैतवादी होने के कारण श्रुतिमूलक या उपनिषत्सम्मत नहीं मानते। इन दोनों के द्वारा सांख्यदर्शन की श्रुतिमूलकता का खण्डन इस बात का प्रमाण है कि सांख्य के प्रारंभिक आचार्य निश्चय ही इसे श्रुतिमूलक मानते रहे होंगे। ब्रह्मसूत्र या वेदान्त सूत्र के रचयिता महर्षि वादरायण एवं उनके भाष्यकार शंकराचार्य ने तर्कपाद में सांख्य का सयुक्ति खण्डन करने के अतिरिक्त कई स्थानों पर सांख्य के श्रुतिमूलक होने का भी खण्डन किया गया है। सांख्यशास्त्र का प्रतिष्ठापक कपिल मुनि की इस विषय से सम्बद्ध परम्परानुसार प्रसिद्ध रचना सांख्य प्रवचन सूत्र मानी जाती है।

सांख्यदर्शन का आज उपलब्ध सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ श्रीमद् ईश्वरकृष्ण की ''सांख्यकारिका' है। इसमें सांख्यदर्शन की व्यवस्थित व्याख्या प्रस्तुत की गई है। सांख्यकारिका पर मैथिल मनीषी वाचस्पति मिश्र ने ''तत्वकौमुदी'' नामक महत्वपूर्ण टीका लिखी है। तत्वकौमुदी के मङ्गलाचरण में वाचस्पति मिश्र ने महामुनि कपिल और उनके शिष्य आसुरि और पंचशिख नाम के आचार्य की वन्दना किया है, किन्तु यह ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। ''युक्तिदीपिका'' गौडपाद का भाष्य, माठरवृत्ति, जयमंगला टीका और नारायण स्वामीकृत सांख्यचन्द्रिका उपलब्ध है। सांख्यसूत्र पर अनिरूद्धकृत ''वृत्ति'' महादेव वेदान्तीकृत ''सांख्यवृत्तिसार'', विज्ञानभिक्षुकृत ''सांख्यप्रवचनभाष्य'' और नागेशभट्ट रचित–लघुसांख्यसार वृत्ति'' ये चार व्याख्याग्रन्थ उपलब्ध हैं। इनमें सबसे प्राचीनवृत्ति अनिरूद्ध की है। इनके अतिरिक्त सांख्यतत्व विवेचन सांख्यतत्वयथार्थ्यदीपन, सांख्यतत्वप्रदीप, सांख्यपरिभाषा आदि सांख्यदर्शन के महत्वपूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध हैं। सांख्यदर्शन महामुनि कपिल के बाद प्रमुख आचार्यों में ईश्वरकृष्ण विन्ध्यवासी, माठर, गौडपाद, वाचस्पति मिश्र, अनिरूद्ध महादेव वेदान्ती, विज्ञानभिक्षु, भावगणेश आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

सांख्यदर्शन पूर्णतः कार्य कारण सिद्धान्त पर अवलम्बित है। अतः सांख्यदर्शन की व्याख्या कार्य–कारण सिद्धान्त से ही प्रारंभ की जाती है।

इस प्रकार यह सुनिश्चित होता है कि महर्षि कपिल एक ऐतिहासिक महापुरुष थे। इस देश में इन पर पर्याप्त चिन्तन–मनन किया गया है, ऐतिहासिक परम्परा में कई कपिल की कल्पना की गई है। सांख्यदर्शन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन हैं। इनके प्रवर्तक कपिलमुनि उस युग के महापुरुष हैं, जिनकी दर्शनिकता मानव जीवन के मार्गदर्शन

में परम साधन हैं।

।। इत्युक्तिः सफला जायेत।।

संदर्भ सूची

1. दृशिर्-प्रेक्षणे -वै.सि.कौ.-तिङ्क्तभ्वादिप्रकरण-प्रकाशक-चौ.वि.वा. 2011।
2. पाणिनि सूत्र- करणाधिकरणयोश्च - 3-3-117 इति ल्युट् प्रत्यय तथा युवोरनाकौ- 7-1-1 सूत्र से ल्युट् में यु के अन आदेश इस प्रकार दर्शन शब्द बना।
3. श्वेताश्वरोपनिषद् में वर्णित प्रसङ्ग है।
4. श्रीमद्भागवत।
5. श्रीमद्भागवत - (3-25-1)।
6. श्रीमद्भागवत - (1-1-18)।
7. मिथिल का प्रसिद्ध लोक वचन।
8. ''चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि- अयं दर्शनेऽपि-वै.सि.कौ. तिङन्त प्रकरण।
9. पाणिनि सूत्र
10. छान्दोग्योपनिषद्-(6-4-1)।
11. प्रश्नोपनिषद् - (6-12)।
12. कठोपनिषद् - (1-3-10-13)।
13. श्वेताश्वतरोपनिषद् - (5-2)।
14. महाभारत - (12-349)।
15. श्रीमद्भागवत - (2-39, 3-42, 5-4-5)।
16. श्रीमद्भागवत - (16-26)।
17. Indian Philosophy Vol-II, P 234
18. अमरकोष- धराख्या हिन्दी टीका-श्री मन्नालाल-अभिमन्यु-चौ.वि.वा.-2015 प्रथमकाण्ड-धीवर्ग-2 श्लोक- पृ-24- में।
19. अमरकोष-तृतीयकाण्ड-विशेष्यनिध्नवर्ग-64-पद्य, पृ. 237।
20. अमरकोष-द्वितीयकाण्ड-क्षत्रियवर्गः 104-पद्य, पृ. 193।
21. मत्स्यपुराणे
22. ब्रह्मपुराणे
23. श्रीमद्भागवद्गीता-3-3, श्री पञ्चरत्नगीता -गीता प्रेस-गोरखपुर, सं. संवत्-2073।

ISSN 2278 - 0327

संस्कृत साहित्य में सृष्टिक्रम

डॉ. सौरभ जी
सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. प्रवीण बाला
सहायक प्रवक्ता
भारती महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्याय

सृष्टि के आदिकाल से ही मनुष्य के मन में एक विचार सदैव रहा है। इस दृश्यमान जगत की उत्पत्ति कहाँ से हुई है, इसका निर्माता कौन है, ब्रह्माण्ड का आदि स्रोत क्या है इत्यादि । इन प्रश्नों के उत्तर सदैव मनुष्य को मनन एवं चिन्तन की प्रक्रिया से प्राप्त हुए हैं, अत: कहा भी गया है 'मननात् मनु'। मनुष्य ने अपने मन में उठने वाले इन प्रश्नों का समाधान दो प्रक्रियाओं से प्राप्त किये हैं। एक प्रक्रिया भारतीय चिंतन की सर्वाधिक प्राचीन है जिसे हम आध्यात्मिकता के नाम से जानते हैं। इस प्रक्रिया के माध्यम से भारतीय ऋषियों ने शरीर विज्ञान को समझकर ब्रह्माण्ड के रहस्यों का अति सरलतम तरीके से उद्घाटन किया है। दूसरी प्रक्रिया जिसे हम सभी भौतिक विज्ञान के नाम से जानते हैं, जिसके अन्तर्गत पाँच ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से सृष्टि के बाह्य तत्त्वों से रहस्यों का उद्घाटन किया जाता है। इस विषय से सम्बन्धित विभिन्न स्रोत भारतीय साहित्य में मिलते हैं। जहाँ पर सृष्टि का निर्माण कैसे हुआ, द्युलोक एवं पृथिवीलोक की उत्पत्ति किस प्रकार हुई। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का अधिष्ठाता कौन है इत्यादि प्रश्नों के उत्तर मिलते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति के सन्दर्भ में ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में कुछ इस प्रकार का वर्णन मिलता है –

सृष्टि के आदि में न सत् था न असत्, न वायु थी न आकाश था, न अमरता थी न मृत्यु, न दिन था न रात उस समय केवल ब्रह्म तत्त्व ही केवल प्राणयुक्त क्रिया से शून्य और माया से सम्बन्धित एक रूप में विद्यमान था, सृष्टि के उत्पन्न होने से पूर्व जल रूप यह जगत था अर्थात् उस समय कारण एवं कार्य दोनों एक रूप होकर, यह जगत ईश्वर के संकल्प और तप की महिमा से उत्पन्न हुआ। यहाँ पर यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि ईश्वर के मन में तप रूप इच्छा से सृष्टि के निर्माण का 'बीज' कारण बना –

नासदासीन्नो सदासात्तदानीं नासीद्रजो नोव्योमापरोयत्
..... न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्रया अहन आसीत्प्रकेत:
अनीदवातं..... तम आसीत्तमसा..... कामस्दग्रे समवर्ततााधि
मनसो रेत: प्रथम यदासीत् .....तिरश्चीनो विततोरश्मिरेषामध:।

(ऋ. 10/129/1, 2, 3, 4, 5)

अत: उपरोक्त तथ्य से स्पष्ट होता है कि यह संसार विधाता की इच्छा का परिणाम है। सृष्टि के आदि में वह अकेला था, जब उसने एक से अनेक होने की इच्छा की तब उसने इस संसार का सृजन किया। ऐतरेय उपनिषद् में भी इसी प्रकार का वर्णन मिलता है कि सृष्टि के आदि में ईश्वर अकेला था। जब उसने तप एवं ध्यान किया तब उसके मन में संसार के निर्माण का ईक्षण अर्थात् विचार उत्पन्न हुआ –

स ईक्षत् लोकान्नुसृजा इति। (ऐ.उ. 1/1)

ऐतरेय उपनिषद् के अनुसार ही ऋग्वेद के हिरण्यगर्भ सूक्त में भी उल्लेख मिलता है कि ईश्वर सृष्टि के आरम्भ में अकेला था उसने तप किया तदुपरान्त उसके मन में 'काम' अर्थात् सृजन की इच्छा जाग्रत हुई–

हिरण्यगर्भ: समवर्त ताग्रे भूतस्य जात: पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विद्येम।। (ऋ. 10/121/1)

अर्थात् जगत का आदि स्रोत हिरण्यमय तेज से युक्त था, उसके मन में संसार के सृजन की इच्छा जाग्रत हुई, उसी इच्छा का प्रथम बीज वृक्ष रूप यह संसार प्रत्यक्ष दृश्यमान है। शतपथ ब्राह्मण में हिरण्य का अर्थ ज्योति बताया है। यह वह अविनाशी ज्योति है जिससे सकल ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है –

ज्योतिर्वैहिरण्यम् ज्योतिरेषोऽमृतंहिरण्यं। (शतपथब्राह्मण 6.7)

सृष्टि के प्रारम्भ में यह हिरण्यमय ज्योति जल में थी उसके द्वारा सृजन की कामना की गई, इस कामना से सृष्टि का विस्तार हुआ, तप के प्रभाव से जल से हिरण्यमय रूपी अण्ड की उत्पत्ति हुई और यह अण्ड कई वर्षों तक जल में ही रहा और यहीं से सृष्टि का विस्तार हुआ–

आपो ह वा इदमग्रे सलिलमेवास। ता अकामयन्त। कथं नु प्रजायेमहि इति। ता अश्राम्यमन। तास्तपोऽतपयन्त:। तासु तपस्तप्यमानासु हिरण्यमयाण्डं सम्बभूव। तदिदं यावत् सम्बत्सरस्य बेला यावत्। पर्यप्लवत। तत: सम्वत्सरे पुरुष: समभवत्। स: प्रजापति।।

(शतपथब्राह्मण–11.1.6.1–4)

अर्थात् जप के उपरान्त ईश्वर के मन में सृजन की इच्छा जाग्रत हुई। सृष्टि के आद में वही एक प्रजापति था। इसने अग्निमय पिण्ड की उत्पत्ति की और यही सृष्टि की उत्पत्ति का आदि स्रोत कहा गया है। श्वेताश्वतरो उपनिषद् में यह वर्णन मिलता है कि ईश्वर ने सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया था –

हिरण्यगर्भ जनयामास पूर्वम् स नो बुद्धया शुभया संयुक्तु।

(श्वेता.उ. 3/4)

ऋग्वेद में ईश्वर के तप से ज्ञान एवं प्रकृति की उत्पत्ति हुई और उसी से ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्रमा और संवत्सर की रचना का विधान बताया गया है–

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात तपसो अध्यजायत। ततो रायजायत तत: समुद्रो अर्णव:।। समुद्रादर्णवादधि सम्वतसरो अजायत। अहो रात्राणि विदधाद्विश्वरस्य भिषतोवशी।। सूर्य चन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वकल्पयत्। दिवंच पृथिवींचान्तारिक्षमथो स्व:।। (ऋ. 10/190/1-3)

अर्थात् उस ईश्वर ने तप एवं सत्य से समुद्र, दिन, रात्रि, सूर्य, चन्द्रमा, द्युलोक एवं पृथिवी तथा अंतरिक्ष का निर्माण किया। अत: तप एवं ध्यान से कल्याणकारी प्रकृति उत्पन्न होती है। यह प्रक्रिया ईश्वर के भीतर स्वाभाविक होती है -

स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च। (श्वेता.उ. 6/8)

तैत्तिरीय ब्राह्मण में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सन्दर्भ में कहा गया है कि सृष्टि के आदि में जल था, जल के बाद पृथिवी की उत्पत्ति हुई - *आपो वा इदमग्रेसलिलमासीत तेन प्रजापतिरश्राम्यत।* (तै.ब्रा. 1.1.3)

तैत्तिरीय उपनिषद् में सृष्टि का सुव्यवस्थित क्रम वर्णित किया गया है। उस परमेश्वर ने सबसे पहले प्रकृति और प्रकृति से आत्मन रूप और आत्मा के सत्व से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथिवी की उत्पत्ति की और पृथिवी से औषधियाँ और औषधियों से अन्न और अन्न से पुरुष उत्पन्न हुआ -

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाश: सम्भूत:। आकाशद्वायु:। वायोरग्नि। अग्नेराप:। अद्भय: पृथिवी। पृथिवी औषधय: ओषधीम्योऽन्नम्। अन्नात् पुरुष:।। (तै.उ. 2.1)

ऐतरेय उपनिषद् में भी सृष्टि निर्माण की प्रक्रिया के अन्तर्गत बताया गया है कि ईश्वर ने सबसे पहले लोकों की रचना की और ये लोक अम्भ, भरीचि, मर तथा आप थे। यहाँ पर अम्भ अर्थात् जल मरीचि अंतरिक्ष, मर पृथिवी तथा सबसे नीचे का लोक आप कहा गया -

अम्भो मरीचीर्मरमापोऽवोऽम्भ: परेणदिवं द्यौ: प्रतिष्ठाऽन्तरिक्षं मरीचय पृथ्वीमरोया अधस्तााआप:। (ऐ.उ. 1/2)

जब ईश्वर ने लोक की रचना की तदोपरान्त लोकपालों की अर्थात् लोक के संरक्षक देवताओं की रचना करनी चाही, तब ईश्वर ने जल में से पुरुष की आकृति का एक पिण्ड निकाला और उस पिण्ड के विभिन्न स्थानों की तत्तत् देव की रचना की -

नासिकेनिरभिद्येतां नासिकाभ्यां प्राण: प्राणाद्वायु आक्षिणी-निरभिद्येतामक्षिभ्यचक्षुश्चक्षुषादिव्या:, कर्णोनिरभिद्येतां कर्णाभ्यां श्रोत्रं श्रोत्रादिश:, त्वघनिरभिद्यत त्वचो लोमानि लोमभ्यओषधिवनस्पतयो हृदयं निरभिद्यत हृदयान्मनो मनसरचन्द्रमा नाभिनिरभिद्यतनाभ्याअपानो अपानान्मृत्यु शिश्न निरभिद्यत शिश्नाद्रेतोरेतस आप:। (ऐ.उ. 2)

अर्थात् 'पुरुषाकृति' के नासिका से दो छिद्रों का निर्माण किया और उन नासिका छिद्रों से प्राणवायु अर्थात् वायु देव का निर्माण किया, उस पुरुष आकृति की आँखों से चक्षु और चक्षु से संसार को ऊर्जावान करने वाले सूर्यदेव को उत्पन्न किया, कानों से श्रोत्र, श्रोत्र से श्रवणेन्द्रिय, श्रवणेन्द्रियों से दिशाएँ, उस पुरुष की त्वचा से लोम और लोम से वनस्पतियों को उत्पन्न किया, हृदय से मन और मन से चन्द्रमा प्रकट हुआ, नाभि से अपान और अपान से मृत्यु प्रकट हुई, जननेन्द्रियों से वीर्य और वीर्य से जल प्रकट हुआ। ऐतरेय उपनिषद् का यह वर्णन यजुर्वेद में भी मिलता है -

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षो: सूर्यो अजायत। श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत।। (यजु. 31/12/4)

अर्थात् मन से चन्द्रमा, आँखों से सूर्य, श्रोत्र से श्रवणेन्द्रियाँ और वायु से प्राण और मुख से अग्नि उत्पन्न हुई।

वराहमिहिर ने ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के सन्दर्भ में वर्णन किया है कि इस संसार में पहले अन्धकार था। वहाँ उस अन्धकार से जल और जल से तेजोमय एक सुवर्ण रूप अण्डा उत्पन्न हुआ। उस अण्ड के दो भाग हुए, एक भाग से स्वर्ग और दूसरे भाग से पृथ्वी उत्पन्न हुई। इन दो भागों से सूर्य, चन्द्र रूप दो नेत्र वाले ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए -

आसीत् तम् किलेदं तत्रापां तैजसेऽभव मे। स्वर्भूशकले ब्रह्म विश्वकृदण्डेडर्कशशि नयन:।। (बृहत्संहिता-1.6)

जबकि सूर्यसिद्धान्त में बताया है कि सूर्य ने अहंकार स्वरूप ब्रह्मा जी को संसार की सृष्टि के लिए उत्पन्न किया। तदन्तर ब्रह्मा जी के मन से चन्द्रमा तथा नेत्रों से प्रकाशात्मा सूर्य की उत्पत्ति हुई -

मनसश्चन्द्रमा जज्ञे सूर्योऽश्योस्तेजसां निधि:।। (सूर्यसिद्धान्त 12.22)

इस प्रकार समस्त विश्व की उत्पत्ति उस परमात्मा से हुई है। वही परम आत्मा समस्त विश्व का केन्द्र है, वही समस्त विश्व की आत्मा है उसी से पृथ्वी, आकाश, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, मनुष्य की उत्पत्ति हुई है। वही विराट पुरुष समस्त ब्रह्माण्ड को व्याप्त करके स्थित है -

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् ।। (ऋ. 10.90.1)

सकल ब्रह्माण्ड उस विराट पुरुष के एक अंश की अभिव्यक्ति मात्र है- *पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।* (शुक्लयजुर्वेद मन्त्र 3)

वह ईश्वर सृष्टि के आरम्भ में अकेला था जब उसने एक से अनेक होने की इच्छा की तब उसने संसार का सृजन किया-

ऋतं च सत्यं ... तपसोऽध्यजायत ।। (ऋ. 10/129/3)

जब ईश्वर ने लोक लोकान्तरों का सृजन किया जब उसकी 'इच्छा' अन्य जीवों को उत्पन्न करने की हुई तब उसने जड़-जङ्गम रूप सृष्टि का सृजन किया -

एष ब्रह्मेष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा इमानि च पंचभूतानि पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतीषीत्ये तानिमानि च स्वेदजानि चोद्भिज्जानि चाश्वागाव: पुरुष हस्तिनो यत्किंचेद प्राणी जङ्गम च पतत्रि च यंच स्थावरं सर्व तत्प्रज्ञानेत्रं प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं प्रज्ञानेत्रो लोक: प्रज्ञा: प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म। (ऐ.उ. 3/1, 3)

अर्थात् उस परमात्मा ने ब्रह्माण्ड सहित पाँच तत्त्व पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, स्वेदन, अण्डज, उद्भिज्ज, अश्व, गाय, स्थावर जङ्गम आदि का निर्माण किया। अत: कहा जा सकता है कि संसार में दृश्यमान जो भी तत्त्व है वह सब ईश्वर की अभिव्यक्ति मात्र है। प्रारम्भ में वह गया - *एकोऽहं बहुस्याम: प्रजायै:।*

ISSN 2278 - 0327

राही मासूम रजा के उपन्यास 'आधा गाँव' में निरूपित समाज

कमलेश
शोधार्थी, गुरु जम्भेश्वर धार्मिक अध्ययन संस्थान
गुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय

व्यक्तियों के साथ मिलकर रहने वाले गुट, समूह अथवा समुदाय को समाज कहा जाता है। साहित्य के अन्तर्गत समाज की विभिन्न स्थितियों विभिन्न आचार-विचार, रूढ़ियों, लोक व्यवहार आदि का चित्रण होता है। हम साहित्य को समाज का दर्पण कहते हैं। साहित्यकार या कवि समाज में ही रहता है। वहाँ के परिवेश वातावरण आदि सभी उसको प्रभावित करती हैं। साहित्यकार सदैव समाज का मार्गदर्शक बनकर उसे सुधारने एवं विकसित करने के उत्तरदायित्व का निर्वहरणकरता है। डॉ. राही मासूम रजा ने 'आधा गाँव' उपन्यास में शिया मुसलमानों की सामाजिक स्थिति का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है, जिससे हिन्दू समाज को भारतीय समाज के बारे में भी पता चलता है। यही बात डॉ. ज्ञानचन्द गुप्त कहत हैं कि ''हिन्दी उपन्यास जगत में शायद पहली बार मुस्लिम जन जीवन की भीतरी-बाहरी सच्चाइयाँ अपने विविध रंगों में अच्छी-बुरी परछाइों को लेकर पहली बार प्रस्तुत हुई है, जिनस निश्चय ही भारतय जिंदगी का एक और कोना उजागर हुआ है।[1]

वर्ण व्यवस्था एवं जाति प्रथा का चित्रण - वर्ण व्यवस्था भारतीय सामाजिकता का प्रमुख आधार है। भारतीय समाज में जातीयता का विष भारतीय वातावरण को औरभी अधिक दूषित एवं विषाक्त बना रहा है। समाज में व्याप्त जात-पात, ऊँच-नीच, छूआ-छूत की भावना से भारतीय समाज का व्यक्ति आज भी ग्रसित है। डॉ. पूनम त्रिवेदी ''सामाजिक व्यवस्था में जातीयता की जड़ दिन-प्रतिदिन मजबूत होती जा रही है। जातीयता के मोहपाश में जकड़ी मानवता आज पतन की ओर अग्रसर है।''[2]

राही मासूम रजा स्वयं शिया वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं। इसी कारण वे इस वर्ग को निकटता से जानते थे। वह पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने मुस्लिम संस्कृति को बहुत ही सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया है। राही जी ने मुस्लिम समाज के मध्यम वर्ग और अभिजात्य वर्ग की समस्याओं को उनकी जीवन शैली को अभिव्यक्त करने की पहल हिन्दी साहित्य में की है। डॉ. शैलजा जायसवाल कहती है कि ''लेखक ने आधा गाँव में विशुद्ध सैय्यद नस्ल की पाक हड्डी का अभिनय एवं उच्च वर्ग के गर्व का चित्रण किया है।[3] लेखक ने नईया दादी के विषय में कहा है ''मंझले दादा के अब्बा ने इस पुतली को निकाह में ले लिया और फिर इनके लिए उन्होंने यह खलवत बनवायी। नईमा दादी बहरहाल जुलाहिन थी और सैयानियों के साथ नहीं रह सकती थी। पुराने जमाने के लोग इसका बड़ा ख्याल रखते थे कि कौन कहाँ बैठ सकता है और कहाँ नहीं।[4] लेखक स्वयं भी जातिगत भेदभाव का शिकार हो चुका है। वे घटना हमसे सांझा भी करते हैं। जब वे बचपन में मोहर्रम पर गंगौली आए थे और जुलाहों के बच्चों के साथ कबड्डी खेलने लगे थे तो अहीर ने क्या कहा वे बताते हैं ''उस दिन मैं पहली और आखिरी बार जुलाहों के लड़कों के साथ कबड्डी खोला था। मैं गिर पड़ा मेरी कुहनियाँ छिल गई थी। घुटनों की खाल उतर गयी थी। सफेद मलमल का कुरता तार-तार हो चुका था। फिर एकदम से दो बड़े-बड़े खुरदरे हाथों ने लड़कों को इधर-उधर फेंक दिया। अब तुंह लोगन अइसन लाट साहेब होगइल बाड़ा की मीर साहिल के लड़कन से कबड्डु खेल्ला ?''[5]

इस प्रकार लेखक ने दिखाया कि बड़े बच्चों के मन में भी वर्ण व्यवस्था का जहर भर रहे हैं। उन्हें दूर कर रहे हैं। वे चाहकर भी एक दूसरे के साथ न तो खेल सकते थे और ना ही बातचीत कर सकते थे। ''मियाँ अब्बू तुम इतने बड़े हो गए और तुम्हें यह भी नहीं मालूम कि अशराफ़ राकियों-वाकियों के दरवाजे नहीं जाते।''[6]

नारी की स्थिति - भारतीय समाज में नारी को सैद्धान्तिक रूप में बहुत-सी सुविधाएँ और स्वाधीनता प्राप्त हैं लेकिन यह सिर्फ कागजों में है। असल धरातल पर वास्तविकता तो कुछ और ही है। हिन्दू समाज की नारियों के साथ मुस्लिम समाज की नारियों को उपेक्षित जीवन जीने के लिए विवश होना पड़ता है। जिसका सम्पूर्ण चित्रण राही मासूम रजा ने उनके उपन्यास 'आधा गाँव' में किया है।

अस्तित्वहीनता- 19वीं शताब्दी में विश्व की नई परिस्थितियों में ऐसे वाद का विकास हुआ जो व्यक्तिक्ता और स्वतन्त्रता को सर्वाधिक महत्व देता है जिसे दर्शन और कला के क्षेत्र में अस्तित्ववाद कहते हैं। राही मासूम रजा ने अपने उपन्यास 'आधा गाँव' में मुस्लिम समाज की औरतों की स्थिति को उधेड़न का प्रयास किया है। मुस्लिम समाज में आरतों को उनके अपने नाम से नहीं पुकारा जाता। जिस इन्सान को दूसरे के नाम से जाना जाए उसकी पहचान ही क्या रह जाती है। राही कहते हैं, ''बेनाम होना तो बहुओं की तकदीर है। फर्क बस इतना हो जाता है कि वह अच्छ घरानों में जिल्लत से बच जाती हैं। वह यह तो बहु कही जाती हे या दुल्हन या दुलहिन।''[7] ''समानता का यह हाल है कि समाज में नारी को उसके व्यक्तिगत नाम से पुकारना उसका अपमान है। उसके जीवन का उद्देश्य पति को रिझाना और सन्तान का पालन करना है। विवाह में भी उसका दान दिया जाता है।''[8]

नारी की भावनाओं अथवा निर्णयों का कोई महत्त्व नहीं-

देश विभाजन के पूर्व जमींदारी प्रथा के अन्तर्गत पुरुष प्रधान समाज में नारी की भावनाओं का कोई भी महत्त्व नहीं होता था। पुरुष की

दृष्टि में नारी का लक्ष्य पति की दासता और संतान की उत्पत्ति के अलावा कुछ भी नहीं है। आधा गाँव में हम्माद मियाँ अपने बेटे मिगदाद का विवाह अपनी पत्नी कुबरा के भाई की बेटी से करने के लिए कहते हैं तो निर्णय हम्माद मियाँ का मायने रखता है उनके बीच हाने वाले संवादों से साफ पता चलता है।

''अब मैं तुम्हें क्या बताऊँ मेरे ख्याल से तुम्हारे भाई से बदला कर लिया जाए। अगर वह अपने बेटे से उम्मे हबीबा का रिश्ता कर लें तो उनकी बेटी से मिगदाद को ब्याह दिया जाए। लड़का माशाल्ला से अच्छा है। बी.ए. तक पढ़ा हुआ है। लखनऊ में अच्छी नौकरी पर भी है।'' बाकी लड़कियाँ त कौनी काम की ना न ह। कुबरा बोली एक तो काली है फिर बहुत मोटी है। मैं ओको बहु ना बने हो मैं तुमसे राय नहीं मांग रहा हूँ।''[9] इस प्रकार मुस्लिम समाज संस्कृति में औरतों के शब्दों की कोई अहमियत नहीं होती।

विधवा स्त्री की स्थिति- भारत में चाहे हिन्दू धर्म हो या मुस्लिम सभी में विधवाओं की स्थिति एक जैसी है जिसे राही मासूम रजा ने पहचान लिया था। उसकी अभिव्यक्ति उन्होंने आधा गाँव उपन्यास में हुसैन अली मियां की बहन अम्मूल हबीबा की कारुणिक स्थिति का चित्रण करके किया है। ''उम्मूल हबीबा तो कोई बीस साल से सफेद कपड़े पहन रही थी। शादी के तीसरे दिन वह बेवा हो गयी थी। ... शादी ब्याह के मौकों पर अछूत हो जाती थी।''[10] इस प्रकार राही जी ने स्पष्ट किया है कि इस्लाम धर्म में विधवा-विवाह या उनको विवाह के समय उपस्थिति नहीं होने दिया जाता है, इसी तरह अन्य समुदायों की तरह मुस्लिम समाज में भी इनकी दशा दयनीय है।

स्त्री प्रताड़ना- भारतीय समाज में स्त्री को बहुत सी प्रताड़नाएँ दी जाती हैं। पुत्र न होन पर, दहेज न लाने पर इसका बहुत ही सुन्दर वर्णन राही मासूम रजा ने अपने उपन्यास आधा गाँव में किया है।

पुत्र न होने पर सास पति ससुराल से प्रताड़ना समाज में लड़की का पैदा होना कोई आम बात नहीं है। यदि बेटी पैदा हो जाती है तो उसे शाप माना जाता है। वर्तमान समय में कन्या भ्रूण हत्या की समस्या बहुत ही तेज हो गई है।

शिश मुसलमानों के परिवार में छ: पुत्रियाँ हो गयी। अब उनकी एक पीढ़ी तो उनके लिए वर ढूंढने एवं विवाह करने की चिंता में ही सूख गई। 'आधा गाँव' में कुस्सु मियां का परिवार ऐसा ही है। डॉ. पूनम त्रिवेदी कहती है, ''मात्र पुत्रियों की माँ बनने वाली स्त्री का समाज और परिवार में नगण्य स्थान है। उनहें तरह-तरह की प्रताड़नाओं को झेलना पड़ता है।''[11] आधा गाँव की सकीना ऐसी ही महिला है माँ है जिसे क्रमश: कन्याओं को जन्म देते रहने के कारण अपनी सास की उपेक्षा का पात्र होना पड़ता है। ''सकीना के यहाँ ताबड़तोड़ सात लड़कियाँ हो चुकी थी। और कुस्सु मियां एक बेटे के अरमान में मरे जा रहे थे। जब बच्ची पैदा होती तो फुस्सु मन्नतें-वन्नतें मानकर और गंडे-ताबीज में जकड़-जकड़ाकर फिर कोशिश में लग जाते। तनहा होती तो रोती और अपने को बद्दुआ देती।''[12] इस प्रकार लड़की होने पर दोष स्त्रियों के माथे ही मंढा जाता था।

धर्म की अवहेलना वेश्यावृति के समय - वेश्यावृति व रखनियों से संबंध स्थापित करने समय ही धर्म आड़े नहीं आता था नहीं तो धर्म को हर जगत अपने आप आते हुए समय नहीं लगता था। सभी जगह धर्म को आगे कर दिया जाता था। आधा गांव उपन्यास में सुलेमानझंगटिया और ठाकुर हर नारायण ने इसका चित्रण किया है। गुलाबी जान बड़ी कट्टर मुसलमान थी। ठाकुर साहब के कमरे से जाकर वह फौरन नहाती थी और अल्लाह मियां से माफी मांगी थी कि पेट की वजह से उसे एक काफिर के साथ सोना पड़ता है।[13]

सामाजिक समता एकता का स्वर- राही मासूम रजा ने आधा गांव में सामाजिक समता व एकता का चित्रण किया है। कहा जाता है कि जहां पर एकता है वहां पर शक्ति होती। एकता में बल है। जैसे बंधी लकड़ियों में जितनी ताकत होती है उतनी अकेली में नहीं। राही ने एकता की ताकत को अनुभव किया है। भारतीय संस्कृति की पहचान है एकता। आधा गांव उपन्यास में भी किया है जब उत्तर पट्टी वालों के बीच सल्ली साई के दरवाजे पर झगड़ा होता है तो पुलिस का खबर कर दी जाती है। पुलिस के आने से पहले पुलिस के आने की खबर पहुंच जाती है। दोनों पट्टियों के गौरतमंदों ने सोचा कि इस मामले में पुलिस को डालना ठीक नहीं है। यह एक घरेलू मामला है।''[14]

आर्थिक स्थिति- आर्थिक उन्नति में भौतिक सुख निहित जो हमारे सामाजिक स्तर का निर्धारण करते हैं। आधा गाँव उपन्यास में स्वतन्त्रता पूर्व व पश्चात् आर्थिक स्थिति का स्तर बदल जाता है और लोगों के दिन भी बदल जाते हैं। गगौली ग्राम की आर्थिक शैक्षिक एवं सांस्कृतिक प्रगति के लिए कार्य कर रहा है। उसने गांव में ईंटों का एक पुख्ता मकान बना लिया है। ''आज परसराम जब ग्राम में आता है तो गांव में उसका सबसे बड़ा दरबार होता है और उसके दरबार में सभी लखपति भी और फाके मस्त सदस्य साहिबान भी आते हैं। ये लोग कुर्सियों पर बैठते, सिगरेट पीते और रेडियो सुनते।''[15]

निष्कर्ष - हिन्दी साहित्य जगत में समाज को लेकर अनेक उपन्यास लिखे गए हैं लेकिन मुस्लिम समाज के जीवन को लेकर तो गहराई व व्यापकता आधा गांव में है उसे कोई नहीं छू पाया।

संदर्भ-सूची

1. डॉ. ज्ञानचंद गुप्त, आंचलिक उपन्यास अनुभव और दृष्टि, पृ. 141
2. डॉ. पूनम त्रिवेदी, राही मासूम रजा का साहित्य संवेदना और शिल्प, पृ. 119
3. डॉ. शैलजा जायसवाल, राही मासूम रजा के उपन्यासों में समकालीन संदर्भ, पृ. 82
4. राही मासूम रजा, आधा गाँव, पृ. 16
5. वही, पृ. 34
6. वही, पृ. 62
7. वही, पृ. 23
8. यशपाल, बात-बात में बात, पृ. 55
9. आधा गाँव, पृ. 185
10. वही, पृ. 118
11. डॉ. पूनम त्रिवेदी, राही मासूम रजा का साहित्य संवेदना और शिल्प, पृ. 117
12. आधा गाँव, पृ. 109-10
13. वही, पृ. 74
14. वही, पृ. 77
15. वही, पृ. 335

ISSN 2278 - 0327

भारतेन्दु के प्रमुख नाटकों में हास्य-व्यंग्य

डॉ. वीणा गांधी
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
श्रीअरविन्द महाविद्यालय (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय

हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का प्रवर्तन और नई चेतना का संचार करने वाले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के लिए किसी परिचय या भूमिका की आवश्यकता नहीं है। आधुनिक काल के मार्गदर्शक के रूप में उन्होंने हिन्दी साहित्य और समाज को जो दिया, उससे ऊऋण नहीं हुआ जा सकता। साहित्य की कौन सी ऐसी विधा है जिसके लिए उन्होंने नींव का सृजन नहीं किया। समाज की कौन सी ऐसी समस्या है जिसकी ओर उनकी युग स्रष्टा दृष्टि न गई हो।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में 'साहित्य के एक नवीन युग के आदि में प्रवर्तक के रूप में खड़े होकर उन्होंने यह भी प्रदर्शित किया कि नए और बाहरी भावों को पचाकर इस प्रकार मिलाना चाहिए कि अपने ही साहित्य के विकसित अंग से लगें। प्राचीन नवीन के उस संधि काल में जैसी शीतल कला का संचार अपेक्षित था वैसी ही शीतल कला के साथ भारतेन्दु का उदय हुआ, इसमें संदेह नहीं।'[1]

भारतीय संस्कृति और साहित्यिक धरोहर के गौरव की रक्षा करने वाले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का साहित्य बहुआयामी है। उनका साहित्य एक ओर राष्ट्रीयता का उद्घोष करता है तो दूसरी ओर 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल' मंत्र का उद्घोष करता है।

उनकी साहित्यिक प्रवृत्तियों में देश प्रेम, भक्ति, सौन्दर्य और प्रेम, हास्य व्यंग्य की प्रवृत्ति प्रमुख है। प्रस्तुत लेख में उनके प्रमुख नाटकों की मूल प्रवृत्ति हास्य व्यंग्य को केंद्र में रखा गया है।

भारतेन्दु युग में पश्चिमी सभ्यता, विदेशी शासन, सामाजिक कुरीतियों अंधविश्वास और अंग्रेजी चाल-ढाल आदि पर व्यंग्य करने के लिए साहित्यकारों ने विशेषकर कविताओं तथा नाटकों के गीतों को माध्यम के रूप में अपनाया। इस क्षेत्र में भारतेन्दु का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके नाटकों में हास्य व्यंग्य के नए क्षितिज उभरते हैं और हास्य रस के नए आलम्बन पाठक का ध्यान आकर्षित करते हैं जैसे 'लकीर के फकीर', 'नए फैशन के गुलाम', 'खुशामदी रईस', 'नाम और दाम के भूखे देशभक्त' आदि।

भारतेन्दु की सृजनात्मकता के केन्द्र में नाटक हैं। भारतेन्दु ने नाटक को अपने विचारों के संप्रेषण और जन-चेतना के लिए माध्यम बनाया जो सर्वथा उचित ही है। डॉ. रमेश गौतम लिखते हैं 'भारतेन्दु ने अपनी कला प्रतिभा से हास्य-व्यंग्य विनोद की सटीक प्रयोगात्मक शैली में ऐसे नाटक लिखे जो सीधे पाठक के दिल में चुभते थे और दिमाग को झनझना जाते थे।'[2]

भारतेन्दु के नाटकों में हास्य-व्यंग्य की प्रवृत्ति सोद्देश्य है। वह केवल दर्शक को गुदगुदाने के लिए हास्य-व्यंग्य को आधार नहीं बनाते बल्कि आम जनता तक अपना संदेश देने के लिए, उसका मार्ग दर्शन करने और उसे जागृत करने के लिए इसे एक सशक्त माध्यम के रूप में अपनाते हैं।

'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' नाटक में भारतेन्दु ने मिथकों के माध्यम से युग-सापेक्ष यथार्थ का व्यंग्यात्मक विश्लेषण किया है। समाज में धर्माडम्बरों को किस प्रकार अपने स्वार्थ के लिए प्रयोग किया जाता है और सत्ता उससे किस प्रकार लाभान्वित होती है, इसका कच्चा चिट्ठा एक प्रहसन के माध्यम से खोला है। यमराज के दरबार में राजा के अतीत में किए गए कर्मों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए चित्रगुप्त कहता है- 'महाराज सुनिए। यह राजा जन्म से पाप में रत रहा, इसने धर्म्म को अधर्म्म माना और अधर्म्म को धर्म्म माना, जो चाहा किया और उसकी व्यवस्था पंडितों से ले ली- सच्चे धर्म्म इसने एक न किये, जो कुछ किया वह केवल वितंडा कर्म-जाल किया, जिसमें मांस भक्षण और मदिरा पीने को मिले और परमेश्वर प्रीत्यर्थ इसने एक कौड़ी भी नहीं व्यय की, जो कुछ व्यय किया सब नाम और प्रतिष्ठा पाने के हेतु।'[3]

इस रचना का यह संवाद धर्म की आड़ में किए जाने वाले कुकृत्यों पर एक गंभीर आरोप है। धर्म को ढाल बनाकर सत्ता और तंत्र का किस प्रकार दुरुपयोग किया जाता है और अबोध जनता इस कुचक्र में फंस जाती है। राजा धर्म की चादर ओढ़ कर हर वह कार्य करने की स्वतंत्रता पा जाता है जिसकी उसे इच्छा होती है, चाहे वह फिर मदिरा पान हो या मांस भक्षण। नाम, प्रतिष्ठा और पद पाने के लिए कितने ही कुकर्म किए जाते हैं लेकिन उन्हें धर्म की संज्ञा देकर जनता की आंखों पर काली पट्टी बांध दी जाती है, भोली-भाली जनता राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि मानकर सब कुछ स्वीकार कर लेती है।

इस संवाद के बाद एक अन्य संवाद आता है -'यमराज- प्रतिष्ठा कैसी,धर्म्म और प्रतिष्ठा से क्या संबंध? चित्रगुप्त- महाराज सर्कार अंगरेज के राज्य में जो उन लोगों के चित्तानुसार उदारता करता है उसको 'स्टार ऑफ इंडिया' की पदवी मिलती है।'[4]

यह संवाद राजा शिव प्रसाद 'सितारे हिन्द' की ओर तो संकेत करता है। साथ ही उन सभी राजाओं, सामंतों और जमींदारों पर भी व्यंग्य करता है जो अंग्रेजों के कृपापात्र बनने के लिए हर अनैतिक और धर्म विरुद्ध कार्य करने के लिए तत्पर रहते थे।

'अंधेर नगरी' में हास्य-व्यंग्य अधिक पैने और मुखर रूप में अभिव्यक्त हुआ है। इस प्रहसन में भारतेन्दु ने अपने युग की राजनीतिक व्यवस्था पर अत्यंत तीक्ष्ण प्रहार किए हैं। 'शासन व्यवस्था का अंधापन और अंधेर इस नाटक का उपजीव्य है, तात्कालिक संदर्भ ब्रिटिश राज का अन्याय है।'[5]

'अंधेर नगरी' अंग्रेजी शासन काल में लिखी गई। अंग्रेजों ने अपनी शासन व्यवस्था चलाने के लिए मैकाले की जिस शिक्षा नीति को अपनाया उसने अंग्रेजों के चाटुकार और अविवेकी हाकिम निर्मित किए। बुद्धिजीवी पूरी तरह उपेक्षित हो गए, समाज में भी और सत्ता में भी। पूरी व्यवस्था में यह अंधेर गर्दी दिखाई देती है। यब अंधेर गर्दी नाटक के दूसरे दृश्य (बाजार का दृश्य)में पूरी भाव-भंगिमा से दृष्टिगत होती है। कबाब वाला हो, नारंगी वाला हो, हलवाई हो, कुंजड़िन हो, मुगल हो, पाचक वाला हो या मछली वाली, सभी इस अंधेर नगरी का हिस्सा हैं। अंग्रेजी सरकार के हाकिमों पर व्यंग्य करते हुए भारतेन्दु लिखते हैं-

' चना हाकिम सब जो खाते, सब पर दूना टिकस लगाते।'[6]

कुंजड़िन सब्जी बेचते हुए कहती है-

'जैसे काजी वैसे पाजी। रैयत राजी टके सेर भाजी।
ले हिन्दुस्तान का मेवा फूट और बैर।'[7]

शायद ही कोई ऐसा व्यवसाय है जिस पर भारतेन्दु ने व्यंग्य न किया हो। चाहे कचहरी के कारिंदे हों या नाटककार, महाजन हो या लाला लोग, एडिटर हो या साहब लोग, पुलिसकर्मी हो या कानून के रक्षक -भारतेन्दु के व्यंग्य से कोई नहीं बचा है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि भारतेन्दु ने अपने समय के हर पक्ष, हर पहलू का सूक्ष्म विश्लेषण कर अपने व्यंग्य को धार दी है। भारतेन्दु लिखते हैं-

'चूरन अमले सब जो खावैं। दूनी रुशवत तुरत पचावैं।
चूरन नाटकवाले खाते। इसकी नकल पचाकर लाते।
चूरन सभी महाजन खाते। जिससे जमा हजम कर जाते।
चूरन खाते लाला लोग। जिन को अकिल अजीरन रोग।
चूरन खावै एडिटर जात। जिनके पेट पचै नहिं बात।
चूरन साहेब लोग जो खाता। सारा हिंद हजम कर जाता।
चूरन पूलिस वाले खाते। सब कानून हजम कर जाते।' [8]

अंधेर नगरी में तत्कालीन समाज में होने वाले जाति परिवर्तन को भी बड़े हास्य-व्यंग्यात्मक तरीके से भारतेन्दु ने उठाया है-

'जातवाला (ब्राह्मण)- जात ले जात, टके सेर जात। एक टका दो, हम अभी अपनी जात बेचते हैं। टके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो जायं और धोबी को ब्राह्मण कर दें, टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था दें। टके के वास्ते झूठ को सच करैं। टके के वास्ते ब्राह्मण से मुसलमान, टके के वास्ते हिन्दू से क्रिस्तान। टके के वास्ते धर्म और प्रतिष्ठा दोनों बेचैं, टके के वास्ते झूठी गवाही दें। टके के वास्ते पाप को पुण्य मानैं, टके के वास्ते नीच को भी पितामह बनावैं। वेद धर्म्म कुल मरजादा सचाई बड़ाई सब टके सेर। लुटाय दिया अनमोल माल ले टके सेर।' [9]

अंधेर नगरी की ये पंक्तियां उस पूरी व्यवस्था पर चोट करती हैं जिसने पूंजी को हर वस्तु के केंद्र में ला दिया है, चाहे वह अपनी पहचान की क्यों न हो। इस प्रहसन के माध्यम से भारतेन्दु ने अंग्रेज राज की न्याय-पद्धति पर गहरा व्यंग्य किया है। अंग्रेजों ने 'फूट डालो राज करो' और कूटनीति से ऐसी व्यवस्था का निर्माण किया, जिसमें उनकी इच्छानुसार न्याय होता है। कानून केवल दिखावा मात्र है। इस व्यवस्था में हर व्यक्ति आशंकित है कि कब उसे न्याय के नाम पर फांसी पर लटका दिया जाए। न्याय के नाम पर केवल राजा का आदेश ही सर्वोपरि था। सत्य मार्ग का अनुसरण करने वाले दर-दर की ठोकरें खाने के लिए मजबूर थे और दुष्ट ऊंची पदवी पर आसीन। तथाकथित समाज पर व्यंग्य करते हुए भारतेन्दु लिखते हैं-

'सांचे मारे मारे डोलैं। छली दुष्ट सिर चढ़ि चढ़ि बोलैं।
प्रगट सभ्य अंन्तर छलधारी। सोइ राजसभा बलभारी।
सांच कहैं ते पनही खावैं। झूठे बहुविधि पदवी पावें।' [10]

भारतेन्दु ने अंग्रेजी शासन व्यवस्था में मची अंधेर गर्दी को ही व्यक्त नहीं किया है, विदेश (लंदन) में रहने वाले शासकों को भी व्यंग्य के निशाने पर लिया है-

'अन्धाधुन्धमच्यौ सब देसा। मानहुं राजा रहत बिदेसा।'[11]

डॉ. रमेश गौतम ने ब्रिटिश राज की न्याय व्यवस्था को रहस्यवादी आंतक माना है। वह लिखते हैं -

'ब्रिटिश राज्य का न्याय न्याय नहीं था, अपितु एक रहस्यवादी आतंक था, जो न केवल प्रजा के तन-मानस पर छाया हुआ था अपितु प्यादे के प्रतीक में ब्रिटिश मशीनरी भी उस उस आतंक से आतंकित थी।' [12]

भारतेन्दु ने अपने नाटक 'भारत दुर्दशा' की रचना तत्कालीन भारत की शोचनीय दशा को चित्रित करने के लिए की है। इसमें नाटककार ने प्रतीकात्मक पात्रों के माध्यम से भारत की दुर्दशा का जीवंत चित्र खींचा है। ये प्रतीकात्मक पात्र व्यंग्यात्मक रूप से नाटककार के कथ्य को संप्रेषित करते हैं और भारतीय समाज को आईना दिखाते हैं। ये प्रतीकात्मक पात्र हैं-भारत,भारत दुर्दैव, भारतसौभाग्य, सत्यानाश, फौजदार, रोग, आलस्य, मदिरा, अंधकार आदि। भारत जहां भारत का प्रतीक है। वहीं भारत दुर्दैव दो दुर्भाग्यों-यवन और अंग्रेज का सूचक है। 'भारत' पात्र के माध्यम से भारतेन्दु ने तत्कालीन भारतीय लोगों की निष्क्रियता, आलस्य, जड़ता, निर्बलता का यथार्थ चित्रण किया है और भारत की दुर्दशा का मुख्य कारण उपर्युक्त दुर्गुणों को

माना है। आत्मविश्वास और स्वाभिमान से हीन भारत पुकारता है–

'कोऊ नहिं पकरत मेरो हाथ।
बीस कोटि सुत होत फिरत मैं हा हा होय अनाथ।' [13]

भारत सौभाग्य पात्र के माध्यम से नाटककार ने भारतीयों में आशा का संचार करने का प्रयत्न किया है। भारत सौभाग्य, जो भारत के गौरवशाली अतीत का प्रतिनिधित्व करता है, वही भारतीयों में चेतना और स्वाभिमान जागृत कर सकता है–

'भारत के भुजबल जग रक्षित।
भारत विद्या लहि जग सिच्छित।'[14]

हम भारतीयों की आलस्य प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए भारतेन्दु लिखते हैं–

'दुनिया में हाथ-पैर हिलाना नहीं अच्छा।
मर जाना पै उठके कहीं जाना नहीं अच्छा।
मिल जाय हिंद खाक में हम काहिलों को क्या।
ऐ मीरे फर्श रंज उठाना नहीं अच्छा।'[15]

इसी प्रकार मदिरा के तथाकथित महिमामंडन में व्यंग्यात्मकता को देखा जा सकता है–

'भगवान् सोम की मैं कन्या हूं। प्रथम वेदों ने मधु नाम से मुझे आदर दिया। फिर देवताओं की प्रिया होने से मैं सुरा कहलाई और मेरे प्रचार हेतु श्रौत्रामणि यज्ञ की सृष्टि हुई... और फिर सरकार के राज्य के तो हम एकमात्र भूषण हैं।' [16]

वस्तुत: 'भारत दुर्दशा' के माध्यम से भारतेन्दु ने तत्कालीन भारतीय समाज में व्याप्त जड़ता, आलस्य, निष्क्रियता, अकर्मण्यता, परस्पर ईर्ष्या-द्वेष आदि को प्रतीक एवं व्यंग्यात्मक रूप में चित्रित कर जनता को जगाने का संदेश दिया है। भारतेन्दु ने भारत सौभाग्य के माध्यम से मूल संदेश व्यंजित किया है, इसलिए नाटक के अंत में भारत सौभाग्य विफल होने पर कहता है–

' सच है जो जानबूझकर सोता हैउसे कौन जगा सकेगा?'[17]

इस छोटी सी पंक्ति में लेखक ने देशवासियों के लिए कितनी गहरी व्यंजना प्रकट की है। सोए हुए को जगाना आसान है लेकिन जो जानबूझकर भी परिस्थितियों से अनजान बना रहे, उसे जगाना असंभव है।

भारतेन्दु ने एक अन्य नाटक 'विषस्यविषमौषधम्' में भारत के सामंतवाद के पतन के कारणों की जांच करते हुए देशी राजाओं की दयनीय स्थिति पर व्यंग्यात्मक टिप्पणियां की हैं। अंग्रेज शासक सत्ता का नियंत्रण अपने हाथ में रखने के लिए देशी राजाओं को कठपुतली की तरह इस्तेमाल करते थे। देशी राजा नाम मात्र के ही सत्ताधीश थे, सत्ता की चाबी तो अंग्रेज शासकों के हाथों में थी। इस स्थिति पर व्यंग्य करते हुए भारतेन्दु लिखते हैं-'कलकत्ते के प्रसिद्ध राजा अपूर्व्व कृष्ण से किसी ने पूछा था कि आप लोग कैसे राजा हैं तो उन्हों ने उत्तर दिया – जैसे शतरंज के राजा, जहां चलाइये वहां चलैं।' [18]

इसी प्रकार जो बुद्धिजीवी केवल राज-काज करने वालों की चापलूसी को ही अपना धर्म मानते थे उन पर व्यंग्य करते हुए भारतेन्दु लिखते हैं– *'पासा पड़ै सो दाव ,राजा करै सो न्याव।*
कहैं जो लोग बस उस को बजा कहिए।' [19]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेन्दु ने नाटकों को केवल जनता का मनोरंजन करने का साधन ही नहीं माना बल्कि उन्हें देशवासियों में राजनैतिक चेतना जागृत करने का महत्वपूर्ण शस्त्र माना। भारतेन्दु को जब भी अवसर मिला उन्होंने अपनी व्यंग्यात्मक शैली में देश की आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक विडंबनाओं और विसंगतियों पर जम कर प्रहार किया। उन्होंने भारतीयों की परस्पर फूट, वैमनस्य, स्वार्थपरता,आलस्य, अभारतीयता को अंकित करते हुए उससे बचने का संदेश दिया और भारत के उज्ज्वल भविष्य का स्वर्णिम स्वप्न देखा।

संदर्भ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 30वां संस्करण,पृष्ठ 252
2. भारतेन्दु युगीन नाटक : संदर्भ सापेक्षता, डॉ. रमेश गौतम, के.एल.पचौरी प्रकाशन गाजियाबाद, प्रथम संस्करण 1997, पृष्ठ 46
3. भारतेन्दु ग्रंथावली : सं. शिव प्रसाद मिश्र ('रुद्र' काशिकेय) नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी,(पहला खण्ड) ,पृष्ठ 21-22
4. वही, पृष्ठ 22
5. हिन्दी साहित्य और संवेदना का इतिहास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 25वां संस्करण, पृष्ठ 86
6. भारतेन्दु ग्रंथावली(पहला खण्ड), पृष्ठ 169
7. वही, पृष्ठ 170
8. वही, पृष्ठ 170
9. वही,पृष्ठ 171
10. वही, पृष्ठ 179
11. वही,पृष्ठ 179
12. भारतेन्दु युगीन नाटक : संदर्भ सापेक्षता, डॉ. रमेश गौतम, के.एल.पचौरी प्रकाशन गाजियाबाद, प्रथम संस्करण 1997, पृष्ठ, 32
13. भारतेन्दु ग्रंथावली(पहला खण्ड), पृष्ठ 135
14. वही, पृष्ठ 155
15. वही, पृष्ठ 144
16. वहीं, पृष्ठ 145
17. वही, पृष्ठ 159
18. वही, पृष्ठ 34
19. वही, पृष्ठ 33

ISSN 2278 - 0327

सतत और व्यापक मूल्यांकन के प्रति माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की अभिवृत्ति का अध्ययन

अभिषेक दुबे
शोधार्थी, शिक्षा संकाय
राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या (उ.प्र.)
एम.एड., नेट (शिक्षा शास्त्र)

डॉ. नीता सिंह
पूर्व विभागाध्यक्षा (शिक्षा संकाय)
कमला नेहरू इंस्टिट्यूट ऑफ फिजिकल एण्ड सोशल साईन्स,
सुल्तानपूर (उ.प्र.)

शोध पंजीकरण संख्या–RML/Ph.D/ACA/2021/B-EDU/04

वर्तमान समय में शिक्षार्थियों की उपलब्धि की गुणवत्ता में सुधार के लिए चिंता बढ़ रही है। लेकिन शिक्षार्थियों की गुणवत्ता में सुधार लाने और बेहतर गुणवत्ता को सार्वभौमिक बनाने का यह उद्देश्य शिक्षकों के उचित प्रयास, सही शिक्षण सीखने की प्रक्रियाओं और उचित मूल्यांकन क्रिया के बिना नहीं किया जा सकता है। यह अध्ययन लखनऊ जिले के 80 माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों पर किया गया है, ताकि माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के सतत और व्यापक मूल्यांकन के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन किया जा सके। अध्ययन का उद्देश्य सतत और व्यापक मूल्यांकन के प्रति माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के अभिवृत्ति का अध्ययन करना, सतत और व्यापक मूल्यांकन के प्रति सरकारी और निजी माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के अभिवृत्ति का अध्ययन करना और माध्यमिक विद्यालय के पुरुष और महिला शिक्षकों के सतत और व्यापक मूल्यांकन के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना था। अनुसंधानकर्ता ने सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया तथा आँकड़ों को एकत्रित करने के लिए स्वनिर्मित अभिवृत्ति मापनी का प्रयोग किया था। अध्ययन के मुख्य निष्कर्ष से पता चलता है कि 60 प्रतिशत से अधिक शिक्षक सतत और व्यापक मूल्यांकन के प्रति अत्यधिक अनुकूल दृष्टिकोण रखते हैं। सभी शिक्षकों का सतत और व्यापक मूल्यांकन के प्रति एक ही तरह का दृष्टिकोण पाया गया।

मुख्य शब्दः अभिवृत्ति, शिक्षक, माध्यमिक विद्यालय, सतत और व्यापक मूल्यांकन

प्रस्तावना – प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर शिक्षार्थियों की उपलब्धि की गुणवत्ता में सुधार के लिए चिंता बढ़ रही है। लेकिन शिक्षार्थियों की गुणवत्ता में सुधार लाने और बेहतर गुणवत्ता को सार्वभौमिक बनाने का यह उद्देश्य पूरी तरह से अपूर्ण शिक्षण सीखने की प्रक्रियाओं और अनुचित मूल्यांकन क्रिया का बोध नहीं किया जा रहा है। विद्यालयों में किए गए मूल्यांकन अभ्यासों का उद्देश्य शिक्षार्थियों के ज्ञान और समझ के परिणामों को मापना, कौशल और उच्च मानसिक क्षमताओं के मूल्यांकन की उपेक्षा करना है। यद्यपि समग्र शिक्षा व्यक्ति के व्यक्तित्व के सभी पहलुओं के विकास की मांग करती है, जिसमें संज्ञानात्मक, भावात्मक और मनोप्रेरक कार्यक्षेत्र शामिल हैं, मूल्यांकन के दौरान शिक्षार्थियों की रुचि, शौक और जुनून के विकास पर अधिक ध्यान और जोर नहीं दिया जाता है। अकेले उत्कृष्टता पर ध्यान केंद्रित करने से निःसंदेह व्यक्तित्व का एकतरफा विकास होता है। यह आवश्यक है कि संगीत, नृत्य, कला, नाट्यकला और किसी की रुचि के अन्य क्षेत्रों जैसी सह–पाठ्यचर्या गतिविधियों में भाग लेने के लिए उचित महत्व दिया जाए ताकि इसे और अधिक उपयोगी और मनोरंजक बनाया जा सके।

इस प्रकार, विद्यालयों में मूल्यांकन का दायरा शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व विकास के सभी क्षेत्रों तक निरंतर विस्तारित होना चाहिए। इसमें शैक्षिक और सह–शैक्षिक दोनों क्षेत्रों को शामिल किया जाना चाहिए, अर्थात यह प्रकृति में व्यापक होना चाहिए।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व – सतत और व्यापक मूल्यांकन करने के लिए, शिक्षकों द्वारा कई तकनीकों को नियोजित किया जाना है। शिक्षकों को उन कौशलों के बारे में स्पष्ट होना चाहिए जो उसे सामग्री, उपयुक्त रणनीति, शिक्षण, शिक्षण सहायक सामग्री, मूल्यांकन तकनीक और उन लोगों के लिए उपचारात्मक उपायों के बारे में स्पष्ट होना चाहिए जो महारत स्तर तक कौशल हासिल करने में विफल रहते हैं। शिक्षक शैक्षिक क्षेत्रों में लिखित, मौखिक और प्रदर्शन परीक्षण आयोजित करके और सह–शैक्षिक क्षेत्रों में सतत अवलोकन और अंतःक्रियात्मक तकनीकों का पालन करके सतत मूल्यांकन के माध्यम से कौशल हासिल करने में शिक्षार्थियों की सहायता करता है। इसलिए शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बनाने के लिए शिक्षार्थियों का सतत और व्यापक रूप से मूल्यांकन करना आवश्यक है। ये प्रयास तब तक प्रभावी और सफल नहीं होंगे जब तक कि शिक्षक इस तरह की मूल्यांकन प्रणाली को सही तरीके और भावना से लागू करने के लिए पूरे दिल से तैयार नहीं होंगे। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि सतत और व्यापक मूल्यांकन की सफलता काफी हद तक शिक्षकों के सकारात्मक और अनुकूल रवैये पर निर्भर करती है। यह अध्ययन सतत और व्यापक मूल्यांकन के प्रति शिक्षकों के

रवैये का अध्ययन करने का एक प्रयास है।

शोध से संबंधित साहित्य की समीक्षा – प्रस्तुत शोध से संबंधित कुछ पूर्व अध्ययन निम्न हैं –

मुरुगन, एस.पी., कुमार, आर.एस., एवं एडवर्ड, ए. (2015) ने शिवगंगा जिले के 50 सरकारी स्कूल के शिक्षकों पर ''सतत और व्यापक मूल्यांकन की योजना के बारे में शिक्षकों की अभिवृत्ति'' का पता लगाने के लिए एक अध्ययन किया। इसका उद्देश्य माध्यमिक विद्यालयों में सीसीई के प्रति शिक्षकों के अभिवृत्ति का अध्ययन करना था। उद्देश्यपूर्ण और सुविधाजनक नमूनाकरण तकनीकों का उपयोग किया गया था। डेटा संग्रह के लिए प्रश्नावली और साक्षात्कार अनुसूची का उपयोग किया गया था। यह पाया गया कि, सरकारी स्कूल के शिक्षकों की धारणा औसत थी जो शिक्षकों द्वारा सीसीई की मध्यम स्वीकार्यता को इंगित करती है। साथ ही कक्षाओं में बड़ी संख्या में छात्र, उपयुक्त प्रशिक्षण की कमी, अपर्याप्त बुनियादी ढांचे और शिक्षण सामग्री और काम की मात्रा में वृद्धि सीसीई के सुचारू निष्पादन में बाधाओं के रूप में कार्य करती है।

मिश्रा, एस. और मलिक, पी. (2014) ने ''ओडिशा में प्राथमिक स्कूल स्तर पर सतत और व्यापक मूल्यांकन के बारे में शिक्षकों, अभिभावकों और छात्रों की अभिवृत्ति'' पर एक अध्ययन किया। यह अध्ययन सतत और व्यापक मूल्यांकन के बारे में शिक्षकों, अभिभावकों और छात्रों की धारणा से संबंधित है। प्रासंगिक डेटा एकत्र करने के लिए अन्वेषक द्वारा शिक्षकों के लिए एक प्रश्नावली और छात्रों के लिए एक साक्षात्कार अनुसूची विकसित की गई थी। यह पाया गया कि अधिकांश शिक्षकों ने कहा कि वे सीसीई के बारे में जानते हैं, लेकिन जिस तरह से उन्होंने वस्तुओं का जवाब दिया, उससे पता चलता है कि वे सीसीई के बारे में ज्यादा जागरूक नहीं थे। इसी तरह, माता-पिता और समुदाय के सदस्यों को भी सीसीई के बारे में जानकारी नहीं थी। पर्याप्त शिक्षकों की कमी सीसीई योजना को सही मायने में लागू न करने का एक प्रमुख कारण था।

थोटे, पी. (2014) ने ''सीसीई के संकाय विकास कार्यक्रमों के प्रति शिक्षकों का दृष्टिकोण'' का अध्ययन किया। नमूने में मध्य भारत के 200 प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों को यादृच्छिक नमूना तकनीक का उपयोग करके चुना गया था, अनुसंधानकर्ता द्वारा स्व-निर्मित रवैया पैमाने का उपयोग आवश्यक प्रदत्तों के संग्रह के लिए किया गया था। सीसीई पर प्रशिक्षण के दौरान शोधकर्ताओं ने पाया कि शिक्षक सीसीई के विभिन्न पहलुओं के बारे में स्पष्ट नहीं थे। यह निष्कर्ष निकाला गया कि सीसीई के सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों के प्रति ग्रामीण और शहरी, पुरुष और महिला और शिक्षण अनुभव (1-10 और 11-20.) शिक्षकों के रवैये के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं था।

राठी, आई. (2014) ने ''सतत और व्यापक मूल्यांकन की प्रणाली के बारे में शिक्षकों के दृष्टिकोण'' पर एक अध्ययन किया। इसमें जिले के सरकारी और गैर-सरकारी स्कूलों के नमूने के रूप में सोनीपत, हरियाणा के 100 शिक्षक शामिल हैं। प्रदत्त संग्रह के लिए अन्वेषक ने डॉ. विशाल सूद और डॉ आरती आनंद द्वारा विकसित ''निरंतर व्यापक मूल्यांकन के प्रति शिक्षक दृष्टिकोण पैमाने'' का उपयोग किया। अध्ययन के परिणाम से पता चला कि अधिकांश शिक्षकों का सीसीई के प्रति अत्यधिक अनुकूल रवैया है। इसके अलावा, शिक्षकों का अपने विषयों और शिक्षण अनुभव के संबंध में सीसीई के प्रति एक ही तरह का रवैया है।

शोध में प्रयुक्त शब्दों की परिभाषाएँ – शोध में प्रयुक्त प्रमुख शब्दों की परिभाषाएँ निम्नानुसार है –

- **अभिवृत्ति:** शब्द 'अभिवृत्ति' से शोधकर्ता का अर्थ है, व्यक्तिगत भावना जैसा कि व्यक्ति सोचता है या व्यवहार करता है।
- **माध्यमिक विद्यालय शिक्षक:** शब्द 'माध्यमिक विद्यालय शिक्षक' से शोधकर्ता का अर्थ है, शिक्षक जो बी.एड. की बुनियादी योग्यता रखते हैं और माध्यमिक विद्यालय में माध्यमिक कक्षाओं को पढ़ाते हैं।
- **सतत और व्यापक मूल्यांकन:** शब्द 'सतत और व्यापक मूल्यांकन' से शोधकर्ता का अर्थ है, मूल्यांकन की एक प्रणाली जो पूरे शैक्षणिक सत्र में चलती है और छात्रों के विकास के सभी पहलुओं को शामिल करती है।

अध्ययन के उद्देश्य – अध्ययन निम्नलिखित उद्देश्यों के साथ आयोजित किया गया है –

1. सतत और व्यापक मूल्यांकन के प्रति शिक्षकों की अभिवृत्ति के स्तर का अध्ययन करना।
2. सरकारी और निजी स्कूल के शिक्षकों की सतत और व्यापक मूल्यांकन के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
3. सतत और व्यापक मूल्यांकन के प्रति पुरुष और महिला शिक्षकों की अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएं – अध्ययन निम्नलिखित परिकल्पनाओं के साथ आयोजित किया गया है –

1. सरकारी एवं निजी विद्यालयों के शिक्षकों की सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. प्रदत्तके प्रति पुरुष और महिला शिक्षकों की अभिवृत्ति में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है।

अध्ययन का परिसीमन – यह अध्ययन लखनऊ जिले के माध्यमिक विद्यालयों के केवल 80 शिक्षकों तक सीमित है। जिसमें से 40 शिक्षक सरकारी स्कूल के और 40 शिक्षक निजी स्कूल के हैं।

कार्यप्रणाली – वर्तमान अध्ययन एक वर्णनात्मक सर्वेक्षण अध्ययन है। यहाँ अनुसंधानकर्ता ने जानकारी एकत्र करने के लिए सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया है।

जनसंख्या – लखनऊ जिले के सभी माध्यमिक विद्यालय के शिक्षक अध्ययन की जनसंख्या के अंतर्गत आते हैं। इस शोध अध्ययन में शोधार्थी ने यादृच्छिक प्रतिचयन पद्धति का प्रयोग कर माध्यमिक विद्यालयों के 40 सरकारी एवं 40 निजी शिक्षकों को प्रतिदर्श के रूप में लिया है।

उपकरण – इस अध्ययन के लिए शोधकर्ता ने सहमत, अनिर्णित से लेकर असहमत तक के तीन सूत्रीय लिकर्ट स्केल की अभिवृत्ति मापनी को स्वनिर्मित किया है। सतत और व्यापक मूल्यांकन दृष्टिकोण पैमाने में तीन आयाम शामिल थे। सतत और व्यापक मूल्यांकन के बाल–संबंधित पक्ष के प्रति अभिवृत्ति, सतत और व्यापक मूल्यांकन के शिक्षक–संबंधित पक्ष के प्रति अभिवृत्ति और सतत और व्यापक मूल्यांकन के प्रक्रिया–संबंधित पक्ष के प्रति अभिवृत्ति। स्वनिर्मित अभिवृत्ति मापनी की विश्वसनीयता की गणना ''विभाजन–आधा पद्धति'' के माध्यम से की गई थी। जिसके लिए विश्वसनीयता गुणांक 0.6997 पाया गया। स्पीयरमैन–ब्राउन भविष्यवाणी सूत्रों को लागू करने के बाद, पूरे पैमाने के लिए विश्वसनीयता गुणांक (r) का मान 0.8233 निकला, जो अभिवृत्ति पैमाने की आंतरिक वैधता के काफी उच्च सूचकांक को भी इंगित करता है।

प्रदत्त संग्रह की प्रक्रिया – वर्तमान अध्ययन के लिए लखनऊ जिले के सरकारी और निजी दोनों प्रकार के माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों से प्रदत्त एकत्र किया गया है। शोधकर्ता ने प्रदत्तों के संग्रहण के लिए उचित अनुमति मिलने के बाद प्रदत्त संग्रह के लिए अलग–अलग माध्यमिक विद्यालयों में गया और प्राचार्य और शिक्षकों की अभिवृत्ति का अध्ययन किया।

नियोजित सांख्यिकीय तकनीकें – प्रतिशत, मध्यमान, मानक विचलन और क्रांतिक अनुपात परीक्षण का प्रयोग सतत और व्यापक मूल्यांकन के प्रति शिक्षकों की अभिवृत्ति के परीक्षण के लिए किया गया।

आकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या –

तालिका क्रमांक – 01

सतत और व्यापक मूल्यांकन के प्रति शिक्षकों की अभिवृत्ति का स्तर

शिक्षकों की अभिवृत्ति का स्तर	शिक्षकों की संख्या	प्रतिशत
अत्यधिक अनुकूल	6	7.50
अनुकूल	19	23.75
औसत	26	32.50
प्रतिकूल	21	26.25
अत्यधिक प्रतिकूल	8	10.00

तालिका क्रमांक 01 से पता चलता है कि 80 शिक्षकों में से 7.50 प्रतिशत सतत और व्यापक मूल्यांकन के बारे में अत्यधिक अनुकूल दृष्टिकोण रखते हैं। 23.75 प्रतिशत शिक्षक औसत से अधिक अनुकूल दृष्टिकोण रखते हैं, 32.50 प्रतिशत शिक्षक औसत अनुकूल दृष्टिकोण रखते हैं और 26.25 प्रतिशत शिक्षक सतत और व्यापक मूल्यांकन के प्रति औसत प्रतिकूल रवैया रखते हैं। केवल 10 प्रतिशत शिक्षकों का सतत और व्यापक मूल्यांकन के प्रति बिल्कुल भी सकारात्मक दृष्टिकोण नहीं था।

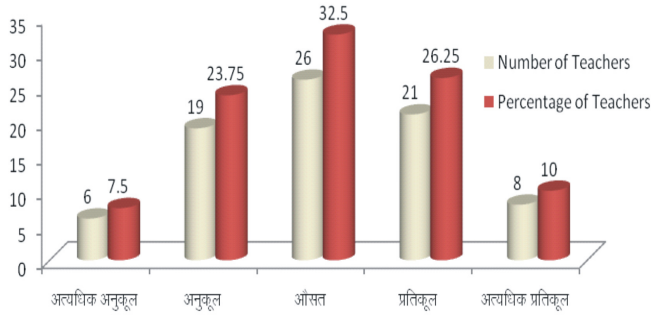

तालिका क्रमांक – 02

सरकारी एवं निजी विद्यालयों के शिक्षकों के सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति अभिवृत्ति संबंधी तुलनात्मक परिणाम

विद्यालय का प्रकार	शिक्षकों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	सार्थकता
सरकारी	40	61.55	8.24	0.75	0.05 स्तर पर असार्थक
निजी	40	60.35	5.99		

स्वतंत्रता की डिग्री – 78 0.05 स्तर के लिये निधार्रित न्यूनतम मान – 1.99

तालिका क्रमांक 02 से पता चला कि सरकारी और निजी स्कूल के शिक्षकों का औसत स्कोर क्रमशः मानक विचलन 8.24 और 5.99 के साथ मध्यमान 61.55 और 60.35 था। परिकलित क्रांतिक अनुपात मान 0.75, स्वतंत्रता के अंश 78 पर सार्थकता के 0.05 स्तर पर तालिका मान 1.99 से कम था। उपरोक्त तालिका से यह निष्कर्ष निकला कि सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति सरकारी एवं निजी शिक्षकों के दृष्टिकोण में कोई सार्थक अन्तर नहीं था। यह भी स्पष्ट था कि सरकारी शिक्षकों के रवैये का औसत मूल्य निजी शिक्षकों के रवैये से अधिक था, लेकिन अंतर महत्वपूर्ण नहीं था इसलिए परिकल्पना, ''सरकारी एवं निजी विद्यालयों के शिक्षकों के सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है'', को स्वीकार किया गया है।

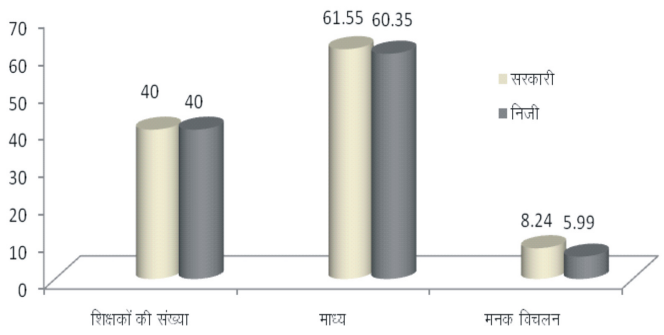

तालिका क्रमांक - 03
सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति पुरुष और महिला शिक्षकों की अभिवृत्ति संबंधी तुलनात्मक परिणाम

लिंग	शिक्षकों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	सार्थकता
पुरुष	45	60.82	7.69	0.12	0.05 स्तर पर असार्थक
महिला	35	61.11	6.57		

स्वतंत्रता की डिग्री - 78 0.05 स्तर के लिये निधार्रित न्यूनतम मान - 1.99

तालिका क्रमांक 03 से पता चला कि पुरुष और महिला शिक्षकों का औसत स्कोर क्रमश: मानक विचलन 7.69 और 6.57 के साथ मध्यमान 60.82 और 61.11 था। परिकलित क्रांतिक अनुपात मान 0.12, स्वतंत्रता के अंश 78 पर सार्थकता के 0.05 स्तर पर तालिका मान 1.99 से कम था। उपरोक्त तालिका से यह प्रदर्शित हुआ कि सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति पुरुष एवं महिला शिक्षकों के दृष्टिकोण में कोई सार्थक अन्तर नहीं था। यह भी स्पष्ट था कि महिला शिक्षकों के रवैये का औसत मूल्य, पुरुष शिक्षकों के रवैये से अधिक था, लेकिन अंतर महत्वपूर्ण नहीं था इसलिए परिकल्पना, ''सतत और व्यापक मूल्यांकन के प्रति पुरुष और महिला शिक्षकों की अभिवृत्ति में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है'', को स्वीकार किया गया है।

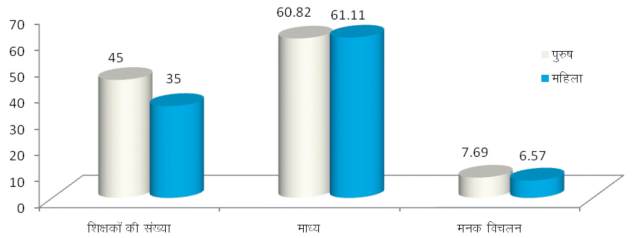

अध्ययन के निष्कर्ष - अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष निम्न हैं -

- वर्तमान अध्ययन से पता चला है कि 60 प्रतिशत से अधिक शिक्षकों का सतत और व्यापक मूल्यांकन के प्रति अनुकूल रवैया था।
- सरकारी और निजी शिक्षकों के रवैये में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं था, लेकिन सरकारी शिक्षकों का रवैया निजी शिक्षकों की तुलना में सतत और व्यापक मूल्यांकन के प्रति थोड़ा अधिक है।
- सभी शिक्षक (पुरुष और महिला) का सतत और व्यापक मूल्यांकन के प्रति समान दृष्टिकोण पाया गया।

शैक्षिक निहितार्थ - अध्ययन के प्रमुख शैक्षिक निहितार्थ निम्न हैं -

- शिक्षकों के साथ सरकारी और निजी स्कूल के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए।
- शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता पर कार्यभार के प्रभाव के कारण उनके साथ पुरुष और महिला होने के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए।
- अध्ययन सतत और व्यापक मूल्यांकन के उचित निष्पादन के रास्ते में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए शिक्षकों के सुझावों और उपचारात्मक उपायों को स्पष्ट करने में सक्षम था।
- यह अध्ययन राज्य और स्कूल प्रशासन को उन प्रमुख समस्याओं की पहचान करने में मदद कर सकता है जो शिक्षकों को सतत और व्यापक मूल्यांकन को क्रियान्वित करते समय कक्षाओं में सामना करना पड़ता है और शिक्षकों की सहायता में उचित कदम उठाएगा।

सीमाएं - प्रस्तुत अध्ययन की प्रमुख सीमाएं निम्न थीं -

- समय और संसाधनों की कमी के कारण माध्यमिक विद्यालयों के केवल 80 शिक्षकों का नमूना लिया गया है, जिससे सामान्यीकरण का दायरा सीमित हो गया।
- ऐसे कई चर थे जो सतत और व्यापक मूल्यांकन के प्रति शिक्षकों की जागरूकता को प्रभावित कर सकते हैं जैसे कुछ सामाजिक-आर्थिक चर, बौद्धिक स्तर और परिपक्वता स्तर इत्यादि। इन पर विचार नहीं किया गया।
- चूंकि जागरूकता को निश्चित प्रतिक्रियाओं के आधार पर मापा गया था, इसलिए हो सकता है कि शिक्षकों ने सही प्रतिक्रिया देने के बजाय सामाजिक रूप से स्वीकृत प्रतिक्रियाएं दी हों।
- सबसे बड़ी सीमा यह थी कि कुछ शिक्षक अपनी पसंद के समय एक-दूसरे से सलाह-मशविरा करते थे। तो इसका असर परिणाम पर पड़ सकता है।
- इन सीमाओं को देखते हुए, यह सुझाव दिया गया था कि एक बड़े नमूने का उपयोग करके और व्यापक क्षेत्रों को कवर करते

हुए एक समान लेकिन अधिक विस्तृत अध्ययन सतत और व्यापक मूल्यांकन पर किया जा सकता है।

REFERENCES -

1. Best, J. W. & Khan, J. V. (2012), Research in Education (10th ed.) New Delhi: PHI Learning Private Limited.
2. Kothari, C.R. & Garg Gaurav (2014), Research Methodology (3rd ed.) New Delhi: New Age International (P) Limited.
3. Bhatnagar Anurag & Bhatnagar A.B.(2011), Measurement and Evaluation, Meerut-5: R.Lal Book Depot
4. Khandai, H. K. & Shrivastava, P. (2013), Continuous and Comprehensive Evaluation (1st Ed.) New Delhi: Alpha Publication.
5. Panigrahi S.C. & Patel R.C. (2013), Continuous and Comprehensive Evaluation (1st Ed.) New Delhi: A.P.H. Publishing Corporation.
6. CBSE (2010). Continuous and Comprehensive Evaluation Manual for Teachers Classes VI to Viii. New Delhi: Author.
7. Singhal, P. (2012).Continuous And Comprehensive Evaluation-A Study of Teacher's Perception. Delhi Business Review Vol.13.No.1, (Jun-12) Pp.312-327.
8. Garret, H.E. and Woodworth, R.S. (2012). Statistics in Psychology and Education. New Delhi: Surjeet Publications.
9. Kaul, Lokesh (2009), Methodology of Educational Research (4th Revised Edition). New Delhi: Vikas Publishing House Pvt. Ltd.
10. Murugan S. P., Kumar R. S., Edward A. "Teachers Attitude towards Continuous and Comprehensive Evaluation on Secondary Schools" Volume: 5 | Issue: 1 | Jan 2015 | ISSN - 2249-555X.
11. Mishra, S. & Mallik, P. (2014). Perception of teachers, parents and students about continuous and comprehensive evaluation at elementary school level in Odisha. Pedagogy of Learning, Vol.2 (1), pp.19-28.
12. Thote, p. (2014) An Analysis of Attitude of Secondary School Teachers Towards FDP of CCE International Multidisciplinary Research Journal Research Direction Vol I Issue VIII Feb 2014 ISSN No: 2321-5488
13. Rathee, I., Continuous and Comprehensive Evaluation- A Study of Teachers' Attitude Review Of Research | Vol 3 | Issue 12 | Sept 2014, ISSN:- 2249-894X

ISSN 2278 - 0327

गुरु जाम्भोजी की सांस्कृतिक चेतना की प्रासंगिकता

किरण मयी
शोधार्थी, पी.एच.डी. (हिन्दी विभाग)
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

भूमिका -

गुरु जाम्भोजी ने जब इस मरूधरा पर अवतार लिया था, उस समय देश में, समाज में अराजकता का माहौल था। भारतीय संस्कृति भी इससे प्रभावित हुई। उस समय संस्कृति तथा समाज एक संक्रमण के दौर से गुजर रहे थे। संस्कृति मनुष्यों के सुसंस्कृत विचारों, आदर्शों और कलाओं को अभिव्यक्त करती हे। मध्यकाल दो संस्कृतियों के संघर्ष का समय था। भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्वों में आध्यात्मिकता तथा वसुधैव कुटुम्बकम् प्रमुख है। परन्तु धीरे-धीरे सांस्कृतिक मूल्यों को ह्रास हो रहा था। गुरु जाम्भोजी ने तत्कालीन युग में सांस्कृतिक पर्यावरण की रक्षा के लिए उनतीस नियमों की आचार संहिता प्रस्तुत की। उन्होंने इन नियमों के माध्यम से भारतीय संस्कृति को जीवित रखने का प्रयास किया है। अपनी 'सबदवाणी' के माध्यम से उन्होंने संस्कृति में उत्पन्न असंतुलन को संतुलित करने का प्रयास किया।

वर्तमान समय में भी भारतीय संस्कृति अपना अस्तित्व खो चुकी है। उन्नति व विकास के मार्ग पर चलते हुए समाज अपने मूलभूत मूल्यों व संस्कारों को भूल चुका है। उदारता एवं समन्वय की विशेषता के कारण ही भारतीय संस्कृति का इतना विकास हो सका है। गुरु जाम्भोजी ने अपने उपदेशों में मानव जाति को जीवन जीने की विधि बताकर भारतीय संस्कृति को सुदृढ़ बनाने में अपना महत्वपूर्ण योदान दिया है। गुरु महाराज ने जो सांस्कृतिक चेतना की अलख मध्यकाल में जगाई थी, वह आज भी प्रासंगिक सिद्ध होती है।

गुरु जाम्भोजी की सांस्कृतिक चेतना की प्रासंगिकता -

मनुष्य का सम्पूर्ण वातावरण यथा रहन-सहन, वेशभूषा, खान-पान, घर, आवास, अन्य उपयोगी तत्व तथा सामाजिक व्यवस्था आदि सांस्कृतिक पर्यावरण के अन्तर्गत आता है।

पर्यावरण चेतना एवं संरक्षण भारतीय संस्कृति का एक अटूट हिस्सा है। संस्कृति का क्षेत्र समाज होता है अतएव संस्कृति एक व्यापक प्रक्रिया है। संस्कृति मनुष्यों के सुसंस्कृत विचारों, आदर्शों और कलाओं को अभिव्यक्त करती है। जाम्भोजी की वाणी में सांस्कृतिक मूल्यों का वर्णन पूर्ण रूप से मिलता है। उन्होंने 29 नियमों के माध्यम से सांस्कृतिक चेतना जगाने का प्रयास किया है।

मर्यादाविहिन समाज की परिकल्पना करना भ्रांतिपूर्ण है। क्योंकि प्रत्येक समाज की एक संस्कृति होती है एक परिपूर्ण मर्यादा होती है जिसमें रहकर समाज के कार्य-व्यवहार किये जाते है। गुरु जाम्भोजी ने तत्कालीन समाज में व्याप्त भेदभाव, हिंसा, आडम्बरों तथा कुरीतियों का विरोध किया है। वे बिना किसी भेदभाव के सभी को समान समझते थे। इसलिए उन्होंने मनुष्य का मूल्यांकन कर्म के आधार पर करने का उपदेश दिया है:-

उत्तम कुली का उत्तिम ने होयबा कारण किरिया सारू"[1]

उनके अनुसार उत्तम कुल में जन्म लेने से कोई व्यक्ति उत्तम नहीं होता है। बल्कि कर्म के आधार पर ही श्रेष्ठ होता है। इसलिए गुरु जाम्भोजी ने कर्म करने का सर्वाधिक बल दिया है और कर्म नक रने वाले व्यक्ति को निरर्थक माना है:-

" कंण विणि कूकस, रस विणि बाकस
विणि किरिया परवार जिसौ।"[2]

भारतीय संस्कृति में प्रकृति की माँ की तरह पूजा की जाती है। गुरु जाम्भोजी ने *" जीया नै जुगती अ ंमूवां नै मुगती"* के माध्यम से आचार-विचार की शुद्धता तथा नि:स्वार्थ कर्म भावना से मोक्ष प्राप्ति का उपदेश दिया।

उन्होंने अपने साहित्य में भारतीय संस्कृति के सभी प्रमुख तत्वों की सहज अभिव्यक्ति व पुष्टि की है। जिनका संक्षिपत विवरण इस प्रकार है:-

अहिंसा -

गुरु जाम्भोजी ने अपने धर्म नियमों व वाणी में हिंसा का प्रबल विरोध किया है। *' जीव दया पालणी, रूंख लीला नहीं धावै*'[3] उन्होंने सभी प्राणियों तथा पेड़-पौधों पर दया का भाव रखने की प्रेरणा दी है तथा अहिंसा के मार्ग पर चलना भारतीय संस्कृति की विशेषता बताई है।

क्षमा-दया -

क्षमा और दया का भाव भारतीय सांस्कृतिक पर्यावरण की पहचान है। क्षमा-नम्रता का ही दूसरा रूप है। दयावान व्यक्ति के हृदय में ही क्षमा का भाव होता है।

गुरु जाम्भोजी ने कहा है:-

" दया हिरदे घरो, गुरु बताओ जाण'[4]

यज्ञ करना -

'यज्ञ' करना भी भारतीय संस्कृति में आवश्यक माना गया है।

प्रतिदिन यज्ञ करना प्राचीन समय में जितना आवश्यक माना जाता था, उतना आज भी माना जाता है। यज्ञ आध्यात्मिक, सांस्कृतिक दृष्टि से तो महत्त्व रखता है बल्कि प्राकृतिक पर्यावरणीय दृष्टि से भी यह लाभ दायक है।

गुरु जाम्भोजी ने हवन की महत्त्वपूर्णता का वर्णन करते हुए कहा है:-

'' होम हित चित प्रीत सूं होय, वास बैंकुठे पावो।''[5]

परोपकार -

भारतीय संस्कृति में भी मानवीय गुणों को अपनाने पर बल दिया गया है। हमारी संस्कृति में परहित को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। गुरु जाम्भोजी ने भी परोपकार करने तथा निस्काम भाव से दूसरों की भलाई के लिए दान देने का संदेश दिया है।

उन्होंने कहा है:-

'' थोड़ै मांहि थोडे रो दीजै, होतै नांहि न कीजै।''[6]

विश्व बन्धुत्व की भावना -

वसुधैव कुटुम्बकम् भारतीय का उद्घोष है। उन्होंने स्वयं द्वारा स्थापित बिश्नोई पंथ में सभी धर्मों, वर्गों व जातियों के लोगों को शामिल किया है। उनकी वाण्यिों में भी विश्व बन्धुत्व का भाव स्पष्ट दिखाई देता है।

गुरु की महिमा -

भारतीय संस्कृति में गुरु को विशेष स्थान प्राप्त है। गुरु जाम्भोजी ने भी अनेक स्थानों पर बहुत बार गुरु की महिमा का वर्णन किया है। उनकी वाणी में प्रथम सबद गुरु की महिमा से ही शुरू होता है। उन्होंने गुरु को मानव के सच्चे मार्गदर्शक के रूप में वर्णित किया है।

उन्होंने कहा है:-

'' गुरु चीन्हों गुरु चीन्ह पुरोहित।
गुरु मुरा धर्म बरवाणी।''[7]

निष्कर्ष -

इस प्रकार वर्तमान समय भी भारतीय संस्कृति अपना मूल स्वरूप खो चुकी है। चारों तरफ भ्रष्टाचार, झूठ, निंदा, चोरी, हिंसा तथा अनैतिकता का माहौल है। सांस्कृति में नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा हैं। गुरु जाम्भोजी की 'सबदवाणी' एक 'प्रकाश पुंज' की भांति मनुष्य को सद्मार्ग दिखाती है। गुरु महाराज की 'सांस्कृतिक चेतना' जितनी मध्यकाल में प्रासंगिकता थी उतनी ही प्रासंगिक आज भी प्रतीत होती है। गुरु जाम्भोजी का लक्ष्य समाज सुधार करना एवं सदगुणों का विकास करके लोगों को जीवन की सही विधि बताना रहा है। उनके पर्यावरण चेतना एवं शुद्धिकरण उपाय वर्तमान परिदृश्य में पूर्णत: प्रासंगिक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई, गुरु जांभोजी का जीवन दर्शन, पृ. 17, जांभाणी साहित्य अकादमी, बीकानेर
2. (सं.) प्रो. मोहन, वर्तमान परिदृश्य में गुरु जांभोजी का चिंतन, पृ. 46, जांभाणी साहित्य अकादमी, बीकानेर (राजस्थान)
3. डॉ. मनवीर, अमरज्योति मासिक पत्रिका, पृ. 25, बिश्नोई सभा, हिसार, जून 2021
4. डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई, गुरु जाम्भोजी का जीवन दर्शन, पृ. 251, जांभाणी साहित्य अकादमी, बीकानेर (राजस्थान)
5. डॉ. बनवारी लाल सहू, बिश्नोई पंथ और साहित्य, पृ. 16, जांभाणी साहित्य अकादमी, बीकानेर (राजस्थान)
6. (सं.) प्रो मोहन, वर्तमान परिदृश्य में गुरु जांभोजी का चिंतन, पृ. 49, जांभाणी साहित्य अकादमी, बीकानेर (राजस्थान)
7. डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, श्री जांभोजी और जम्भवाणी मीमांसा, पृ. 520, श्री गुरु जम्भेश्वर साहित्य सभा (राजस्थान)

ISSN 2278 - 0327

अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन

अनिता सिंह
शोधार्थी, गृह विज्ञान संकाय,
मानसरोवर ग्लोबल विश्वविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)

डॉ. माधवी पांडे
मानसरोवर ग्लोबल विश्वविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)

प्रस्तुत शोध कार्य में अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। इस अनुसंधान कार्य हेतु प्रतिदर्श के रूप में हाईस्कूल की कक्षा 9वीं में अध्ययनरत 150 छात्रों (75 अनुसूचित जनजाति तथा 75 गैर अनुसूचित जनजाति) का दैव निदर्शन विधि से चयन कर उन पर विद्याभारती प्रकाशन, जबलपुर की नैतिक मूल्य मापनी का प्रशासन किया गया। क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण किया गया। शोधकार्य से प्राप्त परिणामों के अनुसार अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के मध्य विभिन्न नैतिक मूल्यों – ईमानदारी, लगनषीलता, मानवता, विन्रमता व समग्र नैतिक मूल्यों में सार्थक अंतर पाया गया।

मुख्य शब्दः अनुसूचित जनजाति, गैर अनुसूचित जनजाति, नैतिक मूल्य।

मानव व्यक्तित्व निर्माण के लिये शिक्षा एक ऐसा सशक्त माध्यम है जो समाज के विकास के लिए नियमित प्रक्रिया है। शिक्षा के संदर्भ में प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो ने कहा है कि शिक्षा उस प्रशिक्षण को कहेंगे जो बच्चों में उचित आदत उत्पन्न करके, सद्गुणों का विकास कर सके। अतः शिक्षा अपने संकुचित अर्थ के साथ-साथ व्यापक अर्थ में भी प्रयुक्त होती है। मूल्य केवल कक्षा की चार दीवारी में स्थापित नहीं किये जा सकते वरन् वातावरण, समाज आदि से भी ग्रहण किये जाते हैं।

जीवन में सफलता का आधार वास्तव में शिक्षा में ही निहित है। समय के साथ-साथ शिक्षा के उद्देश्य भी बदलते रहते हैं, स्वतंत्रता के बाद हमारे देश में शिक्षा का समाजीकरण किया गया तथा शिक्षा के माध्यम से नागरिकता के गुणों को विकसित करने का प्रयास किया गया, किन्तु आधुनिक भारत में शिक्षा को व्यवसायोन्मुख करने का प्रयत्न किया जा रहा है। हमारी संस्कृति को संरक्षित व नयी पीढ़ी को हस्तान्तरित करने का भी प्रयास किया जा रहा है। इन सभी के लिये आवश्यक है कि हमारा प्रयास सकारात्मक हो। मानव चरित्र के निर्माण में सद प्रवृत्तियों और आदतों का विशेष योगदान होता है। डम्बिल ने कहा है कि ''व्यक्ति जिन प्रवृत्तियों को धारण करता है उन सभी का योग चरित्र होता है।'' छोटी-छोटी आदतों से ही चरित्र बनता है और मूल्यों की स्थापना से ही आदतों का निर्माण होता है, जैसा कि सैम्युअल स्माइल ने कहा है कि, ''चरित्र आदतों का पुंज है।'' चरित्र निर्माण में मूल्यों व आदर्शों का बड़ा हाथ होता है। किसी भी घटना पर मनुष्य अपने विचार प्रस्तुत करने से पूर्व निर्णय करता है कि वह क्या अपनायें व क्या त्याग करें। जब व्यक्ति के मन में कोई विचार निर्णयात्मक तरीके से आता है तो वह मूल्य कहलाता है। मूल्य केवल औपचारिक शिक्षा से ही ग्रहण नहीं किये जाते वरन् अनौपचारिक साधनों से भी प्राप्त किये जाते हैं, जिसके लिये समय स्थान या किसी विशेष पाठ्यक्रम की आवश्यकता नहीं होती। हमारे जीवन में मूल्यों का अत्यधिक महत्व है। हमारे देश में विभिन्न धर्म, भाषा, जाति, बोली के लोग पाये जाते हैं। अतः सभी धर्म, जाति व संप्रदाय के रहन-सहन, बोली आदि में विषमता है परंतु फिर भी सभी में एक तत्व समान रूप से पाया जाता है वह है मूल्य। प्राचीन काल से ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अविरल भावना भारतीय जन-जीवन में प्रवाहित होती रही है। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह एवं अस्तेय की भावना से भारतीय जीवन शैली सदा ओत-प्रोत रही है। हमारी शिक्षा प्रणाली भी इन भावनाओं को विद्यार्थियों में स्थापित करने का प्रयास करती है, किन्तु वर्तमान समय में हमारा देश मूल्यों के संकट के दौर से गुजर रहा है। आज मूल्यों का ह्रास हो रहा है। भारत देश अपनी सभ्यता व संस्कृति के लिये सदियों से विश्व में अपना सर्वोच्च स्थान प्राप्त करता रहा है, जिसका कारण मूल्य ही रहे हैं किन्तु भौतिकता हमारे देश में धीरे-धीरे पैर पसार रही है। सदाचरण, ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा, सहिष्णुता जैसे गुणों में कमी आती जा रही है, इसका मुख्य कारण धनोपार्जन की तीव्र इच्छा व लालसायें हैं।

अतः इस बात की बहुत अधिक आवश्यकता है कि नैतिक मूल्यों पर अधिक से अधिक शोध कार्य करके उन सभी कारणों का पता लगाया जाए जो नैतिक मूल्यों को सकारात्मक या नकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं, जिससे नकारात्मक कारकों को दूर करके

एवं सकारात्मक कारकों को आगे बढ़ाकर बच्चों में बेहतर नैतिक मूल्यों का विकास सुनिश्चित किया जा सके। प्रस्तुत शोध कार्य भी इसी दिषा में किया गया एक लघु किंतु महत्वपूर्ण प्रयास है।

प्रस्तुत शोध से संबंधित पूर्व में भी कुछ शोध किये गये हैं जैसे- **कालिया, अशोक एवं शैरोन, अनिता** (2004) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि अनुसूचित जाति व गैर अनुसूचित जाति के किशोरों के सैद्धांतिक एवं धार्मिक मूल्यों में सार्थक अंतर पाया गया एवं अनुसूचित जाति व गैर अनुसूचित जाति की किशोरियों के सैद्धांतिक, सौन्दर्यात्मक एवं धार्मिक मूल्यों में सार्थक अंतर पाया गया, जबकि अन्य मूल्यों में दोनों समूहों के मध्य कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया। **पाण्डेय, राजेश एवं मुखर्जी, पापिया** (2008) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि सामान्य तथा अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों में सार्थक अतंर पाया गया तथा सामान्य जाति के विद्यार्थियों में, अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों की तुलना में उच्च नैतिक मूल्य पाए गये। **पोद्दार, आर.टी.** (2008) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि अनुसूचित जनजाति एवं गैर अनुसूचित जनजाति की छात्राओं के नैतिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सैद्धांतिक मूल्यों में सार्थक अतंर पाया गया। **कोष्ठा, लता व अन्य** (2009) ने अपने अध्ययन में पाया कि विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि पंजाबी, हिन्दू, मुस्लिम के छात्रों के नैतिक मूल्य- ईमानदारी/मानवीयता पर सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया। छात्राओं के नैतिक मूल्य - ईमानदारी पर सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि का प्रभाव नहीं पाया गया जबकि नैतिक मूल्य - मानवता पर सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि का सार्थक प्रभाव पाया गया। गया। **पाटिल, नलिनी** (2009) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि अनुसूचित जनजाति एवं गैर अनुसूचित जनजाति के प्रशिक्षुओं के सौन्दर्यात्मक, दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक मूल्यों में सार्थक अंतर पाया गया। दोनों समूहों के मध्य नैतिक एवं आर्थिक मूल्यों में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। महिलाओं एवं पुरुष प्रशिक्षुओं के सौन्दर्यात्मक, दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक मूल्यों में सार्थक अंतर पाया गया। **बाजपेयी, आशीष एवं पंवार, मोहन** (2016) के अध्ययन के निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि अनुसूचित जनजाती एवं गैर अनुसूचित जनजाती की छात्राओं के मध्य धार्मिक, प्रजातांत्रिक, सौंदर्यात्मक, पारिवारिक प्रतिष्ठा मूल्यों में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि सामाजिक, आर्थिक, ज्ञान, सुखवादी, शक्ति, स्वास्थ्य मूल्यों में सार्थक अंतर पाया गया तथा अनुसूचित जनजाती की छात्राओं में ज्ञान, शक्ति, स्वास्थ्य मूल्य गैर अनुसूचित जनजाति की छात्राओं की तुलना में बेहतर पाए गए परंतु गैर अनुसूचित जनजाति की छात्राओं में सामाजिक, आर्थिक, सुखवादी, मूल्य अनुसूचित जनजाति की छात्राओं की तुलना में बेहतर पाए गए। **अवस्थी, पूनम एवं खरे, ज्योत्सना** (2018) के अध्ययन के निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि अनुसूचित जनजाति एवं गैर अनुसूचित जनजाति की छात्राओं के मध्य नैतिक मूल्य - ईमानदारी, विनम्रता में सार्थक अंतर पाया गया तथा अनुसूचित जनजाति की छात्राओं में नैतिक मूल्य - ईमानदारी, गैर अनुसूचित जनजाति की छात्राओं की तुलना में उच्च पाई गई जबकि नैतिक मूल्य - विनम्रता गैर अनुसूचित जनजाति की छात्राओं में, अनुसूचित जनजाति की छात्राओं की तुलना में उच्च पाई गई। अनुसूचित जनजाति एवं गैर अनुसूचित जनजाति की छात्राओं के मध्य नैतिक मूल्य - लगनशीलता, मानवता में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। **कंडुलना, बार्थोलोमियस एवं बाजपेयी, आशीष कुमार** (2018) के अध्ययन के निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि आदिवासी एवं गैर आदिवासी छात्राओं के मध्य नैतिक मूल्य - ईमानदारी, लगनशीलता, मानवता में सार्थक अंतर पाया गया तथा आदिवासी छात्राओं में नैतिक मूल्य - ईमानदारी, गैर आदिवासी छात्राओं की तुलना में उच्च पाई गई जबकि गैर आदिवासी छात्राओं में नैतिक मूल्य - लगनशीलता, मानवता आदिवासी छात्राओं की तुलना में उच्च पाई गई। आदिवासी एवं गैर आदिवासी छात्राओं के मध्य नैतिक मूल्य - विनम्रता तथा समग्र नैतिक मूल्यों में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

उद्देश्य:-

1. अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के नैतिक मूल्य-ईमानदारी, लगनशीलता, मानवता, विनम्रता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के समग्र नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना:-

1. अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के मध्य नैतिक मूल्य-ईमानदारी, लगनशीलता, मानवता, विनम्रता में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।
2. अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के मध्य समग्र नैतिक मूल्यों में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

प्रतिदर्श -

प्रतिदर्श के रूप में 150 छात्रों (75 अनुसूचित जनजाति एवं 75 गैर अनुसूचित जनजाति) का दैव निदर्शन विधि से चयन किया गया है।

उपकरण:-

उपकरण के रूप में विद्याभारती प्रकाशन, जबलपुर की नैतिक मूल्य मापनी का उपयोग प्रदत्त संकलन के लिए किया गया है।

विधि:-

सर्वप्रथम भोपाल महानगर के शहरी क्षेत्र में स्थित माध्यमिक स्तर के विद्यालयों की कक्षा नवमीं में अध्ययनरत् 150 छात्रों (75 अनुसूचित जनजाति तथा 75 गैर अनुसूचित जनजाति) का दैव निदर्शन विधि से चयन कर उन पर विद्याभारती प्रकाशन, जबलपुर की नैतिक

मूल्य मापनी का प्रशासन किया गया। मध्यमान, मानक विचलन व क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण किया गया। प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष निकाले गये।

परिणामों का विश्लेषण:-

परिकल्पना - 1: अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के मध्य नैतिक मूल्य-ईमानदारी, लगनशीलता, मानवता, विनम्रता में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

सारणी क्रमांक 01

अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के विभिन्न नैतिक मूल्यों संबंधी तुलनात्मक परिणाम

नैतिक मूल्य	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	सार्थकता
ईमानदारी	अनुसूचित जनजाति	75	9.63	2.90	3.73	0.01 स्तर पर सार्थक
	गैर अनुसूचित जनजाति	75	8.08	2.12		
लगनशीलता	अनुसूचित जनजाति	75	10.04	2.36	3.55	0.01 स्तर पर सार्थक
	गैर अनुसूचित जनजाति	75	11.52	2.73		
मानवता	अनुसूचित जनजाति	75	8.47	2.48	2.95	0.01 स्तर पर सार्थक
	गैर अनुसूचित जनजाति	75	9.69	2.61		
विनम्रता	अनुसूचित जनजाति	75	8.01	2.02	5.48	0.01 स्तर पर सार्थक
	गैर अनुसूचित जनजाति	75	9.93	2.26		

स्वतंत्रता के अंश - 148

0.01 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान - 2.61

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के मध्य नैतिक मूल्य - ईमानदारी, लगनशीलता, मानवता व विनम्रता में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर है, क्योंकि इन नैतिक मूल्यों के लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमश: 3.73, 3.55, 2.95, 5.48 स्वतंत्रता के अंश 148 पर सार्थकता के 0.01 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान 2.61 की अपेक्षाकृत अधिक हैं।

अत: इन परिणामों के आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के मध्य नैतिक मूल्य - ईमानदारी, लगनशीलता, मानवता व विनम्रता में सार्थक अंतर पाया गया तथा अनुसूचित जनजाति के छात्रों में नैतिक मूल्य - ईमानदारी, गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों की तुलना में उच्च पाई गयी जबकि गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों में नैतिक मूल्य - लगनशीलता, मानवता व विनम्रता, अनुसूचित जनजाति के छात्रों की तुलना में उच्च पाई गयी।

अत: उपरोक्त परिणामों के परिप्रेक्ष्य में पूर्व में ली गई परिकल्पना 'अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के मध्य नैतिक मूल्य-ईमानदारी, लगनशीलता, मानवता, विनम्रता में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा' अस्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना - 2: अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के मध्य समग्र नैतिक मूल्यों में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

सारणी क्रमांक 02

अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के समग्र नैतिक मूल्यों संबंधी तुलनात्मक परिणाम

नैतिक मूल्य	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	सार्थकता
समग्र	अनुसूचित जनजाति	75	36.15	8.12	2.32	0.05 स्तर पर सार्थक
	गैर अनुसूचित जनजाति	75	39.21	8.08		

स्वतंत्रता के अंश - 148

0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान - 1.98

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के मध्य समग्र नैतिक मूल्यों में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर है, क्योंकि इसके लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान 2.32 स्वतंत्रता के अंश 148 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान 1.98 की अपेक्षाकृत अधिक है।

अत: इन परिणामों के आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के

मध्य समग्र नैतिक मूल्यों में सार्थक अंतर पाया गया तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों में समग्र नैतिक मूल्य, अनुसूचित जनजाति के छात्रों की तुलना में उच्च पाए गये।

अत: उपरोक्त परिणामों के परिप्रेक्ष्य में पूर्व में ली गई परिकल्पना 'अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के मध्य समग्र नैतिक मूल्यों में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा' अस्वीकृत की जाती है

निष्कर्ष -

1. अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के मध्य नैतिक मूल्य - ईमानदारी, लगनशीलता, मानवता व विनम्रता में सार्थक अंतर पाया गया तथा अनुसूचित जनजाति के छात्रों में नैतिक मूल्य - ईमानदारी, गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों की तुलना में उच्च पाई गयी जबकि गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों में नैतिक मूल्य - लगनशीलता, मानवता व विनम्रता, अनुसूचित जनजाति के छात्रों की तुलना में उच्च पाई गयी।
2. अनुसूचित जनजाति तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों के मध्य समग्र नैतिक मूल्यों में सार्थक अंतर पाया गया तथा गैर अनुसूचित जनजाति के छात्रों में समग्र नैतिक मूल्य, अनुसूचित जनजाति के छात्रों की तुलना में उच्च पाए गये।

// संदर्भ ग्रंथ सूची //

1. अस्थाना, मधु एवं वर्मा, किरणबाला (1996) ''व्यक्तित्व मनोविज्ञान'', मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृष्ठ क्रमांक 86
2. गुप्ता, एस. पी. (2005) ''सांख्किीय विधियां'', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
3. पाण्डेय, रामशकल (2000) ''मूल्य शिक्षा के परिप्रेक्ष्य'', आर.लाल बुक डिपो, मेरठ
4. पाण्डेय, रामशकल (2008) ''धर्म दर्शन और शिक्षा'', आर.लाल बुक डिपो, मेरठ
5. सिंह, अरूण कुमार (2005) ''शिक्षा मनोविज्ञान'', भारती भवन पब्लिशर्स, पटना
6. शर्मा, आर.ए., (1995) ''मानव मूल्य एवं शिक्षा'', आर.लाल बुक डिपो, मेरठ
7. वालिया, जे.एस. (2005) ''शिक्षा मनोविज्ञान की बुनियादें'', पाल पब्लिशर्स, जालंधर
8. अवस्थी, पूनम एवं खरे, ज्योत्सना (2018) ''अनुसूचित जनजाति एवं गैर अनुसूचित जनजाति की छात्राओं के नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन'', स्वदेशी रिसर्च फाउन्डेशन, वॉल्युम 5, अंक 8, जून 2018, पेज नम्बर 84-86
9. बाजपेयी, आशीष एवं पंवार, मोहन (2016) ''अनुसूचित जनजाती एवं गैर अनुसूचित जनजाती की छात्राओं के मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन'', हिन्दू अंतर्राष्ट्रीय रिसर्च जर्नल, वर्ष 3, अंक 10, फरवरी-अप्रैल 2016, पेज नम्बर 255-260
10. पाण्डेय, राजेश एवं मुखर्जी पापिया (2008) ''सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों के प्रति जागरूकता का अध्ययन'', रिसर्च लिंक - 57, वाल्यूम *VII (10),* दिसंबर 2008, 84-87
11. कोष्ठा, लता; पटेल, लाजवंती एवं निगम, भूपेन्द्र (2009) ''विभिन्न सांस्कृतिक प्रष्ठभूमि के विद्यालयों के छात्र एवं छात्राओं के नैतिक मूल्य में अंतर का अध्ययन'', रिसर्च हंट, वाल्यूम *II* इश्यू *IV* मार्च-अप्रैल 2009, 181-185
12. **Kalia, Ashok kumar and Sheoran, Anita (2004)** **"**Genderwise analysys of values of schedule caste and non scheduled caste adolescents", *Prachi journal of psycho-cultural dimension, Vol. 20(2), Pg. No. 126-132*
13. **Kandulna, Bartholomius and Bajpai, Asheesh Kumar (2018)** "A Comparative Study of Moral Values of Tribal and Non Tribal Girls of Secondary Level Schools", *International Journal of Research in Social Sciences, Volume 9, Issue 4, April 2019, Page No. 1888-1896*
14. **Patil, Nalini (2009)** "A study of the value system among tribal and non tribal teacher trainees", *Research Link - 61, Vol. - VIII (2), April 2009, Pg. No. 107-108*
15. **Potdar, R.T. (2008)** "Values among college going tribal and non tribal students", *Research Link - 57, Vol. - VII (10), Dec. 2008, Pg. No. 47-49*

ISSN 2278 - 0327

महिलाओं पर घरेलू हिंसा, उसके कारण एवं निदान

किरण देवी
एम.ए.समाजशास्त्र, बी.एड, NET

सारांश:

इस शोध पत्र में मैंने महिलाओं पर होने वाली घरेलू हिंसा, उसके कारण तथा समाज पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव और इसके निदान की चर्चा की है। जब कभी महिलाओं पर घरेलू हिंसा की बात की जाती है, तो इससे हमारा अभिप्राय: महिलाओं पर एक तरह की हिंसा है, जो साथी और अन्य पारिवारिक सदस्यों द्वारा कहीं भी किसी भी रूप में की जाती है तथा महिलाओं के अंर्तमन को आहत करती है। जिसका उसके मन-मस्तिष्क पर गहन, गम्भीर और स्थायी प्रभाव पड़ता है। घरों में महिलाओं पर हिंसा, उनका अपमान, तिरस्कार, दमन, शोषण व उत्पीड़न उतना ही प्राचीन है जितना कि पारिवारकि जीवन का इतिहास। महिलाओं के साथ घरों में अनेक प्रकार का दुर्व्यवहार जैसे शारीरिक उत्पीड़न, यौन शोषण, भावात्मक शोषण तथा वित्तीय संसाधनों से वंचित रखना आदि किया जाता है। अफसोस इस बात का है कि इस संबध में न तो प्रचुर मात्रा में साहित्य उपलब्ध है तथा न ही सामाजिक समस्याओं की पुस्तकों में इस विषय में कुछ उल्लेखनीय लिखा गया है। इस अपेक्षा का कारण है कि प्रथमत: पुरुष स्वयं को महिला से श्रेष्ठ समझता है तथा उस पर किये गये अत्याचार को हिंसा समझता ही नहीं है और दूसरे महिलाएं स्वयं अपने धार्मिक मूल्यों एवं सामाजिक दृष्टिकोण के कारण घर में अपने प्रति की गई हिंसा से इंकार कर देती है।

मुख्य-शब्द:

घरेलू हिंसा, दुष्प्रभाव, पारिवारिक, अंर्तमन, उत्पीडन, दुर्व्यवहार, यौन शोषण।

घरेलू हिंसा एक प्रकार का शारीरिक शोषण है जो पति या साथी द्वारा, एक महिला के विरुद्ध किया जाता है।

गनले और चेस्टर के अनुसार '''घरेलू हिंसा' एक आक्रामक और हिंसक व्यवहार का पैटर्न हैं, जिसमें शरीरिक, यौनिक, वाणी और मनोवैज्ञानिक साथ ही आर्थिक शोषण शामिल है, जो वयस्क या किशोर अपने अतरंग साथी का करते है।''[1] घरेलू हिंसा में भावात्मक शोषण से अभिप्राय किसी महिला के साथ निजी या सार्वजनिक रूप से अपमानजनक व्यवहार करने को कहते है जैसे किसी को कमतर महसूस कराना, ब्लैकमेल करना, दोस्तों व परिवार के सामने नीचा दिखाना जबकि शारीरिक उत्पीड़न में किसी महिला के साथ मार-पीट करना तथा मारने की धमकी देना शामिल है। यौन शोषण घरेलू हिंसा का एक अन्य भयानक कृत्य है जिसमें किसी को शारीरिक बल द्वारा कुकर्म करने के लिए मजबूर करना, बलात्कार करना आदि।

''कई देशों में कानून अपनी पत्नी को यौन संबधं बनाने के लिए मजबूर करने के विरुद्ध भी है। यह वैवाहिक बलात्कार कहा जाता है।''[2] जबरन यौन गतिविधियों में शामिल करना इत्यादि भी यौन हिंसा माना जाता है। इसके अलावा जब एक अंतरंग साथी के आर्थिक संसाधनों का अन्य साथी द्वारा उपयोग में लाना या पति द्वारा पत्नी को जानबूझकर वित्तीय साधनों से वचित रखना घरेलू हिंसा के आर्थिक आयामों में शामिल है।

''हाल ही में WHO द्वारा किये गए शोध (2013) में 'लन्दन स्कूल ऑफ हाइजिन' और साउथ अफ्रीकन मेडिकल रिसर्च कांउसिल ने बताया कि 15 वर्ष और उससे अधिक उम्र की 30 प्रतिशत महिलाएं शारीरिक और यौन यंत्रणा से गुजरती है। जो उनके साथी द्वारा किया जाता है।''[3] घरेलू हिंसा के रूप और प्रतिशत में भी व्यापक भिन्नता है।

''मध्य अफ्रीका के उप-सहारा में 2/3 महिलाएं पीड़ित हुई हैं। उत्तरी अमेरिका में हर पांच में से एक महिला अपने अंतरंग साथी द्वारा हिंसा की शिकार है।''[4] इतना ही नही घर में बुर्जुगों और बच्चों को भी अनेक प्रकार की घरेलू हिंसा का सामना करना पड़ता है जिससे वे भावात्मक व्यवहार की समस्या से पीड़ित हो सकते हैं।

कारण: घरेलू हिंसा के कई कारण है। किंतु यह हिंसा क्यों की जाती है, महिलाओं के साथ हिंसात्मक व्यवहार के निम्नलिखित कारण है-

1. जिसमें मुख्य कारण दहेज है।
2. व्यक्तिगत कारण- इसमें कुरूपता, नि:सतान रहना, पुत्र जन्म न होना, व्यसनी, अशिक्षा आदि है।
3. मनोवैज्ञानिक कारण- इसमें तनाव, डिप्रेशन, पुरुषवादी सोच, असफलता है।
4. प्रतिशोध की भावना।
5. आर्थिक व सामाजिक कारण- इसमें बेरोजगारी, गरीबी तथा आर्थिक निर्भरता, दोहरे मापदंड, स्त्रियों की आर्थिक दशा आदि है।
6. व्यक्ति का परिवेश-इसमें सांस्कृतिक भिन्नता, जीवन शैली की

भिन्नता, पारिवारिक पृष्ठभूमि है।

''घरेलू हिंसा के अन्य कारणों में महिलावादी समाजशास्त्री जैसे बुजावा एवं बुजावा ने समाज में सत्ता का असमान वितरण, नीचा पद या पुरुष के अधीनस्थ पद होना। उसके अनुसार लिंग आधारित भूमिकाओं का ऐतिहासिक व सामाजिक स्वीकृति का होना घरेलू हिंसा में महिलाओं के प्रति आक्रामकता में योगदान देती है।''[5]

घरेलू हिंसा परिवार में मुख्य रूप से पुरुषों द्वारा महिलाओं, बच्चों व विकलांगों के साथ की जाती है।

''हाल ही में लोकप्रिय टेलीविजन शो 'सत्यमेव जयते' ने 'घर पर खतरे' शीर्षक से इस प्रकरण को मुद्दा बनाते हुए पूरा एक शो दिया है।''[6] भारत सरकार के परिवार कल्याण और स्वास्थ्य और योजना आयोग के अलग-अलग अध्ययनों से पता चला है कि भारत में घरेलू हिंसा की शिकार महिलाएं 80 से 90 फीसदी के बीच है।

समाधान के लिए दृष्टिकोण: घरेलू हिंसा सूक्ष्म व जटिल घटना है, इसके समाधान के लिए विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

''रजंना कुमारी शीरवाडकर के अनुसार घरेलू हिंसा का मुकाबला करने के लिए प्रजातंत्रीय संस्थान चाहिए।''[7] महिलाओं को निर्णय लेने में भागीदार बनाना तथा राज्य में बराबर का प्रतिनिधित्व देना होगा।

''घरेलू हिंसा से निपटने के लिए रणनीतियां तीन तरीके से की जा सकती है- शोध एवं प्रलेखन, समाजिक प्रतिक्रिया और पीढ़ियों की जागरूकता।''[8] घरेलू हिंसा पर शोध व लेखन द्वारा समाज में जागृति आएगी तथा साथ ही सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा प्रतिक्रिया देकर निवारक रणनीतियां अपनाया जाना सभंव हो सकेगा। मीडिया अभियान और प्रचार कार्यक्रमों द्वारा महिला अधिकारों को फैलाकर लिंग आधारित कानून और आपराधिक न्याय प्रणाली की पुनर्रचना करके आने वाली पीढ़ियों को जागरूक किया जाना चाहिए।

''दूसरा हिंसा की शिकार महिलाओं के लिए रोजगार अवसर व कौशल प्रशिक्षण। यह महिला सशक्तिकरण के साथ ही उन्हें उनके अधिकारों की जानकारी देना और सरकार द्वारा चलाये जा रहे कार्यो से अवगत रखना है।''[9]

NGO द्वारा किये जा रहे प्रयास-

वर्तमान में घरेलू हिंसा एक गंभीर सामाजिक समस्या है तथा इस ज्वंलत समस्या के समाधान के लिए सरकारी व गैर-सरकारी संगठनों के प्रयासों द्वारा अनेक समाजसेवी संस्थाए घरेलू हिंसा से पीड़ित महिलाओं के अधिकारों के लिए आगे आ रही है, उन्हे इन्साफ दिलाने के लिए आंदोलन करती हैं ये संस्थाए निम्न है-

1. अखिल भारतीय महिला परिषद घरेलू हिंसा से पीड़ित महिला को आश्रय प्रदान करती है।
2. प्रयास- यह आपसी मतभेद व पारिवारिक हिंसा से पीड़ित महिलाओं की मदद करती है। इसी प्रकार अन्य संस्थाएं जैसे- प्रतिथि, शक्तिशालिनी आदि द्वारा भी घरेलू हिंसा से पीड़ित महिलाओं की सहायता की जाती है।

सरकार द्वारा किये गए प्रयास-

उपरोक्त संस्थाओं के प्रयासों से ही महिला अत्याचार और हिंसा को रोकने के लिए सरकार द्वारा अनेक कानूनी बनाए गए है तथा परिस्थियों के अनुसार अनमें संशोधन भी किए है। पं. जवाहर लाल नेहरू द्वारा दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961 पारित कर दहेज को कानून अपराध घोषित किया गया है। इसमें 1986 में संशोधन कर दहेज लेने व देने पर 5 वर्ष की सजा व 1500 रूपये तक जुर्माने का प्रावधान है। इसके अलावा 'भारत में सभी प्रकार के शोषण, घरेलू हिंसा के रूप में सामान्यत: शामिल है,- मसलन शारीरिक, यौनिक, वाचिक, भावात्मक और आर्थिक, पहली बार 2005-2006 में राष्ट्रीय परिवार और स्वास्थ्य सर्वे 3NHFS-3 देश में घरेलू हिंसा की चिंता आधिकारिक तौर पर दर्ज किया गया। घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम 2006:- 26 अक्टूबर, 2006 को महिलओं को घरेलू हिंसा से बचाव के लिए अधिनियम लाया गया जो महिलाओं के संवैधानिक और वैधानिक अधिकारों का प्रभावी संरक्षण करता है जो घरेलू हिंसा की शिकार है। इस कानून की धारा-3 में घरेलू हिंसा से तात्पर्य व्यक्ति का ऐसा कार्य या आचरण या व्यवहार जो पीड़ित महिला के स्वास्थ, जीवन, शरीर- मन को क्षतिग्रस्त करता है चाहे वह शारीरिक/यौन/मौखिक/भावनात्मक/आर्थिक दुर्व्यवहार हो।

संक्षेप में इस अधिनियम के मुख्य तत्व है:- 'धारा-5 के अधीन अपने अधिकारों को जानने और दुख: से मुक्ति के लिए वह संरक्षण अधिकारी और प्रदाता की सहायता ले सकती हैं। धारा-6, धारा-7, धारा-9 और धारा-14 के अधीन चिकित्सीय सहायता, आश्रय, परामर्श और कानूनी सहायता प्राप्त करना। धारा-18 के अधीन पीड़ित के विरुद्ध घरेलू हिंसा करने वाले व्यक्ति को उससे सम्पर्क करने या पत्र-व्यवहार करने से रोकने का अधिकार। धारा-19 द्वारा जहां वह घरेलू हिंसा की शिकार हुई है, उसी घर के व्यक्तियों के हस्तक्षेप में अवरोध करने तथा घर तथा उसमें निहित सुविधओं का शांतिपूर्वक उपयोग करने का उसका व उसके बच्चों का अधिकार। ''एक औरत का अधिकार है सुरक्षित आवास।''[10] 'धारा-22 घरेलू हिंसा के कारण हुई शारीरिक मानसिंक/धनीयक्षति के लिए फाइन लेने का अधिकार। धारा-12, 18, 19, 20, 21, 22, 23 के अधीन शिकायत करने या किसी न्यायालय को सीधे ही मद्द के लिए आवेदन करना।

''घरेलू हिंसा के खिलाफ पूरे समुदाय की लामबंदी, एकजुट करने के उपाय ताकि पीड़ित महिला को समर्थन मिल सके। साथ ही आश्रय स्थल, अल्पकालिक घर कानूनी सहायता एवं परामर्श तथा बच्चों की देखभाल सुविधाओं की भी जरूरत है।''[11] इसके अलावा 'लिव इन रिलेशनशीप' तथा कार्यस्थल पर दुर्व्यवहार भी घरेलू हिंसा में शामिल किया गया है।

''उपर्युक्त के अलावा देश के अनुसार घरेलू हिंसा के अनेक रूप है, जैसे–एसिड फैकना या हमला, दुल्हन को जलाना, देहज के लिए हत्या करना।''[12]

निष्कर्ष–

पहले महिलाओं पर घरेलू हिंसा करने का कारण दहेज न लाना, लड़का संतान का न होना, पुरुष वर्ग का शासन और अपने अधिकारों के प्रति जागरूक न होना था। आज महिलाएं शिक्षित होकर घर परिवार के लिए अधिकतम सुविधांए जुटाने के लिए नौकरी की तलाश में घर से बाहर निकल पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चल रही है। आज की घरेलू महिला घर से बाहर आकर घर–परिवार परम्परागत मान्यताओं और सामाजिक प्रतिबन्धों का कड़ा मुकाबला कर रही हैं तथा पुरानी पीढ़ी की रूढियों को तोड़कर आगे आने में उसे खुशी का अहसास हो रहा है। आधुनिकता की छाव में घरेलू हिंसा से पीड़ित महिलाओं की स्थिति में जो बदलाव आ रहा है उसमें मीडिया का आकाशीय हमला आग में घी का काम कर रहा है। इस प्रकार हमे देखते है कि घरेलू हिंसा या परिवार में हिंसा एक बड़ा सामाजिक मुद्दा है तथा जब तक इसके समाधान के प्रयास नहीं किये जायेगे, तब तब महिलाओं को न्याय नहीं मिलेगा। इसके लिए पीड़ित व हिंसा करने वाले पक्ष दोनों को रोकनी होगी क्योंकि इसके बिना अकेली सरकार कानून बनाकर कुछ नहीं कर सकेगी। महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होकर खुद ही घरेलू हिंसा के खिलाफ आवाज उठानी होगी।

संदर्भ सूची :-

1. राम आहूजा, सामाजिक समस्याएं (Vol-3) पृष्ठ सं.–344, रावत पब्लिकेशनस
2. राम आहूजा, सामाजिक समस्याएं (Vol-3) पृष्ठ सं.–345, रावत पब्लिकेशनस
3. राम आहूजा, सामाजिक समस्याएं (Vol-3) पृष्ठ सं.–345, रावत पब्लिकेशनस
4. राम आहूजा, सामाजिक समस्याएं (Vol-3) पृष्ठ सं.–346, रावत पब्लिकेशनस
5. राम आहूजा, सामाजिक समस्याएं (Vol-3) पृष्ठ सं.–347, रावत पब्लिकेशनस
6. राम आहूजा, सामाजिक समस्याएं (Vol-3) पृष्ठ सं.–347, रावत पब्लिकेशनस
7. राम आहूजा, सामाजिक समस्याएं (Vol-3) पृष्ठ सं.–347, रावत पब्लिकेशनस
8. राम आहूजा, सामाजिक समस्याएं (Vol-3) पृष्ठ सं.–347, रावत पब्लिकेशनस
9. राम आहूजा, सामाजिक समस्याएं (Vol-3) पृष्ठ सं.–347, रावत पब्लिकेशनस
10. राम आहूजा, सामाजिक समस्याएं (Vol-3) पृष्ठ सं.–349, रावत पब्लिकेशनस
11. राम आहूजा, सामाजिक समस्याएं (Vol-3) पृष्ठ सं.–348, रावत पब्लिकेशनस
12. राम आहूजा, सामाजिक समस्याएं (Vol-3) पृष्ठ सं.–346, रावत पब्लिकेशनस

ISSN 2278 - 0327

स्वामी विवेकानन्द के दर्शन में शांति शिक्षा के तथ्यों का अध्ययन तथा शैक्षिक जगत में प्रासंगिकता

बृजभूषण राय
शोधार्थी, शिक्षा संकाय, आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल

डॉ. आशीष कुमार बाजपेयी
प्राध्यापक, शिक्षा संकाय,आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल

सारांश: – स्वामी विवेकानन्द का जीवन दर्शन मानव के लिए अत्यन्त गौरवपूर्ण एवं प्रेरणादायक है। वे आधुनिक मानव के आदर्श प्रतिनिधि हैं। स्वामी विवेकानन्द वैदिक धर्म एवं भारतीय संस्कृति के समस्त स्वरूपों के उज्जवल प्रतीक थे। यह उन्हीं की प्रतिभा थी जिससे वेदान्त का प्रतिपादन इस रूप में हुआ कि वह वर्तमान युग के मनुष्य द्वारा हृदयंगम किया जा सके। उनका प्रगाढ़ देश प्रेम, गरीबी, अन्धविश्वास और सामाजिक पतन के विरोधी, जाति प्रथा से अत्यन्त चिन्तित, विशेषाधिकार के कट्टर विरोधी, स्त्रियों का पिछड़ापन दूर करने के प्रबल पक्षधर, विज्ञान एवं टैक्नोलॉजी के समर्थक, शारीरिक विकास के प्रबल समर्थक, अभय के विकास पर बल देने का गहरा चिन्तन शांति शिक्षा के तत्वों से पूर्ण है। प्रस्तुत शोध प्रपत्र में उन सभी शांति तत्वों का संकलन एवं प्रासंगिकता का अध्ययन किया गया है।

मुख्य शब्द: दर्शन, शांति शिक्षा, शैक्षिक जगत

प्रस्तावना– आज हम सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक एवं अन्य प्रकार की समस्याओं के समाधान के लिए पश्चिमी सिद्धान्तों की ओर भाग रहे हैं। हमें अपनी बौद्धिक प्रखरता पर विश्वास नहीं है। हमारी यह सोच बनती जा रही है कि कोई सिद्धान्त तब तक सत्य नहीं हो सकता जब तक कि कोई पश्चिमी विद्वान प्रमाण न दे। यदि ऐसे में हम विफल हुए तो स्व–विवेक का प्रयोग करने के स्थान पर किसी ऐसे ही दूसरे सिद्धान्त की ओर भागने लगेंगे। आज के बुद्धिजीवी कहे जाने वाले ऐसे वर्ग की यह निम्न सोच है। आज चिन्तन करते समय, कोई व्यवस्था अंगीकार करते समय यह नहीं सोचा जाता कि हमारे अधिकांश समाज सुधारक महान देशभक्त थे। वे जानते थे कि पश्चिमीकरण के बिना भी प्रगतिवादी हुआ जा सकता है। स्वामी विवेकानन्द का जीवन दर्शन मानव के लिए अत्यन्त गौरवपूर्ण एवं प्रेरणादायक है। स्वामी विवेकानन्द का जन्म 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुआ लेकिन उनके विचार और जीवन दर्शन आज के दौर में अत्यधिक प्रासंगिक हैं। विवेकानंद जैसे महापुरुष मृत्यु के बाद भी जीवित रहते हैं और अमर हो जाते हैं तथा सदियों तक अपने विचारों और शिक्षा से लोगों को प्रेरित करते रहते हैं। मौजूदा समय में विश्व संरक्षणवाद एवं कट्टरवाद की ओर बढ़ रहा है जिससे भारत भी अछूता नहीं है। विवेकानंद का राष्ट्रवाद न सिर्फ अन्तर्राष्ट्रीय बल्कि मानववाद की भी प्रेरणा देता है। इसके साथ ही विवेकानंद की धर्म की अवधाराणा लोगों को जोड़ने के लिये अत्यंत उपयोगी है क्योंकि यह अवधारणा भारतीय संस्कृति के प्राण तत्व सर्वधर्म सम्भाव पर जोर देती है। यदि विश्व सर्वधर्म सम्भाव का अनुकरण करे तो विश्व की दो तिहाई समस्याओं और हिंसा को रोका जा सकता है। भारत की एक बड़ी संख्या अभी भी गरीबी में जीवन जीने के लिये मजबूर है और वंचित समुदायों की समस्याएं अभी भी वैसी ही बनी हुई हैं। यदि विवेकानन्द की दरिद्रनारायण की संकल्पना को साकार किया जाये तो असमानता गरीबी, गैरबराबरी, अस्पृश्यता आदि से बिना कोई बल प्रयोग किये ही निपटा जा सकता है तथा एक आदर्श समाज की संकल्पना को साकार किया जा सकता है। अत: स्वामी जी ने कहा है– *''वीर बनो। हमेशा कहो, मैं निर्भय हूँ, सबसे कहो – डरो मत, भय मृत्यु है, भय पाप है, भय नर्क है, भय अधार्मिकता है तथा भय का जीवन में कोई स्थान नही है।''*

भारतीय संस्कृति के अनुसार शिक्षा का अर्थ मुक्ति प्रदान करना है। *'सा विद्या या विमुक्तये'*। शिक्षा व्यक्ति की वृद्धि को परिष्कृत, परिमार्जित करती है, अज्ञानान्धकार से निकालकर ज्ञान प्राप्ति की ओर ले जाती है। शिक्षा ही उसे सत व असत् में भेद करना सिखाती है।

आज वैश्वीकरण के युग में जहां प्रतियोगिता की अंधी दौड़ लगी हुई है, वहीं एक ऐसी शिक्षा नीति की आवश्यकता है जो एक अच्छे मानव, अच्छे नागरिक और स्वस्थ समाज का निर्माण कर सके। जो अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना की ओर प्रेरित हों। वे शिक्षा के महत्व को समझ सकें।

अत: शांति शिक्षा एक सकारात्मक दृष्टिकोण है जिसका अर्थ ऐसे नागरिकों का निर्माण करना है जो अहिंसा, सामाजिक न्याय, भातृत्व व समानता आदि सकारात्मक गुणों को अपने जीवन का अंग बनाएं और हिंसा, शोषण, सामाजिक अन्याय, द्वैष, परस्पर वैमनस्य और असहयोग आदि नकारात्मक प्रवृत्तियों से दूर रहें। इस रूप में शांति शिक्षा एक प्रक्रिया है जो प्रारंभ से ही बालकों में शैक्षिक पर्यावरण के माध्यम से सृजनात्मक दृष्टिकोण का विकास करती है।

शान्ति शिक्षा नकारात्मक सोच व्यवहार, हिंसक घटनाओं, क्रियाओं आदि को सकारात्मक सोच, अहिंसा, प्रेम निर्माण आदि में बदलने की प्रक्रिया है।

''विश्व के समस्त जीवों से प्रेम करो धरती पर निम्नतम कोटि का प्राणी भी ईश्वर का प्रतिरूप है, इसलिए वह तुम्हारे प्रेम का अधिकारी है।'' – महात्मा गांधी

शोधार्थी के मतानुसार, शान्ति शिक्षा नकारात्मक सोच व्यवहार, हिंसक घटनाओं, क्रियाओं आदि को सकारात्मक सोच, अहिंसा, प्रेम निर्माण आदि में बदलने की प्रक्रिया है।

शान्ति शिक्षा के उद्देश्य – नायर ने शान्ति शिक्षा के निम्नलिखित निम्न उद्देश्यों पर बल दिया हैं –

1. बालकों को प्रारम्भ से ही उचित एवं अनुचित के विवेक को जागृत करना।
2. धार्मिक सहिष्णुता एवं नैतिक मूल्यों के प्रति दृष्टिकोण विकसित करना।
3. बालकों में सह अस्तित्व की भावना का विकास करना।
4. प्रारंभ से ही मानवाधिकारों के प्रति बालकों को सचेत करना।
5. बालकों के पारस्परिक एकता पड़ोसियों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण एवं भ्रातत्व की भावना का विकास करना।
6. बालकों को प्रारंभ से ही जिम्मेदार नागरिक के रूप तैयार करना जिससे वे बड़े होकर कुशल उपभोक्ता बन सकें।
7. बालकों को उपयुक्त नेतृत्व की शिक्षा देना जिससे वे देश के प्रति अपने दायित्वों का कुशलता से निर्वाह कर सकें।
8. बालकों को युद्ध हिंसा अन्याय शोषण व वैमनस्य आदि के परिणामों से अवगत करना जिससे युद्ध की भयावहता को जानकर उसके प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण विकसित कर सकें।

पूर्व में किये गये शोध अध्ययन –

सिंह पूनम, (2003) ''मूल्य विकास के परिप्रेक्ष्य में महात्मा गांधी एवं स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों के क्रियान्वयन का अध्ययन'' इस शोध में गांधी जी एवं विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों के अनुसार मानवीय मूल्यों का चयन, वर्गीकरण एवं विवेचन किया है। गांधी जी एवं स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय समाज में मानवीय मूल्यों के महत्व पर अत्यधिक बल दिया है तथा आदर्श समाज में उच्च कोटि के मूल्यों वाली शिक्षा पर बल दिया है।

जैन, बी. एल. (2002) ''प्रमुख स्मृतियों के शिक्षा दर्शन का अध्ययन'' इस शोध में प्रमुख स्मृतियों के शैक्षिक विचारों का चयन, वर्गीकरण एवं विवेचन किया गया है। स्मृति शिक्षा में शिक्षा को व्यक्ति के रूप में नहीं अपितु सम्पूर्ण सामाजिक विकास के तन्त्र के रूप में स्वीकार किया गया है, जिसका अन्तिम एवं चरम लक्ष्य प्रयास से श्रेयस तथा प्रवृति से निवृति की ओर प्रयास था।

भारतीय, डी. विजय (1999) द्वारा ''स्वामी विवेकानन्द और जॉन ड्यूवी के शिक्षा दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन'' किया गया। इस शोध में स्वामी विवेकानन्द एवं जॉन ड्यूवी के शैक्षिक योगदान एवं शिक्षा दर्शन की तुलना करने का प्रयास किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य विवेकानन्द एवं जॉन ड्यूवी के शैक्षिक दर्शन के निम्नलिखित पक्षों में तुलना एवं विश्लेषण करके ज्ञात करना था – जीवन दर्शन, शिक्षा का सम्प्रत्यय एवं लक्ष्य तथा शिक्षण अधिगम की विधियां।

रीमा. एम. (1993), ''ए कम्पेरेटिव स्टडी ऑफ द एजूकशनल थॉट ऑफ स्वामी विवेकानन्द एंड महात्मा गाँधी'' इस शोध में स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचार, वैदिक शिक्षा के चरित्र निर्माण, गुरूगृह वास प्रथा, शिक्षक के चरित्र व ब्रह्मचर्य पर आधारित है। उनका शिक्षा दर्शन, धर्म के मूल्य, नैतिक शिक्षा, आध्यात्मिक विकास, नारी स्वतंत्रता के महत्व एवं शिक्षा के द्वारा आमजन को उपर उठाने पर बल देता है।

कौर, रविन्दर जीत (1992), ''श्री अरविन्द एवं महात्मा गाँधी के शिक्षा दर्शन का आधुनिक शिक्षा पद्धति के सन्दर्भ में तुलनात्मक अध्ययन'', इस शोध में श्री अरविन्द और महात्मा गाँधी के दर्शन का सामान्य अध्ययन किया गया है।

दत्त, सुनिल कृष्ण (1991) 'उपनिषदों का शिक्षा दर्शन और विवेकानन्द का शिक्षा दर्शन'' इस शोध में उपनिषद के दर्शन में तत्वमीमांसा, ज्ञान मीमांसा और मूल्य मीमांसा का अध्ययन किया गया है।

त्रिपाठी, चित्रा (2009) ने अपने लेख में स्वामी विवेकानन्द के स्त्री शिक्षा सम्बन्धी विचारों को नारी सशक्तीकरण के सम्बन्ध में स्पष्ट किया है। जिसमें स्वामी जी का मानना था कि स्त्री एवं पुरुष में भेदभाव उचित नहीं है, इनमें भेदभाव करने से भारतीय समाज पतन की ओर जायेगा। अत: स्त्री और पुरुष दोनों के लिए शिक्षा की समान व्यवस्था एवं सुविधा होनी चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द के विचारों में शान्ति शिक्षा के तत्व –

जीवन कौशल – स्वामी विवेकानन्द जी व्यक्ति के आत्म विश्वास, आत्म श्रद्धा, आत्म नियंत्रण, आत्म निर्भरता, आत्म त्याग, मानवता, सहयोग एवं प्रेम तथा विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास करके दिव्य मानव का सृजन करना चाहते थे। विवेकानन्द ने वास्तविक जीवन के परिप्रेक्ष्य में लौकिक और पारलौकिक मूल्यों के बीच सुदृढ़ सेतु बनाया है। उन्होंने चरित्र हृदय, आत्म पूर्ण मानव शरीर और मन में छिपी पूर्णता के प्रकाशन, विश्वबन्धुत्व बनाने का ओजस्वी सन्देश दिया है।

मानवाधिकार – स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार हम भारतीय पहले हैं तथा मराठी, गुजराती, बंगाली, मद्रासी बाद में है। इनके अनुसार सभी मनुष्य भारतीय हैं। उनमें कोई अमीरी–गरीबी का भेद नहीं, सभी को समान अधिकार होने चाहिए।

आपसी समझ, सहनशीलता – शान्ति शिक्षा किसी औपचारिक शिक्षा का विषय नहीं है इसके लिए न ही कोई परीक्षण होता है यह समझदारी और पुनर्बलन है। इसकी आवश्यकता प्रत्येक व्यक्ति विशेष को, समाज को, राष्ट्र को तथा विश्व को है। स्वामी जी ने कहा है ''सहयोग न कि विरोध'', पर भाव ग्रहण न कि पर भाव विनाश'', ''समन्वय और शान्ति न कि मतभेद और कलह'' इन विचारों और भावनाओं का प्रभाव आज भी है। विवेकानन्द जी ने रूढ़िवादी विचारों, अन्धविश्वासों को छोड़ने एवं पराधीनता को त्यागने का आह्वाहन किया है। उनके विचार वर्तमान पीढ़ी के मार्गदर्शक हैं। वे चाहते थे कि हीनभावना, मानसिक दासता के स्थान पर आपसी समझ सहनशीलता बने और बढ़े और

यह तभी हो सकता है जब बालक को शिक्षा के साथ मूल्य व्यवस्था में नैतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, राष्ट्रीय मूल्य की शिक्षा मिले। स्वामी जी समाज में व्याप्त दरिद्रता, क्षुधा, अशिक्षा, जातिवाद से दुखी थे इसलिए वे शिक्षा के साथ नैतिक एवं धार्मिक विचारों का सामंजस्य, विश्वबन्धुत्व की भावना, भारतीय संस्कृति के प्रति उदारभाव की मनोवृत्ति तथा ऐसे समाज की स्थापना करने में चिंतनशील थे। स्वामी जी ने जीवन पर्यन्त इस बात पर बल दिया कि अपने ऊपर विश्वास रखो श्रद्धा तथा आत्मत्याग की भावना को विकसित करना शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य है। उन्होंने कहा है कि उठो, जागो और उस समय तक बढ़ते रहो जब तक कि चरम उद्देश्य की प्राप्ति न हो जाये।

विकासोन्मुख शिक्षा – स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा को व्यापक अर्थों में लिया। उनकी दृष्टि में कुछ परीक्षाएं पास कर लेना तथा अच्छे भाषण दे देना ही शिक्षा नहीं है। इसमें जीवन संघर्ष करने के लिए तैयारी, चरित्र निर्माण, समाज सेवा की भावना जैसा साहस उत्पन्न करना निहित है। उन्होंने कहा है ''आज कि यह उच्च शिक्षा रहे या बन्द हो जाये इससे क्या बनता बिगड़ता है। यह अधिक अच्छा होगा, यदि लोगों को थोड़ी तकनीकी शिक्षा मिल सके। जिससे वह नौकरी की खोज में इधर-उधर भटकने के बदले किसी काम में लग सकें और जीविकोपार्जन कर सकें। ''स्वामी विवेकानन्द केवल आध्यात्मिक शिक्षक ही नहीं थे अपितु भारतीय समाज एवं राष्ट्र की अनेक समस्याओं को हल करने का मार्ग भी उन्होंने प्रस्तुत किया था। उनका विचार था कि भारत की पिछड़ी हुई स्थिति के लिए शिक्षा की कमी बहुत हद तक उत्तरदायी है। वे तत्कालीन शिक्षा-पद्धति के प्रबल आलोचक थे। अंग्रेजी शिक्षा पद्धति को वे बाबुओं का निर्माण करने वाला यन्त्र मानते थे। यह शिक्षा उन्हें नकारात्मक ज्ञान देती थी और स्वावलम्बन विहीन थी।

यह शिक्षा न तो उन्हें जीविकोपार्जन के लिए तकनीकी ज्ञान देती थी और न जीवन जीने का मार्ग दिखाती थी। स्वामी विवेकानन्द शिक्षा-पद्धति को निश्चित लक्ष्यों से संयुक्त करना चाहते थे। उनका ध्येय मनुष्य का निर्माण करने वाली शिक्षा-पद्धति को अंगीकार करना था। वे आत्मविश्वास के माध्यम से चरित्र निर्माण द्वारा मनुष्य निर्माण के पक्षधर थे। शिक्षाविदों को चाहिए कि वे आधुनिक विज्ञान की सहायता से विद्यार्थियों के ज्ञान को जगायें। उन्हें इतिहास, भूगोल, विज्ञान, गणित और साहित्य की शिक्षा दें और इनके साथ-साथ धर्म एवं आध्यात्मिकता के महान सत्य को भी बताए और यह शिक्षा वर्तमान के लिए ही नहीं अपितु भविष्य के लिए भी प्रासंगिक हों। उन्होंने शिक्षा को धर्म आदर्श, चरित्र, सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों की नींव पर आधारित करने पर बल दिया है।

स्वामी विवेकानन्द ने देश की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के बारे में विचार व्यक्त करते हुए कहा कि यह न तो विशाल जनसंख्या तक पहुंच पाई हैं, न ही मूल्यपरक बन पाई है तथा न ही भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को समाहित कर पाई है। वर्तमान में विद्यालय सापेक्ष शिक्षा नहीं दे पा रहे हैं। जो शिक्षा दी जा रही है उसे मानव निर्माण की शिक्षा नहीं कहा जा सकता। निश्चित रूप से नकारात्मक शिक्षा दी जा रही है। उनका मानना था कि केवल पुस्तकीय ज्ञान शिक्षा नहीं है।

स्वामी जी ने कहा है आज की यह उच्च शिक्षा रहे या बन्द हो जाये इससे क्या बनता-बिगड़ता है। यह अधिक अच्छा होगा यदि लोगों को थोड़ी तकनीकी शिक्षा मिल सके जिससे वे नौकरी की खोज में इधर-उधर भटकने के बजाय किसी काम में लग सकें और जीविकोपार्जन कर सके। उन्होंने कहा कि शिक्षा द्वारा मनुष्य का निर्माण किया जाता है। समस्त अध्ययनों का अन्तिम लक्ष्य मनुष्य का विकास करना है जिस अध्ययन द्वारा मनुष्य भी संकल्प शक्ति का प्रवाह संयमित होकर प्रभावोत्पादक बन सके उसी का नाम शिक्षा है।

मनोसामाजिक पुर्नवास – स्वामी विवेकानन्द जी ने मानवता की सेवा के परिप्रेक्ष्य में मानवता का आलिंगन किया है। बालक के लिए एकाग्रता के माध्यम से क्रिया प्रधान और व्यावसायिक शिक्षा को आवश्यक बताया जिससे कि वह आधुनिक परिवर्तनशील परिप्रेक्ष्य में उचित सामंजस्य करता हुआ आत्मनिर्भर बन सके। स्वामी जी ने मानवता की सेवा के परिप्रेक्ष्य में मानवतावाद का आलिंगन किया। स्वामी विवेकानन्द आध्यात्मिकता के प्रबल समर्थक थे। वे कहते थे ध्यान रखो, यदि तुम आध्यात्मिकता को त्याग कर तथा इसे एक ओर रखकर पश्चिम की जड़तापूर्ण सभ्यता के पीछे दौड़ोगे तो परिणाम यह होगा कि तीन पीढ़ियों में तुम मृत शक्ति बन जाओगे क्योंकि इससे राष्ट्र की रीढ़ टूट जायेगी। तुमको बतलाया गया है कि तुम हीन हो तथा शक्तिविहीन हो। यह सुनकर वर्षों से अपने को हीन और निकम्मा समझने लगे हो।

स्त्री-पुरुष समानता – स्वामी जी के अनुसार, स्त्री जाति की उन्नति के बिना भारत कभी भी विकास नहीं कर सकता। उन्होंने कहा – ''*पुत्रेण दुहिता समा*'' अर्थात् पुत्र और पुत्री का समान पालन-पोषण करें। स्त्रियों में अभूतपूर्व शक्ति होती है। उनकी शक्ति को पहचानने तथा योग्यतानुरूप सही दिशा देने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त अंधविश्वासों, रूढ़ियों, जड़ताओं जैसे रेत के धरातल पर टिके सामाजिक व्यवहारों पर चिन्तन मनन कर स्त्रियों को इससे दूर रहने की आवश्यकता बनाई। स्त्रियां किसी भी तरह से पुरुषों से किसी योग्यता में पीछे नहीं है। इस भाव का समस्त स्त्रियों में संचार करना परम आवश्यक हैं। स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार स्त्री और पुरुष समाज रूपी पक्षी के दो सुदृढ़ पंख है। उनका मानना था कि कोई भी पक्षी एक पंख से नहीं उड़ सकता। उनकी इस धारणा से किसी भी समाज-राष्ट्र के गौरव और उत्कर्ष में नारी का योगदान स्वत: स्पष्ट हो जाता है। पक्षी के लिए दोनों पंख समान महत्वशील है। इसी प्रकार स्त्री पुरुष दोनों के समान योगदान से ही किसी भी घर-परिवार समाज या देश का उत्थान होता है। नारी शिक्षा के क्षेत्र में भी विवेकानन्द कोई भेदभाव नहीं मानते थे। बाल-विवाह तथा विधवाओं के प्रति समाज को परिवर्तित दृष्टि रखनी चाहिए। विवेकानन्द जी नारियों को ऐसी शिक्षा देने के पक्ष में थे जिससे

वे निर्भय होकर भारत के प्रति अपने कर्तव्य को भलीभांति निभा सकें। उन्होंने कहा है कि ''भारत की नारियां पवित्र और त्यागमूर्ति है क्योंकि उनके पास सहज शक्ति और बल है। नारी की विशिष्टता के बारे में उन्होंने कहा है कि काव्य और प्रेम दोनों नारी हृदय की सम्पति हैं।

प्रजातांत्रिक सहभागिता का विकास - स्वामी विवेकानन्द ने अनेकता में एकता का भाव ग्रहण करते हुए समस्त भारतवासियों को अपनेपन के सूत्र में बांधने की आवश्यकता बताई। उनके विचार में प्रत्येक भारतवासी उनका भाई है। भारत के देवी-देवता उनके प्राण हैं। उन्होंने दीन-दुखियों, पीड़ितों, आर्थिक दृष्टि से कमजोर अशिक्षितों के साथ हो रहे विभेद को अनावश्यक एवं अन्यायपूर्ण माना है।

समाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में विकास - स्वामी जी ने व्यक्ति के वैयक्तिक, सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में विकास पर बल दिया है। स्वामी जी कहते हैं कि हम दुर्बल है इसलिए त्रुटि करते हैं और हमारी दुर्बलता का कारण हमारा अज्ञान है। आत्मिक विकास ही वैयक्तिक विकास है परन्तु यह तब तक सम्भव नही हैं जब तक मनुष्य का सामाजिक विकास नहीं हो जाता। स्वामी जी विद्यार्थियों में कृषि, उद्योग, तकनीकी ज्ञान एवं व्यावसायिक शिक्षा के माध्यम से इतनी सामर्थ्य उत्पन्न करना चाहते थे कि वे शिक्षा द्वारा आत्मनिर्भर तो बने ही साथ ही शोषण से बचते हुए समाज और राष्ट्र का भी कल्याण करें।

शैक्षिक पाठ्यक्रमों के द्वारा शान्ति स्थापना - शान्ति शिक्षा को एक अलग विषय के रूप में पढ़ाए जाने की आवश्यकता नहीं है। बालक को शान्ति शिक्षा विद्यालयी विषयों के साथ भी दी जा सकती है। इसके लिए विद्यालय कुछ ताजा समस्याओं को चुन सकता है। सामाजिक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों को उठा सकता है। बालकों में जागरूकता ला सकता है। शान्ति शिक्षा किसी औपचारिक शिक्षा का विषय नहीं है। इसके लिए न ही कोई परीक्षण होता है और न ही कोई प्रमाणपत्र होता है। इसकी आधारशिला समझदारी और पुनर्बलन है इसकी आवश्यकता प्रत्येक व्यक्ति विशेष, समाज, राष्ट्र तथा विश्व को है।

प्रकृति के प्रति जागरूकता - हमारे चारों ओर जो भी नैतिक, जैविक व सांस्कृतिक वातावरण है, वही हमारा पर्यावरण है। जीवन के प्रारम्भ से लेकर अंत तक पर्यावरण के साथ हमारा सम्पर्क सामंजस्य व संघर्ष रहता है। हर व्यक्ति के विकास के लिए पर्यावरण एक महत्वपूर्ण घटक है। अत: पर्यावरण को व्यक्तिगत और सामाजिक अस्तित्व की दृष्टि से देखना होता है। शिक्षा ही मानव को सामाजिक प्राणी बनाकर सांस्कृतिक धरोहर को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित करती आयी है। प्राकृतिक वातावरण व पृथ्वी के साथ सामंजस्य से ही शान्ति की प्राप्ति की जा सकती है।

निष्कर्ष- शांति शिक्षा एक सकारात्मक दृष्टिकोण है जिसका अर्थ ऐसे नागरिकों का निर्माण करना है जो अहिंसा, सामाजिक न्याय, भातृत्व व समानता आदि सकारात्मक गुणों को अपने जीवन का अंग बनाएं और हिंसा, शोषण, सामाजिक अन्याय, द्वैष, परस्पर वैमनस्य और असहयोग आदि नकारात्मक प्रवृत्तियों से दूर रखे। इस रूप में शांति-शिक्षा एक प्रक्रिया है जो प्रारंभ से ही बालकों में शैक्षिक पर्यावरण के माध्यम से सृजनात्मक दृष्टिकोण का विकास करती है।

प्रस्तावित शोध समस्या स्वामी विवेकानन्द के दर्शन में शांति शिक्षा के तत्व एवं वर्तमान शिक्षा जगत में उसकी प्रासंगिकता का अध्ययन राष्ट्रीय जीवन को एक नई दिषा देने में रामबाण औषधि साबित हो सकती है, इनका जीवन और चिन्तन शैली राष्ट्रीयता से ओतप्रोत थी, जिनकी आधुनिक परिप्रेक्ष्य में आवश्यकता नितान्त आवश्यक जान पड़ती है इनके माध्यम से राष्ट्रीय जीवन को कुछ नई दिशा मिल सकती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. राव, वी. के. आर. वी., ''आधुनिक भारत के निर्माता : स्वामी विवेकानन्द,'' सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, मार्च -1999
2. स्वामी ज्योतिर्मयानन्द, ''विवेकानन्द हिज, गोस्पेल ऑफ मैन मेकिंग''- 2000
3. रानाडे, एकनाथ, ''पत्थर में प्रगटे प्राण'' विवेकानन्द केन्द्र हिन्दी प्रकाशन विभाग, जोधपुर, मार्च 2001
4. रानाडे, एकनाथ, ''उतिष्ठत! जाग्रत !!'' विवेकानन्द केन्द्र हिन्दी प्रकाशन विभाग, जोधपुर, अप्रैल 2001
5. स्वामी गम्भीरानन्द, ''युगनायक विवेकानन्द,'' (प्रथम खण्ड) रामकृष्ण मठ, नागपुर-2001
6. स्वामी गम्भीरानन्द, ''युगनायक विवेकानन्द'', (द्वितीय खण्ड) रामकृष्ण मठ, नागपुर-2002
7. स्वामी गम्भीरानन्द, ''युगनायक विवेकानन्द'' (तृतीय खण्ड) रामकृष्ण मठ, नागपुर - 2002
8. ठेंगड़ी, दत्तोपंत, ''पष्चिमीकरण के बिना आधुनिकीकरण'' सुरूचि प्रकाशन, केशव कुंज, झण्डेवालान, नई दिल्ली - 2003
9. मजूमदार, सत्येन्द्रनाथ एवं स्वामी व्योमरूपानन्द, ''विवेकानन्द चरित,'' रामकृष्ण मठ नागपुर - 2004
10. पाठक, पी.डी. (2005): शिक्षा मनोविज्ञान, आगरा-2: विनोद पुस्तक मन्दिर पृष्ठ सं. 123
11. पाठक, पी.डी. (2005): शिक्षा मनोविज्ञान, आगरा-2: विनोद पुस्तक मन्दिर पृष्ठ सं. 142
12. एन.सी.ई.आर.टी. आधार पत्र 'शान्ति के लिए शिक्षा' पृष्ठ सं. 10
13. चतुर्वेदी, बद्रीनाथ, ''स्वामी विवेकानन्द द लिविंग वेदान्ता,'' पेग्विन, 2006
14. रॉलेण्ड रोमेन, ''द लाइफ ऑफ विवेकानन्द एण्ड द यूनिवर्सल गास्पेल'', 24वां संस्करण, अद्वैत आश्रम-2008
15. मालवीय, राजीव (2010): शिक्षा दर्शन एवं समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि, इलाहाबाद: शारदापुस्तक भवन, पृष्ठ सं. 104
16. गार्डिया, आलोक एवं पुष्पेश पाठक, (2010), शान्ति शिक्षा एवं विद्यालयों में शान्ति संस्कृति की अवधारणा, भारतीय आधुनिक शिक्षा, अप्रैल 2010, पृष्ठ सं. 46
17. नागरथ, राधिका (2015): शान्ति की तलाश में जिंदगी, नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन, पृष्ठ सं. 11
18. कुमार, रविन्द्र तथा किरनलता डंगवाल (2016-17): मूल्य एवं शान्ति शिक्षा, आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन, पृष्ठ सं. 85

ISSN 2278 - 0327

हरियाणा में फसल प्रतिरूप में बदलाव

मनीषा
एम० ए०, बी०एड०, भूगोल विषय
गांव निदाना, तहसील महम, जिला रोहतक (हरियाणा)

सार

एक फसल का फसल प्रतिरूप उत्पादन के एक क्षेत्र में कारकों की संख्या से निर्धारित होता है, और स्थानीय आबादी के भोजन की आदतों को भी निर्धारित करता है। 1960 के दशक के दौरान हरित क्रांति के बाद से आज तक हरियाणा के फसल प्रतिरूप में कई बदलाव हुए हैं। गेहूं और चावल हरियाणा राज्य की प्रमुख खाद्य फसलें हैं जिसके लिए हरित क्रांति बहुत सफल रही।

वर्तमान शोध लेख में हरियाणा में गेहूं और चावल की फसलों का विश्लेषणात्मक विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। हरियाणा का फसल प्रतिरूप हरित क्रांति से अत्यधिक प्रभावित होता है क्योंकि यह गेहूं और चावल के उत्पादन और कीमत को बढ़ाता है जो किसानों की मानसिकता को प्रभावित करता है। हालांकि, हरियाणा में खेती का वर्तमान प्रतिरूप पूरी तरह से गहन खेती से लाभ कमाने वाले व्यवसाय के लिए फसलों के बाजारोन्मुखी कृषि में बदल गया है। हरियाणा में व्यापक बाजार-उन्मुख कृषि खेती ने मिट्टी की उर्वरता, भूमिगत जल तालिका, फसलों के पोषण मूल्य और पर्यावरण को भी प्रभावित किया है।

मुख्य शब्दः कृषि-प्रणाली, फसल प्रतिरूप, उर्वरता, हरियाणा

भूमिका

फसल प्रतिरूप का अर्थ है एक समय में अलग-अलग फसलों के तहत भूमि का हिस्सा, वर्तमान वितरण में अंतर और समय की अवधि में फसल प्रतिरूप को प्रभावित करने वाली परिस्थितियां (मिश्रा और पुरी 2011)।

चावल और गेहूँ अब प्रायः दो-फसल चक्रीय प्रतिरूप में उत्पादित किए जाते हैं और इसकी औसत उपज स्थान-स्थान पर भिन्न होती है। बढ़ती आबादी, शहरीकरण और आर्थिक विकास के कारण बढ़ती मांगों को पूरा करने के लिए महत्वपूर्ण रूप से विस्तार करने की आवश्यकता है।

जम्मू-कश्मीर की कृषि प्रणाली इस क्षेत्र की परंपराओं का पालन करती थी जो केवल बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करती हैं। हरित क्रांति से राज्य की कृषि में बड़ा फर्क पड़ता है, अब किसान बाजार मूल्य के अनुसार फसल उगाते हैं और अधिक से अधिक लाभ कमाने का प्रयास करते हैं (सिंगरल, 2015)।

हरियाणा खाद्यान्न और दुग्ध उत्पादन में भारत का अग्रणी राज्य है। राज्य की लगभग 65-70 फीसदी आबादी कृषि गतिविधियों में लगी हुई है। अगर हम सिंचाई की बात करें तो हरियाणा राज्य दूसरे स्थान पर हैं।

हरित क्रांति ने हरियाणा में कृषि विकास में एक बड़ी भूमिका निभाई और इसे खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भर बना दिया। हरियाणा हमारे देश के सभी राज्यों में प्रति व्यक्ति आय में तीसरे स्थान पर है। यह 1970 के दशक से कृषि और विनिर्माण के क्षेत्र में सतत विकास रखता है और यह दक्षिण एशिया में एक आर्थिक रूप से विकसित क्षेत्र है।

1960-70 के दशक की बात करें तो हरियाणा में लगभग सभी फसलें उगाई जाती थीं, लेकिन कृषि के क्षेत्र में हरित क्रांति के बाद किसानों ने केवल गेहूं और चावल की फसलों पर ध्यान देना शुरू कर दिया। इसलिए राज्य के फसल प्रतिरूप को कई बदलावों का सामना करना पड़ता है। किसान केवल लाभ पर केंद्रित हैं, उन्हें जल स्तर और मिट्टी की उर्वरता की परवाह नहीं है।

वर्तमान अध्ययन मुख्य रूप से कृषि सांख्यिकीय सार हरियाणा से निकाले गए माध्यमिक डेटा पर आधारित एक मात्रात्मक अभ्यास है। इसके अलावा, विभिन्न अन्य स्रोतों जैसे जिला सांख्यिकीय कार्यालय, आर्थिक सर्वेक्षण और सरकारी प्रकाशनों और रिपोर्ट का उपयोग हमारे विश्लेषण के पूरक के लिए किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य को पूरा करने के लिए कृषि सांख्यिकीय सार हरियाणा से गेहूं और चावल की दो प्रमुख फसलों के शुद्ध बोए गए क्षेत्र और प्रति हेक्टेयर उपज की जानकारी को निकाला गया है।

परिणाम और निष्कर्ष

चित्र-1 2001-2018 की अवधि में हरियाणा राज्य में गेहूं उत्पादन के समग्र रुझान प्रतिरूप को दिखा रहा है। यह आंकड़ा दर्शाता है कि 2001-02 से 2008-09 तक प्रति हेक्टेयर गेहूं के वार्षिक उत्पादन और हेक्टेयर में शुद्ध बुवाई क्षेत्र की स्थिर गति है। 2009-10 में गेहूँ के दोनों आंकड़े (उपज और क्षेत्रफल) अचानक 4000 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर से बढ़कर 4600 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर हो गए।

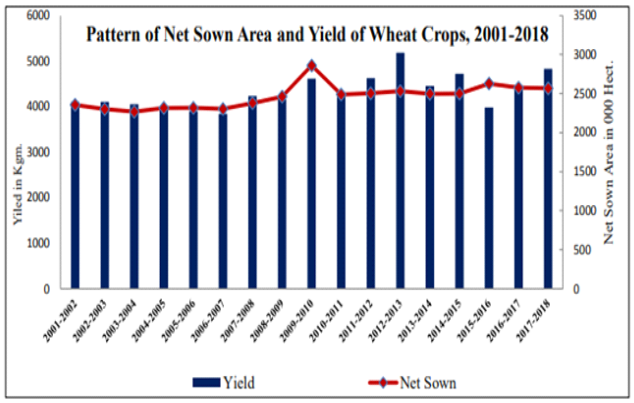

चित्र-1: स्रोत: सांख्यिकीय सार हरियाणा (2001-2018)

इसी प्रकार शुद्ध बुवाई क्षेत्र भी इसी अवधि में 2460 से बढ़कर 2859 हजार हेक्टेयर हो गया है। उसके बाद गेहूँ फसलों के अंतर्गत वार्षिक उपज और शुद्ध बुवाई क्षेत्र में 4600 से 4800 किलोग्राम उपज और शुद्ध बोए गए क्षेत्र में 2859 से 2500 हजार हेक्टेयर के बीच उतार-चढ़ाव दिखाई दे रहा है। इसलिए, उपज और शुद्ध बोया गया क्षेत्र दोनों पर प्रकाश डाला गया और दर्शाता है कि वर्ष 2009-2010 को छोड़कर गेहूं के तहत शुद्ध बोया गया क्षेत्र लगभग समान है। जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती जा रही है लेकिन भूमि सीमित है। अगर हम प्रति हेक्टेयर उपज की बात करें तो यह वर्ष 2009-20 में सकारात्मक वृद्धि में बहुत कम बदलाव को भी दर्शाता है।

किसानों की खराब स्थिति, खराब बुनियादी सुविधा, भूमि जोत के आकार में कमी जैसे कारक उत्पादन को अत्यधिक प्रभावित करते हैं।

चित्र-22001 से 2018 तक हरियाणा में चावल उत्पादन के समग्र अस्थायी प्रतिरूप को प्रदर्शित करता है। चावल उत्पादन के तहत शुद्ध बुवाई क्षेत्र के आंकड़े संकेत करते हैं कि समय की संदर्भ अवधि में उच्च उतार-चढ़ाव के साथ धीमी गति से शुद्ध बोया गया क्षेत्र है।

इसी प्रकार, चावल की फसलों में प्रति हेक्टेयर उपज में भी अध्ययन की संदर्भ अवधि में धीरे-धीरे बढ़ने की उतार-चढ़ाव की गति दिखाई दे रही है। शुद्ध बुवाई क्षेत्र के मामले में, यह 2001-02 में 1054 हजार हेक्टेयर से बढ़कर 2017-18 में 1385 हजार हेक्टेयर शुद्ध बुवाई क्षेत्र के लिए होता है।

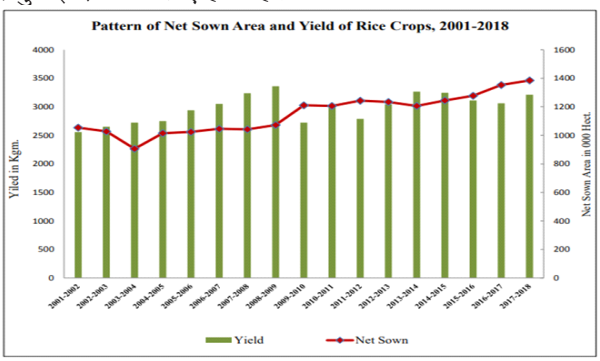

चित्र 2: स्रोत सांख्यिकीय सार हरियाणा

इसी प्रकार, अध्ययन की संदर्भ अवधि में 2557 से 3213 किलोग्राम उपज के बीच उच्च उतार-चढ़ाव के साथ प्रति हेक्टेयर गेहूं की फसल की वार्षिक उपज धीमी गति से बढ़ रही है। इसी तरह, चावल की उपज भी 2001-20 में 2557 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर से बढ़ी। इसलिए, अध्ययन के संदर्भ की अवधि में शुद्ध बोए गए क्षेत्र और चावल की फसलों की उपज में वृद्धि हुई है। इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि चावल के तहत शुद्ध बोया गया क्षेत्र 2003-04 को छोड़कर लगभग सभी वर्षों में सकारात्मक वृद्धि दिखा रहा है और उपज भी 2001 से 2009 तक बढ़ रही है।

गेहूँ फसलों के उत्पादन का क्षेत्रीय रुझान

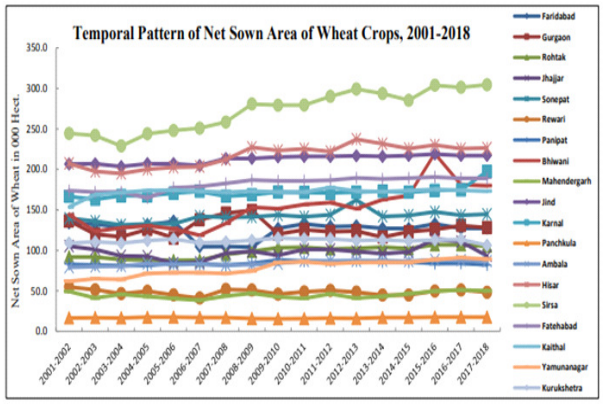

चित्र 3 : स्रोत सांख्यिकीय सार हरियाणा

चित्र 3 हरियाणा में गेहूँ फसलों के अंतर्गत कुल बोए गए क्षेत्र का समग्र जिलावार प्रतिरूप को दर्शाता है।

अध्ययन की संदर्भ अवधि के दौरान सिरसा और जींद जिले गेहूं की फसलों के तहत सबसे बड़े शुद्ध बुवाई वाले क्षेत्रों में से एक हैं। दूसरी ओर, जिला पंचकूला अध्ययन की संदर्भ अवधि में महेंद्रगढ़, रेवाड़ी और यमुना नगर से पहले गेहूं की फसल (16 से 17 हजार हेक्टेयर) के तहत सबसे छोटा शुद्ध बोया गया क्षेत्र दर्ज कर रहा है।

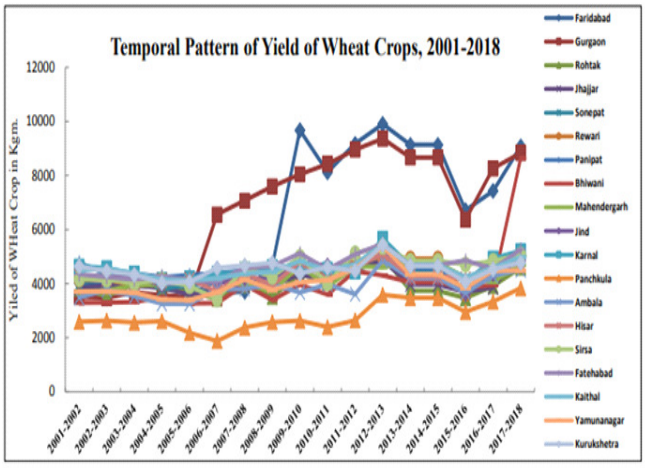

चित्र 4: स्रोत, सांख्यिकीय सार हरियाणा

चित्र 4 में जिला स्तर पर गेहूं की फसलों के लिए प्रति हेक्टेयर उपज का एक सामान्य प्रतिरूप दिखा रहा है। जिला गुड़गांव ने 2006–07 से गेहूं की उत्पादकता में वृद्धि करना शुरू कर दिया है और उच्चतम (9359 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर) 2012–13 में था और फिर से 2017–18 में यह बहुत कम स्तर पर घट गया। दूसरी ओर, जिला पंचकूला अध्ययन की संदर्भ अवधि में प्रति हेक्टेयर सबसे कम उपज दिखा रहा है। इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि सभी जिलों की उपज समान या थोड़ी ऊपर और नीचे रहती है। फरीदाबाद सबसे अधिक 9078 किग्रा उपज के साथ प्रथम स्थान पर था। प्रति हेक्टेयर, इसके बाद गुड़गांव 8834 किग्रा हेक्टेयर के साथ और भिवानी 8642 किग्रा हेक्टेयर उपज के साथ तीसरे स्थान पर था जो पिछले वर्ष की उपज के मुकाबले दोगुना था।

चित्र 5 चावल की फसलों के तहत कुल बोए गए क्षेत्र का समग्र जिलावार प्रतिरूप दर्शाता है। आंकड़े बताते हैं कि जिला करनाल में वर्ष 2001–20 की संदर्भ अवधि के दौरान 1580 से 1740 हजार हेक्टेयर के साथ चावल की फसलों के तहत सबसे बड़ा शुद्ध बोया गया क्षेत्र दर्ज किया गया है। करनाल जिले के बाद कैथल, कुरुक्षेत्र और जींद हैं, जो संदर्भ अवधि के दौरान चावल की फसलों के तहत सबसे बड़ा शुद्ध बोया गया क्षेत्र है।

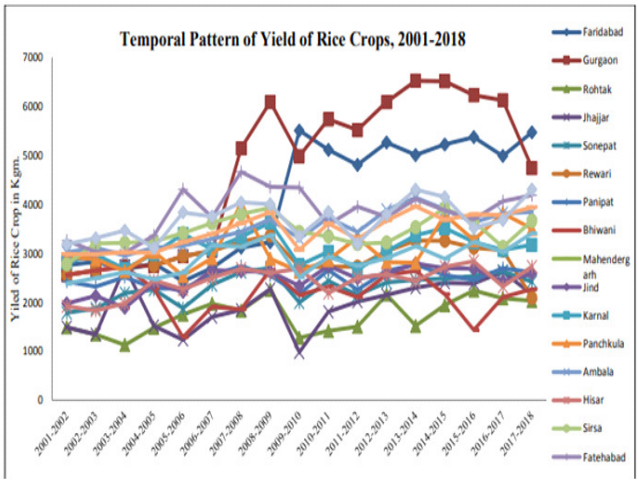

चित्र 5 : स्त्रोत सांख्यिकीय सार हरियाणा

इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि चावल के तहत शुद्ध बोया गया क्षेत्र 2001 से 2020 तक करनाल जिले में अधिक है और इसके बाद कैथल है। कुछ उतार–चढ़ावों के साथ शुद्ध बुवाई क्षेत्र में कुरुक्षेत्र तीसरे स्थान पर रहा। जींद जिला भी चावल के तहत शुद्ध बोए गए क्षेत्र में भारी उतार–चढ़ाव दिखाता है। चावल की फसलों के तहत कुल बोए गए क्षेत्र का कुल जिलेवार प्रतिरूप संदर्भित वर्ष की अवधि के दौरान जिले से जिले में अलग–अलग होता है।चित्र 6 हरियाणा राज्य में 2001–20 के दौरान चावल की फसलों के लिए प्रति हेक्टेयर उपज के सामान्य जिलेवार प्रतिरूप को दर्शाता है। चावल उत्पादन की उपज से पता चलता है कि गुड़गांव जिले में चावल की फसलों के लिए प्रति हेक्टेयर उच्चतम उपज 2007–08 में 5142 किलोग्राम के साथ 4739 किलोग्राम दर्ज हुई है।

इसी तरह, संदर्भ अवधि के दौरान चावल की फसलों में गुड़गांव के बाद फतेहाबाद और कुरुक्षेत्र के बाद फरीदाबाद जिले में चावल की दूसरी सबसे अधिक उपज दर्ज की गई। दूसरी ओर, जिला रोहतक अध्ययन की संदर्भ अवधि के दौरान क्रमश: झज्जर, भिवानी और हिसार से पहले चावल की फसलों के तहत सबसे छोटा शुद्ध बोया गया क्षेत्र दर्ज कर रहा है।

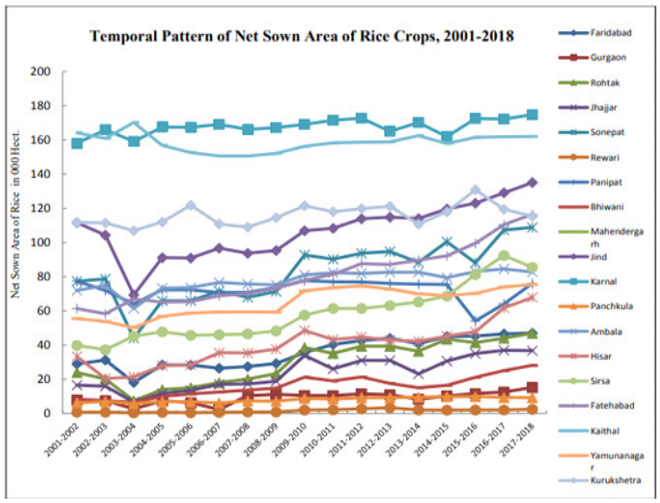

चित्र 6: स्त्रोत सांख्यिकीय सार हरियाणा

संक्षेप में, गुड़गांव जिला उच्चतम उपज में प्रथम स्थान पर था और फरीदाबाद प्रति हेक्टेयर उपज में दूसरे स्थान पर था। अगर हम अलग–अलग बात करें तो चावल की पैदावार में फतेहाबाद और कुरुक्षेत्र का पहला और दूसरा स्थान है। महेंद्रगढ़ में चावल का उत्पादन नहीं होता है।

चावल की फसलों के उत्पादन का स्थानिक प्रतिरूप

अनुसंधान चावल फसलों के तहत 2001–02 से 2005–06 (पांच साल का औसत) के लिए औसत शुद्ध बुवाई क्षेत्र रहे। केवल 2 जिले अर्थात् करनाल और कैथल हरियाणा में चावल की फसलों के लिए औसत सबसे बड़ा शुद्ध बोया क्षेत्र दर्ज किया गया।

कुरुक्षेत्र और जींद नामक दो जिले चावल उत्पादन के लिए शुद्ध बोए गए क्षेत्र का मध्यम औसत रहे हैं। हालांकि, सबसे अधिक संख्या में 13 जिले जैसे सिरसा, हिसार भिवानी आदि हरियाणा राज्य में चावल की फसलों का एक छोटा शुद्ध बोये गये क्षेत्र हैं। बहरहाल, जिले महेंद्रगढ़ में राज्य में चावल का कोई उत्पादन नहीं होता है।

2006–11 से 2012–16 तक चावल उत्पादन के तहत औसत शुद्ध बोए गए क्षेत्र के परिवर्तन से पता चलता है कि कम औसत शुद्ध बुवाई क्षेत्र यानी सिरसा और सोनीपत से दो नए जिले मध्यम औसत में उन्नत हुए हैं। शेष जिलों में अभी भी वही स्थिति है जो चावल उत्पादन के पहले वर्ष में थी। करनाल और कैथल में चावल उत्पादन का सबसे बड़ा औसत शुद्ध बोया गया क्षेत्र है, कुरुक्षेत्र, जींद, सोनीपत और फ्तेहाबाद में औसत शुद्ध बोए गए क्षेत्र का मध्यम आकार का रिकॉर्ड है और सिरसा, भिवानी, और यमुना नगर आदि जैस 12 जिले अभी भी चावल उत्पादन के लिए कम औसत शुद्ध बुवाई क्षेत्र दिखा रहे हैं।

जींद 2018–20 तक चावल फसलों के तहत शुद्ध बोए गए क्षेत्र की अपनी स्थिति में परिवर्तन दर्ज करता है। वर्ष 2018–20 में जींद जिले को (2012–16) मध्यम आकार से उन्नत करके धान की फसलों के तहत कुल बोए गए क्षेत्र के सबसे बड़े आकार का कर दिया गया है। शेष जिलों की स्थिति वैसी ही है जैसी 2012–16 के सत्र में थी। 2006–07 से 2010–11 (5 वर्ष) के दौरान चावल की फसलों की औसत उपज से पता चलता है कि 4 जिलों अर्थात् गुड़गांव, फरीदाबाद, फतेहाबाद और कुरुक्षेत्र ने चावल उत्पादन की उच्च औसत उपज दर्ज की है और जींद, सिरसा, और यमुनानगर, आदि में मध्यम स्तर की औसत उपज दर्ज की जाती है।

इसके अलावा, सोनीपत, रोहतक जिलों में चावल उत्पादन का निम्न स्तर का रिकॉर्ड है। चावल की औसत उपज में 2001–06 से 2006–11 में परिवर्तन दर्ज किया गया है कि उच्च उपज वाले 9 जिले घटकर 4 जिले रह गए हैं, और शेष 5 जिलों में मध्यम स्तर की उपज में गिरावट आई है।

अंत में, चावल की कम उपज की संख्या भी 2 जिलों से बढ़कर 4 जिलों में हो गई है यानी सोनीपत और भिवानी ने चावल की मध्यम से निम्न स्तर की उपज में अपनी स्थिति को कम कर दिया है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि चावल उत्पादन की उच्च–स्तरीय उपज वाले जिलों की संख्या में उनकी स्थिति में गिरावट आई है। इस प्रकार, हरियाणा में इस अवधि के दौरान चावल उत्पादन की उपज में गिरावट आई है।

2018–20 के दौरान चावल उत्पादन की औसत उपज से पता चलता है कि 3 जिले यानी फतेहाबाद, गुड़गांव और फरीदाबाद में चावल उत्पादन की उच्च औसत उपज और 7 जिले जैसे अंबाला, सिरसा और कुरुक्षेत्र आदि में मध्यम स्तर की औसत उपज दर्ज की गई है।

गेहूं की फसलों के उत्पादन का स्थानिक प्रतिरूप

2001–2006 से 2006–2011 तक जिलों की स्थिति में परिवर्तन से पता चलता है कि 2006–11 में गेहूँ उत्पादन के तहत जिला जींद उच्च से कम होकर मध्यम स्तर के औसत शुद्ध बोया गया क्षेत्र बन गया ।

इसके अलावा 2001–06 के मध्यम शुद्ध बुवाई क्षेत्र के 2 जिलों अर्थात् भिवानी और सोनीपत ने 2006–11 में गेहूं फसल उत्पादन के तहत छोटे शुद्ध बोए गए क्षेत्र में अपनी स्थिति को कम कर दिया है।

मध्यम शुद्ध बुवाई क्षेत्र के कुल तीन जिलों यानी भिवानी, सोनीपत और फरीदाबाद ने गेहूं की फसल उत्पादन के तहत छोटे शुद्ध बुवाई क्षेत्र में अपनी स्थिति को कम कर दिया है।

वर्ष 2011–12 से 2015–16 (5 वर्ष) के दौरान गेहूँ फसलों का औसत शुद्ध बुवाई क्षेत्र यह दर्शाता है कि 2011–16 में 2 जिलों के उच्च औसत शुद्ध बुवाई क्षेत्र की स्थिति में कोई परिवर्तन दर्ज नहीं किया गया है।

वर्ष 2006–11 में 9 जिले अर्थात हिसार, गुड़गांव, झझर आदि कम शुद्ध बुवाई क्षेत्र 7 जिलों में 2011–16 में कम हो गए हैं।

इन 9 जिलों में से हिसार मध्यम और पानीपत कम होकर राज्य में बहुत कम शुद्ध बुवाई क्षेत्र में आ गया। 2011–16 में गेहूँ फसल उत्पादन के तहत 5 जिले बहुत कम शुद्ध बुवाई क्षेत्र दिखा रहे हैं।

पानीपत में गेहूँ उत्पादन के बहुत कम शुद्ध बुवाई क्षेत्र में गिरावट आई है। कुल मिलाकर, जिलों की संख्या में उनकी उच्च स्थिति से निम्न स्थिति में गिरावट आई है।

शोध से पता चलता है कि गेहूं की फसलों के तहत औसत शुद्ध बोए गए क्षेत्र में केवल 1 जिला सिरसा गेहूं फसलों के तहत औसत सबसे बड़ा शुद्ध बोया गया क्षेत्र दर्ज करता है औरय 6 जिले जैसे कैथल, जींद, और करनाल, आदि हरियाणा में गेहूँ फसलों के तहत मध्यम शुद्ध बुवाई क्षेत्र दर्ज करते हैं।

कुल 7 जिले जैसे फतेहाबाद, भिवानी और सोनीपत आदि में गेहूँ फसल उत्पादन के तहत छोटा शुद्ध बोया गया क्षेत्र दिखाई दे रहा है। इसी प्रकार 5 जिले महेंद्रगढ़, रेवाड़ी, यमुनानगर आदि में गेहूँ फसल उत्पादन के तहत बहुत कम शुद्ध बोया गया क्षेत्र दर्ज है।

2016–18 के लिए गेहूं उत्पादन के तहत औसत शुद्ध बुवाई क्षेत्र से पता चलता है कि सिरसा के केवल एक जिले में उच्च औसत शुद्ध बोया गया क्षेत्र दर्ज है। 2018–20 में उच्च शुद्ध बुवाई क्षेत्र के जिला हिसार में मध्यम स्तर के शुद्ध बुवाई क्षेत्र में गिरावट आई है।

हालांकि छोटे शुद्ध बुवाई क्षेत्र के तहत कई जिलों में कोई बदलाव नहीं हुआ है, गेहूं उत्पादन यमुना नगर की स्थिति इस समूह में कम शुद्ध बुवाई क्षेत्र तक पहुंच गई है। इसके अलावा, कम शुद्ध बोए गए क्षेत्र का जिला अंबाला गेहूं की फसल के तहत बहुत कम शुद्ध बोए गए क्षेत्र में चला गया है।

बहुत कम शुद्ध बोए गए क्षेत्र के जिलों की संख्या में कोई

परिवर्तन नहीं हुआ है, लेकिन यमुना नगर कम और अंबाला कम शुद्ध बोया गया क्षेत्र गेहूं फसल उत्पादन के तहत बहुत कम शुद्ध बोया गया है।

6 मध्यम उपजों में से जिला रेवाड़ी उच्च उपज से मध्यम उपज गेहूँ उत्पादन में नीचे चला गया है। कम उपज वाले 6 जिलों में से सोनीपत और पानीपत में गेहूँ उत्पादन की मध्यम से कम उपज में गिरावट आई है।

गेहूं उत्पादन की उपज के बदलते प्रतिरूप से पता चलता है कि 2 जिले यानी गुड़गांव और फरीदाबाद गेहूं उत्पादन की उच्च उपज में बने हुए हैं। मध्यम उपज में केवल एक जिला भिवानी है जो बहुत कम उपज से लेकर मध्यम उपज तक गेहूँ उत्पादन से उत्पन्न हुआ है। कुल 3 जिलों यानी फतेहाबाद, सिरसा और करनाल में गेहूं की कम पैदावार दर्ज की गई है। इन तीनों जिलों ने गेहूँ उत्पादन की मध्यम उपज से कम उपज की स्थिति में अपनी स्थिति को गिरा दिया है। 19 में से 10 जिलों में सबसे अधिक संख्या में गेहूँ उत्पादन की बहुत कम उपज दर्ज की गई है।

इनमें से अधिकांश जिलों में गेहूं उत्पादन की अधिक उपज से कम उपज में गिरावट आई है। इस प्रकार, यह ध्यान दिया जाता है कि अधिकांश जिलों ने हरियाणा में गेहूं उत्पादन की अपनी स्थिति को कम कर दिया है।

निष्कर्ष

हरियाणा भारत का सबसे बड़ा खाद्यान्न उत्पादक राज्य है। हरियाणा का फसल प्रतिरूप खाद्यान्न उत्पादन के लिए हरित क्रांति से अत्यधिक प्रभावित था। हरियाणा गेहूं और चावल के उत्पादन के लिए हरित क्रांति में सबसे सफल राज्यों में से एक था। हालांकि, दोनों फसलों की उपज के साथ-साथ गेहूं और चावल की फसलों के तहत शुद्ध बोए गए क्षेत्र के विश्लेषण से संकेत मिलता है कि अध्ययन की संदर्भ अवधि में बोए गए क्षेत्र और दोनों फसलों की उपज में अस्थायी भिन्नता थी।

हरियाणा का फसल प्रतिरूप हरित क्रांति से अत्यधिक प्रभावित होता है क्योंकि यह गेहूं और चावल के उत्पादन और कीमत को बढ़ाता है जो किसानों की मानसिकता को प्रभावित करता है। वे केवल दो फसलें उगाकर अधिक लाभ चाहते हैं जो हरियाणा के पारंपरिक फसल प्रतिरूप को प्रभावित करते हैं।

हरियाणा में हरित क्रांति के प्रभाव के कारण हरियाणा में गेहूं और चावल के उच्च उत्पादन में लगातार पर्यावरणीय गिरावट, विशेष रूप से मिट्टी, वनस्पति और जल संसाधनों का प्रभाव पड़ता है। मृदा कार्बनिक पदार्थ का स्तर गिर रहा है और रासायनिक आदानों का उपयोग तेज हो रहा है।

पानी की कमी वाले जिलों में चावल की अधिक खेती होने से यह डार्क जोन जैसी समस्या खड़ी कर देगा। विभिन्न फसलों को उगाने के लाभों के बारे में किसानों में जागरूकता फैलाने के लिए सरकार को प्रोत्साहन देना चाहिए ।

किसानों को अपनी मिट्टी और पानी की स्थिति के बारे में पता होना चाहिए और फिर इन परिस्थितियों में उपयुक्त फसल उगाना चाहिए। जैव-कृषि और कम पानी की खपत वाली फसलों को बढ़ाने का प्रयास करें।

संदर्भ

1. बलदेव राज कम्बोज, धर्म बीर यादव, अशोक यादव, नरेंद्र कुमार गोयल, गुरजीत गिल, राम के मलिक, भगीरथ सिंह चौहान (2013)। हरियाणा, भारत में चावल-गेहूं फसल प्रणाली में गैर-पुडल और नो-टिल स्थितियों में चावल (ओरिजा सैटिवा एल) का यंत्रीकृत प्रत्यारोपण। अमेरिकन जर्नल ऑफ प्लांट साइंसेज
2. ई. हम्फ्रीज और सी.एच. रोथ (2008)। भारत-गंगा के मैदान में चावल-गेहूं प्रणालियों के लिए स्थायी बिस्तर और चावल-अवशेष प्रबंधन। अंतर्राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान के लिए ऑस्ट्रेलियाई केंद्र, कैनबरा, 2008।
3. मिश्रा, एस.के. और पुरी, वी.के. (2011), इंडियन इकोनॉमी- इट्स डेवलपमेंट एंड एक्सपीरियंस, हिमालय पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड।
4. पी.के. अग्रवाल, एस.के. बंद्योपाध्याय, एच. पाठक, एन. कालरा, एस. चंदर, एस कुमार (2000)। उत्तर-पश्चिमी भारत में चावल-गेहूं प्रणाली की उपज प्रवृत्तियों का विश्लेषण। कृषि पर आउटलुक। वॉल्यूम। 29(4), पीपी. 259-268.
5. आरबी सिंह (2010)। कृषि विकास के पर्यावरणीय परिणाम, हरित क्रांति राज्य हरियाणा, भारत से एक केस स्टडी। कृषि, पारिस्थितिकी तंत्र और पर्यावरण। खंड 82 अंक 1-3 दिसंबर 2000। पीपी। 97- 103
6. सिंगरल, सी. (2015), चेंजिंग क्रॉपिंग प्रतिरूप एंड क्रॉप डायवर्सिफिकेशन इन जम्मू एंड कश्मीरश्शर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंसेज, खंड 20 अंक-4, पीपी.07-09।
7. सांख्यिकीय सार हरियाणा (2001-2018), आर्थिक और सांख्यिकीय विश्लेषण विभाग। हरियाणा।

ISSN 2278 - 0327

जगदीश चंद्र कृत 'धरती धन न अपना' उपन्यास का आलोचनात्मक विवेचन

सुमित कुमार
पीएच.डी. शोधार्थी, हिंदी-विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

सारांश:-

हिंदी गद्य साहित्य की अन्य विधाओं के तरफ उपन्यास भी भारतेंदु काल की देन है। हिंदी में उपन्यास बंगला साहित्य से आए। बंगला साहित्य में 'उपन्यास' अंग्रेजी के उपन्यासों से प्रभावित थे। जिसका प्रभाव हिंदी उपन्यासों पर दृष्टिगोचर होता है। आजादी के पश्चात् उपन्यासों की बाढ़-सी आ गई और विभिन्न विषयों पर उपन्यास साहित्य सामने आने लगा। सामाजिक, आंचलिक, ऐतिहासिक, अनूदित, दलित उपन्यास लिखे जाने लगे। सत्तर के दशक में दलित उपन्यास में जगदीश चंद्र का 'धरती धन न अपना' लेखन में प्रथम और प्रकाशन में द्वितीय उपन्यास था। इसका लेखन उपन्यासकार ने पचास के दशक में शुरू किया था और आठ अध्याय लिखने के पश्चात् इसका लेखन अधूरा छोड़ दिया। 'यादों का पहाड़' नाम से 1966 में इनका प्रथम प्रकाशित उपन्यास आया। कुछ मित्रों के प्रोत्साहन के पश्चात् लेखक ने 'धरती धन न अपना' उपन्यास का पुन: लेखन आरंभ किया। 1968 ई. में पूरा हुआ और 1972 में यह उपन्यास प्रकाशित हुआ। इसी उपन्यास की दूसरी कड़ी 'नरककुंड में बास' 1993 और तीसरी कड़ी 'जमीन अपनी तो थी' 2001 में प्रकाशित हुई। 'धरती धन न अपना' उपन्यास के लेखक को काफी ख्याति मिली। इसमें लेखक ने अपने पैतृक गाँव घोड़ेवाहा और ननिहाल रलहन में दलित समाज की यथार्थ स्थिति का चित्रण किया। यह उपन्यास केवल हिंदी में ही नहीं अपितु विदेशी भाषाओं रूसी, अंग्रेजी, जर्मन और फ्रेंच आदि में भी अनुवाद हुआ। भारत की भी प्रमुख भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ। प्रस्तुत शोध पत्र में उपन्यास का आलोचनात्मक विवेचन किया जाएगा।

मूल शब्द:-दलित, पैतृक, सामंत, चमादड़ी, बेगार।

प्रस्तावना:-

उपन्यास की कथावस्तु उपन्यास के नायक काली के छ: वर्ष उपरांत कानपुर से अपने गाँव घोड़ेवाहा लौटने से होती है। उपन्यासकार अपने पैतृक गाँव और रलहन ननिहाल के गाँव में दलित घरों के जीवन को बचपन और किशोरावस्था में जितने गहराई से देखा था, उसका लेखक के संवेदनशील हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। जिसे लेखक ने अपनी त्रयी दलितों उपन्यासों 'धरती धन न अपना','नरककुंड में बास' और 'जमीन अपनी तो थी' पंजाब के दोआब क्षेत्र में दलित जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। उपन्यास की कथावस्तु 49 भागों में विभाजित है। काली का गाँव में चाची के अतिरिक्त कोई नहीं है। उसके बचपन में माता-पिता और चाचा का देहांत हो गया था। चाची का मोह ही काली कोगाँव में ले आया था।

काली दलित समाज से संबंध रखता था। प्रदेश से मेहनत-मजदूरी कर कुछ पैसे कमाकर गाँव आया था। इसके कारण चमार जाति का होने पर भी गाँव के कुछ लोग उसे बाबू कालिदास कहते हैं। किंतु गाँव में जमीनों के मालिक चौधरी, एक-दो बनिए थे। इनके खेतों और घरों में दलित चमार काम करते थे। चौधरी लोग इनसे बेगार पर कार्य करवाते और गाली-गलौज करते व मारते-पीटते भी थे।

काली की इच्छा है कि वे अपने कच्चे मकान की जगह पक्का मकान बनाए जब वह छज्जूशाह से सलाह लेता है, तो वह काली को बताता है कि जिन दलित घरों में लोग रहते हैं। उनका इस जमीन पर कोई अधिकार नहीं है। यह जगह गाँव की साँणी जगह 'शामलात' है। इसका अर्थ यह है कि जब तक उनके खानदान का कोई व्यक्ति वहाँ रहता है तब तक उसका अधिकार है। काली के पास पैसे देखकर उससे उसके चाचा द्वारा लिए गए उधार को ब्याज सहित वसूल करता है।

काली द्वारा पक्के मकान बनाने के विषय में सोचना ही सांमती व्यवस्था के लिए विध्वंसक कार्यवाही है। कुछ लोग को छोड़ चमादड़ी के लोग काली से ईर्ष्या करते हैं। काली का प्रेम प्रसंग उसके ही गाँव की ज्ञानों से हो जाता है। ज्ञानों का भाई मंगू हमेशा काली से उलझता रहता है। काली की चाची प्रतापी अचानक बीमारी के कारण चल बसती है। चाची के शोक मे आए पड़ोसी उसकी कमाई और चाची द्वारा बनाए गहने-रूपये चोरी कर ले जाते हैं। काली के मकान बनाने का सपना अधूरा रह जाता है। वह अब घास खोदने का काम करने लगता है।

उपन्यास में नया मोड़ गाँव में बाढ़ आने पर आता है। इस आपदा का सामना चमार और चौधरी मिलकर करते है, किंतु वे उनकी जमीनों पर बेगार में काम नहीं करना चाहते। चमारों का चौधरियों द्वारा सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता है। पादरी उनकी सहायता करना चाहता है किंतु वे उन्हें ईसाई धर्म अपनाने के पश्चात् ही मदद करेगा। इसी तरह डॉ. बिंशनदास व कामरेड टहल सिंह जैसे झूठे कामरेड केवल भाषण देने तक ही सीमित है। पद्रंह दिन तक भूखे प्यासे बच्चों को बिखलता देख चमारों की हिम्मत जबाव दे जाती है। वे अब चौधरियों के खेतों में आधी मजदूरी पर काम करने को तैयार हो जाते हैं।

उपन्यास के अंत में काली और ज्ञानों की प्रेम कहानी की त्रासदी है। ज्ञानों गर्भवती हो जाती है। गाँव वाले को इनकी शादी मंजूर नहीं है लालू पहलवान भी काली को काम से निकाल देता है। बदनामी के डर से ज्ञानों का भाई और माँ उसे जहर देकर मार देते हैं। इन विषम परिस्थितियों में काली गाँव से जान बचाकर भाग जाता है और उपन्यास अंत होता है।

उपन्यास की कथावस्तु पाठकों को बांधने रखने में सफल रहती है। क्योंकि लेखक ने कथानक को अपने जीवन में देखें यथार्थ के आधार पर लिखा है। कथानक में भारतीय समाज में जाति प्रथा के निर्माण के पीछे स्वार्थ निहित षड्यंत्र के अंतर्गत मनुष्य को भिन्न-भिन्न जातियों में बाँटकर, किसी एक विशेष वर्ण या जाति की प्रभुत्व बनाए रखने का प्रयत्न किया गया है। 'धरती धन न अपना' में बहिस्कृत चमादड़ी (चमारों की बस्ती)में रहने वाले दलितों के जीवन के विभिन्न पहलुओं का यथार्थ चित्रण किया गया। ''चमादड़ी में ऐसी घटना कोई नयी बात नहीं थी, ऐसा अक्सर होता रहता था। जब चौधरी की फसल चोरी, बर्बाद कर दी जाती, चमार चौधरी के काम पर न जाता या फिर किसी चौधरी के अंदर जमीन की मलकीत का एहसास जोर पकड़ लेता तो वह अपनी साख बनाने और चौधरी मनवाने के लिए इस मोहल्ले में चला आता''[1] यहाँ सवर्ण जातियों द्वारा दलितों के शोषण का यथार्थ चित्रण है। जिसमें जाति की श्रेष्ठता के अहं में अमानवीय पद्धति का प्रयोग किया गया है। दलित समाज के लोगों का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक शोषण कर एक ऐसा समुदाय तैयार किया जाता है, जो गुलामी के लिए तैयार है। वर्तमान में भी देश के विभिन्न स्थानों पर प्राय:यह देखने को मिलता है। कुछ समय पूर्व एक सत्य घटना पर आधारित फिल्म 'जय भीम' में इसी तरह के मुद्दों को उठाया गया था। अगर किसी उच्च जाति के घर में चोरी हो जाती तो उसका आरोप दलित या गरीब जातियों पर लगा दिया जाता है।

लेखक ने धर्मातरंण के मुद्दे को भी उपन्यास के माध्यम से उठाया है। उपन्यास में नंदसिंह नामक पात्र पहले सिख बनता है, लेकिन उच्च जाति के सिख लोग भी उसे मुँह नहीं लगाते। फिर वह क्रिस्तान बनता है। फिर भी वह गाँव की उच्च जातियों के लिए चमार का चमार रहा। अपितु कुछ नीचे ही गिर गया था। इसी तरह जब गाँव में बाढ़ आती है, तो पादरी मौके का फायदा उठाकर दलित समाज के लोगों का धन संपत्ति का लालच देकर धर्मातरंण का प्रयास करता है। किन्तु ऐसे लोगों को अपने समाज में वही स्थान रहता है, जो पहला था।

उपन्यास में प्रेम विवाह की समस्या को काली और ज्ञानों के माध्यम से सामने लाते है। उनमें चाहे आदर्श दंपति बनने के गुण क्यों न हो, किंतु समाज उन्हें स्वीकार नहीं करेगा। समाज में अपमान के भय से ज्ञानों को उसका परिवार जहर देकर मार देता है और काली को भी नौकरी से निकाल लिया जाता है। ऐसी संकीर्ण मानसिकता वर्तमान समाज में भी दृष्टिगोचर होती है। लोग अपनी झूठे इज्जत के लिए अपनी लड़कियों को मार देते हैं या उनका सामाजिक बहिष्कार कर देते है

उपन्यास के अंतर्गत अस्पृश्यता की समस्या का भी चित्रण हुआ है। गाँव में उच्च जातियों द्वारा छुआछूत का व्यवहार किया जाता हैं। गाँव का बनिया काली को संपन्न देख उसे बाबू कालिदास कहता है किंतु उसकी सिगरेट मांगने पर दूर से ही फेंकता है, ताकि कहीं वह छू न ले। इस तरह जब काली अपना मकान पक्का करना चाहता है, तो कोई भी मिस्त्री काम करने के लिए तैयार नहीं होता। ईंट भट्टे का मुंशी भी काली से छुआछुत का व्यवहार करता है। उपन्यास में सवर्णों द्वारा आसमान को बोध शब्द 'चमार-कुत्ता' या 'चमार सिर पर चढ़ते जा रहे है' इनका दिमाग ख़राब हो गया है, इन्हें सीधा करना पड़ेगा आदि शब्दों का प्रयोग जाति अहं को दर्शाता है। किंतु ये लोग एक तरफ तो छुआछूत का व्यवहार का ढोंग करते हैं तो दूसरी और दलित स्त्रियों का यौन शोषण करने में इनका धर्म भ्रष्ट नहीं होता। उपन्यास में दलित वर्ग चौधरियों पर निर्भर करता है। शायद ही कोई स्त्री हो जो इनकी हवस का शिकार न हो। उपन्यास में हरदेवा प्रीतों की लड़की लच्चों से बलात्कार करता है। पंडित सतराम जैसे लोंग छुआछुत का पाखंड कितना ही क्यों न करें किन्तु चमारों की स्त्रियों के लिए हर समय लार टपकाते रहते है। यहाँ उच्च वर्ग केवल अपनी यौन तुष्टी ही नहीं करता। अपितु दलितों के आत्म सम्मान को मानसिक रूप से अपाहिज बनाकर उस पर अपने उत्पीड़न का वर्चस्व बनाए रखना चाहते है। चमारों के प्रति उच्च वर्ग की घृणा और तिस्कार किस सीमा तक जा सकता है, इसका वर्णन उपन्यासकार ने सजीवता से किया है। चमारों की बस्ती में बाढ़ के कारण उनके लिए बना कुँआ पानी में डूब जाने पर उन्हें पानी के लिए तरसना पड़ता ही कोई उनकी सहायता नहीं करता।

निष्कर्ष-

'धरती धन न अपना' उपन्यास में पंजाब के दोआब क्षेत्र के दलित समाज के जीवन का त्रासदी पूर्ण वर्णन किया गया है। यह स्थिति मात्र पंजाब प्रांत की नहीं अपितु संपूर्ण देश में दलितों की स्थिति है। इस तरह जाति व्यवस्था से जुड़े मुद्दों को अभिव्यक्ति देने में यह उपन्यास काली के गाँव लौटने से आरंभ होकर, चमारों की बस्ती की दर्दनाक स्थिति को दर्शाता हुआ पंजाब के गाँवों में दलित जीवन के विभिन्न रूपों को अंकित करता है।

संदर्भ सूची:-

1. जगदीश चन्द्र, धरती धन न अपना, पृ. 20-21
2. जगदीश चन्द्र, धरती धन न अपना, उपन्यास, राजकमल प्रकाशन दिल्ली
3. Igonou the people's university, धरती धन न अपना, दलित जीवन की त्रासदी के संदर्भ में
4. हिन्दीं साहित्य इतिहास, साहित्य सरोवर

ISSN 2278 - 0327

प्रत्याहार का दार्शनिक पक्ष : एक विवेचनात्मक अध्ययन

नम्रता चौहान
सहायक प्राध्यापक
योग एवं नेचुरोपेथी विभाग
सरला बिरला विश्वविद्यालय
रॉची

चंचल सूर्यवंशी
शोधार्थी
इंटिग्रेटिव मेडिसिन डिर्पाटमेंट
श्री देवराज यूआरएस अकादमी ऑफ रिसर्च
कोलार, बैंगलोर

निशा सैनी
सहायक प्राध्यापक
शारीरिक शिक्षा विभाग
स्वामी विवेकानंद सुभारती विश्वविद्यालय
मेरठ

संक्षेपिका- प्राचीन परंपरा की अमूल्य संपदा योग को वर्तमान में दार्शनिक पक्ष के साथ-साथ व्याहारिक दृष्टि से भी प्रयोग किया जा रहा है। योग के व्यवहारिक लाभों ने इसका प्रचार तथा विस्तार अत्यंत तीव्र गति से करके लोकप्रिय बनाया, परंतु इन अंगों में केवल योग के केवल शारीरिक अभ्यास आसन प्राणायाम ही शामिल है। योग के कुछ अंग सूक्ष्मता, आध्यात्मिक लाभ की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण होने पर भी अधिकतम साधकों तथा अभ्यासियों द्वारा उपेक्षित ही है। जिनमें प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि अग्रगण्य है। अर्थात् योग का एकपक्षीय या अंशात्मक प्रचार हो रहा है। महर्षि पतंजली ने योग के आठ अंगों में प्रथम पाँच अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार है एवं अंतरंग तीन अंगों में धारणा, ध्यान तथा समाधि को रखा है। जिनमें आसन, प्राणायाम तथा ध्यान का अभ्यास अन्यों की तुलना में अधिक प्रचलित है, अपितु यम, नियम, प्रत्याहार का अभ्यास अपेक्षाकृत कम प्रचलित है। उल्लेखनीय है कि योग साधना के बाह्य अंगों के प्रारंभिक अभ्यास यम, नियम तथा बाह्य अंगों का प्रारंभ प्रत्याहार है। अत: दोनों ही स्थिति में प्रारंभिक अभ्यासों को न्यून मात्रा में अभ्यास किया जाता है। परिणाम स्वरूप आगे के अभ्यास सिद्धि में बाधाएँ आती है। वर्तमान में साधक द्वारा किए जाने वाले अभ्यास आसन तथा प्राणायाम केवल बाह्य अनुशासन को प्रदर्शित करते है जबकि ध्यान की वास्तविक अवस्था के घटित होने के आंतरिक अनुशासन की महती आवश्यकता है। प्रत्याहार बाह्य अनुशासन से आंतरिक अनुशासन में प्रवेश करने का प्रवेश मार्ग है। अत: प्रत्याहार को समझने तथा उसे व्यवहारिक दृष्टि से उपयोग में लाने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए यह शोध पत्र प्रस्तुत है।

मुख्य शब्द- प्रत्याहार, ध्यान, योगांग, इन्द्रियाँ।

प्रस्तावना- प्राचीन योगियों द्वारा योग के सभी अंगों जैसे- यम, नियम, आसन, प्राणायाम प्रत्याहारादि का अभ्यास कर उनके आध्यात्मिक लाभों को अर्जित किया जाता था। वर्तमान समय में योगियों तथा अभ्यासियों द्वारा शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से केवल आसन तथा प्राणायाम का ही अभ्यास करते हैं और इनके आशानुगत परिणामों को भी पाते है परंतु योग के आध्यात्मिक लाभों पर ध्यान केन्द्रित ही नहीं कर पाते और ना ही उनका लाभ ले पाते। योग के सभी अंगों से समान रूप से लाभार्जन के लिए योग के शारीरिक तथा मानसिक लाभों से परे योग के दार्शनिक तथा आध्यात्मिक पक्ष को भी जानना तथा उसका व्यवहारिक दृष्टि से उपयोग करना अत्यंत आवश्यक है। योगांगों में योगदर्शन का प्रत्येक अंग स्वयं में अत्यंत विशेष और अलग परिणामों को दिलाने वाला है जैसे- यम से सामाजिक, नियम से व्यक्तिक, आसन से शारीरिक, प्राणायाम से मानसिक अथवा प्राणिक संयम तथा अनुशासन प्राप्त होता है। प्रत्याहार का अभ्यास उक्त अभ्यासों के परिणाम को विकास में मदद करता है अर्थात् इन परिणामों को अवनति से रोकता है। साथ ही प्रत्याहार के बाद किए जाने वाले अभ्यासों के लिए योग्य बनाता है क्योंकि प्रत्याहार के अभाव में योगसाधना के अंग धारणा, ध्यान और समाधि में प्रवीणता लाना संभव नहीं। प्रत्याहार के अभाव में मन तथा मस्तिष्क बाह्य विषयों में ही केन्द्रित रहते है। धारणा, ध्यान तथा समाधि के लिए मानसिक स्थिरता, एकाग्रता, तथा दीर्घकाल तक एक स्थिति में दृढता आवश्यक प्रतीत होती है, इसकी पूर्ति भी प्रत्याहार के अभ्यास से स्वयमेव हो जाती है। प्रत्याहार अष्टांग योग की एक महत्वपूर्ण कड़ी है जो बहिरंग तथा अंतरंग साधनों के बीच संबंध को बनाए रखती है।

प्रत्याहार का अर्थ- प्रत्याहार दो शब्दों ''प्रति'' तथा ''आहार'' के संयोग से बना है। जिसमें प्रति शब्द का तात्पर्य 'विपरीत' है, जबकि आहार का तात्पर्य दो अर्थों में स्वीकार किया गया है। संज्ञानात्मक रूप से आहार का तात्पर्य पाँच ज्ञानेन्द्रियों का उनके विषय रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श में संलग्न रहने से है तथा दूसरा क्रियात्मक अर्थ आहरण अर्थात् पीछे आना या वापस लाने से है। इससे प्रत्याहार का अर्थ स्पष्ट होता है कि इन्द्रियों को उनके स्वाभाविक स्वभाव बर्हिमुखता से हटाकर अंतर्मुखता की ओर करना ही प्रत्याहार है।[1]

महर्षि पतंजली ने प्रत्याहार को परिभाषित करते हुए कहा है कि-

स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार:।।

अर्थात् प्राणायाम के निरंतर अभ्यास से मन और इन्द्रियों के शुद्धिकरण के बाद इन्द्रियों की बाह्य वृत्ति को समेटकर मन में समाहित करना ही प्रत्याहार कहलाता है।[2] बर्हिमुखता से मन को अंर्तमुखता में

केन्द्रित करने का उपायभूत साधन प्रत्याहार को कहा गया है। इसके अभ्यास के बिना धारणा, ध्यान तथा समाधि के अभ्यास असंभव है, प्रत्याहार के बिना साधक केवल बाह्य साधनों बंधनों में उलझा रह जाता है, तथा जीवन के अंतिम तथा बृहद् लक्ष्यों को अर्जित कर पाने में असमर्थ होता है।

महर्षि पतंजली ने योग के अंगों को निम्न कहा है–

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावगांनि।।

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि योग के आठ अंग है।[3]

हठयोगी गुरू गोरक्षनाथ ने अपने ग्रंथ सिद्ध सिद्धांत पद्धति में प्रत्याहार को यम के अंर्तगत माना है जो योग का प्रथम अंग है इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रत्याहार संपूर्ण हठयोग के योगांगों की सिद्धि में सहायक है, साथ ही प्रत्याहार राजयोग की सिद्धि के लिए भी आवश्यक है क्योंकि कहा जाता है कि–

हठं बिना राजयोगो, राजयोगं विना हठः।
न सिद्धयति ततो युग्मा निष्पत्ते समभ्यसेत्।।

अर्थात् हठयोग के बिना राजयोग तथा राजयोग के बिना हठयोग सिद्ध नहीं होता।[4] अतः इन दोनों के लिए प्रत्याहार की नितांत आवश्यकता है। प्रत्याहार के लक्षणों के विषय में गुरू गोरक्षनाथ का मत है कि जो चैतन्यता का वाहक आत्मा के इन्द्रियों रूपी अश्व को उनके विषयों (रूप, रस, गंध, स्पर्श तथा शब्द) से प्रत्याहरण करना ही प्रत्याहार है। इन्द्रियों के विकारों में लिप्त होने पर विकारों की हटाना प्रत्याहार है।[5]

महर्षि पतंजली ने प्रत्याहार के परिणाम को वर्णित करते हुए कहा है कि– *ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम्।।*

अर्थात् प्रत्याहार के नियमित अभ्यास से योगी की सभी इन्द्रियों पर उसका नियंत्रण हो जाता है।[6] इन्द्रियों की विषयों के प्रति स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है। चित्त की वृत्ति निरोध के लिए अपनाए जाने वाले साधन अभ्यास तथा वैराग्य दोनों की प्राप्ति में भी प्रत्याहार महती भूमिका का निर्वहन करता है। इसी प्रकार ध्यान के अभ्यास के समय भी साधक विभिन्न इन्द्रिय संवेदनाओं को अनुभव करता है एवं ध्यान में तटस्थ भाव को प्राप्त नहीं कर पाता, तटस्थता को प्राप्त करने तथा इन्द्रिय संवेदनाओं से विमुख होने में भी प्रत्याहार एक उपयोगी साधन के रूप में उभरकर आता है। प्रत्याहार के अभाव में ध्यान संभव नहीं। योग मार्ग में कैवल्य प्राप्ति से पूर्व लोकपाल तथा देवताओं द्वारा साधक को विभिन्न विभूतियों के रूप में प्रलोभन देकर योगपथ से भटकाने का प्रयास किया जाता है, इस स्थिति में साधक के लिए विशेष सजगता जरूरी है। अतः योग के बाधक इन प्रलोभनों से बचने के लिए भी प्रत्याहार का निरंतर अभ्यास साधक को करते रहना चाहिए।

धारणा, ध्यान तथा समाधि को युग्मित रूप में संयम कहा जाता है। अन्य शब्दों में कहा जाए तो संयम के लिए इन्द्रियों के पूर्ण प्रत्याहारित होने का अभ्यास महत्वपूर्ण है। इन्द्रियों का साधक के वश में होने से प्रत्येक कार्य निश्चित रूप से शुभ होने लगता है। कठोपनिषद में प्रत्याहार को परमगति प्राप्त करने के लिए विशेष महत्व बताया है। इस उपनिषद् में यमराज जी नचिकेता को कहते है कि

यदापंचावतिष्ठन्ति ज्ञानानि मनसा सहः।
बुद्धिश्च न विचेष्ठति तामाहुः परमां गतिम्।।

अर्थात् जब मन सहित सभी ज्ञानेन्द्रियाँ (आँख, कान, नाक, जीभ तथा त्वचा) स्थिर हो जाती है, बुद्धि भी चेष्ठारहित हो जाती है इस अवस्था को परमगति कहा है। इससे स्पष्ट होता है कि इन्द्रियों के स्थिर होने को प्रत्याहार अर्थात् परमगति कहा है।[7] इन्द्रियों में सदैव लालसा तथा भौतिक सुख की इच्छा बनी रहती है। इस प्रकार का असंयम आत्मज्ञान के बाधक कहलाते है। इन्द्रियों को संयमित न करने पर मन सांसारिक चिंतन फंसा रहता है परंतु प्रत्याहार से उसके विचार स्वयं ही समाप्त है।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में भी इन्द्रिय नियंत्रण यानि प्रत्याहार के महत्व को उल्लेखित करते हुए कहा है कि मोक्ष प्राप्ति में प्रत्याहार अत्यंत उपयोगी हैं।

त्रिरून्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रीयाणि मनसा संन्निवेश्य।
ब्रह्ममोडुपैन प्रतरेत विद्वान्स्रोतांसि सर्वाणिक भयाकानि।।

अर्थात् बुद्धिमान मनुष्य सिर, गला और छाती इन तीनों को एक सीध में रखकर इन्द्रियों को निरूद्ध करके ओंकार रूपी नाव द्वारा संसार के बंधन समुद्र को पार करना चाहिए। इसी प्रकार इन्द्रियों को नियंत्रित करने की चर्चा श्रीमद्भगवत् गीता में भी मिलती है। ज्ञान कर्म तथा भक्ति योग के लिए इन्द्रिय निरोध अर्थात् प्रत्याहार के लिए आवश्यक माना है, श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि–

यदा संहरते चायं कूर्मोऽंगानीय सर्वेशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

अर्थात् जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को समेटका भीतर कर लेता है उसी प्रकार प्रत्याहार में भी जीव इन्द्रियों को संयमित करता है तथा बुद्धि में स्थिर हो जाता है।[8] साथ ही यह भी कहा है कि साधक को चाहिए कि वह उन संपूर्ण इन्द्रियों को वश में करके ध्यान में बैठना चाहिए क्योकि इसी प्रकार से बुद्धि स्थिर हो जाती है।

ध्यायतो विषयान्पुसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधाऽभिजायते।।

अर्थात् इन्द्रियों का विषयों पर बार–बार चिंतन करने से उनके प्रति साधक की आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से कामना का जन्म होता है, कामना में किसी प्रकार के विघ्न पड़ने पर क्रोध उत्पन्न होता है, अर्थात् साधक विकारों से धीरे–धीरे ग्रस्त होने लगता है।[9] इस प्रकार इन्द्रियों पर नियंत्रण का अभाव साधक को मानसिक अस्थिरता की ओर ले जाता है जो कि आध्यात्मिक साधना और व्यावहारिक जीवन दोनों के लिए हानिकारक सिद्ध होता है।

महर्षि घेरण्ड अपने शिष्य राजा चण्डकपाली को हठयोग के प्रमप्रत्याहार की विधि तथा उसकी सिद्धि से प्राप्त होने वाले फल को

उल्लेखित करते हुए कहा है। प्रत्याहार वह है जिसके अभ्यास से सभी शत्रुओं का नाश हो जाता है। इसके लिए अपने चंचल मन को वह जहाँ-जहाँ विचरण करे उन स्थानों से विरक्त कर आत्मा के वश में करने का प्रयत्न करना चाहिए।[11] साथ ही यह भी स्पष्ट कहा है कि प्रत्याहार के लिए साधक को पुरस्कार-तिरस्कार, रुचिकर तथा अरुचिकर वचन, सुगंध और दुर्गंध, मधुर, अम्ल, तिक्तादि रसों से मन को हटाकर आत्मा की ओर आकृष्ट करने का प्रयास ही प्रत्याहार कहा है। इसी प्रकार हठयोगी स्वात्माराम ने भी अपने ग्रंथ हठप्रदीपिका में प्रत्याहार को परिभाषित करते हुए कहा है कि

मनोमत्तगजेन्द्रस्य विषयाद्यानचारिण:।
नियंत्रणे समर्थोऽयं निनादनिशिताकुश:।।

अर्थात् रूप, रस, गंध, स्पर्श तथा शब्दादि रूपी उद्यान में मन रूपी उन्मत्त हाथी विचरण करता है साधक इसे विषयों से विपरीत दिशा में लौटाने के लिए नाद रूपी तीक्ष्ण अंकुश को अपनाता है। इन्द्रियों को इन विषयों से दूर प्रतिगमन ही प्रत्याहार कहलाता है।

अष्टांग योग में प्रत्याहार के पश्चात् के अंग क्रमश: धारणा, ध्यान और समाधि कहे गए है, इन तीनों केा संयुक्त रूप से संयम की संज्ञा से विभूषित किया है- *त्रयमेकत्र संयम:।।*

अर्थात् जब लक्ष्य विशेष पर धारणा, ध्यान और समाधि को एकाग्र रूप से किया जाता है तो यह संयम कहलाता है।[12] गोरक्षनाथ भी प्रत्याहार को संयम के अर्थ में विवेचित करते है और कहते हैं कि इन्द्रियों को उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति अर्थात् विषय ग्रहण के व्यापार से विषयाभिमुख कर परमात्मा के स्वरूप में स्थिर करना ही प्रत्याहार है।[13] साथ ही यह भी स्पष्ट किया है कि इन्द्रियों की विकारों से पूर्ण रूप से रहित अवस्था प्रत्याहार है। प्रत्याहार को विभिन्न स्थानों पर अनेक अर्थों में प्रयुक्त किया है जैसे- गुरु गोरक्षनाथ ने यम के अर्थ में प्रत्याहार को दर्शाया है। अर्थात् साधक को अपनी इन्द्रियों को विषयों से विमुख कर आहार, निद्रा, शीत, वात, गर्मी आदि द्वन्द्वों से को नियंत्रित कर योगसाधना में संलग्न रहना चाहिए।[14]

उपसंहार- इन्द्रियों की विषयों की प्रति अत्यधिक आसक्ति होने पर इन्द्रिय सुख की अधिक कामना, हिंसा, असत्य, अनावश्यक धन संग्रह, कामेच्छा आदि नैतिक पतन की प्रक्रियाओं की ओर प्रवृत्त करती है। इन विभिन्न प्रकार की अनैतिकताओं के निरोध के लिए प्रत्याहार आवश्यक है। अष्टांग योग में यम, नियम, आसन, प्राणायाम को प्रत्याहार की पूर्व शर्ते माना है। अत: योगसाधना के सूक्ष्म अभ्यासों में प्रत्याहार के अभाव में लक्ष्य की प्राप्ति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इन योगाभ्यासों को करने से पूर्व प्रत्याहार की प्रबल रूप से आवश्यकता योगियों तथा विद्वानों ने अनुभव की है। अंतरंग योगसाधना रूपी भवन में समाधि लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रत्याहार नींव की तरह है। समाधि की निश्चित प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि प्रत्याहार रूपी नींव सशक्त और दृढ़ हो। प्रत्याहार के आवश्यक अभ्यास के रूप में प्रतिपक्ष की भावना करनी चाहिए। जब मन इन्द्रियों के वशीभूत हो जाता है और साधना में बाधा उत्पन्न करे तो उन वासनाओं के विपरीत सद्गुणों का चिंतन करना चाहिए।

अष्टांग योग में वर्णित प्रत्याहार के दार्शनिक तथा आध्यात्मिक महत्व के साथ-साथ इसका समकालीन परिप्रेक्ष्य में अनेक मानसिक समस्याओं के समाधान में भी महत्वपूर्ण भुमिका का निर्वहन करता है। अत: वैयक्तिक और सामाजिक उत्थान हेतु प्रत्याहार एक अद्भुत उपाय है।

संदर्भ सूची-

1. भट्ट, कविता, योग परंपरा में प्रत्याहार-आध्यात्मिक, दार्शनिक तथा व्यवहारिक परिप्रेक्ष्य, किताब महल एजेंसीज, इलाहबाद, 2014, पृसं-12
2. पा. यो. सू. 2/54
3. पा योसू 2/29
4. सिद्ध सिद्धांत पद्धति 2/32
   प्रत्याहार इति चैतन्यतुरअंगाणां प्रत्याहरण्। विकारग्रसने उत्पन्नविकारस्यापि निवृत्तिर्भवतीति प्रत्याहारलक्षणम्।।
5. सिद्ध सिद्धांत पद्धति 2/32
6. पा. यो.सू 2/55
7. कठोपनिषद् 2/3/10
8. श्रीमद्भगवतगीता 2/58
9. श्रीमद्भगवतगीता 2/62
10. अथात: सम्प्रवक्षामि प्रत्याहारकमुत्तम्। यस्य विज्ञानमात्रेण कामादिरिपुनाशनम् यतो-यतोनिश्चरतिमनश्चं चलमस्थिरम्।। ततस्ततो निम्यैतदात्मन्येववशं नयेत्।। घेरण्डसंहिता,4/1-2
11. हठप्रदीपिका 4/91
12. पा.यो.सू. 3/4
13. संयम इति। सावधानानां प्रस्फुरद्व्यापाराणां निजवृत्तीनां संयमं कृत्वा आत्मनि धीयते इति संयम:। सिद्ध सिद्धांत पद्धति 5/27
14. यम इति उपशम:, सर्वेन्द्रियजय:, आहार-निद्रा-शीत-वाता-तपजयश्च। एवं शनै:-शनै: साधयेत्।।सिद्ध सिद्धांत पद्धति 2/23

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. पतंजली, महर्षि, पातंजल योग दर्शन, टीकाकार हरिकृष्ण दास गोयन्दका, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् 2046
2. गोरक्षनाथ गुरू, सिद्ध सिद्धांत पद्धति, अनुवादक स्वामी द्वारकादास शास्त्री, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2006
3. भट्ट, कविता, योग परंपरा में प्रत्याहार, किताब महल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2014
4. घेरण्ड, महर्षि, घेरण्ड संहिता, भाष्यकार स्वामी निरंजनानंद सरस्वती, बिहार योग भारती, मुंगेर 1997
5. स्वात्माराम स्वामी, हठप्रदीपिका, संस्करणकर्ता स्वामी दिगम्बरजी, डॉ पीताम्बर झा, कैवल्यधाम, श्रीमन्माधव योगमन्दिर समीति, लोनावाला, पुणे, 2001
6. शर्मा, वेदमुर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीराम आचार्य, शर्मा भगवती देवी, ज्ञानखंड, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि मथुरा, 2016
7. तीर्थ, ओमानंद, पातंजल योग प्रदीप, गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् 2058
8. मिश्र, वाचस्पति, तत्ववैशारदी, अनुवादिका कर्नाटक, डॉ विमला, पातंजलयोगदर्शन, भाग 2,2/28, बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय व रत्ना प्रकाशन वाराणसी, 1992
9. पतंजलि महर्षि, पातंजल योग सूत्र, श्रीमन्माधव योग मंदिर समीति, कैवल्यधाम, लोनावाला, पुणे, महाराष्ट्र 1998
10. शास्त्री, आचार्य केशवलाल वी., उपनिषत्संचयनम् ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद:,चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015

ISSN 2278 - 0327

उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि पर उनमें व्याप्त तनाव के प्रभाव का अध्ययन

राकेश कुमार
शोधार्थी, शिक्षा संकाय
आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

प्रो., (डॉ.) मोहन सिंह पंवार
विभागाध्यक्ष, शिक्षा संकाय
आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल

इस शोध पत्र में उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि पर इन विद्यार्थियों में होने वाले तनाव के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। शोधकार्य हेतु प्रतिदर्श के रूप में विज्ञान संकाय के 150 विद्यार्थियों का चयन दैव निदर्शन विधि द्वारा करके इन विद्यार्थियों पर डॉ. एम. सिंह की 'मानसिक दबाब मापनी' का प्रशासन किया गया तथा माध्यमिक शिक्षा मण्डल म.प्र., भोपाल द्वारा आयोजित कक्षा बारहवीं की परीक्षा में विज्ञान संकाय चयनित विद्यार्थियों को प्राप्त समग्र प्राप्तांकों का उपयोग इनकी शैक्षिक उपलब्धि के मापन हेतु किया गया। प्राप्त परिणामों के अनुसार उच्चतर माध्यमिक स्तर के उच्च एवं निम्न तनाव स्तर वाले छात्रों/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा निम्न तनाव स्तर वाले छात्रों/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि, तनाव स्तर वाले छात्रों/विद्यार्थियों से बेहतर पाई गई। उच्च एवं निम्न तनाव स्तर वाली छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया उच्चतर माध्यमिक स्तर के उच्च/निम्न तनाव स्तर वाले छात्र व छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया पाया।

मुख्य शब्द: उच्चतर माध्यमिक स्तर, शैक्षणिक उपलब्धि, तनाव

शिक्षा मानव के विकास हेतु प्रयुक्त किये जाने वाला सर्वप्रमुख माध्यम है। यह एक मात्र ऐसा माध्यम है, जिसकी सहायता से व्यक्ति के समस्त पक्षों का सर्वांगीण विकास किया जा सकता है। शिक्षा विद्यालय की चार दीवारी तक ही सीमित नहीं है, अपितु बालक के विद्यालय में प्रविष्ट होने से लेकर विद्यालयीन शिक्षा पूर्ण करने तक की अवधि में जो ज्ञान प्रदान किया जाता है, उसी को संकीर्ण अर्थ के अनुसार शिक्षा के रूप में स्वीकार किया जाता है। यह एक गतिशील प्रक्रिया है तथा इसका प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास करना है।

शिक्षा ग्रहण करने का मुख्य स्रोत विद्यालय हैं जहां विद्यार्थी अपने आसपास के वातावरण से समायोजन करने की प्रक्रिया को सीखता है। कहा जा सकता है कि अच्छे समायोजन वाला व्यक्ति भविष्य में सफल होता है और वह स्वतंत्र विचार एवं आत्मविश्वास से पूर्ण होता है। जो व्यक्ति वातावरण एवं परिस्थितियों से अपने को समायोजित कर लेता है, वह प्रसन्न रहता है और जो समायोजन स्थापित नहीं कर पाता है वह असन्तोष, कुण्ठा, द्वन्द्व एवं तनाव का शिकार हो जाता है एवं अपने लक्ष्य से भटक जाता है जिससे विद्यार्थियों के शारीरिक, मानसिक एवं शैक्षिक विकास पर नकारात्मक प्रभाव प्रड़ता है। यह देखा गया है कि वर्तमान परिस्थितियों में विद्यालय का वातावरण विद्यार्थियों को स्वतंत्र रूप से कार्य करने में बाधा पहुंचाता है, जिसके परिणामस्वरूप उनमें तनाव, दबाव, अवसाद, कुण्डा, दुश्चिता जैसे मानसिक रोग उत्पन्न होने लगते है। इससे विद्यार्थियों की अधिगम क्षमता एवं शैक्षणिक उपलब्धि प्रभावित होती है।

इस शोध अध्ययन में उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की तनाव का उनकी शैक्षणिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन किया जा रहा है अत्यधिक प्रतिस्पर्धा, माता-पिता व अन्य परिजनों की अपेक्षा उचित परामर्श का अभाव आदि ऐसे अनेक कारण है। जिनकी वजह से विद्यार्थी तनावग्रस्त रहते है। तनाव के कारण विद्यार्थियों में अनेक प्रकार की मानसिक व व्यवहारिक समस्याएं उत्पन्न हो रही है। विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि को तनाव प्रभावित करता है। अत: शिक्षक एवं अभिभावक का प्रमुख कर्तव्य है विद्यार्थियों को तनाव की स्थिति से बाहर लाना इन्हीं आवश्यकताओं एवं शैक्षिक क्षेत्र में प्रगति को ध्यान में रखते हुए शोधकर्ता इस शोध को पूर्ण करने का प्रयास इस अध्ययन द्वारा किया है।

प्रस्तुत शोध से संबंधित पूर्व में भी कुछ शोध कार्य किये गये हैं जैसे - **कौजमा, नद्या एम. एवं कैनेडी, गेरार्ड ए. (2004)** के अध्ययन के निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि विद्यार्थियों में तनाव उत्पन्न करने वाले मुख्य कारक परीक्षा एवं रिजल्ट संबंधी तनाव, भविष्य के प्रति चिंता, कैरियर के क्षेत्र का चुनाव, परीक्षा के लिये अध्ययन, सीखने के लिये बहुत अधिक पाठ्यक्रम, दूसरों के सामने बेहतर प्रदर्शन करने की चिंता एवं स्वयं की संतुष्टि के लिये बेहतर प्रदर्शन करने का दबाव थे। **खान, मुसरत जबीन; अल्ताफ, सीमा एवं कौसर, हफसा (2013)** के इस अध्ययन के निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि शैक्षणिक तनाव का विद्यार्थियों के शैक्षणिक प्रदर्शन पर ऋणात्मक प्रभाव पाया गया, अर्थात् तनाव स्तर में वृद्धि के साथ-साथ शैक्षणिक प्रदर्शन में गिरावट आती है। **कुमारी, मोनिका; लेखराम एवं बरवाल, संगीता (2016)** के अध्ययन के निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि हाई स्कूल स्तर के छात्रों, विद्यार्थियों की गणितीय उपलब्धि एवं तनाव के मध्य सार्थक

सहसंबंध नहीं पाया गया। हाईस्कूल स्तर की छात्राओं की गणितीय उपलब्धि एवं तनाव के मध्य सार्थक ऋणात्मक सहसंबंध पाया गया। ग्रामीण क्षेत्र के हाईस्कूल स्तर के विद्यार्थियों की गणितीय उपलब्धि एवं तनाव के मध्य सार्थक सहसंबंध नहीं पाया गया। शहरी क्षेत्र के हाईस्कूल स्तर के विद्यार्थियों की गणितीय उपलब्धि एवं तनाव के मध्य सार्थक सहसंबंध नहीं पाया गया। **रेड्डी, अमरनाथ के. एवं रेड्डी, श्रीकांत वी. (2016)** के अध्ययन के निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि प्राथमिक विद्यालयों के निम्न तनाव स्तर वाले विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि, उच्च तनाव स्तर वाले विद्यार्थियों से बेहतर पाई गयी। विद्यार्थियों के लिंग, बुद्धि एवं तनाव की संयुक्त अंत:क्रिया का उनकी शैक्षणिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया। **अरोरा, अनुप्रीत कौर (2017)** के अध्ययन के निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि किशोरावस्था के विद्यार्थियों के तनाव एवं शैक्षणिक प्रदर्शन के मध्य निम्न स्तर का सार्थक ऋणात्मक सहसंबंध पाया गया। **आफरीन, एम. मजीदा; विष्णुप्रिया, वी. एवं गायत्री, आर. (2018)** के अध्ययन के निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि विज्ञान संकाय के विद्यार्थियों में अन्य संकाय के विद्यार्थियों की तुलना में तनाव का स्तर अधिक पाया गया। तनाव का विद्यार्थियों की मानसिक, संवेगात्मक एवं शारीरिक स्थिति पर नकारात्मक प्रभाव पाया गया। विद्यार्थियों में उत्पन्न चिंता के कारण विद्यार्थियों में अवसाद की स्थिति पाई गई, जिसका उनके शैक्षणिक प्रदर्शन पर नकारात्मक प्रभाव पाया गया। **सकिब, मोहम्मद एवं रहमान, कलीम उर (2018)** के अध्ययन के निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि विद्यार्थियो के शैक्षणिक प्रदर्शन पर तनाव का सार्थक प्रभाव पाया गया। विद्यार्थियों में तनाव उत्पन्न करने वाले मुख्य कारक अभिभावकों का दबाव एवं आकांक्षाएँ, शिक्षकों का दबाव पाए गए। इसके अतिरिक्त अच्छे प्रदर्शन करने का दबाव एवं भविष्य की चिंता विद्यार्थियों में तनाव उत्पन्न करने वाले प्रमुख कारक पाए गए।

उद्देश्य:-

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि पर इनमें व्याप्त तनाव के प्रभाव का अध्ययन करना।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर के उच्च/निम्न तनाव स्तर वाले छात्र व छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना:-

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि पर इनमें व्याप्त तनाव का सार्थक प्रभाव नहीं पाया जायेगा।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर के उच्च/निम्न तनाव स्तर वाले छात्र व छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

उपकरण:-

इस शोधकार्य में डॉ. एम. सिंह की 'मानसिक दबाब मापनी' का उपयोग विज्ञान संकाय के विद्यार्थियों में व्याप्त तनाव के मापन के लिए किया गया है तथा शैक्षणिक उपलब्धि के मापन के लिए म.प्र. माध्यमिक शिक्षा मण्डल द्वारा आयोजित कक्षा 12वीं की वार्षिक परीक्षा में इन चयनित विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त प्राप्तांकों का उपयोग किया गया है।

विधि:-

इस शोधकार्य हेतु भोपाल जिले के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की कक्षा बारहवीं में अध्ययनरत विज्ञान संकाय के 150 विद्यार्थियों (75 छात्र व 75 छात्राएं) का चयन दैव निदर्शन विधि द्वारा करके इन विद्यार्थियों पर डॉ. एम. सिंह की 'मानसिक दबाब मापनी' का प्रशासन किया गया तथा इन विद्यार्थियों के द्वारा माध्यमिक शिक्षा मण्डल म.प्र., भोपाल द्वारा आयोजित कक्षा बारहवीं की परीक्षा में प्राप्त समग्र प्राप्तांकों का उपयोग इनकी शैक्षिक उपलब्धि के मापन हेतु किया गया। मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण किया गया एवं प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त किये गये।

परिणामों का विश्लेषण:-

परिकल्पना क्रमांक 1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि पर इनमें व्याप्त तनाव का सार्थक प्रभाव नहीं पाया जायेगा।

सारणी क्रमांक 01

उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि पर उनमें व्याप्त तनाव के प्रभाव संबंधी तुलनात्मक परिणाम

समूह	तनाव स्तर	संख्या	शैक्षणिक उपलब्धि के मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	सार्थकता
छात्र	उच्च	34	345.29	81.32	2.12	0.05 स्तर पर साथक
	निम्न	41	389.23	98.45		
छात्रा	उच्च	37	386.39	95.18	1.97	0.05 स्तर पर असाथक
	निम्न	38	424.56	70.26		
विद्यार्थी	उच्च	71	365.84	91.18	2.80	0.01 स्तर पर साथक
	निम्न	79	406.89	98.47		

स्वतंत्रता के अंश - 73 0.05, 0.01 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान - 2.00, 2.65

स्वतंत्रता के अंश - 148 0.05, 0.01 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान - 1.98, 2.61

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के उच्च एवं निम्न तनाव स्तर वाले छात्रों/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि के लिये प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमश: 2.12, 2.80 स्वतंत्रता के अंश 73, 148 पर सार्थकता के 0.05, 0.01 स्तर के लिए निर्धारित न्यूनतम मान क्रमष: 2.00, 2.61 से अधिक हैं जबकि उच्च एवं निम्न तनाव स्तर वाली छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि के लिये प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान 1.97 स्वतंत्रता के अंश 73 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिए निर्धारित न्यूनतम मान 2.00 से कम है।

अत: उपरोक्त परिणामों के आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के उच्च एवं निम्न तनाव स्तर वाले छात्रों/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा निम्न तनाव स्तर वाले छात्रों/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि, तनाव स्तर वाले छात्रों/विद्यार्थियों से बेहतर पाई गई। उच्च एवं निम्न तनाव स्तर वाली छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

अत: इन परिणामों के आधार पर पूर्व में ली गयी परिकल्पना ''उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि पर इनमें व्याप्त तनाव का सार्थक प्रभाव नहीं पाया जाएगा'', को छात्रों/विद्यार्थियों के लिए अस्वीकृत जबकि छात्राओं के लिए स्वीकृत किया जाता है। समग्र रूप में संपूर्ण परिकल्पना को आंशिकत: अस्वीकृत किया जाता है।

परिकल्पना क्रमांक 2. उच्चतर माध्यमिक स्तर के उच्च/निम्न तनाव स्तर वाले छात्र व छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

तालिका 02

उच्चतर माध्यमिक स्तर के उच्च/निम्न तनाव स्तर वाले छात्र व छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि संबंधी तुलनात्मक परिणाम

तनाव स्तर	समूह	संख्या	शैक्षणिक उपलब्धि के मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	सार्थकता
उच्च	छात्र	34	345.29	81.32	1.96	0.05 स्तर पर असाथक
	छात्रा	37	386.39	95.18		
निम्न	छात्र	41	389.23	98.45	1.85	0.05 स्तर पर असाथक
	छात्रा	38	424.56	70.26		

स्वतंत्रता के अंश – 69, 77 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान – 2.00, 1.99

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के उच्च/निम्न तनाव स्तर वाले छात्र व छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि के लिये प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमश: 1.96, 1.85 स्वतंत्रता के अंश 69, 77 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिए निर्धारित न्यूनतम मान क्रमश: 2.00, 1.99 से कम हैं।

अत: उपरोक्त परिणामों के आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के उच्च/निम्न तनाव स्तर वाले छात्र व छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया पाया।

अत: इन परिणामों के आधार पर पूर्व में ली गयी परिकल्पना ''उच्चतर माध्यमिक स्तर के स्तर के उच्च/निम्न तनाव स्तर वाले छात्र व छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा'', स्वीकृत की जाती है।

निष्कर्ष–

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के उच्च एवं निम्न तनाव स्तर वाले छात्रों/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा निम्न तनाव स्तर वाले छात्रों/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि, तनाव स्तर वाले छात्रों/विद्यार्थियों से बेहतर पाई गई। उच्च एवं निम्न तनाव स्तर वाली छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर के उच्च/निम्न तनाव स्तर वाले छात्र व छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया पाया।

//संदर्भ ग्रंथ सूची//

1. अस्थाना, डॉ. मधु एवं वर्मा, किरणबाला (1996): **व्यक्तित्व मनोविज्ञान,** मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृष्ठ क्रमांक 86
1. दुबे, एल.एन. एवं बरोदे, बी.आर. (2009): **शिक्षा मनोविज्ञान,** आरोही प्रकाशन जबलपुर
2. गैरैट, ई. हेनरी (1995): **शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकीय प्रयोग,** कल्याणी पब्लिकेशन, नई दिल्ली
3. गुप्ता, एस.पी. (2007): **आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन,** शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
4. जायसवाल, सीताराम (1995): **व्यक्तित्व का मनोविज्ञान,** विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृष्ठ क्रमांक 54, 106, 107
5. मंगल, एस.के. (2008): **शिक्षा मनोविज्ञान,** प्रेंटिस हॉल ऑफइंडिया, नई दिल्ली, पृष्ठ क्रमांक 478
6. Buch, M.B. (1988-92) : **Fifth Survey of Research in Education,** National Council of Education Research and Training, New Delhi, Vol. II
7. **Aafreen, M. Maajida; Vishnupriya, V. and Gayathri, R. (2018)** Effect of Stress on Academic Performance of Students in Different Strems, *Drug Invention Today, Volume 10, Issue – 9, 2018, Pg. No. 1776 – 1780*
8. **Arora, Anupreet Kour (2017)** A study of self-esteem, perceived stress and academic performance among adolescents, *International Journal of Advanced Research and development, Volume 2, Issue 6, November 2017, Pg. No. 686 – 688*
9. **Khan, Mussart Jabeen; Altaf, Seema and Kausar, Hafsa (2013)** Effect of Perceived Academic Stress on Students Performance, *FWU Journal of Social Science, Winter 2013, Volume 7, No. 2, Pg. No. 146 – 151*
10. **Kouzma, Nadya M. and Kennedy, Gerard A (2004)** Self-Reported Sources of Stress in Senior High School Students, *Psychological Reports, 2004, Volume 94, Pg. No. 314 – 316*
11. **Kumari Monika, LekhRam, Barwal, Sangeeta K. (2016)** A study of the Relationship between Stress and Mathematics Achievement of High School Students. *International Journal of Advance Research in Education & Technology (ITARET), Volume 3, Issue 2, April – June 2016, Pg. No. 203 – 206*
12. **Reddy, Amarnath K. and Reddy, Srikanth V. (2016)** Impact of Gender, Intelligence and Stress on Academic Achievement of Primary School Students of Class VIII, *International Journal of Humanities and Social Science, Volume 2, Issue 7, July 2016, Pg. No. 01 – 04*
13. **Sakib, Muhammad and Rehman, Kaleem Ur (2018)** Impact of Stress on Students Academic Performance at Secondary School Level at District Vehari, International Journal of Learning and Development, 2018, Volume 8, No. 1, Pg. No. 84 – 93

ISSN 2278 - 0327

जैनदर्शन में निमित्त-नैमित्तिक और उपादान-उपादेय संबंध

प्रतीति जैन
शोधछात्रा (जैनदर्शन)
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय

जाति की अपेक्षा जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल-इन छह द्रव्यों तथा संख्या की अपेक्षा जीव अनंत, पुद्गल अनंतानंत, धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक और कालद्रव्य लोकाकाश प्रमाण असंख्यात- इन अनंतानंत द्रव्यों के समूह को विश्व कहते हैं। स्थाई रहकर परिणमन करना, परिणमन करते हुये स्थाई रहना, विश्व के प्रत्येक द्रव्य का स्वभाव है। परिणमन को ही पर्याय या कार्य कहते हैं। प्रत्येक द्रव्य स्वयं अनंत शक्ति-संपन्न होने से उसे परिणमन में किसी अन्य के सहयोग की आवश्यकता नहीं होती है।

..न हि स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुमन्येन पार्यते.....न हि वस्तुशक्तयः परमपेक्षंते।[1]

वस्तु में जो शक्ति स्वयं नहीं होती उसे अन्य के द्वारा किया जाना संभव नहीं है।..... वस्तु की शक्तियाँ अन्य की अपेक्षा नहीं रखती हैं। वस्तुस्वरूप की इस विशेषता के अनुसार वस्तु उसे ही कहते हैं, जिसे अपना कार्य करने के लिये अन्य का सहयोग नहीं लेना पड़ता है। वस्तु के द्रव्य-गुण या ध्रौव्य अंश स्थाई रहकर जो कार्य करते हैं, उसे पर्याय या व्यय कहते हैं।

कारणानुविधायिनी कार्याणि -कारण का अनुसरण कर होने वाले परिणाम को कार्य कहते हैं। अर्थात् वस्तु में होने वाले प्रतिसमयवर्ती परिणमन को कार्य कहते हैं। कार्य के काम, कर्म, अवस्था, हालत, दशा, परिणाम, परिणति, परिणमन, पर्याय, उत्पाद-व्यय, उपादेय, नैमित्तिक इत्यादि अनेक पर्यायवाची नाम हैं। प्रत्येक कार्य अपने सुनिश्चित अंतरंग-बहिरंग कारणों की उपस्थिति में ही उत्पन्न होता है। कारण के बिना कभी भी कोई भी कार्य उत्पन्न नहीं होता है। स्व-पर कारण पूर्वक ही कार्य होता है। कार्य की उत्पादक सामग्री को कारण कहते हैं। कार्य जिस सामग्री के सान्निध्य में उत्पन्न होता है, उसे कारण कहते हैं। कार्य होने से पूर्व जिसका नियम से सद्भाव हो और जो किसी विशिष्ट कार्य के अतिरिक्त अन्य कार्य को उत्पन्न नहीं करें, उसे कारण कहते है। अर्थात् सहकारीकारण सापेक्ष विशिष्ट पर्यायशक्ति से सहित द्रव्य-शक्ति को कारण कहते हैं।

कारण को प्रत्यय, निमित्त, साधन, हेतु आदि नामों से भी जाना जाता है। कारण के दो भेद जिनागम में उपलब्ध होते हैं- उपादान कारण और निमित्त कारण। उपादान कारण को अंतरंग कारण और निमित्त कारण को बहिरंग कारण भी कहा जाता है।

जो स्वयं कार्यरूप परिणमित होता है, उसे उपादान कारण कहते हैं। प्रत्येक पदार्थ द्रव्य, गुण, पर्यात्मक या उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यात्मक होने से वह प्रतिसमय नवीन-नवीन कार्यरूप परिणमित होता रहता है, वह उसका उपादान कारण कहलाता है, अर्थात् जो स्वयं समर्पित होकर कार्यरूप परिणत होता है, उसे उपादान कारण कहते हैं।

अपने में स्वयं सतत परिणमित होने पर भी जो द्रव्य उपादान संबंधी किसी विवक्षित विशिष्ट कार्यरूप परिणमित तो नहीं होता है, परंतु उपादान संबंधी उस विवक्षित कार्य की उत्पत्ति के समय जिस पर अनुकूलता का आरोप आता है, उसे निमित्त कारण कहते हैं। जिसके बिना वह विवक्षित कार्य नहीं होने पर भी जो स्वयं उस कार्यरूप नहीं होता है, उसे निमित्त कारण कहते हैं।

जब उपादान स्वत: कार्यरूप परिणमता है, तब भावरूप या अभावरूप किस उचित (योग्य) निमित्त कारण का उसके साथ संबंध है- यह बताने के लिये उस कार्य को नैमित्तिक कहते हैं। इस तरह से भिन्न पदार्थों के इस स्वतन्त्र संबंध को निमित्त-नैमित्तिक संबंध कहते हैं। जिस कार्य को निमित्त की अपेक्षा नैमित्तिक कहा है, उसी को उपादान की अपेक्षा उपादेय कहा जाता है।

यहाँ उपादेय शब्द का प्रयोग ग्रहण करने योग्य के अर्थ में नहीं अपितु उत्पन्न हुये कार्य को उपादान की ओर से देखने पर उसे यह नाम मिला है।

इस प्रकार एक ही कार्य उपादान कारण की अपेक्षा उपादेय और निमित्त कारण की अपेक्षा नैमेत्तिक कहलाता है।

उपादान और निमित्त, कारण के भेद होने से प्रत्येक कार्य की उत्पत्ति के समय नियम से होते ही हैं तथा उपादान-उपादेय संबंध और निमित्त-नैमेत्तिक संबंध कारण-कार्य संबंध के ही रूप होने से प्रत्येक कारण-कार्य संबंध पर अनिवार्य रूप से घटित होते हैं।

निमित्त और उपादान कारणों के प्रकार हैं, अत: वे तो प्रत्येक कार्य पर घटित होते हैं।

जैनाचार्यों ने मिट्टी और घड़े के उदाहरण को निमित्त-उपादान के सिद्धांत को समझाने के लिये प्रयोग किया है। घड़े रूप स्वयं मिट्टी परिणमित हुई है, अत: मिट्टी घड़े की उपादान कारण है। जिस समय मिट्टी घड़े रूप परिणमित हो रही थी उस समय चक्र, दण्ड, कुम्हार आदि अपने-अपने में परिणमित होते हुये भी घड़े रूप परिणमित नहीं

हो रहे थे तथापि घड़े की उत्पत्ति के समय उन पर घड़े की उत्पत्ति में अनुकूल होने का आरोप आता है, अत: वे उसके निमित्त कारण कहलाते हैं।

मिट्टी रूप उपादान कारण की अपेक्षा घड़े रूप कार्य को उपादेय तथा चक्र, दण्ड, कुम्हार आदि निमित्त कारणों की अपेक्षा घडे रूप कार्य को नैमित्तिक कहते हैं।

उपादान निश्चय अर्थात् सच्चा कारण है और निमित्त व्यवहार अर्थात् उपचार कारण है, सच्चा कारण नहीं है, इसलिये उसे अहेतुवत् कहा है। यद्यपि वह उपादान का कुछ कार्य नहीं करता है, तथापि कार्य के समय उसकी उपस्थिति के कारण उसे उपचार मात्र कारण कहा है। पण्डितप्रवर बनारसीदास जी कृत उपादान-निमित्त दोहा में कहा भी है-

ज्ञान नैन किरिया चरण, दोऊ शिवमग धार।
उपादान निश्चय जहाँ, तहाँ निमित्त व्योहार।।

पुन: कहते हैं-

उपादान निज गुण जहाँ,तहाँ निमित्त पर होय।
भेदज्ञान परमाण विधि,विरला बूझे कोय ।।

जहाँ निजशक्तिरूप उपादान तैयार हो, वहाँ पर निमित्त होता ही है- ऐसी भेदज्ञान-प्रमाण की विधि है व्यवस्था है, यह सिद्धांत कोई विरले ही समझ सकते हैं। जहाँ उपादान की योग्यता हो, वहाँ नियम से निमित्त होता है। निमित्त की राह देखना पड़े- ऐसा नहीं है और निमित्त को हम जुटा सकें-ऐसा भी नहीं है। निमित्त की राह देखनी पड़ती है या उसे मैं ला सकता हूँ- ऐसी मान्यता परपदार्थ में अभेदबुद्धि की अर्थात् अज्ञान की सूचक है।

उपादान कारण के स्वद्रव्य, निजशक्ति, कारक-कारण इत्यादि पर्यायवाची नाम हैं। इस उपादान कारण के मूल में दो भेद हैं- 1)त्रिकाली उपादान कारण और 2) क्षणिक उपादान कारण।

कार्य रूप परिणमित होने की त्रिकाल योग्यता संपन्न वस्तु/द्रव्य-गुणमय या ध्रौव्यात्मक वस्तु त्रिकाली उपादान कारण कहलाती है। जब भी कार्य होगा तब इसमें ही होगा- यह व्यवस्था त्रिकाली उपादान कारण करता है।

कार्य होने की क्षणिक योग्यता को क्षणिक उपादान कारण कहते हैं। इसके दो भेद हैं-

1) अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय से विशिष्ट द्रव्य और 2) तत्समय की योग्यतारूप क्षणिक उपादान कारण।

आचार्य समंतभद्रस्वामी अपने आप्तमीमांसा नामक ग्रंथ में इसे स्पष्ट करते हुये कहते हैं-

कार्योत्पाद: क्षयो हेतुर्नियमाल्लक्षणात्पृथक्।
न तौ जात्याद्यवस्थानादनपेक्षा: खपुष्पवत्।।58।।

हेतु (क्षणिक उपादान कारण) का क्षय नियम से कार्य का उत्पाद है। वे हेतु व्यय और उत्पाद अपने-अपने लक्षणों से पृथक्-पृथक् हैं। वे दोनों जाति आदि के अवस्थान से भिन्न नहीं है, कथंचित् अभिन्नरूप हैं। उनके सर्वथा भिन्न होने पर वे आकाश-कुसुम के समान अवस्तु सिद्ध होंगे।

श्रीमद्कार्तिकेय स्वामी अपने कार्तिकेयानुप्रेक्षा ग्रंथ में इसे इस प्रकार स्पष्ट करते हैं-

पुव्वपरिणामजुत्तं कारणभावेण वट्टदे दव्वं।
उत्तरपरिणामजुदं, तं चिय कज्जं हवे णियमा।।230।।

पूर्व परिणाम से युक्त द्रव्य कारणरूप से परिणमित होता है और उत्तर परिणाम से युक्त वही द्रव्य नियम से कार्य होता है।

उपर्युक्त विवक्षा में अनंतर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय से युक्त द्रव्य को कारण और अनंतर उत्तर क्षणवर्ती पर्याय के उत्पाद से युक्त द्रव्य को कार्य कहा गया है।

वही निमित्त कारण के कारण, प्रत्यय, हेतु, साधन, सहकारी, उपकारी, उपग्राहक, संयोगरूप कारण, ज्ञापक कारण, आश्रय, हेतुकर्ता, हेतुमान, अभिव्यंजक इत्यादि अनेक नाम शास्त्रों में परिलक्षित होते हैं।

वस्तु की स्वरूपगत विविध विशेषताओं के कारण निमित्तों के अनेक भेद हो जाते हैं, जैसे- उदासीन और प्रेरक, अंतरंग और बहिरंग, नियामक और अनियामक, बलाधान और प्रतिबंधक, सद्भावरूप और अभावरूप इत्यादि।

जहाँ द्रव्य की स्वयं की इच्छाशक्ति और क्रियाशक्ति से रहित निमित्तता हो वह उदासीन निमित्त कहलाते हैं, जैसे-धर्म-अधर्मद्रव्यादि। इच्छावान, क्रियावान द्रव्यों की निमित्तता प्रेरक निमित्त कहलाती है, जैसे- अध्ययन में अध्यापक आदि।

इंद्रिय आदि से ज्ञात नहीं होने वाले पदार्थों की नियामक निमित्तता अंतरंग निमित्त है। दिखाई देने वाले पदार्थों की निमित्तता बहिरंग निमित्त कहलाती है।

कार्य की उत्पत्ति के साथ अविनाभाव संबंध रखने वाले पदार्थ की निमित्तता नियामक निमित्त है तथा कार्य की उत्पत्ति के साथ अविनाभावी संबंध नहीं रखने वाले पदार्थों की निमित्तता अनियामक निमित्त हैं।

निष्क्रिय होने पर भी जिनका क्रियाहेतुत्व नष्ट नहीं होता, उन पदार्थों की निमित्तता को बलाधान निमित्त कहते हैं, जैसे चलते समय लाठी आदि का सहारा। रुकावट करने वाली या बाधक निमित्तता को प्रतिबंधक निमित्त कहते हैं जैसे सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में मिथ्यात्व कर्म का उदय।

विद्यमान पदार्थों की निमित्तता को सद्भावरूप निमित्त कहते हैं और अविद्यमान पदार्थों की निमित्तता को अभावरूप निमित्त कहते हैं।

प्रत्येक वस्तु में प्रतिसमय होने वाला प्रत्येक कार्य स्वभाव, पुरुषार्थ, काललब्धि, भवितव्य और निमित्त-इन पाँच समवायों के सानिध्य में होता है। उक्त कारणों में से त्रिकाली उपादान स्वभाव का,

अनंतर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय से युक्त द्रव्य पुरुषार्थ, का तत्समय की योग्यता काललब्धि और भवितव्य का तथा उदासीन आदि पदार्थों की निमित्तता निमित्त कारण की नियामक है।

वास्तव में निमित्तनैमित्तक संबंध या निमित्त-उपादान संबंध एक समयवर्ती दो पर्यायों के बीच होता है। उनके द्रव्य, गुणों या विभिन्न समयवर्ती पर्यायों के बीच नहीं होता है, परंतु पर्यायें द्रव्य और गुणों से कथंचित् अभिन्न होने के कारण द्रव्य या गुणों के बीच भी ये संबंध होते हैं-ऐसा उपचार से कहा जाता है।

आचार्य कुंदकुंद समयसार ग्रंथ में इसे इसप्रकार स्पष्ट करते हैं-

जदि सो परदव्वाणि य, करेज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज।
जम्हा ण तम्मओ तेण, सो ण तेसिं हवदि कत्ता।।99।।
जीवो ण करेदि घडं, णेव पडं णेव सेसगे दव्वे।
जोगुवओगा उप्पादगा य तेसिं हवदि कत्ता।।100।।

यदि आत्मा परद्रव्यों को करे तो वह नियम से तन्मय अर्थात् परद्रव्यमय हो जाये, परंतु तन्मय नहीं है, इसलिये वह उनका उपादान कर्ता नहीं है।

जीव घट को नहीं करता है, पट को नहीं करता है, शेष किसी भी द्रव्य को नहीं करता है, परंतु जीव के योग और उपयोग उनके उत्पादक हैं, वे दोनो उनके निमित्त कर्ता हैं।

उपादानगत कार्य की उत्पत्ति के समय अनुकूल होने वाले अन्य परिणमन को निमित्त कहते हैं। कार्य पर्याय होने के कारण सदा एक समयवर्ती होता है, अत: उसके प्रति अनुकूलता भी उसके ही समान एक समयवर्ती होती है।

इस प्रकार वास्तव में निमित्त-उपादान संबंध या निमित्त-नैमित्तिक संबंध एक समयवर्ती विभिन्न पर्यायों में ही घटित होता है। द्रव्य, गुण या भिन्न समयवर्ती पर्यायों में इन्हें घटित करना अत्यंत औपचारिक व्यवहार समझना चाहिये, वास्तविक नहीं। वास्तव में उपादानगत कार्य की उत्पत्ति के पूर्व किसी को उसका निमित्त कहना संभव नहीं है।

प्रत्येक कार्य उपादान और निमित्त दोनों की उपस्थिति में होने पर भी एकमात्र उपादान ही उस कार्यरूप से परिणमित होता है, निमित्त नहीं। निमित्त पर तो अनुकूल होने का मात्र आरोप आता है। कार्य की उत्पत्ति के पूर्व किसी पर आरोप करना संभव नहीं होने से निमित्त जुटाने की व्यग्रता का निषेध किया जाता है। इसके साथ ही निमित्त, उपादान से भिन्न पर ही होता है। पर की ओर दृष्टि करने से पराधीनता होती है, अत: निमित्ताधीन दृष्टि का निषेध किया जाता है। वास्तव में तो निमित्त की सत्ता निमित्ताधीन दृष्टि छोड़ने में ही सुरक्षित रहती है। निमित्त को कर्ता मानने वाला ही निमित्ताधीन दृष्टि रखता है। जब निमित्त को ही उपादानगत कार्य का कर्ता मान लिया जायेगा तो निमित्त की सत्ता ही कहा रहेगी। इसप्रकार निमित्त रूप में निमित्त की सत्ता सुरक्षित रखने के लिये ही निमित्त जुटाने की व्यग्रता का, निमित्ताधीन दृष्टि रखने का निषेध किया जाता है।

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक क्षणिक और त्रैकालिक शक्ति-संपन्न उपादान ही स्वयं स्वत: कार्यरूप से परिणमित होने के कारण कार्य की उत्पत्ति के लिये सदा उसका ही आश्रय लेने की बात कही जाती है।

निमित्त-उपादान का स्वरूप समझने से यह तथ्य अत्यंत स्पष्ट रूप से समझ में आ जाता है कि प्रत्येक पदार्थ स्वयं के परिणमन का ही कर्ता है। अन्य के परिणमन में तो वह मात्र निमित्त होता है, कर्ता-धर्ता कुछ भी नहीं है- इस समझ के बल पर मिथ्या कर्तृत्व का अनंत भार उतर जाने के कारण जीवन निर्भार, निश्चिंत हो जाता है।

सन्दर्भ-

1. आचार्य कुन्दकुन्द कृत समयसारगाथा 116-120 पर आचार्य अमृतचन्द्र द्वार आत्मख्याति टीका)

ISSN 2278 - 0327

शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन

श्यामल कुमार यादव
शोधार्थी, शिक्षा संकाय
आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

प्रो., (डॉ.) मोहन सिंह पंवार
विभागाध्यक्ष, शिक्षा संकाय
आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

प्रस्तुत शोध पत्र में शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। न्यादर्श के रूप में 140 विद्यार्थियों (70 शहरी एवं 70 ग्रामीण) का चयन साधारण यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा करके उनके द्वारा माध्यमिक शिक्षा मण्डल मध्यप्रदेश, भोपाल द्वारा आयोजित कक्षा दसवीं की परीक्षा में, विज्ञान विषय में प्राप्त प्राप्तांकों का उपयोग विज्ञान विषय की शैक्षिक उपलब्धि के मापन हेतु किया गया। प्राप्त परिणामों के अनुसार शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के छात्र/छात्रा/ विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा शहरी क्षेत्र के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि, ग्रामीण क्षेत्र के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की तुलना में उच्च पाई गयी। शहरी/ग्रामीण क्षेत्र के छात्र एवं छात्राओं की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि में लिंग भिन्नता नहीं पाई गयी।

मुख्य शब्द: शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र, माध्यमिक विद्यालय, विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि

शिक्षा एक अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है जो जन्म से लेकर मृत्यु तक अनवरत चलती रहती है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक के सभी प्रकार की क्षमताओं, रुचियों, योग्यताओं में विकास कर राष्ट्र के विकास के क्रम में जोड़ना है। बालक के प्रगतिशील विद्या विषयक विकास और बृहत् स्तर पर मानव संसाधन विकास पर लक्षित शिक्षा प्रणाली में शैक्षणिक उपलब्धि महत्वपूर्ण स्थान रखती है। किसी बालक की शिक्षा तथा वैज्ञानिक तर्क शक्ति उसकी शैक्षणिक उपलब्धि के आधार पर ही आंकी जाती है। शैक्षणिक विकास एकरूप, स्थायी और दृढ़ है और यह साल-दर-साल क्रमिक उन्नति द्वारा दिखाई देता है। शैक्षणिक उपलब्धि हमेशा से ही शैक्षणिक शोध का केन्द्र रहा है। और शिक्षा के लक्ष्यों के विभिन्न प्राक्कथनों के बावजूद बालक का शैक्षणिक विकास ही शिक्षा का प्रथम और सबसे अधिक महत्वपूर्ण लक्ष्य रहा है। समाज द्वारा स्थापित शैक्षणिक संस्थाओं का यह उत्तरदायित्व है कि वह बालक का पूरी तरह से विद्या विषयक विकास करे। शैक्षणिक उपलब्धि व्यक्ति के सीखने की स्थिति और जो उसने सीखा है, उसे प्रयुक्त करने की उसकी योग्यता है। इसका अर्थ है - वह सीमा जहां तक पढ़ाना और अध्ययन का परिणाम एक पूर्ण ज्ञान के रूप में आता है। यह सीखने के सामान्य और विशेष अनुभवों का परिणाम है। यह उन विषयों में शैक्षणिक अवधि के दौरान प्राप्त किया गया ज्ञान और निपुणतायें हैं। शैक्षणिक उपलब्धि, शैक्षणिक विकास जैसे बड़े शब्द का हृदय है, यद्यपि किसी के जीवन में शैक्षणिक उपलब्धि के महत्व पर अधिक जोर नहीं डाला जा सकता है किंतु यह भावात्मक औषधि के रूप में कार्य करता है। जीवन के प्रारंभिक वर्षों में ही विद्यालय में अच्छी शैक्षणिक उपलब्धि की नींव रखी जाती है। अच्छे शैक्षणिक रिकार्डस वे स्तंभ है, जिन पर विद्यार्थियों का पूरा भविष्य निर्भर करता है। अत: इसी कारण से शोधकर्ता ने शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करने का निश्चय किया है।

इस संदर्भ में अनेक शोध कार्य किए गये हैं जैसे **दार्जिगपूई** (1989) ने अपने अध्ययन में पाया कि सामाजिक-आर्थिक स्तर, परिवार द्वारा उपलब्ध सुविधाएं तथा विद्यालय का प्रकार, विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि तथा विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति को बढ़ाने में धनात्मक प्रभाव डालते हैं। **राव, दिग्मूर्ती भास्कर** (1990) ने अपने अध्ययन में पाया कि विद्यार्थियों की जीवविज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि औसत स्तर की पायी गयी। जीवविज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि तथा वैज्ञानिक अभिवृत्ति के मध्य धनात्मक सहसंबंध पाया गया। **ज्ञानानी, टी.सी. एवं देवगन, प्रवीन** (2005) ने अपने अध्ययन में पाया कि अभिभावक प्रोत्साहन एवं पाल्यों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक सह संबंध पाया गया तथा छात्रों की अपेक्षा छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि पर माता-पिता द्वारा प्रदत्त प्रोत्साहन का अधिक प्रभाव पाया गया। **पटेल, विशाखा; निगम, भूपेन्द्र एवं अन्य** (2009) ने अपने अध्ययन में पाया कि बालकों एवं बालिकाओं की शैक्षणिक उपलब्धि पर अभिभावक की शिक्षा का सार्थक प्रभाव पड़ता है। विभिन्न शैक्षणिक स्तर के अभिभावकों के बालकों एवं बालिकाओं की शैक्षणिक उपलब्धि में अंतर पाया गया। **शर्मा, प्रियंका** (2009) ने अपने अध्ययन में पाया कि विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि का मध्यमान 67.10 तथा वैज्ञानिक अभिवृत्ति का मध्यमान 60.82 है तथा दोनों के मध्य सहसंबंध गुणांक धनात्मक व 0.01 स्तर पर सार्थक पाया गया। **शर्मा, शरद; जायसवाल, राजेश कुमार एवं परसाई, दीपा** (2013) ने अपने

अध्ययन में पाया कि शासकीय/अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि पर पारिवारिक वातावरण का सार्थक प्रभाव पाया गया तथा उच्च पारिवारिक वातावरण वाले छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि, निम्न पारिवारिक वातावरण वाले छात्रों की तुलना में उच्च पायी गयी। **शुक्ला, विनीता एव सक्सेना, सीमा** (2014) ने अपने अध्ययन में पाया कि शासकीय/अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षणिक उपलब्धि पर परिवार के शैक्षिक वातावरण का सार्थक प्रभाव पाया गया तथा उच्च शैक्षिक पारिवारिक वातावरण वाले विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षणिक उपलब्धि, निम्न शैक्षिक पारिवारिक वातावरण वाले विद्यार्थियों की तुलना में उच्च पायी गयी।

उद्देश्य:-

1. शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. शहरी/ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि में लिंग भिन्नता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना:-

1. शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।
2. शहरी/ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि में लिंग भिन्नता नहीं पाई जाती है।

न्यादर्श- न्यादर्श के चयन के लिए भोपाल जिले में स्थित माध्यमिक विद्यालयों में से 04 विद्यालयों (02 शहरी एवं 02 ग्रामीण) का चयन कर इन विद्यालयों की कक्षा 10वीं में अध्ययनरत 140 विद्यार्थियों (70 शहरी एवं 70 ग्रामीण) का चयन साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया।

उपकरण:- माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन करने के लिए माध्यमिक शिक्षा मण्डल मध्यप्रदेश, भोपाल द्वारा आयोजित कक्षा दसवीं की परीक्षा में, विज्ञान विषय में प्राप्त प्राप्तांकों का उपयोग किया गया है।

शोध विधि:- इस शोधकार्य हेतु सर्वप्रथम भोपाल जिले में स्थित समस्त माध्यमिक विद्यालयों की सूची प्राप्त की गई तथा इस सूची में से 04 माध्यमिक विद्यालयों (02 शहरी एवं 02 ग्रामीण) का चयन करके, इन विद्यालयों की कक्षा 10वीं में अध्ययनरत 140 विद्यार्थियों 6 शहरी क्षेत्र के 70 (35 छात्र एवं 35 छात्राएँ) तथा ग्रामीण क्षेत्र के 70 (35 छात्र एवं 35 छात्राएँ)8 का चयन साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया। इन विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन करने के लिए माध्यमिक शिक्षा मण्डल मध्यप्रदेश, भोपाल द्वारा आयोजित कक्षा दसवीं की परीक्षा में, विज्ञान विषय में प्राप्त प्राप्तांकों का उपयोग किया गया। क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण कर परिणाम प्राप्त किये गये तथा प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष निकाले गये।

परिणामों का विश्लेषण:-

परिकल्पना क्रमांक 1. शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

तालिका 01

शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि संबंधी तुलनात्मक परिणाम

समूह	क्षेत्र	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	सार्थकता
छात्र	शहरी	35	56.43	15.54	2.75	0.01 स्तर पर सार्थक
	ग्रामीण	35	46.91	13.32		
छात्रा	शहरी	35	58.00	17.97	2.19	0.05 स्तर पर सार्थक
	ग्रामीण	35	49.23	15.38		
विद्यार्थी	शहरी	70	57.21	16.82	3.45	0.01 स्तर पर सार्थक
	ग्रामीण	70	48.07	14.43		

स्वतंत्रता के अंश - 68, 138

0.05, 0.01 स्तर पर सारणीय मान - 2.00, 1.98, 2.65, 2.61

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के छात्रों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमान क्रमश: 56.43 एवं 46.91 प्राप्त हुये जिनमें 9.52 का अंतर है, यह अंतर सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक है क्योंकि इनके लिये प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान 2.75 स्वतंत्रता के अंश 68 पर सार्थकता के 0.01 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम सारणीय मान 2.65 की अपेक्षाकृत अधिक है, अर्थात् शहरी छात्रों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि ग्रामीण छात्रों की अपेक्षा अधिक है। अत: शहरी एवं ग्रामीण छात्रों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि पर क्षेत्र (शहरी एवं ग्रामीण) का प्रभाव पाया जाता है।

शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र की छात्राओं की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमान क्रमश: 58.00 एवं 49.23 प्राप्त हुये जिनमें 8.77 का अंतर है, यह अंतर सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक है क्योंकि इनके लिये प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान 2.19 स्वतंत्रता के अंश 68 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम सारणीय मान 2.00 की अपेक्षाकृत अधिक है, अर्थात शहरी छात्राओं की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि ग्रामीण छात्राओं की अपेक्षा अधिक है। अत: शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि पर क्षेत्र (शहरी एवं ग्रामीण) का प्रभाव पाया जाता है।

शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमान क्रमश: 57.21 एवं 48.07 प्राप्त हुये जिनमें 9.14 का अंतर है, यह अंतर सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक है क्योंकि इनके लिये प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान 3.45 स्वतंत्रता के अंश 138

पर सार्थकता के 0.01 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम सारणीय मान 2.61 की अपेक्षाकृत अधिक है, अर्थात् शहरी विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि ग्रामीण विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक है। अत: शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि पर क्षेत्र (शहरी एवं ग्रामीण) का प्रभाव पाया जाता है।

अत: इन परिणामों के आधार पर पूर्व में ली गयी उपरोक्त परिकल्पना ''शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है'', अस्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना क्रमांक 2. शहरी/ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि में लिंग भिन्नता नहीं पाई जाती है।

तालिका 02

शहरी/ग्रामीण विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षणिक उपलब्धि में लिंग भिन्नता संबंधी तुलनात्मक परिणाम

क्षेत्र	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	सार्थकता
शहरी	छात्र	35	56.43	15.54	0.39	0.05 स्तर पर असार्थक
	छात्रा	35	58.00	17.97		
ग्रामीण	छात्र	35	46.91	13.32	0.67	0.05 स्तर पर असार्थक
	छात्रा	35	49.23	15.38		

स्वतंत्रता के अंश – 68 0.05 स्तर पर सारणीय मान – 2.00

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि शहरी क्षेत्र कें छात्र व छात्राओं की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमान क्रमश: 56.43 एवं 58.00 प्राप्त हुये जिनमें 1.57 का अंतर है, यह अंतर सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक नही है क्योंकि इनके लिये प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान 0.39 स्वतंत्रता के अंश 68 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम सारणीय मान 2.00 की अपेक्षाकृत कम है, अर्थात् शहरी छात्र व छात्राओं की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि समान है। अत: शहरी छात्र व छात्राओं की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि में लिंग भिन्नता नहीं पाई गयी।

ग्रामीण क्षेत्र कें छात्र व छात्राओं की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमान क्रमश: 46.91 एवं 49.23 प्राप्त हुये जिनमें 2.32 का अंतर है, यह अंतर सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक नहीं है क्योंकि इनके लिये प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान 0.67 स्वतंत्रता के अंश 68 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम सारणीय मान 2.00 की अपेक्षाकृत कम है, अर्थात् ग्रामीण छात्र व छात्राओं की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि समान है। अत: ग्रामीण छात्र व छात्राओं की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि में लिंग भिन्नता नहीं पाई गयी। अत: इन परिणामों के आधार पर पूर्व में ली गयी उपरोक्त परिकल्पना ''शहरी/ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि में लिंग भिन्नता नहीं पाई जाती है'', स्वीकृत की जाती है।

निष्कर्ष–

1. शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा शहरी क्षेत्र के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि, ग्रामीण क्षेत्र के छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की तुलना में उच्च पाई गयी।
2. शहरी/ग्रामीण क्षेत्र के छात्र एवं छात्राओं की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि में लिंग भिन्नता नहीं पाई गयी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची –

- अथल, अयोध्या प्रसाद (1957): बाल मनोविज्ञान की रूपरेखा, प्रकाशक सुंदरलाल जैन, बांकीपुर, पटना
- भटनागर, सुरेश (1995): शिक्षा मनोविज्ञान, सूर्या पब्लिकेशन, मैरठ
- भटनागर, आर.पी. (1995): शिक्षा अनुसंधान – विधि एवं विश्लेषण, ईगल बुक्स इंटरनेशनल, मेरठ
- दुबे, एल.एन. एवं बरोदे, बी.आर. (2009): शिक्षा मनोविज्ञान, आरोही प्रकाशन जबलपुर
- गैरेट, हेनरी ई. (1944): शिक्षा एवं मनोविज्ञान में सांख्यिकी, कल्याणी पब्लिशर, दिल्ली
- लाल, रमन बिहारी (1994): शिक्षा की दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय पद्धति, रस्तोगी पब्लिकेशंस, मेरठ
- माथुर, एस.एस. (1981): शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
- श्रीवास्तव, डी. एन. (नवीन संस्करण) 'सांख्यिकीय एवं मापन', विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
- पटेल, विशाखा; निगम, भूपेन्द्र एवं अन्य (2009) 'प्राथमिक स्तर के बालक एवं बालिकाओं की शैक्षणिक उपलब्धि पर अभिभावक की शिक्षा के प्रभाव का अध्ययन', *Research Hunt, Vol - IV, Issue II, March - April 2009, Pg. No. 189-193*
- शर्मा, शरद कुमार; जायसवाल, राजेश कुमार एवं परसाई, दीपा (2013) ''हाईस्कूल स्तर कें विद्यार्थियों की गणित विषय में शैक्षणिक उपलब्धि पर पारिवारिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन'', सामाजिक शोध योजना, वॉल्यूम 1, अंक 2, वर्ष 1, जनवरी 2013, पेज नं. 84–87
- शुक्ला, विनीता एवं सक्सेना, सीमा (2014) ''माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षणिक उपलब्धि पर परिवार के शैक्षिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन'', सामाजिक शोध योजना, वॉल्यूम 2, अंक 3, वर्ष 2, जुलाई 2014, पेज नं. 38–39
- **Darchingpui (1989)** 'A study of Science Achievement, Science Attitude and Porblem. Solving ability amang Secondary School Students in Aizawal', *Ph.D. Edu. North-Eastern Hill univ. Fifth survey of Education Research (1988-92) Vol. II, Page No. 1239-1240*
- **Rao, Digumarti Bhaskara (1990)** 'A comparative study of scientific attitute. scientific aptitude and achievement in biology at secondary level', *Ph.D. Edu. osmania Univ., Fifth survey of Education Research (1988-92) Vol. II, Page No. 1258-1259*
- **Sharma, Priyanka (2008)** 'A correlation study of scientific attitude and academic achievement of secondary level students, *Eduquest - jounral of research and exploration in teacher education', Vol. 1 April 2008, Page no. 14 -17*

ISSN 2278 - 0327

सांख्यदर्शन में सत्कार्यवाद सिद्धान्त

वीरेन्द्र कुमार त्रिपाठी
शोधच्छात्र
श्रीलालबहादुरशास्त्रिराष्ट्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालय
नई दिल्ली

सांख्य दर्शन का प्रमुख सिद्धांत सत्कार्यवाद है। सत्कार्यवाद कार्य कारण नियम का एक रूप है सत्कार्यवाद के अनुसार कारण व्यापार से पहले भी कार्य सत् होता है अर्थात् कारण में वर्तमान होता है कार्य कोई नवीन उत्पत्ति नहीं है बल्कि जो कारण में बीज रूप में था उसी का प्रकटीकरण है। अब व्यक्त की अभिव्यक्ति ही कार्य की उत्पत्ति है। सांख्य मतानुसार कारण और कार्य में केवल अवस्था का अंतर है, कोई तात्विक अंतर नहीं है। कारण अव्यक्त कार्य है जबकि कार्य व्यक्त कारण है सत्कार्यवाद के दो रूप हैं –

प्रथम परिणामवाद

द्वितीय विवर्तवाद परिणामवाद

जब कारण से कार्य की उत्पत्ति होती है तो कारण का कार्य में वास्तविक रूपांतरण हो जाता है सांख्य दर्शन, योग दर्शन और रामानुज परिणाम वाद को स्वीकारते हैं। सांख्य दर्शन का मत प्रकृति परिणामवाद कहलाता है रामानुज का मत ब्रह्म परिणाम वाद कहलाता है कार्य को कारण का वास्तविक रूपांतरण मानने के कारण यहां कारण और कार्य दोनों सत् हैं।

विवर्तवाद

इसमें कारण का कार्य में वास्तविक रूपांतरण नहीं अपितु आभास मात्र होता है। अद्वैत वेदांत ने इसका समर्थन किया है, इसके अनुसार कार्य कारण का विवर्त है। आचार्य शंकर के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र सत् है यह अपरिवर्तनशील है, अत: ब्रह्मा का जगत के रूप में वास्तविक रूपांतरण संभव नहीं है। जगत ब्रह्म का विवर्तन मिथ्या प्रतीति है, इसलिए यह कार्य जगत परम आर्थिक रूप से मिथ्या है। आचार्य शंकर मानते हैं यदि कारण में वास्तविक रूपांतरण की बात को स्वीकार कर लिया जाए तो ऐसा मानना सत्कार्यवाद के विपरीत होगा, सत्कार्यवाद नवीन उत्पत्ति की अवधारणा का विरोध करता है जबकि कारण के वास्तविक रूपांतरण मांगने पर हमें कार्य में कुछ न कुछ नवीन उत्पत्ति अवश्य माननी पड़ेगी पुन: ब्रह्म में वास्तविक रूपांतरण की बात करने पर ब्रह्म विकारी एवं परिवर्तनशील हो जाएगा ऐसी स्थिति में जगत को ब्रह्म के अंश का वास्तविक रूपांतरण नहीं माना जा सकता है।

सत्कार्यवाद की सिद्धि –

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्।।

(सांख्यकारिका /9)

जो असत् है उसे उत्पन्न नहीं किया जा सकता है दूसरा कार्य को उत्पन्न करने के लिए उससे संबद्ध उपादान कारण का ही ग्रहण किया जाता है, तीसरा सभी कार्य सभी कारणों से उत्पन्न नहीं होते हैं, कारण विशेष से संबद्ध कार्य ही उत्पन्न होता है। चौथा जिस कार्य को उत्पन्न करने में जो कारण समर्थ है, उसी समर्थ कारण से समर्थ कार्य की उत्पत्ति होती है कार्य कारण से अभिन्न होता है असत्करणात् –कार्य सत् होता है कारण व्यापार से पहले भी। यदि कार्य अपनी उत्पत्ति के पहले कारण में विद्यमान न हो तो वह असत् होगा क्योंकि असत् को उत्पन्न नहीं किया जा सकता है, यदि कारण व्यापार के पहले कार्य अथवा उसे किसी के द्वारा सत् नहीं बनाया जा सकता है। हजारों कारीगर मिलकर भी नील को पीत नहीं बना सकते हैं। सत्य और असत्य घाट के 2 धर्म है उत्पत्ति के पहले घट का धर्म है। असत् होना उसके बाद है सत् होना इस बात को स्वीकार कर लेने पर भी उत्पत्ति के पहले घट रूप धर्मी के विद्यमान ना होने से असत् उसका धर्म नहीं बन सकता है, क्योंकि जब धर्म ही नहीं है तो उसके धर्म कहां से होंगे इसलिए उत्पत्ति के पूर्व कार्य की सत्ता को स्वीकार करना ही पड़ेगा और कार्य की सत्ता को स्वीकार कर लेने पर उसके असत्त्व का खंडन हो जाएगा। जो असत्व न तो घट से संबंध है और ना जिसका घट से तादात्म्य ही है अर्थात् जो घट से भिन्न है उस असत्व रूप धर्म के द्वारा घट असत कैसे हो सकता है, इसलिए जिस प्रकार कारण व्यापार के पश्चात् कार्य सत होता है उसी प्रकार कारण व्यापार के पहले भी वह सत होता है कारण व्यापार से पूर्व सत होने पर भी दंड कुलाल और चक्रादी कारणों से कार्य की केवल अभिव्यक्ति ही शेष रहती है, जो वस्तु पहले से ही सत्य है उसी की अभिव्यक्ति होना युक्ति संगत है असद कि नहीं, जैसे तिलों में पहले से विद्यमान तेल पेरने से अभिव्यक्ति होता है। इसी प्रकार कूटने से धान में पहले से विद्यमान चावल तथा दुहने से गायों में पहले से रहने वाला दूध अभिव्यक्त हो

जाता है। असद कार्य की अभिव्यक्ति में कोई भी दृष्टांत नहीं है यह बात निश्चित है कि जो वस्तु असत् है वह सांख्य मत में अभिव्यक्ति हुई कहीं पर भी दे देखी नहीं गई।

उपादान गृह्णात् –

कारणों को उपादान कहा जाता है उनका ग्रहण अर्थात् कार्य के साथ संबंध उपादान कारणों के साथ कार्य का संबंध होने से कार्य सत होता है। यह अर्थ हुआ अभिप्राय यह है कि कार्य के साथ संबद्ध कारण ही कार्य का जनक होता है तथा कार्य का किसी के साथ संबंध होना संभव नहीं है इस हेतु से कार्य को सत् मानना चाहिए

सर्वसम्भवाभावात् (सर्वसम्भव-अभावात्)–

सांख्य दर्शन का कहना है कि यदि कारण में कार्य अविद्यमान रहता अर्थात् नहीं होता तो किसी भी कारण से किसी भी कार्य की उत्पत्ति संभव होती। सभी कारण से सभी कार्य होते। कारण से असंबद्ध कार्य की उत्पत्ति मानने पर असंबद्धता की समानता होने से सभी कार्य सभी से उत्पन्न होने लगेंगे जैसे मृतिका से घट संबद्ध है वैसे ही तंतु से असंबद्ध है अत: तंतुओं से घट की मृतिका से पट की उत्पत्ति होने लगेगी जैसे बालू में तेल का अभाव होता है। यदि अभाव होने पर भी कार्योत्पत्ति सम्भव होती तो बालू से भी तेल निकलता किंतु ऐसा होता नहीं है, इसलिए असंबद्ध कार्य की असंबद्ध कारण से उत्पत्ति नहीं होती है जैसे की संख्या चार्य कहते हैं –

असत्त्वे नास्ति सम्बन्ध: कारणै: सत्त्वसङ्गिभि:।
असम्बद्धस्य चोत्पत्तिमिच्छतो न व्यवस्थित:॥

अर्थात् उत्पत्ति के पहले कार्यों के असत् होने पर उन कार्यों का नाम सत् धर्म वाले कारणों के साथ संबंध नहीं बन सकेगा तथा कारण के साथ असंबद्ध कार्य की उत्पत्ति चाहने वालों के मत में कोई व्यवस्था नहीं रहेगी अर्थात् जो जिसका कारण नहीं है उससे भी वह कार्य उत्पन्न होने लगेगा लोकव्यवहार में हम ऐसा नहीं देखते अपितु तिल आदि तिलहन पदार्थों से ही तेल की उत्पत्ति होते हुये देखते हैं। अत: किसी भी कारण से किसी भी कार्य की उत्पत्ति अनुभवविरुद्ध है। असत् से किसी वस्तु की प्राप्ति कैसे संभव है। अत: इससे सिद्ध होता है कि प्रत्येक कार्य मात्र उसी कारण से उत्पन्न हो सकता है जिसमें वह उत्पत्ति से पूर्व विद्यमान हो। अत: कार्य उत्पत्ति से पूर्व कारण में उपस्थित रहता है।

शक्तस्य शक्यकरणात् –

सांख्य के अनुसार शक्त (कारण) से ही शक्य (कार्य) की उत्पत्ति संभव है। कहने का तात्पर्य है कि जिस कारण में जिस कार्य की उपस्थिति है उसी कारण से वह कार्य संभव होगा। जिस कारण में जिस कार्य के उत्पादन की क्षमता है उसी कारण से वह कार्य उत्पादित होगा। जिस कार्य में जो कारण शक्त होता है और सशक्त कारण का वही कार्य सत्य होता है अत: दोनों का संबंध नहीं हो सकता है तथा असत् कार्य को उत्पन्न करने में शक्त का अभाव होने से कार्य का सत् होना आवश्यक है दूध में दही उत्पन्न करने की शक्ति है इसलिए दूध से दही बनता है। तिल में तेल उत्पन्न करने की शक्ति है इसलिए तिल से तेल निकलता है। जो समर्थ है सक्षम है जिस कार्य के लिये उसी से कार्योत्पत्ति होगी यह बात अस्वीकार की जाय तो पानी से भी दही बनेगा और बालू से भी तेल निकलेगा। परन्तु ऐसा होता नहीं। लोकव्यवहार से ऐसा असिद्ध है। इससे यह प्रमाणित होता है कि कार्य अपनी उत्पत्ति से पूर्व कारण में विद्यमान रहता है।

कारणभावात्–

सांख्य दर्शन के अनुसार गंभीर विचार करने पर और गौर से देखने पर यह पता चलता है कि कार्य और कारण में तादात्म्य संबंध है। कार्य कारण से अभिन्न है, भिन्न नहीं है। वस्तुत: कार्य और कारण एक ही हैं। एक ही तत्व की दो अवस्थाएं हैं। कार्य कारण की व्यक्तावस्था है और कारण कार्य की अव्यक्तावस्था। कार्य कारण का आविर्भाव हो कारण कार्य का तिरोभाव। तात्विक दृष्टि से मिट्टी और घड़ा वस्तुत: एक ही हैं। घड़े के पहले भी मिट्टी थी घड़े के बाद भी मिट्टी होगी। घड़ा मिट्टी का व्यक्त रूप है। मिट्टी घड़े का अव्यक्त रूप। कारणात्मा संबंध तात्विक रूप से अभिन्न वस्तुओं में ही होता है। ऐसे पदार्थ जो तात्विक रूप से अभिन्न हैं, उनमें कारणात्मक संबंध नहीं हो सकता। इस प्रकार कार्य कारणात्मक होता है। वह तात्विक रूप से कारण से अभिन्न होता है। कारण और कार्य का यह तादात्म्य कारण में कार्य के प्राग्भाव को प्रमाणित करता है। सांख्यदर्शन सर्व प्राचीन ग्रन्थ है और सांख्य में सत्कार्यवाद प्रमुख वाद है इस प्रकार से सांख्य दर्शन में सत्कार्यवाद का वर्णन किया गया है।

सन्दर्भग्रन्थसूची –

1. सांख्यकारिका
2. सांख्यतत्त्वकौमुदी
3. सांख्यसूत्रम्

ISSN 2278 - 0327

समाजोत्थान में राम काव्य की भूमिका एक सांगीतिक अध्ययन

राकेश
पीएच० डी० शोधार्थी, संगीत विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक - 124001

समस्त ब्रह्माण्ड में मानव जीवन सबसे उत्तम माना गया है, जिसका आदान-प्रदान, आचार-व्यवहार, उठना-बैठना समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों समुदाय, व्यक्तियों से रहता है। मानव के इन्हीं सम्बंधों के वर्ग को 'समाज' की संज्ञा दी गई है। समाज एक सामाजिक सम्बंधों का जाल है, जिसमें जटिल-सरल, स्थाई-अस्थाई, निजी और अनिजी सम्बंधों को एक माला के मनके और धागे की तरह बेहद खूबसूरती के साथ पिरोकर रखा गया है। यदि धागा टूट जाए तो मनके बिखर जाएंगे और मनके निकल जाएँ तो धागे की कीमत खत्म हो जाती है। समाज के सभी सम्बंधों को जीवन के मिठास भरे नगमे से गुनगुनाया जाता है। जो व्यक्ति इन आपसी सम्बंधों के नगमों को गुनगुनाने में असमर्थ हो जाता है, उस व्यक्ति के सामाजिक कायदे ढीले दिखाई देते हैं। उसमें सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आपसी भाईचारे की भावना का अभाव दिखाई देने लगता है तथा कठिनाइयों से घिर जाता है। ऐसे समय में वह मानव अपने धर्म, नैतिक कर्म, शिक्षाप्रद ग्रंथों का अध्ययन करके किसी गुणवान् पुरुष के सानिध्य में रहकर जीवन की कठिनाइयों से मुक्ति पा सकता है। ऐसे ही मुक्तिदायक ग्रंथ 'रामायण' का समाज में मानवीय जागृति अथवा उत्थान करने में अहं योगदान है। जिसके प्रत्येक शब्द में नित्य सेवा, भक्ति भावना, पवित्रता, सादगी और इमानदार चरित्र का चरितार्थ किया गया है।

साधारण बोलचाल में 'समाज' शब्द का अर्थ एक वह व्यवस्था है, जिसमें संगठित और विघटित सभी प्रकार के सम्बंध सम्मिलित होते हैं। इन सम्बंधों को और भी अधिक मधुरता प्रदान करने में रामायण के राम काव्यों की एक विशिष्ट पहचान है। इस संदर्भ में मानव के संपूर्ण सुख-दुख का वर्णन काव्य के द्वारा समझाया गया है। एक स्थान पर गोस्वामी तुलसीदास जी का कथन है कि ''सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में कलयुग ने अपना जो घेरा डाल रखा है, उसका मुख्य कारण वेदों की अवहेलना है।'' तुलसीदास जी ने बखान किया है कि कलयुग में सभी पुरुष-नारी धर्म से लिप्त हो जाएंगे। इस परिप्रेक्ष्य में उन्होंने उत्तरकाण्ड के पहले दोहे में लिखा है कि-

पुरुष कल्प एक प्रभु, जुग कलयुग मलमूल।
नर और नारी अधमरत, सकल निगम प्रति कूल।।[1]

अर्थात् कलयुग के आगमन से वर्ण धर्म नाम की कोई व्यवस्था नहीं होगी। समस्त मानव जाति वेदों की निंदा करेगी। तुलसीदास जी ने मानव के व्यवहार एवं आचार-विचार का भी चिंतन वर्णन किया है। राम काव्य में तुलसीदास जी ने समाजोत्थान के हित में विभिन्न काव्य बाण छोड़े हैं। तुलसी जी कहते हैं कि जिस प्रकार सूरज अपनी किरणों से जल को ग्रहण करता है या खींचता है और किसी को दिखाई नहीं देता है, परंतु वही जल जब बादलों के द्वारा बरसाया जाता है तो उसे सभी देखते हैं और प्रसन्न होते हैं। उसी प्रकार समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले राजा मुखिया भी ऐसे कर्म करें जिससे प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट ना हो। प्रजा को भनक भी ना लगे कि उनसे ये कर कब वसूल किया गया है, जिसके बदले उन्हें सुख-संसाधनों की प्राप्ति हो रही है। इस संदर्भ में राम काव्य में चर्चा है कि -

बरसत हरषत लोग सब, करषत लखै ना कोय।
तुलसी प्रजा सुभाग ते, भूप भानु सो होय।।[2]

राम काव्य में मानव के उत्थान में पाखण्ड की घोर निंदा करते हुए प्रभु श्री राम एवं गंगा की तरह पवित्र-पाक रहने की शिक्षा प्रदान की गई है। जैसे -

कलि पाषण्ड प्रचार प्रबल, पाप पावर पंतित।
तुलसी अभय अधार, राम नाम सुरसरि सलिल।।[3]

रामायण के राम काव्य में हमें हर स्थान पर समाज सुधार, सार विरोधी अवधारणाएं, मानवतावादी विचार देखने-सुनने को मिलते हैं। रामायण में रामकाव्य वास्तव में एक विवेकशील और जीवनदायक काव्य है, जिसमें जीवन के प्रत्येक पहलू के बारे में मार्गदर्शन किया गया है। रामायण में सभी पात्रों का या प्रतिभागियों का स्वरूप एक विशेष आदर्श और उद्देश्य को लेकर हुआ है। राम काव्य के प्रमुख उद्देश्य जो सर्व विदित है निम्न हैं- असत्य पर सत्य की विजय, रावणात्व पर रामतत्व की जीत, अधर्म पर धर्म का प्रकोप, भ्राता के प्रति भ्राता का प्रेम, पिता, पत्नी, माता सबसे अथाह स्नेह, और एक आदर्श चरित्र आदि। इसमें सत्यपुरुष के साक्षात स्वरूप प्रभु श्री रामचंद्र का जीवन चरित्र तथा आदर्शों द्वारा समाज को उच्चता प्रदान करने की प्रेरणा दी गई है।[4] रामकाव्य की अथाह प्रेम प्रसंगता में राम भक्ति की रसिको उपासना की छवि अयोध्या नगरी के कण-कण में बसी हुई है। जिसमें महर्षि वाल्मीकि और तुलसीदास जी ने श्री रामचंद्र जी की लीलाओं का वर्णन अति सुंदरता से किया है।

राम काव्य में संगीत द्वारा समाजोत्थान :-

श्री राम काव्य धारा में ऐसी कोई घड़ी नहीं है, जहाँ उनकी लीलाओं को प्रचारित प्रसारित करने में संगीत को सम्मिलित नहीं किया गया हो। जन्म, विवाह, स्वयंवर, शिक्षा, संस्कार, विजय आदि सभी उत्सव में संगीत की विद्यमानता रही है। इस संदर्भ से रामकाव्य में श्री राम के जन्म के समय कुछ लयबद्ध गीतों की रचनाएं इस प्रकार हैं-

रघुवर की बधाई गावो, प्रिय पावों सरसाओ मोरे रामा हो,
सुनि के सोहिले सोहन, छोहन छजवावो मोरे रामा हो।
तन मन निवछावर करके, दरस रस बरसाओ मोरे रामा हो,
भूपति मनि सुवन सलोनो छवि हे रावो मोरे रामा हो।।[5]

श्री राम काव्य में समाजोत्थान के लिए संगीत के माध्यम से अनेकों रचनाओं को समाज के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। जिसमें राम रामलीला एक बड़ा उदाहरण है। इसमें तरह-तरह के वाद्य यन्त्रों के माध्यम से प्रभु श्री रामचंद्र जीवन को चरितार्थ किया जाता है तथा सुनने देखने वाले सभी मंत्रमुग्ध होते हैं। क्षेत्रीय कलाकारों द्वारा मंच पर प्रस्तुतियाँ दी जाती हैं, जो भाई का भाई के प्रति, पुत्र का पिता के प्रति, पति का पत्नी के प्रति, भक्तों का स्वामी के प्रति अथाह प्रेम भाव व्यक्त किया जाता है। ऐसे प्रयत्नों से समाज में एकदूसरे के प्रति उदारता का संदेश प्रसारित होता है तथा समृद्धि और संस्कृति का विकास बढ़ता है। तुलसीदास जी ने राम काव्य में संगीत के परिभाषित शब्दों का भी प्रयोग किया गया है जो मानव उत्थान रूपी काव्य को और अधिक निखार प्रदान करते हैं जैसे -

उघटहिं छन्द प्रबंध गीत पद राग तान बधान।
सुति किंनर गंधरब सराहत, वियके है विबुध विमान।।[6]

महर्षि वाल्मीकि रामायण में यह प्रसंग है कि रामायण की उद्भवता भी करुण रस की धारा है, जो स्वरमयी है। व्याध द्वारा क्रौंच वध के हृदयद्रावक दृश्य को देखकर महर्षि वाल्मीकि के हृदय में जो शोकोदगार आठ अक्षरों वाले सम वर्गवृत्त अनुष्टुप फूटा, वह भी यह रचना थी जो निम्न प्रकार का से दृश्यत होती थी -

मा निषादं प्रतिष्ठात्वम्	=	8वर्ण
मगधशास्वती समां	=	8 वर्ण
यत्र क्रौज्य निथुनादेश	=	8 वर्ण
मवर्धि: काममोहितम्	=	8 वर्ण

कि हे व्याध ! तुझे अनन्त काल तक अभी शांति प्राप्त ना हो। तूने क्रौंच पक्षियों के जोड़े में से अनुरागी साथी को निरपराध मार डाला है। इस प्रकार रामकाव्य में समाजोत्थान के अनेकों माध्यम रहे हैं।

तुलसीदास जी ने अपने रामकाव्य को सांगीतिक ढंग से वर्णित करते हुए कहा है कि यहाँ प्रत्येक व्यक्ति, मानव अनुशासित रहकर अपनी कर्तव्यनिष्ठा का परिचय देता है, अतएव उन्हें दण्ड देने के लिए किसी व्यवस्था की आवश्यकता नहीं पड़ती।

दैहिक, दैविक, भौतिक तापा, रामराज काहू नही व्यापा,
वैर न करहिं काहू सन कोई, राम प्रताप विषमता खोई।
नही दरिद्र काउ दुखी न दीना, नही को अबुध न लच्छन हीना।।[7]

इसी कड़ी में एक और काव्य भी संगीत के द्वारा प्रस्तुत होता है -

दण्ड जतिन्ह कर भेद जहँ, नृतक नृत्य समाज,
जिनहुं मनहि सुनिअ अस, रामचन्द्र के राज।।[8]

एक स्थान पर संगीत के मधुर राग केदार में राम काव्य के गुणगान निम्न प्रकार से होता है -

घर-घर अवध बधावने मंगल साज समाज।
सगुन सुहावने मुदित-मन कर सब निज-निज काज।।
आनन्द उमगत आजु बिबुधबिमान बिपुल बनाइकै।
गावत, बजावत, नटत, हरषत सुमन बरसत आइकै।।[9]

रामायण काल में संगीत समाज का एक अभिन्न अंग बन चुका था, इसलिए समस्त रामकाव्य संगीतमय है। समारोह और त्यौहार ही नहीं बल्कि संगीत इस समय नागरिकों के दैनिक जीवन का एक हिस्सा बन चुका था। इस काल में वादयों के लिए आतोघ संज्ञा थी। समाज को ऊँचा उठाने के लिए संगीत के नए-नए, कार्यक्रमों का आयोजन राज सभाओं में होता था। जिससे लोगों के जीवन में नई चेतना का विकास होता था। जब कोई युद्ध विजयी होकर लौटता था तो 'सूत' और 'मागध' नाम के कुशल व्यवसायी संगीतज्ञ वीरगाथा का गुणगान करते थे। ऐसा करने से बच्चे-बच्चे में विजयी रहने का उत्साह उत्पन्न होता था। राजा-प्रजा सब में संगीत से ओत-प्रोत रामाव्य को सुनने की चाह थी। वाल्मीकि द्वारा वर्णित वल्लकी वीणा का उल्लेख भी इस समय समाज की दैनिक खुशहाली के प्रतीक के रूप में माना गया है। अत: अंत में हम कह सकते हैं कि राम काव्य में समाज के उत्थान की विस्तृत भरमार है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रामचरित्र मानस, उत्तरकाण्ड, गीता प्रेस गोरखपुर, 96 ख
2. वही
3. तुलसीदास दोहावली, पद -566, पृष्ठ 158
4. सिंह, डॉ.फणीश, हिन्दी साहित्य एक परिचय, पृष्ठ 58
5. मिश्रा, यतीन्द्र, अयोध्या की संगीत परंपरा, पृष्ठ 132
6. भैरवी, संगीत शोध पत्रिका, वर्ष-2009, अंक-1, पृष्ठ 116
7. शर्मा, डॉ. जगदीशशरण, यू.जी.सी.नेट, जे.आर.एफ., हिंदी, पृष्ठ 417
8. वही
9. तुलसीदास गीतावली, पृष्ठ 1

ISSN 2278 - 0327

पूर्व माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन

सत्यम शर्मा
शोधार्थी, शिक्षा संकाय
बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल

डॉ. एन.के. कौशिक
प्राचार्य, महाराणा प्रताप कॉलेज ऑफ एजुकेशन
रातीबड़, भोपाल

प्रस्तुत शोधपत्र में पूर्व माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। इस शोधकार्य हेतु न्यादर्श के रूप में 140 शिक्षकों 6 शासकीय विद्यालयों में कार्यरत 70 शिक्षक (35 पुरुष एवं 35 महिला) तथा अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत 70 शिक्षक (35 पुरुष एवं 35 महिला)8 का चयन साधारण यादृच्छिक न्यादर्श विधि से करके उन पर स्वनिर्मित 'निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) अभिवृत्ति मापनी' का प्रशासन किया गया। प्राप्त परिणामों के अनुसार शासकीय एवं अशासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि शासकीय एवं अशासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत महिला शिक्षकों/समग्र शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर पाया गया। शासकीय/अशासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

मुख्य बिन्दू - पूर्व माध्यमिक स्तर, शासकीय व अशासकीय विद्यालय, निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009), अभिवृत्ति

हमारे देश को स्वतंत्रता प्राप्ति एवं संविधान के लागू होने से अभी तक सात दशक से अधिक बीत गये हैं परन्तु अभी भी 6 से 14 आयु वर्ग के बच्चों के लिये अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा के लक्ष्य को पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं किया जा सका है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये भारत सरकार द्वारा संसद में 86 वे संविधान संशोधन अधिनियम के द्वारा शिक्षा को मूलभूत अधिकार बना दिया गया है एवं 1 अप्रैल 2010 से इसे पूरे देश में लागू भी कर दिया गया है। फिर भी एक दशक के पश्चात् भी 100 प्रतिशत प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने में अभी हम थोड़े दूर ही है। विभिन्न राज्यों में इसकी स्थिति अलग-अलग है। कुछ बड़े एवं अधिक जनसंख्या वाले राज्यों में पूर्ण प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने में बहुत अधिक दूरी दिखाई देती है।

वर्तमान में भारत में 13वीं पंचवर्षीय योजना (2017-2022) चल रही है जिसमें मानवीय एवं गैर मानवीय संसाधनों जैसे पुस्तकों, क्लास रूम आदि को दुरुस्त किया जाने का प्रयास किया जायेगा। साथ ही मानवीय संसाधनों पालकों एवं शिक्षकों में नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के प्रति जागृति एवं उसके प्रति उचित दृष्टिकोण लाने का कार्य आदि सम्मिलित हैं। उपरोक्त अनेक प्रयासों के फलस्वरूप विगत वर्षों में यद्यपि प्राथमिक शिक्षा के प्रसार में अनेक उपलब्धियाँ भी रही हैं तथापि अनेक कारण शिक्षा के प्रसार में बाधा बने हुये हैं जैसे संसाधनों की अनुपलब्धता, अधिक शिक्षक-छात्र अनुपात, शिक्षक प्रशिक्षण की निम्न दशा, प्राथमिक विद्यालयों की शिक्षा का निम्न स्तर एवं उच्च शाला त्याग दर आदि। साथ ही अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिये प्रशिक्षित एवं योग्य अध्यापकों की पर्याप्त संख्या उपलब्ध न होना एक बड़ी समस्या है। यह समस्या छात्र संख्या में निरंतर वृद्धि के कारण और भी जटिल हो गई है।

शिक्षा के प्रसार के लिये नियमों के बनने के साथ-साथ ही उनके क्रियान्वयन का महत्वपूर्ण स्थान है और यह तभी संभव होगा जब शिक्षक इसके प्रति जागरूक हों तथा उनमें इस अधिनियम के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति हो क्योंकि शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक का स्थान सर्वोच्च है। शिक्षकों को प्राथमिक नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के प्रावधानों के बारे में ज्ञान होना आवश्यक है, क्या वे प्रारंभिक शिक्षा से संबंधित अपनी शक्तियों एवं कर्तव्यों से अवगत हैं? किसी देश की शिक्षा व्यवस्था को सफल बनाने में शासकीय एवं अशासकीय दोनों ही क्षेत्रों के शिक्षकों की भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। अत: यह शोध इस दिशा में किया गया एक प्रयास है कि पूर्व माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों में शिक्षा अधिकार अधिनियम -2009 के प्रति अभिवृत्ति का

अध्ययन करना क्योंकि प्रारंभिक शिक्षा ही शिक्षा व्यवस्था का आधार स्तम्भ है। जब तक शिक्षकों में शिक्षा के अधिकार अधिनियम के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति नहीं होगी तब तक यह अधिकार अधिनियम अपने मूल उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकता है।

अत: इसी कारण से शोधकर्ता ने पूर्व माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करने का निश्चय किया है।

इस संदर्भ में अनेक शोध कार्य किए गये हैं जैसे **श्रीवास्तव, अनिल कुमार एवं बनबारी लाल** (2013) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि निजी एवं राजकीय विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर पाया गया तथा राजकीय विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति अभिवृत्ति, निजी विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों की तुलना में बेहतर पाई गयी। पुरुष एवं महिला अध्यापकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। **वर्मा, ब्रजेश कुमार** (2014) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक अभिभावकों की अभिवृत्ति में सार्थक अंतर पाया गया तथा बहुसंख्यक अभिभावकों में, अल्पसंख्यक अभिभावकों की तुलना में शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति बेहतर सकारात्मक अभिवृत्ति पाई गयी। मंडल, **श्रीकांत एवं वर्मन, प्रणव** (2014) ने प्रधानाध्यापकों एवं शिक्षकों की शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन किया। इस अध्ययन में निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि प्रधानाध्यापकों में शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति औसत स्तर की सकारात्मक अभिवृत्ति पाई गई। प्रधानाध्यापकों एवं शिक्षकों की शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर पाया गया। शिक्षकों की शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति अभिवृत्ति, प्रधानाध्यापकों की तुलना में बेहतर पाई गई। पुरुष एवं महिला शिक्षकों की शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। **यबे, ब्योरी** (2016) ने अरूणाचल प्रदेश के पूर्वी कामंग जिले के शिक्षकों की शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन किया। इस अध्ययन के निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि प्रारंभिक विद्यालयों में कार्यरत अधिकांश शिक्षकों में शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति पाई गई। पुरुष एवं महिला शिक्षकों की शिक्षा के अधिकार अधिनियम के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। **वेलम, टी. एवं अनीता, एस.** (2017) ने कन्याकुमारी जिले के उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों की शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन किया। इस अध्ययन में निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के अधिकांशत: विद्यार्थियों में शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति औसत स्तर की अभिवृत्ति पाई गई। विभिन्न प्रकार के विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर पाया गया, अर्थात् विद्यार्थियों की शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति अभिवृत्ति पर विद्यालय प्रबंधन की प्रकृति का सार्थक प्रभाव पाया गया। **माकन्नवार, भारतेश पी. एवं जोशी, अरुण एच.** (2018) ने अपने अध्ययन के निष्कर्षत: पाया कि अभिभावकों में शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति पाई गयी क्योंकि इसके द्वारा उनके बच्चों को निशुल्क शिक्षा प्राप्त हो रही है। अधिकांशत: अभिभावकों में प्रवेश प्रक्रिया के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति पाई गयी परंतु एक बड़ी संख्या में अभिभावकों ने शिक्षा अधिकार अधिनियम द्वारा होने वाली प्रवेश प्रक्रिया में कठिनाई महसूस की। बेलगाम संभाग के बेलगाम जिले के अभिभावकों में शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति सर्वाधिक धनात्मक अभिवृत्ति पाई गयी जबकि विजयपुर जिले के अभिभावकों में इस अधिनियम के प्रति सबसे कम धनात्मक अभिवृत्ति पाई गयी। **सेन, सुब्रत, एवं नाजिमुद्दीन, एस. के.** (2018) ने 'शिक्षकों की शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति अभिवृत्ति वर्धमान जिला (पश्चिम बंगाल) में एक अध्ययन' विषय पर शोधकार्य किया। इस अध्ययन के निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। माध्यमिक स्तर के शासकीय विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। माध्यमिक स्तर के अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। **नवाले, कल्पना हरीशचंद्र** (2019) ने थाने जिले के प्रधानाध्यापकों की शिक्षा अधिकार अधिनियम के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन किया। इस अध्ययन के निष्कर्षत: ज्ञात हुआ कि महाराष्ट्र राज्य के थाने जिले के प्रधानाध्यापकों में शिक्षा अधिकार अधिनियम के प्रति उच्च स्तर की धनात्मक अभिवृत्ति पाई गई। पुरुष एवं महिला प्रधानाध्यापकों की शिक्षा अधिकार अधिनियम के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। अनुदान प्राप्त एवं गैर अनुदान प्राप्त विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों की शिक्षा अधिकार अधिनियम के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर पाया गया तथा अनुदान प्राप्त विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों की शिक्षा अधिकार अधिनियम के प्रति अभिवृत्ति, गैर अनुदान प्राप्त विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों से बेहतर पाई गई।

उद्देश्य:-

1. पूर्व माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत पुरुष शिक्षकों/महिला शिक्षकों/समग्र शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. शासकीय/अशासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना:-

1. पूर्व माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत पुरुष शिक्षकों/महिला शिक्षकों/समग्र शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।
2. शासकीय/अशासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

न्यादर्श-

इस शोध कार्य में न्यादर्श के चयन के लिए विदिशा जिले में स्थित पूर्व माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों (मिडिल स्कूल) का चयन करके इन विद्यालयों में कार्यरत 140 शिक्षकों 6 शासकीय विद्यालयों में कार्यरत 70 शिक्षक (35 पुरुष एवं 35 महिला) तथा अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत 70 शिक्षक (35 पुरुष एवं 35 महिला)8 का चयन साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया।

उपकरण:-

पूर्व माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करने के स्वनिर्मित 'निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) अभिवृत्ति मापनी' का निर्माण किया गया है, जो कि लिकर्ट की पंच बिन्दु मापनी पर आधारित है। इस मापनी में प्रारंभ में निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति दर्शाने वाले 40 कथनों को रखा गया था परंतु मार्गदर्शक एवं कुछ अन्य विषय विशेषज्ञों की सलाह के उपरांत इसमें अंतिम रूप से 30 कथनों को शामिल किया गया है, इस प्रकार यह प्रश्नावली पर्याप्त विषयवस्तु वैधता रखती है। इस प्रश्नावली की विश्वसनीयता ज्ञात करने के लिए इसे 25 शिक्षकों पर प्रशासित किया गया तथा पुन: उन्हीं शिक्षकों के समूह पर इसे 20 दिन बाद प्रशासित कर परीक्षण-पुर्नपरीक्षण विधि द्वारा इसकी विश्वसनीयता ज्ञात की गयी, जिसका विश्वसनीयता गुणांक 0.71 ज्ञात हुआ।

शोध विधि:-

सर्वप्रथम विदिशा जिले में स्थित पूर्व माध्यमिक विद्यालयों (मिडिल स्कूल) का चयन कर इन विद्यालयों में कार्यरत 140 शिक्षकों का चयन साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा करके, इन चयनित शिक्षकों पर 'निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) अभिवृत्ति मापनी' का प्रशासन किया गया। प्राप्तांकों के आधार पर मॉस्टर शीट तैयार की गई। मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण किया गया। प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष निकाले गये।

परिणामों का विश्लेषण:-

परिकल्पना 01:- पूर्व माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत पुरुष शिक्षकों/महिला शिक्षकों/समग्र शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

तालिका 01

पूर्व माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति संबंधी तुलनात्मक परिणाम

समूह	विद्यालय का प्रकार	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	'पी' मान
पुरूष शिक्षक	शासकीय	35	109.26	16.57	0.93	> 0.05
	अशासकीय	35	105.49	17.23		
महिला शिक्षक	शासकीय	35	112.54	13.09	3.60	< 0.01
	अशासकीय	35	101.37	12.84		
समग्र शिक्षक	शासकीय	70	110.90	14.97	2.92	< 0.01
	अशासकीय	70	103.43	15.36		

स्वतंत्रता के अंश - 68, 138

0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान - 2.00, 1.98

0.01 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान - 2.65, 2.61

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि शासकीय एवं अशासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर नहीं है क्योंकि इसके लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान 0.93 स्वतंत्रता के अंश 68 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान

2.00 की अपेक्षा कम है जबकि शासकीय एवं अशासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत महिला शिक्षकों/समग्र शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर है क्योंकि इनके लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमश: 3.60, 2.92 स्वतंत्रता के अंश 68, 138 पर सार्थकता के 0.01 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान क्रमष: 2.65, 2.61 की अपेक्षा अधिक हैं।

अत: उपरोक्त परिणामों के आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि शासकीय एवं अशासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि शासकीय एवं अशासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत महिला शिक्षकों/समग्र शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर पाया गया तथा शासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत महिला शिक्षकों/समग्र शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति, अशासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत महिला शिक्षकों/ समग्र शिक्षकों की तुलना में उच्च पाई गयी। अर्थात् पुरुष शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति पर विद्यालय के प्रकार (शासकीय एवं अशासकीय) का सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया जबकि महिला शिक्षकों/समग्र शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति पर विद्यालय के प्रकार (शासकीय एवं अशासकीय) का सार्थक प्रभाव पाया गया।

अत: उपरोक्त परिणामों के परिप्रेक्ष्य में पूर्वनिर्धारित परिकल्पना ''पूर्व माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में कार्यरत पुरुष शिक्षकों/महिला शिक्षकों/समग्र शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा'', पुरुष शिक्षकों के लिए स्वीकृत जबकि महिला शिक्षकों/समग्र शिक्षकों के लिए अस्वीकृत की जाती है। समग्र रूप से उपरोक्त परिकल्पना आंशिकत: अस्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना 02:- शासकीय/अशासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

तालिका 02

शासकीय/अशासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति संबंधी तुलनात्मक परिणाम

विद्यालय का प्रकार	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	'पी' मान
शासकीय	पुरूष शिक्षक	35	109.26	16.57	0.92	> 0.05
	महिला शिक्षक	35	112.54	13.09		
अशासकीय	पुरूष शिक्षक	35	105.49	17.23	1.13	> 0.05
	महिला शिक्षक	35	101.37	12.84		

स्वतंत्रता के अंश - 68

0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान - 2.00

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि शासकीय/ अशासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर नहीं है क्योंकि इनके लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमश: 0.92, 1.13 स्वतंत्रता के अंश 68 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान 2.00 की अपेक्षा कम हैं।

अत: उपरोक्त परिणामों के आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि शासकीय/अशासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। अर्थात् शासकीय/अशासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति पर लिंग का सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

अत: उपरोक्त परिणामों के परिप्रेक्ष्य में पूर्वनिर्धारित परिकल्पना ''शासकीय/अशासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा'', स्वीकृत की जाती है।

निष्कर्ष-

1. शासकीय एवं अशासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि शासकीय एवं अशासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत महिला शिक्षकों/समग्र शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर पाया गया तथा शासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत महिला शिक्षकों/समग्र शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति, अशासकीय पूर्व माध्यमिक

विद्यालयों में कार्यरत महिला शिक्षकों/समग्र शिक्षकों की तुलना में उच्च पाई गयी।

2. शासकीय/अशासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षकों की निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम (2009) के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारद्वाज, दिनेशचंद्र: विद्यालय प्रशासन एवं स्वास्थ्य शिक्षा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
2. भटनागर, सुरेश (1997): आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ
3. चौबे, डॉ. सरयू प्रसाद (1958): जनतन्त्रात्मक विद्यालय संगठन, भारत पब्लिकेशन आगरा
4. गुप्ता, मधु (2000): शिक्षा संस्कार एवं उपलब्धि, क्लासिक पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली
5. जैन, बसन्तलाल, विजय सिंह (2004): भारत का विकास, भारत भारती प्रकाशन मेरठ
6. माथुर, एस.एस.: शिक्षक तथा माध्यमिक शिक्षा , विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, नवीनतम संस्करण
7. प्रसाद, केशव: विद्यालय व्यवस्था, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, द्वितीय संस्करण
8. सुखिया, पी.एस. (1997): विद्यालय प्रशासन संगठन एवं स्वास्थ्य शिक्षा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा – 2 (पेज 243 से 244)
9. शर्मा, आर.ए. (2001): विद्यालय संगठन तथा शिक्षा प्रशासन, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ,
10. टण्डन एवं त्रिपाठी, (1960): विद्यालय संगठन के सिद्धांत, किताब महल इलाहाबाद

Related Research :

1. श्रीवास्तव, अनिल कुमार एवं बनबारी लाल (2013) ''निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के प्रति अध्यापकों की अभिवृत्ति का अध्ययन'',*International Journal of Creative Research Thoughts, Vol. 1, Issue 12, December 2013, Page No. 1-6*
2. वर्मा, ब्रजेश कुमार (2014) ''निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम – 2009 के प्रति अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक अभिभावकों की अभिवृत्ति का अध्ययन'', भारतीय आधुनिक शिक्षा, वर्ष 34, अंक 4, अप्रैल 2014, पेज नम्बर 5–12
3. **Makannavar, Bhartesh P. and Joshi, Arun H. (2018)** "A Study of Attitude of Parents and Students Towards Right To Education Act in Belgaum Division", *International Journal of Advanced Research in Education and Technology (IJARET), Vol. 5, Issue 1, January-March 2018, Page No. 16-19*
4. **Navale, Kalpana Harishchandra (2019)** "A Study of Attitude of Headmasters towards the Right to Education Act in Thane District", *International Journal of Innovative Science and Research Technology, Vol. 4, Issue 2, February 2019, Page No. 467-472*
5. **Sen, Subrata and Nazimuddin, S.K. (2018)** "The Attitude of Teachers towards Right to Education Act, 2009: A Study in Burdwan District (WB)", *International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT), Vol. 6, Issue 1, February 2018, Page No. 439-446*
6. **Yabe, Beori (2016)** "Attitude of Teachers towards Right to Education Act, 2009 in East Kameng District of Arunachal Pradesh", *International Education & Research Journal (IERJ), Vol. 2, Issue 12, December 2016, Page No. 147-149*
7. **Velam, T. and Anitha, S. (2017)** "Attitude towards Right to Education Act Among Higher Secondary School Students in Kanya Kumari District", *International Journal of Research-Granthaalayah, Vol. 5, Issue 3 (Special Issue), March 2017, Page No. 07-12*
8. **Mandal, Srikanta and Barman, Pranab (2014)** "Attitude of Headmasters and Teachers towards the Right to Education Act (2009), India", *IOSR Journal of Humanities and Social Science (IOSR-JHSS), Vol. 19, Issue 11, Version VII, November 2014, Page No. 01-09*

ISSN 2278 - 0327

इंटर्नशिप कार्यक्रम के प्रति शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन

संगीता
शोधार्थी, शिक्षा विभाग
एस.आर.टी. कैम्पस बादशाहीथौल टिहरी गढवाल

सुनीता गोदियाल
प्रोफेसर, शिक्षा विभाग
एस.आर.टी. कैम्पस बादशाहीथौल टिहरी गढवाल

शोधसार -

एन.सी.टी.ई. के द्वारा दो वर्षीय बी.एड. पाठ्यक्रम में स्थानाबद्ध प्रशिक्षण कार्यक्रम या इंटर्नशिप कार्यक्रम को शिक्षक-शिक्षा पाठ्यक्रम में विशेष रूप से लागू किया गया है। इंटर्नशिप कार्यक्रम शिक्षक-प्रशिक्षणार्थियों को भावी जीवन एवं व्यवसाय के लिए तैयार करता है। इस शोध अध्ययन में प्रशिक्षुओं की प्रतिक्रिया एवं विचारों के आधार पर स्थानाबद्ध प्रशिक्षण कार्यक्रम का आंकलन करने का प्रयास किया गया है। इस शोध का मुख्य उद्देश्य शिक्षक-प्रशिक्षणार्थियों की इंटर्नशिप कार्यक्रम के दौरान आने वाली कठिनाइयों को जानना उनके समाधान को ढूँढना व शिक्षक-प्रशिक्षणार्थियों की इंटर्नशिप कार्यक्रम के प्रति अभिवृत्ति को जानना है। इस शोध कार्य हेतु हेमवती नन्दन बहुगुणा विश्वविद्यालय श्रीनगर में अध्ययनरत बी.एड. चतुर्थ सेमेस्टर के प्रशिक्षणार्थियों को शामिल किया गया है। सभी प्रशिक्षणार्थियों से गूगल फार्म पर निर्मित प्रश्नावली को भरवाकर उसके आधार पर परिणामों का विश्लेषण किया गया है। इस शोध के निष्कर्ष में पाया गया है कि बी.एड. चतुर्थ सेमेस्टर में शामिल सभी शिक्षक-प्रशिक्षणार्थियों का मानना था कि इंटर्नशिप कार्यक्रम उनके लिए बहुत ही प्रभावकारी रहा तथा साथ ही वे सभी प्रशिक्षणार्थी कार्यक्रम के अन्तर्गत शामिल गतिविधियों से वे संतुष्ट एवं उत्साहित थे।

मुख्य शब्दावली-

स्थानाबद्ध प्रशिक्षण कार्यक्रम (इंटर्नशिप कार्यक्रम), शिक्षक-प्रशिक्षणार्थी, प्रभावशीलता।

प्रस्तावना -

शिक्षा व्यक्ति के जीवन की पूंजी तथा लक्ष्य दोनों है, इसलिए शिक्षा का उत्तरदायित्व शिक्षक के कन्धों पर होता है। महान शिक्षाविद् डॉ.सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने कहा है कि ''समाज में अध्यापक का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है। वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बौद्धिक परम्पराएं तथा तकनीकी कौशल पहुँचाने का केन्द्र है और सभ्यता के प्रकाश को प्रज्वलित रखने में सहायक होता है''। एक शिक्षक ही अपने देश के भविष्य का निर्माण करता है। अत: शिक्षक का प्रशिक्षित होना अत्यंत आवश्यक है, जिससे भविष्य में अपने व्यवसाय के प्रति सजग व कर्तव्यनिष्ठ रहें। दो वर्षीय बी.एड. कार्यक्रम में शिक्षक-प्रशिक्षणार्थियों को सभी शिक्षण-कौशलों में पारंगत करने के लिए इंटर्नशिप कार्यक्रम के माध्यम से ही शिक्षक-प्रशिक्षणार्थी वैचारिक ज्ञान और प्रशिक्षण को एकीकृत करते हैं। इंटर्नशिप (स्थनाबद्ध प्रशिक्षण) कार्यक्रम में प्रशिक्षणार्थियों के कौशलों में सुधार किया जाता है और साथ में उनके व्यावसायिक विकास में उनके व्यावहारिक अनुभवों को भी शामिल किया जाता है। जिसके द्वारा कार्यक्रम के अन्तर्गत आने वाली कठिनाइयों से प्रत्यक्षीकरण के बाद छात्र-अध्यापक अपने शिक्षण-व्यवहार में परिवर्तन देखते है, जो शिक्षक- प्रशिक्षणार्थियों के न केवल व्यवहार परिवर्तन में सहायक सिद्ध होती है बल्कि उन्हें शिक्षण व्यवसाय के लिए भी तैयार करती है।

अध्ययन की आवश्यकता -

एक शिक्षक को अपने व्यावसायिक शिक्षण कार्यों में निपुण एवं दक्ष होना आवश्यक होता है। इसलिए शिक्षक-प्रशिक्षणार्थियों को इंटर्नशिप कार्यक्रम के जरिए ही अनेक कौशलों से परिचित करवाया जा सकता है। इंटर्नशिप के अन्तर्गत प्रशिक्षणार्थियों को विद्यालयी वातावरण में ही शैक्षणिक एवं सहशैक्षणिक गतिविधियों में सम्मिलित रहना पड़ता हैं। उसे प्रत्येक गतिविधि में शिक्षण उद्देश्यों के आधार पर अधिगम प्राप्त कर उसका चिंतन करना होता है, साथ ही प्रशिक्षुओं को विद्यालय के प्रधानाध्यापक, शिक्षकों, छात्रों एवं समुदाय के साथ अन्त:क्रिया करके सीखने-सीखाने की प्रक्रिया को एक स्थायित्व प्रदान करना होता है अर्थात् अपने भावी व्यवसाय में योग्य होने के लिए सभी कठिनाइयों का सामना सूझ-बूझ करने से उन्हें पाठ्यसहगाामी गतिविधियों में निपुणता हासिल करनी होती है। अत: बी.एड. कार्यक्रम में अध्ययनरत समस्त प्रशिक्षणार्थियों का इंटर्नशिप कार्यक्रम के प्रति उनकी अभिवृत्ति जानने के लिए शोधकर्त्री ने इस पर शोध करने का निर्णय लिया। प्रशिक्षणरत भावी अध्यापकों में शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों का इंटर्नशिप कार्यक्रम के प्रति अभिवृत्ति की स्थिति की जांच के लिए समस्या को निम्नवत् परिभाषित किया गया है-

समस्या कथन–''इंटर्नशिप कार्यक्रम के प्रति शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन।

सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन–

गुप्ता (2020) ने ''बी.एड.पाठयक्रम के स्कूल इंटर्नशिप कार्यक्रम की प्रभावशीलता के मूल्यांकन'' का अध्ययन किया। इस अध्ययन का उद्देश्य शिक्षकों की वास्तविक जीवन की विभिन्न भूमिकाओं में शिक्षक–प्रशिक्षणार्थियों को अनुभव प्रदान करना एवं शिक्षक–प्रशिक्षणार्थियों की इंटर्नशिप कार्यक्रम के प्रति प्रतिक्रिया व मानसिकता को समझना था और यह पता लगाना था कि इंटर्नशिप कार्यक्रम प्रशिक्षणार्थियों को इस कार्यक्रम के अन्तर्गत आने वाली बाधाओं तथा समस्याओं को खोजने के लिए तैयार करता है कि नहीं। इस शोध कार्य में बी.एड. प्रथम वर्ष के छात्रों को शामिल किया गया था। शोध में छात्रों के जांच के लिए प्रश्नावली का प्रयोग करके विश्लेषण तथा परिणामों का पता किया गया। शोध के निष्कर्ष में पाया गया कि सभी शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के लिए यह कार्यक्रम प्रभावी था एवं इस कार्यान्वयन से संतुष्ट थे।

सुषमा. एन, जोगन (2019) ने ''इवेल्यूएटिंग द इफंक्टिवनेस आफ ए स्कूल इंटर्नशिप'' इस विषय पर अध्ययन किया। इस शोध अध्ययन का मुख्य उद्देश्य इंटर्नशिप के माध्यम से प्रशिक्षणार्थियों की मानसिकता को समझना और उन्हें सामना करने वाले स्थिरांक के अस्थायी समाधान खोजने के लिए स्कूलों में एक शिक्षक के कर्तव्यों का पालन करने के लिए तैयार करना है। आंकडों के लिए बी.एड. चतुर्थ सेमेस्टर की सभी शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों को लिया गया था। इस शोध के निष्कर्ष से ज्ञात होता है कि शिक्षक–प्रशिक्षणार्थियों ने विद्यालयों में पर्यवेक्षण के उचित मार्गदर्शन और समर्थन के साथ शिक्षण कौशलों को अर्जित किया गया था एवं सभी शिक्षक–प्रशिक्षणार्थी इंटर्नशिप कार्यक्रम के दौरान अत्यधिक संतुष्ट थे।

पिटेल (2018) ने ''परसेप्शनस एंड एक्सपीरियंस ऑफ बी.एड. स्टूडेन्टस अबाउट इन्टर्नशिप एडं सेशनल वर्क'' अध्ययन विषय पर अध्ययन किया। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य छात्र–शिक्षकों के कार्य के दौरान अनुभव और चुनौती के अनुभव को बताना था। इस अध्ययन के लिए कालेज से 100 छात्रों का चुनाव यादृच्छिक विधि से किया गया था। आंकड़ों को एकत्रित करने के लिए ओपन एंडेड 'प्रश्नावली और अर्ध संरचित साक्षात्कार का उपयोग किया गया था'।

अध्ययन के निष्कर्ष से पता चला कि छात्र–शिक्षकों ने इंटर्नशिप कार्यक्रम को अपने शिक्षण कौशल को परिष्कृत करने और सुधारने के एक वास्तविक अवसर के रूप में देखा। जिससे छात्र– शिक्षकों को व्यावहारिक अनुभव के साथ–साथ कक्षा शिक्षण–प्रक्रिया को बेहतर तरीके से समझने में मदद मिलती है।

निहान, अरसलन.(2017) ने ''इनवेस्टिगेटिंग द रिलेशनशिप बिटविन एजूकेशन स्टेस एण्ड इमोशनल सेल्फ–एफीकेशी'' विषय पर अध्ययन किया। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य संरचनात्मक समीकरण मॉडल के साथ भावनात्मक आत्म–प्रभावकारिता और शैक्षिक तनाव के बीच सम्बन्ध को बताना था। इस शोध के हेतु 232 भावात्मक आत्म–प्रभावकारिता पैमाने और शैक्षिक तनाव पैमाने का उपयोग किया गया था। इस अध्ययन के परिणाम में भावात्मक आत्म–प्रभावकारिता और शैक्षिक तनाव के बीच नकारात्मक सम्बन्ध पाया गया।

प्रभु, एस.(2015) ने ''ए स्टडी ऑन एकेडमिक स्टऊस अमन्ग हायर सेकण्डरी स्टूडेन्टस'' विषय पर अध्ययन किया। इस अध्ययन में तमिलनाडु के नमक्कल जिले में स्थित उच्च माध्यमिक विद्यालयों में 11वीं कक्षा में पढ़ने वाले 250 छात्र शामिल थे। अध्ययन के परिणामों से स्पष्ट होता है कि –

- उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों में मध्यम स्तर का शैक्षणिक तनाव रहता है।
- इसके अतिरिक्त पुरुष छात्रों का शैक्षणिक तनाव महिला छात्रों की तुलना में अधिक पाया गया व शहरी छात्रों का शैक्षणिक तनाव ग्रामीण छात्रों की तुलना में अधिक पाया गया।
- सरकारी स्कूलों के छात्रों का अकादमिक तनाव निजी स्कूल के छात्र से अधिक पाया गया। विज्ञान विषय के छात्रों में शैक्षणिक तनाव कला छात्रों की तुलना में अधिक पाया गया।

अध्ययन का उद्देश्य– प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों में इंटर्नशिप कार्यक्रम के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना है।

शोध अध्ययन पद्धति– प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्त्री द्वारा शिक्षक–प्रशिक्षणार्थियों की इंटर्नशिप कार्यक्रम के बारे में अभिवृत्ति का अध्ययन करने के लिए वर्णनात्मक सर्वेक्षण पद्धति को अपनाया गया था।

न्यायदर्श– इस अध्ययन हेतु उद्देश्य आधारित यादृच्छिक विधि के द्वारा हेमवती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय के बी.एड. चतुर्थ सेमेस्टर में अध्ययनरत कुल 266 शिक्षक–प्रशिक्षणार्थी का चयन किया गया जो कि अपनी 16 सप्ताह की निर्धारित इंटर्नशिप कार्यक्रम की अवधि को पूरा कर व्यवहारिक प्रशिक्षण को प्राप्त कर चुके थे।

उपकरण– इस शोध कार्य के लिये स्व–निर्मित प्रश्नावली का उपयोग किया गया है।

आंकडों का विश्लेषण एवं व्याख्या–

वर्तमान अध्ययन में सम्मिलित विभिन्न गतिविधियों से सम्बन्धित प्रश्नों के बारे में प्रशिक्षणार्थियों से प्रतिक्रिया प्राप्त की गयी है। जिनका विश्लेषण एवं व्याख्या निम्नलिखित तालिकाओं के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है।

प्रश्न 1 इंटर्नशिप कार्यक्रम वास्तविक रूप से शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रम में श्रेष्ठ तकनीकी है ?

तालिका–01

शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रम में श्रेष्ठ तकनीकी

क्र. सं.	शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की कुल सं. 266							
	पूर्ण सहमत	प्रतिशत	सहमत	प्रतिशत	पूर्ण असहमत	प्रतिशत	असहमत	प्रतिशत
1.	183	68.8	75	28.2	3	1.1	5	1.9

ग्राफ - 01

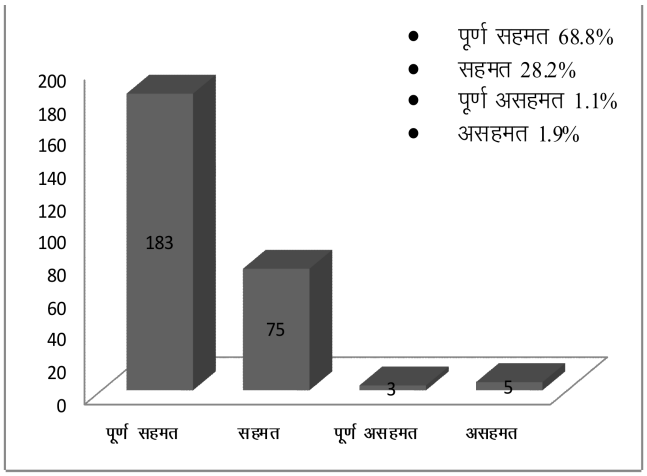

तालिका–01 एवं ग्राफ नं0–01 से ज्ञात होता है कि 68.8 प्रतिशत शिक्षक–प्रशिक्षणार्थी पूर्ण रूप से सहमत हैं कि इंटर्नशिप कार्यक्रम वास्तविक रूप से शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रम में श्रेष्ठ तकनीकी है औरं 28.2 प्रतिशत उक्त कथन से आंशिक रूप से सहमत हैं, वहीं केवल 1.1 प्रतिशत शिक्षक–प्रशिक्षणार्थी उक्त कथन से असहमत है जबकि 1.9 प्रतिशत पूर्णत: असहमत थे। उपरोक्त आंकडों के विश्लेषण से पता चलता है कि अधिकतम शिक्षक–प्रशिक्षणार्थी इंटर्नशिप कार्यक्रम को शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रम श्रेष्ठ तकनीकी के रूप में महत्वपूर्ण मानते हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि इंटर्नशिप कार्यक्रम शिक्षक–प्रशिक्षुओं के व्यावहारिक ज्ञान के लिए श्रेष्ठ तकनीकी है।

प्रश्न 2 इंटर्नशिप शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रम का व्यावहारिक पक्ष है ?

तालिका–02

इंटर्नशिप शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रम का व्यावहारिक पक्ष है

शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की कुल सं. 266							
पूर्ण सहमत	प्रतिशत	सहमत	प्रतिशत	पूर्ण असहमत	प्रतिशत	असहमत	प्रतिशत
139	52.3	120	45.1	2	0.8	5	1.9

ग्राफ–02

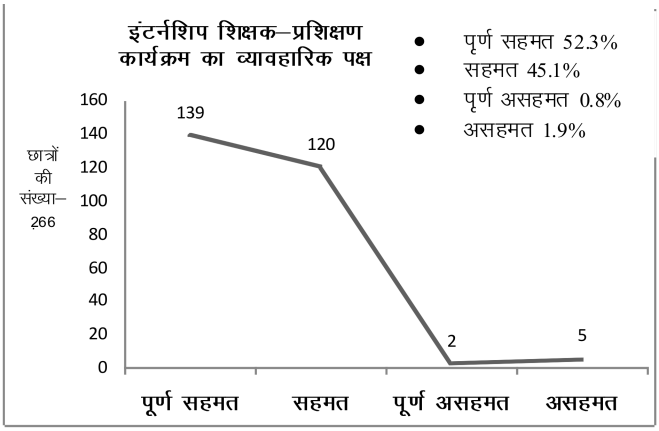

तालिका–02 एवं ग्राफ नं0–02 से ज्ञात होता है कि 52.3 प्रतिशत शिक्षक- प्रशिक्षणार्थी अत्याधिक रूप से सहमत हैं कि इंटर्नशिप शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रम का व्यावहारिक पक्ष है औरं 45.1 प्रतिशत उक्त कथन से आंशिक रूप से सहमत हैं, वहीं केवल 1.9 प्रतिशत शिक्षक–प्रशिक्षणार्थी उक्त कथन से असहमत थे और 0.8 प्रतिशत पूर्णत: असहमत है। उपरोक्त आंकडों के विश्लेषण से पता चलता है कि अधिकतम शिक्षक–प्रशिक्षणार्थी इंटर्नशिप कार्यक्रम को व्यावहारिक पक्ष मानते हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि इंटर्नशिप शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रम व्यावहारिक पक्ष है।

प्रश्न 3 इंटर्नशिप कार्यक्रम नवीन तकनीकी कार्यक्रम है।

तालिका–03

इंटर्नशिप कार्यक्रम नवीन तकनीकी कार्यक्रम

शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की कुल सं. 266							
पूर्ण सहमत	प्रतिशत	सहमत	प्रतिशत	पूर्ण असहमत	प्रतिशत	असहमत	प्रतिशत
95	35.7	148	55.6	6	2.3	17	6.4

ग्राफ–03

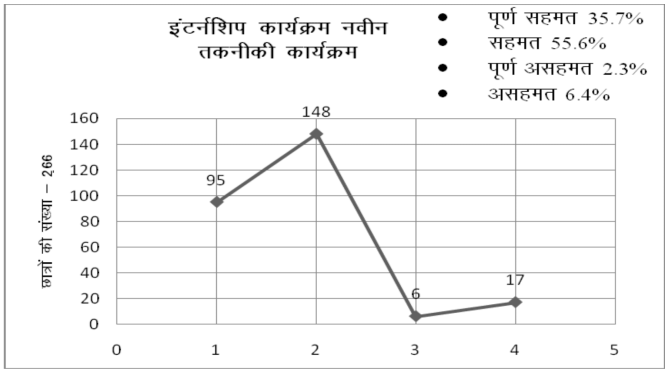

तालिका-03 एवं ग्राफ नं0-03 से ज्ञात होता है कि 55.6 प्रतिशत शिक्षक-प्रशिक्षणार्थी अत्यधिक सहमत है कि इंटर्नशिप कार्यक्रम नवीन तकनीकी कार्यक्रम है और 35.7 प्रतिशत उक्त कथन से पूर्ण रूप से सहमत हैं, वहीं केवल 1.1 प्रतिशत शिक्षक-प्रशिक्षणार्थी उक्त कथन से असहमत थे और 2.3 प्रतिशत पूर्णत: असहमत है। उपरोक्त आंकडों के विश्लेषण से पता चलता है कि अधिकतम शिक्षक-प्रशिक्षणार्थी इंटर्नशिप कार्यक्रम को शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम को नवीन तकनीकी कार्यक्रम के रूप में महत्वपूर्ण मानते हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि इंटर्नशिप कायक्रम शिक्षक-प्रशिक्षण के लिए नवीन तकनीकी कार्यक्रम है।

प्रश्न 4 इंटर्नशिप कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रशिक्षुओं के सामने समस्यायें आती हैं ?

तालिका-04

इंटर्नशिप कार्यक्रम के अन्तर्गत समस्यायें

क्र. सं.	शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की कुल सं. 266							
	पूर्ण सहमत	प्रतिशत	सहमत	प्रतिशत	पूर्ण असहमत	प्रतिशत	असहमत	प्रतिशत
1	80	30.0	164	61.7	6	2.3	16	6.0

ग्राफ-04

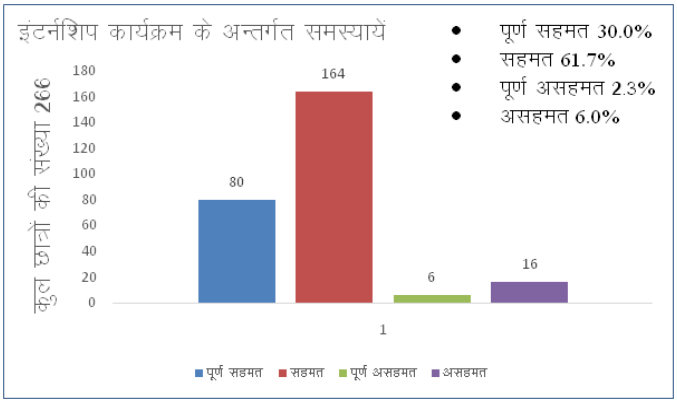

तालिका-04 एवं ग्राफ-04 से ज्ञात होता है कि 61.7 प्रतिशत शिक्षक-प्रशिक्षणार्थी अत्यधिक सहमत हैं कि इंटर्नशिप कार्यक्रम की अवधि में प्रशिक्षुओं के सामने समस्यायें आती हैं और 30.0 प्रतिशत उक्त कथन से सहमत हैं, वहीं केवल 6.0 प्रतिशत शिक्षक-प्रशिक्षणार्थी उक्त कथन से असहमत थे और 2.3 प्रतिशत पूर्णत: असहमत थे। उपरोक्त आंकडों के विश्लेषण से पता चलता है कि अधिकतम शिक्षक-प्रशिक्षणार्थीयों का मानना है कि इंटर्नशिप कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रशिक्षुओं के सामने समस्यायें आती हैं ।

प्रश्न 5 इन्टर्नशिप कार्यक्रम के अन्तर्गत समस्त शिक्षण सहायक सामग्री का उपयोग किया जाना रोचक होता है।

तालिका-05

शिक्षण सहायक सामग्री का उपयोग

क्र. सं.	शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की कुल सं. 266							
	पूर्ण सहमत	प्रतिशत	सहमत	प्रतिशत	पूर्ण असहमत	प्रतिशत	असहमत	प्रतिशत
1	170	63.9	87	32.7	4	1.5	5	1.9

ग्राफ-05

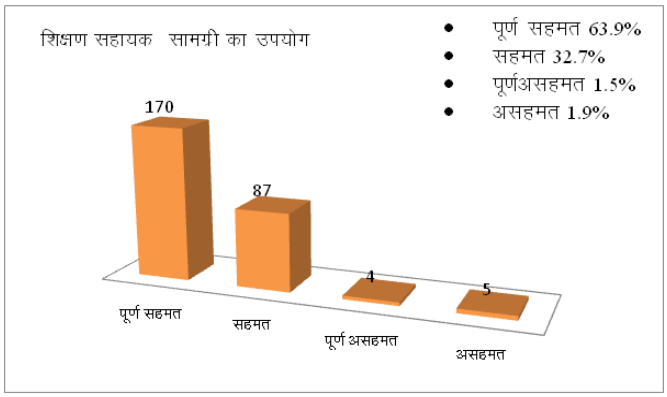

तालिका-05 एवं ग्राफ नं.-05 से ज्ञात होता है कि 63.9 प्रतिशत शिक्षक-प्रशिक्षणार्थी पूर्णत: सहमत हैं कि इन्टर्नशिप कार्यक्रम के अन्तर्गत समस्त शिक्षण सहायक सामग्री का उपयोग किया जाना रोचक होता है और 32.7 प्रतिशत उक्त कथन से सहमत हैं, वहीं केवल 1.9 प्रतिशत शिक्षक-प्रशिक्षणार्थी उक्त कथन से असहमत थे और 1.5 प्रतिशत पूर्णत: असहमत थे। उपरोक्त आंकडों के विश्लेषण से पता चलता है कि अधिकतम शिक्षक-प्रशिक्षणार्थी इन्टर्नशिप कार्यक्रम के अन्तर्गत समस्त शिक्षण सहायक सामग्री का उपयोग किया जाना रोचक होता है।

प्रश्न 6 इन्टर्नशिप कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रशिक्षुओं को विद्यालयी कर्मचारियों व सहपाठियों के साथ विनम्र होना आवश्यक होता है।

तालिका-06

विद्यालयी कर्मचारियों व सहपाठियों के साथ विनम्रता

क्र. सं.	शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की कुल सं. 266							
	पूर्ण सहमत	प्रतिशत	सहमत	प्रतिशत	पूर्ण असहमत	प्रतिशत	असहमत	प्रतिशत
1	159	59.8	104	39.0	1	0.4	2	0.8

ग्राफ-06

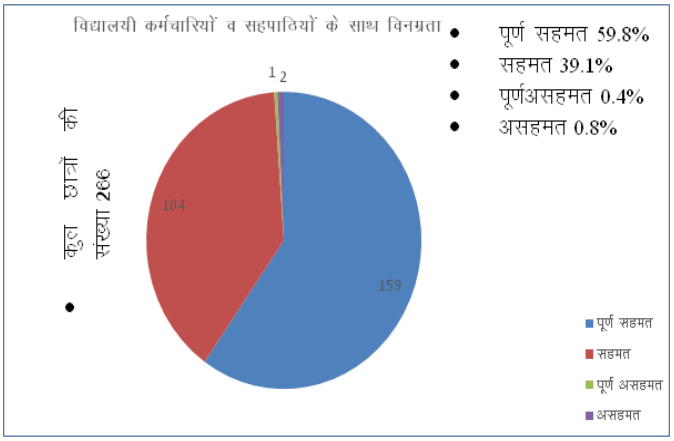

तालिका-06 एवं ग्राफनं.-06 से ज्ञात होता है कि 59.8 प्रतिशत शिक्षक-प्रशिक्षणार्थी पूर्णत: सहमत है कि इन्टर्नशिप कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रशिक्षुओं को विद्यालयी कर्मचारियों व सहपाठियों के साथ विनम्र होना आवश्यक होता है और 39.0 प्रतिशत उक्त कथन से सहमत हैं, वहीं केवल 0.8 प्रतिशत शिक्षक- प्रशिक्षणार्थी उक्त कथन से असहमत है और 0.4 प्रतिशत पूर्णत: असहमत है। उपरोक्त आंकडों के विश्लेषण से पता चलता है कि अधिकतम शिक्षक-प्रशिक्षणार्थी का मानना है कि इन्टर्नशिप कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रशिक्षुओं को विद्यालयी कर्मचारियों व सहपाठियों के साथ विनम्र होना आवश्यक होता है।

प्रश्न 7 इन्टर्नशिप कार्यक्रम के अन्तर्गत दिये गये कार्य एवं दायित्व का निर्वहन पूर्ण निष्ठा व तत्परता से करना प्रशिक्षणार्थियों को अनुशासनशील बनाता है।

तालिका-7

इन्टर्नशिप एवं अनुशासन

क्र. सं.	शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की कुल सं. 266							
	पूर्ण सहमत	प्रतिशत	सहमत	प्रतिशत	पूर्ण असहमत	प्रतिशत	असहमत	प्रतिशत
1	179	67.3	64	24.0	17	6.4	6	2.3

ग्राफ-07

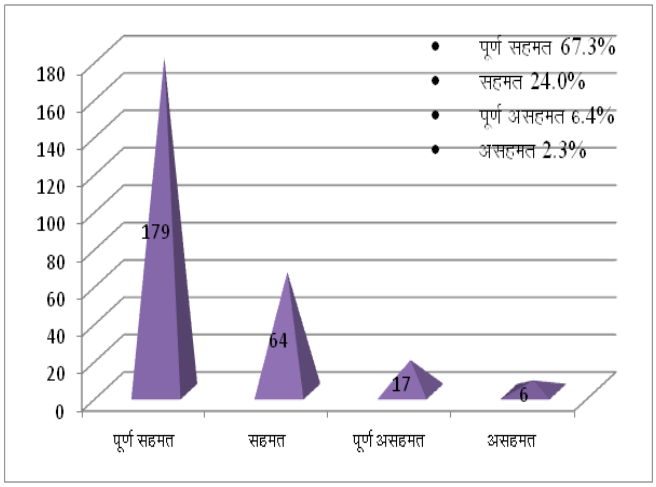

तालिका-7 एवं ग्राफ नं.-7 से ज्ञात होता है कि 67.3 प्रतिशत शिक्षक-प्रशिक्षणार्थी सहमत हैं कि इन्टर्नशिप कार्यक्रम के अन्तर्गत दिये गये कार्य एवं दायित्व का निर्वहन पूर्ण निष्ठा व तत्परता से करना प्रशिक्षणार्थियों को अनुशासनशील बनाता है और 24.0 प्रतिशत उक्त कथन से सहमत हैं, वहीं केवल 2.3 प्रतिशत शिक्षक-प्रशिक्षणार्थी उक्त कथन से असहमत है और 6.4 प्रतिशत पूर्णत: असहमत। उपरोक्त आंकडों के विश्लेषण से पता चलता है कि अधिकतम शिक्षक-प्रशिक्षणार्थी सहमत हैं कि इन्टर्नशिप कार्यक्रम के अन्तर्गत दिये गये कार्य एवं दायित्व का निर्वहन पूर्ण निष्ठा व तत्परता से करना प्रशिक्षणार्थियों को अनुशासनशील बनाता है।

निष्कर्ष एवं परिणाम - उपर्युक्त अध्ययन के विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष एवं परिणाम निकलता है कि-

1. स्थानाबद्ध प्रशिक्षण कार्यक्रम शिक्षक-प्रशिक्षणार्थियों को भावी शिक्षण कार्य एवं व्यवसाय हेतु तैयार करने की एक महत्वपूर्ण व्यावहारिक प्रशिक्षण तकनीकी है। इससे प्रशिक्षणार्थी इंटर्नशिप कार्यक्रम के दौरान आने वाली समस्याओं से कुशलतापूर्वक सामना करते है। जिससे प्रशिक्षु भविष्य में अपने व्यवसाय के प्रति कुशलता एवं दक्षता प्राप्त कर लेता है। गुप्ता, मंजू (2020) के अनुसार इंटर्नशिप कार्यक्रम के द्वारा प्रशिक्षणार्थियों में इससे अध्यापन की समस्त गतिविधियों को जानने व समझने तथा अपनी कौशल क्षमताओं को विकसित करने में मदद मिलती है।
2. स्थानाबद्ध प्रशिक्षण कार्यक्रम में शिक्षक-प्रशिक्षणार्थियों को अपने अध्यापन कार्य के विभिन्न पक्षों यथा-ज्ञानात्मक, भावनात्मक, क्रियात्मक कौशलों, क्षमताओं और अपने व्यावसायिक कार्यो

को और अधिक अच्छा बनाने हेतु समझने मे मदद मिलती है। इसका प्रमुख कारण है कि क्योंकि इंटर्नशिप कार्यक्रम की अवधि में शिक्षक–प्रशिक्षणार्थी विभिन्न प्रकार की विद्यालयी गतिविधियों में संलग्न रहता है जिसके कारण वह सभी शिक्षण अधिगम सम्बन्धी कौशलों को अर्जित करता रहता है, जिससे कि वह वास्तविक शिक्षण के दौरान आने वाली विभिन्न प्रकार की जटिलताओं एवं समस्याओं का कुशलतापूर्वक समाधान निकालने में सक्षमता प्राप्त कर लेता है।

3. शिक्षक–प्रशिक्षणार्थियों की इंटर्नशिप (स्थानाबद्ध प्रशिक्षण) कार्यक्रम से वास्तविक रूप से श्रेष्ठ तकनीकी व व्यावहारिक ज्ञान के लिए उत्तम है।
4. शिक्षक–प्रशिक्षणार्थियों की इंटर्नशिप कार्यक्रम से प्रशिक्षणार्थियों के व्यावहारिक ज्ञान व श्रेष्ठ तकनीकी के परिणामों की स्थिति सकारात्मक है, जो कि प्रशिक्षणार्थियों को श्रेष्ठ तकनीकी व व्यावहारिक ज्ञान के प्रति जागरुक करता है उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इंटर्नशिप शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रशिक्षणार्थियों के कौशल विकास में सकारात्मक प्रभाव डालता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

- Aggarwal, Pragya (2014): Teachers' Competencies as identified by NCTE. International Journal of Mulidisciplinery Research and Development 2014, 1(6) ,252-53
- अरमूम पी.चैलेपन के (2015): सोशल एण्ड इमोशनल सेल्फ एपीकेशी ऑफ एडोलेसेण्टय शोध पत्र इन्टरनेशनल जनरल ऑफएडोलसैण्ट एण्ड यूथ वोल्यूम–21 (2016) इश्यू 31
- गुप्ता मंजू (2020)– बी.एड. पाठ्यक्रम के स्कूल इंटर्नशिप कार्यक्रम की प्रभावशीलता के मूल्यांकन का अध्ययन वोल्यूम..पग , इश्यू अप जून/2020
- स्लेहा, पी (2012) इन्टर्नशिप प्रोग्राम इन एजूकेशन: इफेक्टिवनेस प्रोब्लमस एण्ड प्रोस्पैक्टस, इन्टरनेशनल जनरल ऑफ लर्निंग एण्ड डेवोपमेन्ट,वोल्यूम 2(1), 487–498.
- मिश्रा एल (2013) टीचर एजूकेशन इश्यूस एडं इनोवेशन चेन्नई: एटलांटिक पब्लिसरस
- एन.सी.टी.ई. (2009), नेशनल करीकुलम फॉर टीचर एजूकेशन न्यू दिल्ली
- सिंह पी (2013), एटीट्यूस ऑफ बी.एड. स्टूडेन्स टूवर्डस इंटर्नशिप एज एक पार्ट ऑफ बी.एड. करीकुलम (एम.एड. डिजरटेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ जम्मू 2013)
- स्वेता सिंह, टीचर रिफलेक्शन–एन एनालाइसीस
- जेन रॉय एण्ड डैनी स्आकोस (2017) ए रिव्यू ऑफ ए न्यू अर्पोच्यूनिटिस इन ऑनलाइन लर्निंग : बिल्डिंग ए न्यू कॉनसेप्चुअल फ्रेमवर्क फॉर ए सेल्फ–रेग्यूलेटेड इंटर्नशिप इन हॉस्पिटेलिटी, वेल्यूम 32, नं. 1, 2017
- रिचर्डसन एण्ड अदर्स (2006),द टीचिंग इंटर्नशिप इन अ वैचलर ऑफ एजूकेशन प्रोग्राम साउथ पैसिफिक जनरल ऑफ टीचर एजूकेशन, वोल्यूम 23
- स्टीफेन्स, जी0ई0(2011),टीचिंग इंटर्नशिप इन प्रोफेशनल डेवलवमेन्ट इन कैरियर एण्ड टैक्नीकल एजूकेशन,जे0सी0टी0ई0 वोल्यूम 26
- होल्डावे एण्ड अदर्स(1994),द वेल्यू ऑफएन इंटर्नशिप प्रोग्राम फार विगनिंग टीचर्स एजूकेशनल इवैल्यूएशन एण्ड पोलिसी एनालाइसिस16(2):205–221
- स्लोगन,सुषमा(2010)''इन्टरनेशनल जनरल फॉर सोशल स्टडीज आई0एस0एस0एन:2455–3220,वॉल्यूम.05इश्यू 02,पी0पी0 235.
- अंजुम, साडिया (2020),''इम्पैक्ट ऑफ इंटर्नशिप प्रोग्रामस आन प्रोफेशनल एण्ड पर्सनल डेवलपमेन्ट ऑफ बिजनेस स्टूडेन्टस'' ए केस स्टडी ऑफ पाकिस्तान ,फ्यूचर बिजनेस जनरल,वोल्यूम.–6आर्ट न0.(2)पी.पी.2.
- अन्डरग्रेजुएट बिजनेस इंटर्नशिप एण्ड कैरियर सक्सेस: आर दे रिलेटेड जैक गाल्ट,जॉन रेडिंगटॉन,टेमी स्लेगरफॉर्स्ट पब्लिस्ड अप्रैल 1.2000 रिसर्च आर्टिकल

ISSN 2278 - 0327

महिलाओं के पी.सी.ओ.डी. रोग पर योग के प्रभाव का अध्ययन

अर्चना दुबे
शोधार्थी, योगविज्ञान विभाग
श्री गुरु राम राय विश्वविद्यालय, देहरादून (उत्तराखण्ड)

प्रोफेसर (डॉ०) सरस्वती काला
विभागाध्यक्ष, मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान
श्री गुरु राम राय विश्वविद्यालय, देहरादून (उत्तराखण्ड)

शोध सारांश

पी.सी.ओ.डी. यानी पॉलीसिस्टिक ओवेरियन डिज़ीज (जिसे आजकल पी.सी.ओ.एस. यानि पॉलीसिस्टिक ओवेरियन सिण्ड्रोम भी कहा जाता है) की समस्या भारत में प्राय: प्रत्येक पांच में से एक महिला में देखी जा रही है। जहाँ तक अन्य देशों का सवाल है, सन् 2016 में आस्ट्रेलिया में 728 व्यक्तियों पर मार्च एवं उनके सहयोगियों द्वारा किये गये सर्वे के आधार पर 12 प्रतिशत में पी.सी.ओ.डी. बीमारी के लक्षण थे। इसी प्रकार, तुर्की में यिलडिस एवं उनके सहयोगियों द्वारा 392 व्यक्तियों में किये गये सर्वे के आधार पर 15.3 प्रतिशत में इस बीमारी के लक्षण थे। यह एक ऐसी समस्या है जिसका प्रभाव महिला के शरीर पर पड़ने के साथ-साथ उसके मन पर भी पड़ता है। पॉलीसिस्टिक ओवरी की समस्या में डायबिटीज, मोटापा, मासिक की अनियमितता, गर्भधारण में परेशानी, शरीर में अनचाहे स्थानों पर बालों का उगना, अचानक मूड में परिवर्तन होना, चिड़चिड़ापन तथा अवसाद जैसे अनेकों लक्षण दिखाई देते हैं। महिलाओं में इससे मिलते-जुलते लक्षण अन्य बीमारियों के कारण भी हो सकते हैं; इसीलिए पी.सी.ओ.डी. को सर्वप्रथम सन् 1935 में स्टीन एवं लैवेन्थल द्वारा पॉलीसिस्टिक ओवेरियन सिंड्रोम की श्रेणी में रखा गया। बीमारी की प्रारम्भिक अवस्था में महिला को इसके लक्षणों का पता नहीं चलता किन्तु जब गर्भधारण होने में समस्या आती है, तब चिकित्सक द्वारा कराए गए रक्त एवं अल्ट्रासाउन्ड परीक्षण से इस बीमारी की सही स्थिति का पता चलता है एवं इसके अलावा अन्य बाहरी लक्षण; जैसे मोटापा आदि भी दिखायी देते हैं।

आज भी इस बीमारी का कोई सटीक उपचार एलोपैथी पद्धति में नहीं मिलता किन्तु यौगिक चिकित्सा पद्धति, जो एक पूरक उपचार पद्धति है, को अपनाने से यह पी.सी.ओ.डी. के उपचार में उपयोगी सिद्ध होकर, रोगी की अन्य शारीरिक बीमारियों के निदान में प्रभावी ढंग से राहत देता है। इसके साथ ही रोगी के शरीर के मानसिक विकार दूर होते हैं, तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती हैं। इस पर आगे और अधिक शोध की आवश्यकता है।

(शब्दावली (Key words) पी.सी.ओ.डी. अर्थात् पॉलीसिस्टिक ओवरी डिजीज, अल्ट्रासोनोग्राफी, यौगिक चिकित्सा पद्धति , एल.एच., एफ.एस.एच., एस्ट्रोजन, प्रोजेस्ट्रोन)

पी.सी.ओ.डी. रोग

पॉलीसिस्टिक ओवेरियन डिज़ीज में यदि 'पॉलीसिस्टिक ओवरी' शब्द की बात करें तो 'पॉलीसिस्टिक' दो शब्दों से मिलकर बना है जिसमें 'पॉली' का मतलब होता है - एक से अधिक तथा 'सिस्टिक' का मतलब होता है - पाउच। अर्थात् पॉलीसिस्टिक ओवेरियन डिज़ीज वह समस्या है जिसमें ओवरी में एक से अधिक पाउच जैसी संरचनायें बन जाती हैं।

पॉलीसिस्टिक ओवेरियन डिज़ीज नाम की बीमारी का पता प्राय: तब चलता है, जब अविवाहित महिला मासिक धर्म से संबंधित तकलीफों के लिये या विवाहित महिला अपने गर्भधारण न हो पाने की समस्या या बार-बार होने वाले गर्भपात के कारणों को जानने के लिये अल्ट्रासोनोग्राफी कराती है। (अल्ट्रासोनोग्राफी रोग का पता लगाने की एक तकनीक है जिसमें अल्ट्रासाउण्ड का प्रयोग करके किसी अंग अथवा ऊतक का प्रतिबिम्ब या चित्र प्राप्त करते हैं। इस विधि में अल्ट्रासाउण्ड तरंगें शरीर के विभिन्न घनत्व वाले ऊतकों से टकराकर विभिन्न तीव्रता वाली प्रति ध्वनियों को उत्पन्न करती हैं जिससे ऊतकों का प्रतिबिम्ब बन जाता है और इन प्रतिबिम्बों को रिकॉर्ड कर लिया जाता है।)

पॉलीसिस्टिक ओवेरियन डिज़ीज दूसरी समस्याओं को भी जन्म देती है जिनमें मुख्य रूप से हैं - अत्यधिक समय तक चलने वाला मासिक स्राव या बिना किसी कारण के मासिक स्राव का एकाएक रुक जाना आदि। यह एक ऐसी बीमारी है जो सेक्स हार्मोन में आए असंतुलन के कारण होती है।

पी.सी.ओ.डी. के अन्य लक्षण हैं -

गर्भधारण करने में परेशानी, गर्भपात हो जाना, वजन बढ़ना, शरीर के अनचाहे स्थानों पर बालों की अधिकता (Hirsutism), महिलाओं में पुरुषों जैसे लक्षण दिखना (Virilism) इत्यादि। इसमें हॉर्मोन में आये परिवर्तनों के कारण अंडे (Ova) का विकास अवरुद्ध हो जाता है, अंडों की संख्या में कमी हो सकती है तथा परिपक्व अंडों की संख्या में कमी भी हो सकती है, यहां तक कि अंडे बाहर निकलने में सक्षम नहीं हो पाते।

पी.सी.ओ.डी. के कारण

महिला के शरीर में हाइपोथैलेमस, पिट्यूटरी ग्रन्थि तथा ओवरी का एक महत्वपूर्ण त्रिकोण बनता है। किसी महिला के एक सामान्य मासिक चक्र में हाइपोथैलेमस ग्रंथि से एक गोनेडोट्रॉपिन हार्मोन निकलता है जिसके प्रभाव से पिट्यूटरी द्वारा फॉलिकिल स्टिमुलेटिंग हार्मोन (एफ.एस.एच.) तथा ल्यूटिनाइजिंग हॉर्मोन (एल.एच.) स्रावित किए जाते हैं। फॉलिकिल स्टिमुलेटिंग हार्मोन तथा ल्यूटिनाइजिंग हॉर्मोन, ये दोनों हॉर्मोन्स मासिक चक्र के दौरान ओवरी पर अपना प्रत्यक्ष प्रभाव डालते हैं। ये हॉर्मोन ओवरी में बनने वाले अंडे की वृद्धि तथा उसके परिपक्व होने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके साथ ही एक अतिरिक्त हार्मोन का भी स्राव होता है जो इन अंडों की वृद्धि में सहायक होता है जिससे अंडा फूटकर बाहर आता है और गर्भाधान (Conception) के दौरान शुक्राणुओं द्वारा निषेचन (Fertilisation) की क्रिया में भाग लेता है। जैसा कि चित्र क्रमांक 1 में दर्शाया गया है।

पी.सी.ओ.डी. का अंत:स्रावीय ग्रन्थियों के साथ संबंध

पी.सी.ओ.डी. हाइपरएंड्रोजेनिज्म (Hyperandrogenism यानि एंड्रोजेन ग्रंन्थि की अति सक्रियता), पिट्यूटरी ग्रन्थि का उचित रूप से कार्य न कर पाने, गोनाडोट्रोपिन स्राव {जो फॉलिकिल-उत्तेजक हार्मोन (एफ.एस.एच.) के अनुपात में बढ़े हुये ल्यूटिनाइजिंग हार्मोन (एल.एच.) का कारण बनता है} और हाइपरइन्सुलिनिज्म इसकी मुख्य विशेषता है। जैसा कि चित्र क्रमांक 2 में दर्शाया गया है।

पी.सी.ओ.डी. से जुड़े अनचाहे बालों की अधिकता (हिर्सुटिज्म) हमेशा एण्ड्रोजन की अधिकता के मात्रा के साथ सीधे संबंधित नहीं होता है। अत्यधिक हिर्सुटिज़्म एण्ड्रोजन के थोड़ा सा बढ़ने पर भी यह हो सकता है। कुछ केसेज में एण्ड्रोजेन का पर्याप्त स्तर नहीं होने पर भी पी.सी.ओ.डी. की एक प्रमुख विशेषता -जिसमें ओवरी में अंडे नहीं बनते (Chronic anovulation), एल.एच. का स्तर बढ़ा हुआ होने के साथ और एफ.एस.एच के निम्न स्तर के साथ भी अधिकतर हिर्सुटिज्म देखने को मिलता है। इसे भी चित्र के द्वारा समझा जा सकता है। देखें चित्र क्रमांक 3

पी.सी.ओ.डी. रोग में, एल.एच. और एफ.एस.एच. में असंतुलन (Imbalance) हाइपोथैलेमिक-पिट्यूटरी-ओवरी के अक्ष की प्रतिक्रिया तंत्र में आये अवरोध की वजह से होता है। ओवरी से निकले एस्ट्रोजन में चक्रीय परिवर्तन सामान्य रूप से चक्रीय गोनाडोट्रोपिन के उचित प्रतिक्रिया विनियमन के लिए जिम्मेदार होते हैं जो अतिरिक्त ग्रंथियों के स्रोतों से एस्ट्रोजन को लगातार बाहर निकलने से रोक देते हैं। इस प्रकार, अत्यधिक मात्रा में एण्ड्रोजन का स्राव और बाद में एस्ट्रोजेन में इनका रूपांतरण पी.सी.ओ.एस. में क्रोनिक एनोव्यूलेशन के विकास के लिए आधार बनता है। जैसा कि चित्र क्रमांक 4 में दर्शाया गया है-

यौगिक उपचार

मनुष्य के शरीर की स्वस्थता बनाये रखने में यौगिक चिकित्सा-पद्धति की एक अहम् भूमिका है। इस पद्धति को अपनाने से शारीरिक व मानसिक बीमारियाँ दूर होती हैं। भावनात्मक विकारों का शमन होता है तथा शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। यह पद्धति एक उपचार नहीं बल्कि जीवन दर्शन भी है जो विभिन्न प्रकार के रोगों के लक्षणों का प्रबंधन करते हुए उनमें प्रभावी राहत देता है। इसके साथ ही यह शारीरिक कष्ट को कम करने एवं भावनात्मक संतुलन स्थापित करने में सहायक है जिससे जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि होती है। इतना ही नहीं, इस उपचार के कोई प्रतिकूल प्रभाव (Side effects) शरीर पर नहीं पड़ते। यह एक सुरक्षित चिकित्सा पद्धति है जो रोगियों के मन की सकारात्मकता को बढ़ाने में सहायक होता है।

पॉलीसिस्टिक ओवेरियन डिजीज से पहले की एक अवस्था पॉलीसिस्टिक ओवरी होती है, जो एक साधारण स्थिति है, जिसका निदान लक्षणों के आधार पर आसानी से किया जा सकता है। यह पी.सी.ओ.डी. की एक पूर्व-नैदानिक (Pre diagnostic) स्थिति से संबंधित है। यदि इसके लक्षणों की प्रारम्भिक स्थिति में ही उपचार देना प्रारम्भ कर दिया जाये तो लक्षणों से संबंधित रोगों के उपचार के साथ ही पॉलीसिस्टिक ओवरी का उपचार हो जायेगा। साथ ही पॉलीसिस्टिक ओवेरियन डिजीज रोग की शुरुआत होने की संभावना भी कम हो जायेगी। इसलिये योग के उपचारक (Practitioner) को महिलाओं की इन परेशानियों पर विशेष ध्यान देना चाहिए जो अनियमित या विलंबित मासिक, या मासिक धर्म के रुकने की शिकायत करती हैं क्योंकि ये लक्षण पॉलीसिस्टिक ओवरी के सटीक निदान में सहायक हो सकते हैं।

योग पद्धति द्वारा पॉलीसिस्टिक ओवेरियन डिजीज का उपचार करने के लिये हॉर्मोन्स को संतुलित रखने में, ओवरी में एकत्रित अतिरिक्त विषद्रव्यों को हटाने के सिद्धान्त पर कार्य करना चाहिये और इसके साथ ही मासिक धर्म के समय को नियमित करने की पूरी कोशिश होनी चाहिये।

साधारण तौर पर यह आवश्यक नहीं है कि जिस महिला को पॉलीसिस्टिक ओवरी की शिकायत हो, उसे बाँझपन की समस्या भी हो। इसके लिये हमें महिला के पति के शुक्राणुओं की जाँच भी करानी चाहिये। इसलिये यदि महिला को पॉलीसिस्टिक ओवरी की शिकायत हो और वह बांझपन के उपचार के लिये आयी हो तो भी हमारा पूरा ध्यान केवल पॉलीसिस्टिक ओवरी पर न होकर पुरुष के शुक्राणुओं की जाँच पर भी होना चाहिये।

हालाँकि चिकित्सक पॉलीसिस्टिक ओवरी या पॉलीसिस्टिक ओवेरियन डिजीज की दशा में टेस्ट ट्यूब बेबी करने की सलाह नहीं

देते हैं किन्तु इस स्थिति में यौगिक चिकित्सा पद्धति द्वारा हॉर्मोनल असंतुलन को नियमित कर ओवरी की पी.सी.ओ.डी की स्थिति को ठीक किया जा सकता है जिससे टेस्ट ट्यूब बेबी की क्रिया आसानी से सम्पन्न हो सके। यह एक सुरक्षित और सरल तरीका हो सकता है। यदि किसी महिला को गर्भधारण हेतु सुदृढ़ता तथा मजबूती की स्थिति से पहले या कम उम्र में ही गर्भधारण करना पड़ता है तो उसमें गर्भस्राव या गर्भपात की संभावनायें काफी बढ़ जाती हैं, इसलिये पेट में पल रहे बच्चे की पूर्ण सुरक्षा के लिये भी यौगिक चिकित्सा एक बेहतर विकल्प हो सकता है।

पी.सी.ओ.डी. के उपचार में प्रयुक्त यौगिक चिकित्सा

पी.सी.ओ.डी. से ग्रसित महिलाओं का उपचार प्रयागराज (उत्तर प्रदेश) में 150 महिलाओं पर किया गया जिसमें से 50 पर यौगिक चिकित्सा पद्धति, 50 पर एक्यूप्रेशर पद्धति, तथा 50 पर योग एवं एक्यूप्रेशर पद्धति दोनों के द्वारा 2 माह तक नियमित रूप से उपचार दिया गया। वर्तमान प्रसंग में यौगिक चिकित्सा द्वारा दिए गए उपचार के बारे में विस्तृत वर्णन किया जा रहा है।

पी.सी.ओ.डी. बीमारी में ऐसे यौगिक क्रियाओं का चयन किया जाता है जो रोगी के ओवरी, लीवर तथा पिट्यूटरी ग्रन्थि पर सकारात्मक प्रभाव डालते हों। इसीलिए रोगोपचार में सर्वांगासन, मत्स्यासन, पश्चिमोत्तानासन, नाड़ी शोधन प्राणायाम तथा भ्रामरी प्राणायाम का प्रयोग किया गया। किस आसन/प्राणायाम से शरीर के किन-किन अंगों/कार्य प्रणालियों पर कैसे सकारात्मक प्रभाव पड़ता है, यह निम्न तालिका से समझा जा सकता है-

क्रमांक	आसन/प्राणायाम का नाम	अंग एवं कार्यप्रणाली पर प्रभाव	प्रभाव का वर्णन
1	सर्वांगासन	ओवरी, थायराइड, पैराथायराइड	सर्वांगासन की अन्तिम अवस्था में पैर ऊपर की ओर रहने से रक्त का प्रवाह मस्तिष्क की ओर तीव्रता से होने लगता है जिससे पिट्यूटरी, थायराइड, एवं पैराथायराइड ग्रन्थि की कार्य क्षमता में वृद्धि होती है तथा इसके साथ ही पेट के सभी अंगों; जैसे– ओवरी एवं पिट्यूटरी ग्रन्थि आदि पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
2	मत्स्यासन	पिट्यूटरी ग्रन्थि	आसन की अन्तिम अवस्था में जब सिर के शीर्ष भाग को भूमि पर टिकाया जाता है, तब पिट्यूटरी ग्रन्थि पर सकारात्मक प्रभाव पड़ने से इसकी कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।
3	पश्चिमोत्तानासन	यूटरस, ओवरी तथा पिट्यूटरी ग्रन्थि	आसन की अन्तिम अवस्था में आगे की तरफ झुकने से पेट के सभी अंगों जैसे ओवरी, यूटरस आदि पर पर्याप्त दबाव पड़ने से ये सभी अंग सुचारु रुप से कार्य करते हैं। साथ ही इससे पिट्यूटरी ग्रन्थि पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
4	नाड़ी शोधन प्राणायाम	पिट्यूटरी ग्रन्थि एवं समस्त शरीर	इसके अभ्यास से फेफड़ों की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। शरीर को मिलने वाली ऑक्सीजन की मात्रा में वृद्धि होने से रक्त का शुद्धिकरण हो कर शरीर के सभी अंगों को ऑक्सीजन युक्त रक्त मिलता है। इससे शरीर की पिट्यूटरी ग्रन्थि आदि समस्त अंग स्वस्थ बने रहते हैं एवं शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है।
5	भ्रामरी प्राणायाम	पिट्यूटरी ग्रन्थि एवं समस्त शरीर	इसके अभ्यास से मस्तिष्क में कंपन (vibration) होने से इसका सकारात्मक प्रभाव पिट्यूटरी ग्रन्थि पर पड़ता है, मानसिक एकाग्रता में वृद्धि होती है। समस्त शरीर व मन की स्वस्थता बनी रहती है।

ऊपर दिये गये योगोपचार को 50 रोगियों पर लगातार 2 माह तक नियमित रूप से विधिपूर्वक प्रयोग करने से उनका पी.सी.ओ.डी. रोग दूर हो गया।

सांख्यिकीय विश्लेषण

यौगिक चिकित्सा पद्धति से पी.सी.ओ.डी. के उपचार हेतु 50 महिला रोगियों का चुनाव कर उनका विस्तृत विवरण दर्ज किया गया। इसके आधार पर कुछ बिंदुओं का सांख्यिकी विश्लेषण निम्न अनुसार है – 60 दिनों के यौगिक उपचार के बाद ये रोगी पूरी तरह से रोग मुक्त हो गए।

1. रोगी यौगिक पद्धति से पी.सी.ओ.डी. के उपचार हेतु आए, तब उनकी उम्र क्या थी?

रोगी की उम्र के आधार पर वर्गीकरण

क्रम संख्या	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
1	16 से 20 वर्ष	7	14
2	21 से 25 वर्ष	14	28
3	26 से 30 वर्ष	10	20
4	31 से 35 वर्ष	5	10
5	36 से 40 वर्ष	10	20
6	41 से 45 वर्ष	3	6
7	46 से 50 वर्ष	1	2
	योग	50	100

इसके अनुसार, 14 प्रतिशत रोगी 16 से 20 वर्ष की उम्र के, 28 प्रतिशत 21 से 25 वर्ष के, 20 प्रतिशत 26 से 30 वर्ष के, 10 प्रतिशत 23 से 36 वर्ष के, 20 प्रतिशत 36 से 40 वर्ष के, 6 प्रतिशत 41 से 45 वर्ष के एवं 2 प्रतिशत रोगी 46 से 50 वर्ष की उम्र के थे ।

उक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि सर्वाधिक रोगियों की उम्र 21 से 25 वर्ष के बीच थी एवं 46 से 50 वर्ष के रोगियों की संख्या सबसे कम थी।

2. रोगी जब योगिक पद्धति से पी.सी.ओ.डी. के उपचार हेतु आए तब उनका वजन क्या था?

रोगी के वजन के आधार पर वर्गीकरण

क्रम संख्या	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
1	16 से 20 वर्ष	7	14
1	50 से 60 किग्रा.	10	20
2	61 से 70 किग्रा.	17	34
3	71 से 80 किग्रा.	8	1
4	81 से 90 किग्रा.	10	20
5	91 से 100 किग्रा.	4	8
6	101 से 110 किग्रा.	–	–
7	111 से 120 किग्रा.	1	2
	योग	50	100

यहाँ पर 20 प्रतिशत रोगियों का वजन 50 से 60 किलोग्राम था, 34 प्रतिशत का 61 से 70 किलोग्राम, 16 प्रतिशत का 71 से 80 किलोग्राम, 20 प्रतिशत का 81 से 90 किलोग्राम, 8 प्रतिशत का 91 से 100 किलोग्राम एवं 2 प्रतिशत रोगियों का वजन 111 से 120 किलोग्राम के बीच था।

3. रोगी जब यौगिक पद्धति से पी.सी.ओ.डी. के उपचार हेतु आए। इसके पूर्व में अन्य वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति के माध्यम से कितने वर्ष तक उपचार करा चुके थे और रोग मुक्त नहीं हो पाए थे

यौगिक पद्धति से इलाज शुरू करने के पूर्व अन्य चिकित्सा पद्धति से कराए गए उपचार के आधार पर वर्गीकरण

क्रम संख्या	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
1	1 वर्ष तक	15	30
2	1 से 2 वर्ष तक	7	14
3	2 से 3 वर्ष तक	13	26
4	3 से 4 वर्ष तक	7	14
5	4 से 5 वर्ष तक	3	6
6	5 से 6 वर्ष तक	3	6
7	6 से 7 वर्ष तक	1	2
8	7 से 8 वर्ष तक	0	0
9	8 से 9 वर्ष तक	0	0
10	9 से 10 वर्ष तक	1	2
	योग	50	100

30 प्रतिशत रोगियों ने 1 वर्ष तक अन्य चिकित्सा पद्धति से इलाज कराने के बाद यौगिक पद्धति से इलाज कराने का निर्णय लिया, 14 प्रतिशत ने 2 वर्ष तक, 26 प्रतिशत ने 3 वर्ष तक, 14 प्रतिशत ने 4 वर्ष तक, 6 प्रतिशत ने 5 वर्ष तक, 6 प्रतिशत ने 6 वर्ष तक, 2 प्रतिशत ने 7 वर्ष तक एवं 2 प्रतिशत ने 10 वर्ष तक वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति से उपचार कराया था।

4. यौगिक पद्धति से इलाज शुरू करने के पूर्व और 60 दिनों के उपचार के पश्चात पी.सी.ओ.डी. रोग की स्थिति –

अल्ट्रासाउन्ड रिपोर्ट के आधार पर वर्गीकरण

पी.सी.ओ.डी. मरीजों की संख्या	उपचार के पूर्व अल्ट्रासाउन्ड रिपोर्ट में पी.सी.ओ.डी. की स्थिति	60 दिनों के यौगिक उपचार के पश्चात में पी.सी.ओ.डी. की स्थिति	पी.सी.ओ.डी. बीमारी ठीक होने का प्रतिशत
50	50	45	90

नोट 1 –

उक्त तालिका में वर्णित संख्या का आधार प्रत्येक रोगी की अल्ट्रासाउन्ड रिपोर्ट है।

सारीरिक परीक्षण एवं अल्ट्रासाउन्ड रिपोर्ट के आधार पर 50 चुनी गयी महिलाओं में पी.सी.ओ.डी. रोग होने की पुष्टि हुई।

नोट 2 –

उक्त तालिका के अनुसार 50 में से 45 रोगी 60 दिनों के यौगिक उपचार से रोगमुक्त हो गये जिससे स्पट है कि यौगिक उपचार पी.सी.ओ.डी. रोग के उपचार में सकारात्मक परिणाम देता है।

उल्लेखनीय है कि शेष 5 रोगियों ने व्यक्तिगत कारणों से बीच में उपचार लेना बन्द कर दिया। अत: इन रोगियों के पी.सी.ओ.डी. रोग की अन्तिम स्थिति प्राप्त नहीं हो सकी।

अत: उक्त से स्पष्ट है कि यौगिक चिकित्सा पद्धति से पी.सी.ओ.डी. रोग का उपचार करने से सकारात्मक परिणाम प्राप्त होकर रोगी रोगमुक्त हो जाते हैं। यौगिक चिकित्सा पद्धति का एक अतिरिक्त लाभ यह भी है कि पी.सी.ओ.डी. की समस्या के बारे में पर्याप्त जानकारी जुटाकर शुरु में किसी योग्य उपचारक के मार्गदर्शन में सूझबूझ के साथ यौगिक चिकित्सा द्वारा घर बैठे इस रोग को आसानी से ठीक किया जा सकता है।

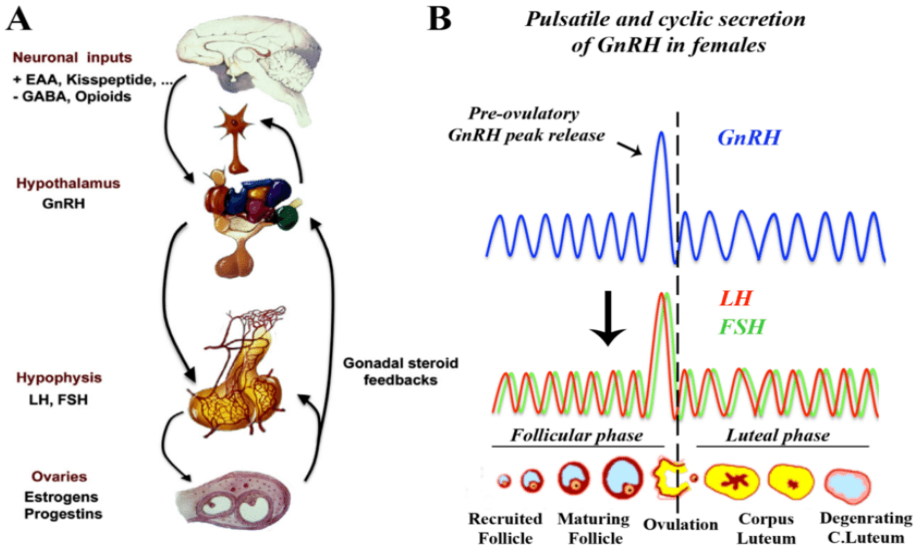

चित्र क्रमांक 1

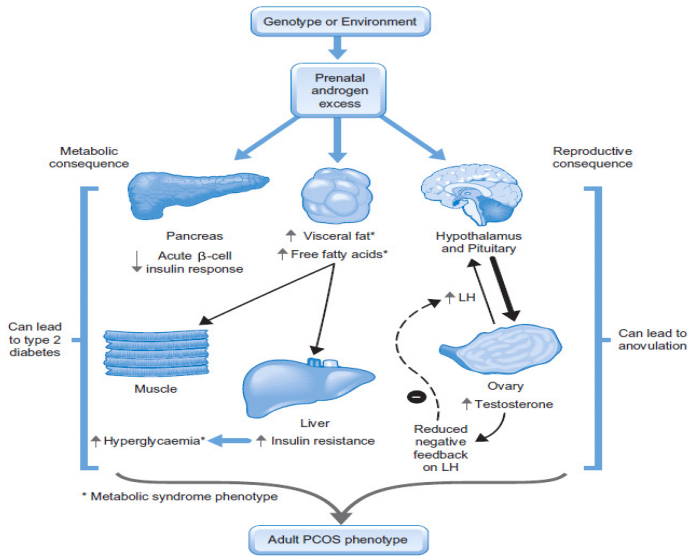

चित्र क्रमांक 2

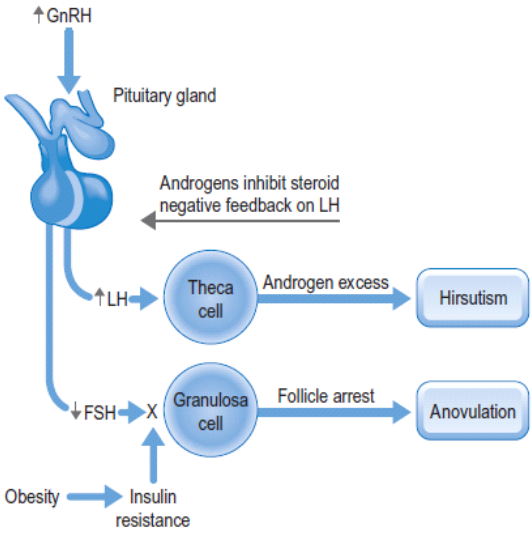

चित्र क्रमांक 3

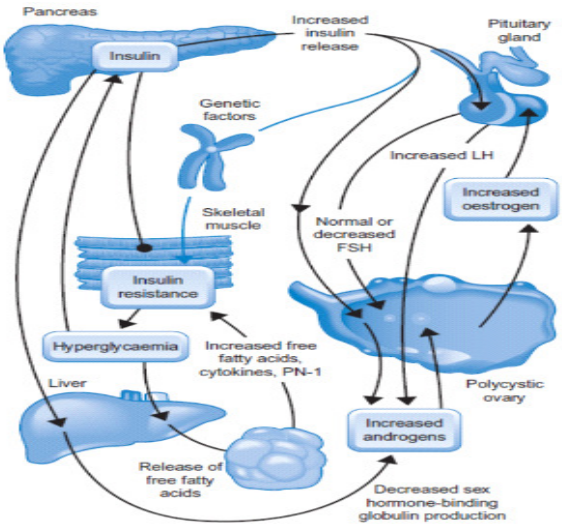

चित्र क्रमांक 4

संदर्भ सूची

1. 'स्वास्थ्य के लिये योग', लेखक- सदाशिव प्र. निम्बालकर, योग विद्या निकेतन, मुम्बई.
2. 'आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध', लेखक- स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार.
3. *A Text Book of Medical Physiology.*Guyton., & Hall. (2000). Harcourt. New Delhi. *India*
4. https://myartofwellness.com/how-to-treat-polycystic-ovarian-syndrome-pcos-with-acupuncture-and-tcm/https://juniperpublishers.com/jcmah/pdf/JCMAH.MS.ID.555578.pdf
5. https://trialsjournal.biomedcentral.com/articles/10.1186/s13063-019-3667-y
6. https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC5466220/
7. https://www.researchgate.net/figure/A-The-Hypothalamic-pituitary-gonadal-axis-The-hypothalamic-GnRH-neurons-are-the-final_fig3_278642910

ISSN 2278 - 0327

संस्कृत व्याकरण पढ़ने की सरल विधि

डॉ. प्रज्ञा
सहायकार्या
श्रीजगन्नाथसंस्कृतविश्वविद्यालय, पुरी

शोधसारांश–

व्याकरण सर्वोपकारक शास्त्र है। किसी भी शास्त्र को पढ़ने के लिए व्याकरण की आवश्यकता होती ही है। अत: व्याकरण भाषोपकारक शास्त्र है। यदि कोई विद्यार्थी व्याकरण को गम्भीरता से समझने का यत्न करता है तो वह सभी विषयों को सरलता एवं सहजता से समझ सकता है। एतदर्थ प्रस्तुत लेख में व्याकरण पढ़ाने की आधुनिक एवं प्राचीन विधियों की चर्चा की गई है। इन विधियों का आश्रयण कर विद्या पिपासू व्याकरण शास्त्र में रुचिमान होकर सभी शास्त्रे को अपने बुद्ध्यारूढ कर सकेंगे।

उद्देश्य –

1. छात्र सरलता से रुचिमान होकर व्याकरण को पढ़ने में समर्थ बनेंगे।
2. पठित व्याकरणांशों के व्यावहारिक प्रयोग के लिए छात्रों को समर्थ बनाना।
3. शुद्ध एवं व्याकरण सम्मत वाक्यप्रयोग के सामर्थ्य का उत्पादन।
4. स्वाध्याय के लिए प्रेरित करना।
5. व्याकरण 'क्लिष्ट एवं नीरस है' इस अवधारणा का खण्डन।
6. व्याकरण अध्ययन एवं अध्यापन के प्रति सहज प्रवृत्ति को उत्पन्न करना।
7. संस्कृत व्याकरण के सरल एवं सहज अध्यापन द्वारा भारतीय ज्ञाननिधि की रक्षा।

भूमिका –

व्याकरणशास्त्र सर्वशास्त्रोपकारक है। यह सभी विद्वानों ने एकस्वर से अङ्गीकार किया है। आचार्य भर्तृहरि ने कहा है –

अर्थप्रवृत्तितत्त्वानां शब्दा एव निबन्धनम्।
तत्त्वार्थबोध: शब्दानां नास्ति व्याकरणादृते।। [1]

सभी शास्त्र शब्द का आश्रयण लेकर ही अपने स्वरूप को प्रकाशित करते हैं। शब्दों के वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए व्याकरणशास्त्र के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं।

जैसे कि कहा गया है–

तद्द्वारमपवर्गस्य वाङ्मलानां चिकित्सितम्।
पवित्रं सर्वविद्यानाम् अधिविद्यं प्रकाशते।।

संस्कृत व्याकरण को समझना एवं समझाना हम सभी भारतीयों के लिए उतना ही अनिवार्य है जितना अपनी संस्कृति का पालन करना। व्याकरणशास्त्र नीरस शुष्क एवं क्लिष्ट माना जाता है। किन्तु इसके अध्यापन के लिए विभिन्न विधियों का आश्रयण कर व्याकरण शास्त्र को भी रुचिपूर्ण एवं सरल बनाया जा सकता है।

एतदर्थ प्रस्तुत लेख में व्याकरण को पढ़ाने की सरल विधि के विषय में चिन्तन किया गया है। व्याकरण को पढ़ाने की विधियों को स्थूल रूप से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है–

1. प्राचीन विधियाँ, 2. आधुनिक विधियाँ

(1) निगमन विधि –

निगमन विधि में पूर्व में सूत्र का उल्लेख किया जाता है तत्पश्चात् व्याख्यापूर्वक उसके उदाहरण प्रत्युदाहरण का उल्लेख किया जाता है। यह विधि प्राचीन व्याख्या अथवा अध्यापन पद्धति में सर्वाधिक प्रचलित एवं विद्वानों द्वारा अनुमत विधि है। इससे संक्षिप्त रीति से महान शब्दराशि को जानने में सहजता होती है। उदाहरणार्थ यदि हमें यण् सन्धि को जानना है तो सर्वप्रथम हम 'इको यणचि'[2] को पढ़ते हैं पुन: उस सूत्र की व्याख्या कर उसके अर्थ का उदाहरण में संघटन करते हैं। यथा– 'इको यणचि' का अर्थ है 'अच् से अव्यवहित पूर्व जो इक् उसके स्थान पर यण् होता है। यथा– सुधी + उपास्य यहाँ अच् से अव्यवहित पूर्व इक् है धकारोत्तर इकार। अत: उसके स्थान पर 'य्' आदेश होता है। इस प्रकार निगमन विधि में सूत्र से उदाहरण तक की विधि अध्यापन निमित्त अनुपालित की जाती है। एवं रीत्या निगमन विधि द्वारा व्याकरण शिक्षण किया जाता रहा है। यद्यपि पुरा यही विधि छात्रबोध के लिए भी उत्तम थी। तथापि अद्यतन परिप्रेक्ष्य में यह विधि छात्रों को अधिक रुचिकर नहीं जान पड़ती। निगमन विधि का अनुगमन काशिकादि वृत्तिग्रन्थों में परिलक्षित होता है।

(2) प्रक्रियाबोध द्वारा व्याकरण शिक्षण –

प्राचीनकाल में द्वितीय सर्वोत्तम शिक्षणविधि प्रक्रियाशिक्षण को माना गया है। इस विधि में यद्यपि निगमन विधि भी अन्तर्निहित है। तथापि इसमें किसी शब्द अथवा प्रयोगविशेष पुरस्कृत कर सूत्रों का उपस्थापन किया जाता है। यथा– 'रामौ इति प्रयोगं पुरस्कृत्य। सरूपाणाम् – एकशेष एकविभक्तौ' यह उद्धृत है। यह विधि सिद्धान्तकौमुद्यादि व्याकरण के प्रक्रिया ग्रन्थों में सहज अवलोकन योग्य है। यद्यपि यह विधि प्रथम दृष्ट्या सरल प्रतीत होती है किन्तु यह महान्

शब्दराशि को जानने के लिए एक समयसाध्य एवं श्रमसाध्य मार्ग है।

(3) सूत्रविधि -

सूत्र लक्षण करते हुए आचार्य ने कहा है -

'' अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम्, अस्तोभग् अनवद्यञ्च सूत्रं सूत्रविदो विदु:''[3] सूत्र की समग्रता को प्रतिपादित करते हुए आचार्य ने कहा भी है- *' सूत्रेष्वेव हि तत् सर्वं, यद्वृत्तौ यच्च वार्तिक'*। यद्यपि प्राचीन काल में सूत्र कहने मात्र से अध्येता को बोध हो जाता था। किन्तु सम्प्रति सूत्रविधि बिना विलम्बितव्याख्या के सहज एवं सरल रीति से बोधगम्या नहीं। सूत्र विधि से अध्यापन के लिए सूत्रजन्य का हृदयङ्गम होना अत्यन्त अनिवार्य है। जिससे अनुवृत्ति अधिकारादि के स्मरणपूर्वक छात्र उन सूत्रों का शीघ्र अर्थबोध कर सके। आधुनिक काल में सूत्रविधि का अवलम्बन अध्येता एवम् अध्यापक द्वारा यद्यपि नहीं किया जाता तथापि महान् शब्दराशि के प्रणयन परिरक्षण एवं शब्द सम्पदा की समृद्धि के लिए यह विधि योग्य हैं।

(4) वार्तिक विधि -

वार्तिक विधि कोई स्वतन्त्र विधि नहीं तथापि व्याकरणशिक्षण के लिए महर्षि कात्यायन ने इस विधि का समाश्रयण किया है। वार्तिक का लक्षण बताते हुए आचार्य ने कहा है-*'' उक्तानुक्त दुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते तद्ग्रन्थं वार्तिकं प्राहु: वार्तिकज्ञा विचक्षणै:''* अत: जब व्याकरण शिक्षण करते समय उक्तानुक्त विषयों की चर्चा एवं चिन्ता की जाए अथवा दुरुक्त विषयों का विचार कर व्याकरण शिक्षण किया जाये तो उसे वार्तिक विधि कहा जा सकता है। यह बोधस्तर पर व्याकरण के अध्यापन के लिए उत्तम विधि है।

(5) भाष्य विधि -

वस्तुत: सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र पदै: सूत्रनुसारिभि:। स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्य विदो विदु:।। भाष्यविधि में सूत्रार्थ का वर्णन संवादात्मक शैली से किया जाता है। चर्चा परिचर्चा के द्वारा सूत्रघटक पदों का वर्णन किया जाता है। यह शैली वस्तुत: अध्यापक अथवा शिक्षक के विषय गाम्भीर्य ज्ञान पर आधारित है। भाष्य विधि अध्येता के शीघ्र एवं चिरकालिक बोध के लिए अत्यन्त उपकारक है। यद्यपि महाभाष्य से सिद्धान्तों को जानना क्लेशकर प्रतीत होता है। तथापि जब हम भाष्यविधि से व्याकरण अध्यापन करते हुए सूत्र की सर्वपक्षीय व्याख्या शिक्षार्थी के समक्ष करते हैं तो सभी सिद्धान्त तर्क को आधार बना कर अपने स्वरूप को प्रकाशित करते हैं।

(6) व्याख्यान विधि-

व्याख्यान विधि यद्यपि शास्त्रशिक्षण के लिए सर्वमान्य विधि है। तथापि यह विधि अध्येताओं की रुचि नहीं बन पाती। यत: व्याख्यानविधि में शिक्षक या अध्यापक की भूमिका अधिक होती है। व्याकरण को रुचिपूर्ण बनाने के लिए अध्येताओं की सहभागिता अधिकाधिक अपेक्षित है।

एवं रीत्या शास्त्र अथवा व्याकरणशिक्षण की कुछ प्राचीन विधियों का उल्लेख किया गया है।

प्राचीन समय में लेखन की परम्परा अधिक न होने के कारण श्रवण द्वारा ही अध्यापन किया जाता था। किन्तु आधुनिक समय में यन्त्र पर मानवमात्र की निर्भरता इतनी हो गई है कि वह श्रवण कर (स्मरण) विषयों को हृदयङ्गम करने में कठिनाई का अनुभव करता है। अत: व्याकरण शिक्षण की आधुनिक विधियों ने कठिनाईयों को अपहृत करने के लिए अपने स्वरूप को परिवर्तित कर लिया है। व्याकरण शिक्षण की आधुनिक विधियों में -

(1) आगमन विधि (2) अभिक्रमिताध्यापन
(3) ऐप द्वारा विषयज्ञापन (4) संवाद द्वारा विषय ज्ञान
(5) विषय शिक्षण द्वारा व्याकरण शिक्षण
(6) बालगीतादि के द्वारा (7) आधुनिक गणितीय शैली में सूत्रों के परिस्थिति निर्माण चित्रात्मक प्रदर्शनादि द्वारा
(8) स्तरश: लेखन क्रम से स्पष्टीकरण द्वारा व्याकरण शिक्षण।

(1) आगमनविधि-

आगमनविधि से अभिप्राय है उदाहरणोन्मुखी-करण द्वारा सूत्रशिक्षण। इस विधि में शिक्षक पहले उदाहरण उपस्थापित करता है तत्पश्चात् उदाहरण के विश्लेषण के द्वारा छात्रों को सूत्र तक ले जाया जाता है। यथा- 'यद्यपि' यह उदाहरण उपस्थापित कर शिक्षक उसका सन्धि विच्छेद छात्रों से करवाता है। तत्पश्चात् पूर्वपद का अन्तिम वर्ण क्या है एवं उत्तरपद का आदि वर्ण क्या है ? इन प्रश्नों के द्वारा, वर्ण ज्ञान द्वारा स्थानी एवं निमित्त का वर्णबोध कराता है। पुन: परिनिष्ठित शब्द को दिखाकर परिवर्तित स्थानी के द्वारा आदेशबोध कराता है। तत: यहाँ इ के स्थान पर अच् परे रहते 'य' आदेश हुआ। इक् के स्थान पर यण् आदेश होता है यदि उससे अव्यवहित उत्तर में अच् हो इत्यादि रीति से अर्थज्ञानपूर्वक सूत्र का उल्लेख करता है। यद्यपि यह विधि छात्रों को दृढतया एवं सहजतया ज्ञान कराने में समर्थ है किन्तु इसमें एक शब्द को केन्द्र में रखकर सूत्र ज्ञापन करने से यह प्रक्रिया समय साध्य हो जाती है। जैसा कि महाभाष्यकार ने कहा है-

'' बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसंहस्त्रं प्रतिपदोक्तानां शब्दानां शब्दपाराणं प्रोवाच नान्तं जगाम। बृहस्पतिश्च प्रवक्ता इन्द्रश्चाध्येता, दिव्यं वर्षसहस्त्रमध्ययनाकालो न चान्तं जगाम किं पुनरद्यत्वे''[4] अथापि छात्रों के बोध को सुबोध एवं दृढ़ बनाने के लिए यह विधि अत्यन्त उपकारी है।

(2) अभिक्रमिताध्यापन -

अभिक्रमिताध्यापन छात्रों के अवगम गति पर आधारित अध्यापन है। इसमें शिक्षक द्वारा विषय विशेष के अध्यापन के लिए एक सङ्गणकीय व्यवस्था बनाई जाती है जिसमें अध्यापनीय विषय का आद्योपान्त विवेचन रहता है। यह कोई प्रोग्राम, पी.पी.टी. या एप्लीकेशन हो सकता है। इसमें छात्र अपनी गति से सीखता है एवं अध्यापन कर्ता सर्वसामान्य एक आदर्श सामग्री प्रदान करता है। आजकल यह अत्यन्त मान्य अध्यापनविधि है। संस्कृत व्याकरण को पढ़ाने एवं सर्वसाधारण

बनाने के लिए यह विधि अत्यन्त प्रभावी एवं कालोपयोगी है। किन्तु इसमें अभिक्रमित निर्माता को सभी स्तरों के अनुरूप विषय सामग्री तैयार करनी चाहिए तभी उत्कृष्ट ज्ञान सभी का परिलाभ कर सकेगा। पाठ को रिकॉर्ड करके यू-ट्यूब अथवा फेसबुक पर प्रचार करना भी इसके अन्तर्भूत हो सकता है।

(3) ऐप द्वारा विषय ज्ञान -

यद्यपि अभिक्रमिताध्यपन में भी ऐप्लीकेशन निर्माण सम्भव है तथापि ऐप का क्षेत्र विशाल हो सकता है। ऐप निर्माण द्वारा व्याकरण के क्षेत्र में केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय के जम्मूस्थ रणवीर परिसर के आचार्य प्रो. मदनमोहन झा जी ने अत्यन्त प्रेरणापूर्ण एवं अनुकरणीय कार्य किया है। आचार्य झा जी ने संस्कृत के कोषग्रन्थ से लेकर अष्टाध्यायी तक अनेक ऐप्स का निर्माण किया है।

(4) संवाद द्वारा व्याकरण शिक्षण-

यह विधि भी कालोचित एवं व्याकरण की क्लिष्टतानुभूति को न्यून करती है। किसी सूत्र के अध्यापन के लिए प्राथमिक स्तर से प्रौढ़ स्तर तक इसका प्रयोग आचार्यों ने किया भी है। उदाहरणार्थ महाभाष्य में विषय ज्ञापन के लिए इसी शैली को अपनाया है। यथा सर्वादीनि सर्वनामानि (भाष्य)। काल की अपेक्षा को अवधान में रखते हुए आवश्यकता है शास्त्रानुरूप सरल एवं सजीव संवादरचना की यद्यपि व्याकरण के आचार्यों ने इस शैली का प्रचूर प्रयोग किया है तथापि कहीं केवल उत्तरपक्ष एवं कहीं जटिल शास्त्रशैली के कारण यह संवाद शैली व्याकरण की क्लिष्टता को बढ़ाती है। इस दिशा में वैयाकरणों का कार्य करने की अनिवार्यता है। इस दिशा में ओडीशा स्थित श्री जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय के आचार्य प्रो. दत्तात्रेयमूर्ति जी ने अपने यू-ट्यूब चैनल 'ज्ञानदीप' द्वारा शास्त्र को संवाद प्रदान करने का पदक्षेप किया भी है।

(5) विषय शिक्षण द्वारा व्याकरणशिक्षण करने का प्रयास NCERT की पुस्तकों में प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर पर यद्यपि दृग्गोचर तो है किन्तु वह छात्रों के स्तरानुगुण नहीं है अत: छात्र संस्कृत को हीन भाव से देखता है। इस विधि का समावेश हम हर स्तर पर कर सकते हैं किन्तु विषय की प्रौढ़ता का निश्चय स्तरानुगुण करना चाहिए। संस्कृत के आचारसंहिता विमानशास्त्र सुश्रुतसंहिता और अनेक संस्कृत के वैषेयिक ग्रन्थों से इस विधि के लिए व्याकरणांश के अनुरूप विषय चयन कर उनको विभिन्न स्तरों में बांटा जा सकता है।

(6) बालगीत के माध्यम से भी व्याकरण के विषयों का निरूपण किया जा सकता है। यद्यपि वेदिका यू-ट्यूब चैनल पर प्राथमिक शुरुआत दिखाई देती है। जैसे वर्णमाला शिक्षण संख्या शिक्षणादि तथापि शास्त्रीय विषयों को लेकर भी गीतरचना द्वारा एवं एनीमेशन द्वारा उसको स्पष्ट किया जा सकता है। कार्टून का प्रयोग भी हम व्याकरण शिक्षण के लिए कर सकते हैं जिससे वह बालकों रुचिकर लगे।

(7) आधुनिक गणितीय शैली में सूत्रों के परिस्थिति निर्माण एवं चित्रात्मक प्रदर्शन द्वारा व्याकरणशिक्षण को सरल एवं दृढ़तया बोधगम्य बनाया जा सकता है। सूत्र व्याकरण शास्त्र का आधार है अत: उनका दृढ़तया बोध आवश्यक है एतदर्थ यह विधि अत्यन्त उपयोगी हो सकती है। यथा इकोयणचि को 'यण् + अच्' इस प्रकार दर्शाया जा सकता है।

(8) **स्तरश: लेखनक्रम से स्पष्टीकरण द्वारा** -

इसका अभिप्राय यह है कि व्याकरण शिक्षण के लिए स्तर के अनुसार लेखन करके अध्यापन किया जाना चाहिए। आज संस्कृत क्षेत्र में लेखन के अनुपयुक्त एवं गौण होने के कारण छात्र व्याकरण अध्ययन में क्लिष्टता का अनुभव करते हैं। यदि विषय एवं स्तर के अनुरूप फलक पर लिख कर छात्रों समझाया जाए तो वह दृश्य-श्रव्य विधि का काम करती है जिससे छात्र विषय को दृढ़तया धारण कर सकते हैं।

इस प्रकार व्याकरण शिक्षण की कतिपय विधियाँ इस लेख में चर्चित हैं तथापि शिक्षक के कौशल के अनुरूप अन्य विधियाँ कल्पित की जा सकती हैं।

निष्कर्ष -

यद्यपि वैयाकरणों का मानना है कि शास्त्र का संरक्षण प्राचीन विधियों द्वारा ही सम्भव है तथापि मेरा स्वतन्त्र मत यह है कि शास्त्र संरक्षण शास्त्रज्ञाताओं की प्रचुरता ही सम्भव है और वह प्रचुरता तभी सम्भव है जब हम शास्त्र को आधुनिक विधियों से समावेश का अवसर प्रदान करें। संस्कृत व्याकरण का ज्ञान न केवल व्याकरण को विषयरूप से शास्त्री या आचार्य में पढ़ने वाले छात्रों के लिए अनिवार्य है अपितु यह भारत के हर नागरिक के लिए अनिवार्य निधि है। जिससे वो संस्कृत के संरक्षण संस्कृति के संरक्षण की ओर अग्रसर रहें। एवं प्रकारेण प्राचीन एवं आधुनिक विधियों का पर्यालोचित सम्मिश्रण व्याकरणशिक्षा को एक नई दिशा एवं गति प्रदान कर सकता है।

सन्दर्भ सूची -

1. वा.प.ब्र.का.श्लो.13
2. पा. सू. 6/1/71
3. मुग्धबोधटीका
4. म.भा. प्रथमाह्निकम्, पृ.-19-20, चारुदेव शास्त्री

ISSN 2278 - 0327

मीडिया में दिव्यांग की प्रस्तुति : मानव अधिकार के संदर्भ में

डॉ. यशार्थ मंजुल
सहायक प्रोफेसर
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

डॉ. हिमांशु शेखर झा
प्रोफेसर
डॉ. शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

सारांश (abstract) -

सिनेमा अपने आगमन से ही एक महत्वपूर्ण माध्यम की तरह स्थापित हो गया। इसके प्रभाव का एक विस्तृत इतिहास है। भारत की आज़ादी से पहले और बाद में यहाँ बन रहे सिनेमा की विषयवस्तु की समीक्षा के लिए कई समीतियाँ निर्मित हुई। इन सभी सामीतियों ने मनुष्य के मन एवं मस्तिष्क पर सिनेमा के प्रभाव को माना है। भारत में मूक सिनेमा के दौर से ही दिव्यांग पात्रों की एक रूढिबद्ध (stereotypical) छवि को स्थापित कर दिया गया। वर्तमान समय में सिनेमा और मीडिया के विकेन्द्रीकरण के कारण इस रूढिबद्ध छवि को तोड़ने का भी प्रयास हुआ। ओटीटी(OTT) प्लैटफार्म पर दिखाई जा रही बहुत सी दृश्य-श्रव्य सामग्री को इसी रूढिबद्ध छवि को तोड़ने के प्रयास के क्रम में देखे जाने की ज़रूरत है। ये दृश्य -श्रव्य सामग्री विकलांगता की अवधारणा को मानव के मूल अधिकार और सामाजिक संरचना के अनुरूप देखने का प्रयास करती है न की पूरे विमर्श को दिव्यांगजनों के शरीर पर केन्द्रित करती है।

बीज शब्द (key words) - मीडिया, सिनेमा, ओटीटी, दिव्यांगता, मानवाधिकार।

दादा साहब फालके की राजा हरिश्चंद्र से वर्तमान तक भारतीय सिनेमा ने अपनी व्यापकता और दायरे को बढ़ाया है, मूक सिनेमा से शुरू हुए इस सफर को आज डिजिटल युग में भी प्रवेश किए एक दशक से ऊपर का समय हो गया है। हालांकि ये डिजिटल युग बहुआयामी है और अपने में निरंतर बदलाव ला रहा है। भारत में अंग्रेजी, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के लिए 35 से अधिक ओटीटी प्लैटफ़ार्म कार्य कर रहे हैं। 2012 में ये संख्या मात्र 2 थी, ये संख्या निरंतर बढ़ ही रही है। पिछले कुछ समय से अकादमिक चर्चाओं में इसका जिक्र और इस पर और ध्यान केन्द्रित किए जाने की आवश्यकता पर भी बल दिया जाने लगा है।

ओटीटी पर दृश्य श्रव्य उत्पाद -

नए प्रयोग एवं सिनेमा के विकेन्द्रीकरण का दौर इंटरनेट के आने से लेखन, पठन, देखने और वितरण की समग्र स्वाधीनता का उदय हुआ है। सही मायनों में ये अभिव्यक्ति की आज़ादी का ही दौर है। आज सामान्य सी साक्षारता के आधार पर करोड़ों लोगों तक अपनी बात पहुंचाई जा सकती है। ऐसे में बौद्धिक संपत्ति का अवमूल्यन हुआ है इसको भी झुठलाया नहीं जा सकता है। डिजिटल मीडिया निरंतर अपने भीतर से ही नए संसाधनों को खोज रहा है जो इसके लिए ईधन की तरह काम कर रहे हैं।

भारत में इंटरनेट प्रयोक्ताओं की बढ़ती संख्या, बढ़ती डिजिटल साक्षारता, सस्ते होते डाटा प्लान और स्मार्टफोन की बढ़ती उपलब्धता डिजिटल मीडिया की निरंतर वृद्धि का ही प्रमाण है। ये वृद्धि मात्र डिजिटल चैनल और वैबसाइट में ही नहीं बल्कि उपभोगताओं के इस्तेमाल करने के समय में भी है। नेशनल असोशिएशन ऑफ सॉफ्टवेयर एंड सर्विस कंपनी की नवम्बर 2020 की एक रिपोर्ट ने ये माना है कि कोरोना के कारण हुए लॉकडाउन में ओटीटी पर ग्राहक द्वारा बिताया गया औसत समय 20 मिनट से बढ़कर एक घंटा हो गया है। भारत में 49 प्रतिशत युवा ऑनलाइन दृश्य-श्रव्य सामाग्री देखने के लिए 2 से 3 घंटे व्यतीत करने लगा है। दृश्य-श्रव्य कंटेंट में बढ़ती सामाग्री कि मांग को ध्यान में रखते हुए और उसे पूरा करने के लिए ओटीटी दिग्गज 3000 करोड़ रुपये का इनवेस्टमेंट करने जा रहा है। दृश्य-श्रव्य माध्यम के उपभोग का स्वरूप भी तेज़ी से बदल रहा है। प्राइसवॉटर हाउस कूपर की 2018 की एक रिपोर्ट के अनुसार इंटरनेट पर विश्व में 40 प्रतिशत नए उपभोगता बच्चे हैं। इनको भी ध्यान में रखकर ये कंटेंट बनाया जा रहा है। ये मात्र मनोरंजन के स्तर पर ही नहीं बल्कि ज्ञान के क्षेत्र में भी इजाफा करने के लिए भी ज़रूरी है। ब्रॉडकास्ट आडियन्स रिसर्च काउंसिल की 2019 की रिपोर्ट के अनुसार बच्चों के लिए दृश्य श्रव्य सामग्री में 2016 से 2018 के बीच में तेज़ी से उछाल आया है। अंतरराष्ट्रीय ब्राडकास्टिंग कंपनी जैसे डिस्कवरी किड्स, पोगो, कार्टून नेटवर्क और भारतीय कंपनी जैसे वूट किड्स, हंगामा किड्स एवं ज़ी 5 किड्स बच्चों के लिए निरंतर इस स्पेस में बेहतर सामाग्री उपलब्ध कर रहे हैं।

दृश्य श्रव्य सामग्री का इतना उपभोग इससे पहले कभी नहीं हुआ। दृश्य श्रव्य सामग्री का ये उपभोग मीडियम की आसान पहुँच और उपलब्धता के कारण है। आज एक फिल्म देखने के लिए किसी को थिएटर में जाकर उस फिल्म को देखने की ज़रूरत नहीं। ये घर के टेलेविज़न सेट और मोबाइल पर ही आसानी से उपलब्ध है। वितरण

प्रणाली के इस मुक्त स्वभाव ने दृश्य-श्रव्य सामाग्री के स्वरूप में बड़ा बदलाव किया है। हाशिये पर रहने वाले समाज के विमर्श को इन ओटीटी प्लेटफ़ोर्स के माध्यम से केंद्र में लाया गया है।

इस बात में कोई दो राय नहीं है कि ओटीटी के आने से दृश्य-श्रव्य उत्पाद बनाने के उद्योग मे भी विकेन्द्रीकरण हुआ है। इस विकेन्द्रीकरण ने स्टूडिओ एवं स्टार सिस्टम के एकाधिकार को भी चुनौती दी है। कोरोना काल में फिल्म थिएटर के बंद होने से स्टूडिओ एवं स्टार सिस्टम भी अब ओटीटी पर ही आश्रित हैं। वर्तमान में इस विषय पर चल रही चर्चा परिचर्चा से एक बात जो सामने आ रही है वो ये कि कोरोना काल समाप्त होने के बाद भी ओटीटी प्लाटफ़ोर्स व्यापक स्तर पर दृश्य श्रव्य उत्पादों को प्रभावित करते रहेंगे। भारत के मीडिया एवं एंटर्टेमेंट को लेकर 2020 में केपीएमजी द्वारा जारी रिपोर्ट (A year of script :Time for resilience) में इस तथ्य को प्रमुखता से स्पष्ट किया है कि भविष्य में भी सिनेमा के बजट उत्पादन प्रक्रिया के मॉडेल एवं तकनीक के उपयोग में ओटीटी प्लैटफ़ार्म के कारण बदलाव देखने को मिलेंगे। ये सभी संकेत भविष्य में सिनेमा के स्वतंत्र हो रहे और स्टुडियो से मुक्त हो रहे मॉडेल की ओर इशारा कर रहे हैं।

सिनेमा में 'स्टीरियोटाइपिंग' को सबसे ज़्यादा बढ़ावा स्टुडियो सिस्टम के द्वारा ही दिया गया। अमरीकी मीडिया चिंतक हरबेर्ट स्चील्लर(Herbert Schiller) ने नियंत्रित मीडिया के एक समूह के लिए शब्द दिया पेक्केजेड कोनशौसनेस्स (packaged consciousness) इसका अर्थ है 'नियंत्रित मीडिया के द्वारा ऐसी सूचनाएँ और छवियों का निर्माण किया जाता है जो हमारे विश्वास,दृष्टिकोण और व्यवहार को निर्धारित करता है'। इससे भिन्न ओटीटी का दृश्य श्रव्य उत्पाद पोस्ट न्यू वेव सिनेमा का ही विस्तार है। परंतु पोस्ट न्यू वेव सिनेमा की वितरण प्रणाली से विपरीत ये कंटेंट ओटीटी के कारण समाज के बीच में बड़ी मात्रा में पहुँच रहा है।

पोस्ट न्यू वेव शब्द का प्रयोग उस सिनेमा को संदर्भित करने के लिए किया जाता है जो नए सिनेमा के अनुसरण का परिणाम है। नया सिनेमा सौंदर्य संवेदनशील के साथ ही महत्वपूर्ण सामाजिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक विषयों पर चिंता के लिए प्रतिबद्ध सिनेमा था। जबकि पोस्ट न्यू वेव शब्द का अर्थ ऐसे सिनेमा के लिए प्रयोग किया जाता है जो नए सिनेमा से अपनी प्रेरणा प्राप्त करते हुए व्यावसायिक रूप से भी स्वयं को स्थापित करता है।

ओटीटी क्या है -

ओटीटी अर्थात् ओवर -द-टॉप, एक ऐसी वितरण व्यवस्था है जो इंटरनेट के माध्यम से दृश्य-श्रव्य सामाग्री दर्शकों को प्रदर्शित करता है। इसके उपयोग के लिए स्मार्ट फोन, कम्प्यूटर या स्मार्ट टीवी में से किसी एक की आवश्यकता होती है। इस पर उपस्थित दृश्य-श्रव्य सामाग्री को देखने के लिए किसी भी प्रकार के डीटीएच या केबल कनैक्शन की आवश्यकता नहीं है। ओटीटी का विस्तार आईपीटीवी (इंटरनेट प्रोटोकॉल टेलीविशन) के कारण ही संभव हो पाया। आईपीटीवी का सीधा मतलब है कि इंटरनेट या ब्रॉडबैंड कनैक्शन लेते ही अलग से केबल नेटवर्क या डीटीएच लेने से मुक्ति। उपभोगता इंटरनेट और डीटीएच पर अलग-अलग पैसे खर्च करने के बदले एक ही कनैक्शन से दोनों सुविधाएं प्राप्त कर सकता है। इसके अंतर्गत तीन तरह कि सुविधाएं हैं- 1 इसके माध्यम से लाइव प्रसारण देखा जा सकता है ।2. जो कार्यक्रम पहले प्रसारित हो चुका है या फिर मौजूदा कार्यक्रम का पिछला हिस्सा छूट गया हो तो उसे शुरू से देख सकते हैं ।3.वो सारी वीडियो जो टीवी कार्यक्रम में नहीं हैं।

इसके माध्यम से दर्शक को व्यक्तिगत स्तर पर अधिक से अधिक चुनाव करने का मौका मिलता है। इसी चुनाव के कारण ही दृश्य श्रव्य सामाग्री सिनेमाई भाषा के स्तर पर अधिक से अधिक सुगठित होती जा रही है। सबसे पहले इसकी शुरुआत एमटीएनएल ने अक्टूबर 2006 में की। फरवरी 2008 में ट्राई (टेलीकॉम रेग्युलेटरी अथॉरिटी ऑफ इंडिया) ने भारती एयरटेल और रिलायंस को आईपीटीवी शुरू करने की अनुमति दे दी। इंटरनेट के विस्तार के साथ ही ओटीटी और आईपीटीवी दोनों में विस्तार हुआ। इंटरनेट के उपभोगताओं में निरंतर बढ़ावा हो रहा है। 2009 में भारत की जनसंख्या का मात्र 5.1 प्रतिशत ही इंटरनेट का उपयोग करता था। परंतु वर्तमान में ये संख्या 45 प्रतिशत हो गयी है-

ओटीटी सेवा के मुख्यता तीन प्रकार होते हैं -

- ट्रांसक्शनल वीडियो ऑन डिमांड (टीवीओडी)
- सब्सक्रिप्शन वीडियो ऑन डिमांड (एसवीओडी)
- एडवरटाइजिंग वीडियो ऑन डिमांड (एवीओडी)

इन तीनों में सबसे महत्वपूर्ण है सब्सक्रिप्शन वीडियो ऑन डिमांड (एसवीओडी)। इस व्यवस्था के उपयोग दर्शकों को सब्सक्रिप्शन (मासिक शुल्क) के माध्यम से मिलता है। जिसमे दर्शकों का सामना मूल कंटेंट से होता है। ये कंटेंट किसी भी अन्य माध्यम पर नहीं उपस्थित रहता। भारत में वेब सिरीज़ की प्रवृत्ति इसी प्रकार की सेवा से दर्शकों के बीच पहुंची।

ओटीटी को समझने के लिए ये समझना ज़रूरी है कि पूर्व में टीवी पर आमदनी के सबसे महत्वपूर्ण कारक थे सब्सक्रिप्शन, विज्ञापन और कंटेंट। विज्ञापन का कारक कंटेंट के कारक को काफी प्रभावित करता था परंतु ओटीटी के कारण ही अब कंटेंट (दृश्य-श्रव्य सामग्री) के विज्ञापन रहित होने की शुरुआत हो चुकी है। 90 के दशक में जब निजी टीवी चैनल का आगमन हुआ, उस समय ये सोचना भी लगभग असंभव था कि सब्स्क्रिप्शन से किसी भी तरह कि आमदनी संभव है। चैनल अपना कार्यक्रम मुफ्त दिखाते थे जिसका सीधा लाभ केबल ऑपरेटर को मिलता था। परंतु ओटीटी प्लैटफ़ार्म का मुख्य आय स्रोत ये सब्स्क्रिप्शन ही है। 21वीं सदी मीडिया, विकलांगता और मानवाधिकार

–'विकलांगता मानव अधिकार से जुड़ा मुद्दा है। हममें से जो विकलांग हैं वो समाज और हमारे साथी नागरिकों द्वारा एक ऐसे व्यवहार से तंग आ चुके हैं जो हमारे अस्तित्व पर ही प्रश्न खड़ा करता है। राजनेता और अन्य निर्णायक संस्थाएं इस बात को स्वीकारते तो हैं परंतु इस पर कोई कारवाई नहीं करते'। ये कथन है वर्ष 2000 में, विकलांगता और पुनर्वास पर संयुक्त राष्ट्र संघ के एक सम्मेलन के दौरान, विकलांगजनों के लिए कार्य कर रहे स्वीडन के राजनेता बेंग्ट लिड्क्विस्त (Bengt Lindqvist) का। उनके इस कथन से ज़ाहिर है, विकलांगता और सामाजिक कारणों से उससे उपज रही दुर्बलता मानवाधिकार का अंतर्राष्ट्रीय मुद्दा है। वर्ष 2008 में विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों को लेकर एक संधि को लागू किया गया जिसे वर्ष 2020 तक 163 सदस्यों के द्वारा स्वीकारा गया। 21वीं शताब्दी में मानवाधिकार को लेकर ये संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रथम संधि थी। इस संधि ने विकलांगता को मानवाधिकार का मुद्दा मानते हुए भेदभाव को खत्म करने एवं विकलांगों के समाज में पूर्ण और प्रभावी भागीदारी और समावेश पर बल दिया है। इसके अनुसार 'विकलांगता एक ऐसी अवधारणा है जिसमे निरंतर बदलाव देखा जा सकता है। विकलांगता के उत्पन्न होने का कारण है विकलांग व्यक्ति और उसके सामाजिक संवाद के बीच एक बाधा का आ जाना'। संयुक्त राष्ट्र संघ का मानना है कि मीडिया में छवियां और कहानियां जनमानस को गहराई से प्रभावित कर सामाजिक मानदंड स्थापित करती हैं। विकलांग व्यक्तियों को मीडिया में कवर करते समय जब उन्हें चित्रित किया जाता है, तो वे उनका एक रूढिबद्ध रूप होता है जो उचित रूप से उनका प्रतिनिधित्व नहीं करता है।

जागरूकता बढ़ाने और गलत सूचनाओं का मुकाबला करने में मीडिया एक महत्वपूर्ण साधन हो सकता है। यह सामाजिक भ्रांतियों को बदलने और विकलांग व्यक्तियों को समावेशी रूप से प्रस्तुत करने में एक महत्वपूर्ण साधन की तरह उपयोग में लाया जा सकता है। विकलांगता के मुद्दों और विकलांग व्यक्तियों की विविधता और उनकी स्थितियों के बारे में जागरूकता और समझ को बढ़ाकर, मीडिया सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं में विकलांग व्यक्तियों के प्रभावी और सफल एकीकरण में सक्रिय रूप से योगदान दे सकता है। संयुक्त राष्ट्र संघ की इस संधि के उद्देश्य को भी मीडिया आमजन तक पहुँचाने में मददगार साबित हो सकता हैं।

सिनेमा महत्वपूर्ण क्यों है

सिनेमा की महत्वता उसके प्रभाव के कारण है। ये प्रभाव सिनेमाई भाषा के कारण उत्पन्न होता है। इसकी व्याख्या करते हुए सत्यजीत रे लिखते हैं कि 'फिल्म गति है, फिल्म नाटक है, फिल्म कहानी है, फिल्म संगीत है – फिल्म में मुश्किल से एक मिनट का टुकड़ा भी इन सब बातों को एक साथ दिखा सकता है' सत्यजीत रे आगे लिखते हैं कि ' 'चलचित्र शिल्प है की नहीं इस पर आज भी बहस–मुबाहसे चलती रहती है। जो लोग इसे यह मर्यादा देने के लिए तैयार नहीं हैं, उनका कहना है कि चलचित्र की कोई निजी सत्ता नहीं है, कि यह पाँच तरह के शिल्प साहित्य से मिश्रित एक पँचमेल बेढब वस्तु है। दरअसल इस शिल्प शब्द से ही गड़बड़ी पैदा होती है। शिल्प की बजाय यदि इसे भाषा कहा जाये तो चलचित्र का स्वरूप और भी ज़्यादा स्पष्ट हो जाये और तर्क कि कोई गुंजाइश न रहे'। सिनेमा का ये प्रभाव मिस–एन – सीन के विभिन्न तत्वों और सामंजस्य के कारण ही उत्पन्न होता है। मिस –एन सीन थिएटर का शब्द है जिसका अर्थ है 'स्टेज पर प्रस्तुत करना' इसके मूलत: छ: तत्व होते हैं–

सेटिंग, लाइटिंग, एक्टिंग, प्राप, कॉस्ट्यूम एवं मेकअप, इन्हीं तत्वों को स्क्रीन पर प्रदर्शित करते समय इनमे तीन तत्व और जुड़ जाते हैं, वो हैं केमरा एंगल, संपादन (एडिटिंग) एवं साउंड (ध्वनि) अत: इन 9 तत्वों के सामंजस्य से ही सिनेमा का प्रभाव अन्य कला माध्यमों से ज़्यादा होता है। एक उपन्यास या कहानी पर बनी फिल्म का प्रभाव कई बार मिस–एन –सीन के इन्हीं तत्वों के कारण मूल कथा से अधिक हो जाता है। फिल्म पाठ के अध्येताओं ने फिल्म को आधुनिक कला के इतिहास में संदर्भित करने के अलावा सिनेमा में राष्ट्र, नस्ल, वर्ग, विकलांगता, समलैंगिकता इत्यादि के सरोकारों के साथ जोड़ने का प्रयास किया है रवि वासुदेवन ने अपने आलेख न्यू कल्चरल हिसटरि एंड एक्सपिरियन्स ऑफ मोडेरनिटी(new cultural history and experience of modernity) में फिल्म अध्ययन कि महत्वता को स्पष्ट करते हुए बताया है कि–'फिल्म अध्ययन का उद्देश्य आधुनिकता की हु तफतीश है क्योंकि सिनेमा मूलत: आधुनिकता का केन्द्रीय उपकरण है'। वो आगे लिखते हैं कि इसकी दो स्तरों पर पहचान की जा सकती है प्रथम एक यंत्र के रूप में जो आकृतियों की प्रतिलिपियाँ तैयार कर निरूपण की परम्पराओं का परावर्तन करता है, दूसरा, उस उपकरण के रूप में जो सामाजिक और संस्थागत तौर पर आधुनिकता के परिचालन के लिए उत्तरदायी है। विकलांगता का आकलन भी इस उपकरण के माध्यम से किए जाने की ज़रूरत है।

भारतीय सिनेमा में विकलांगता

मार्टिन एफ नोर्डेन अपनी पुस्तक द सिनेमा ऑफ आइसोलेशन: अ हिस्टरी ऑफ फिज़िकिल डिसेबिलिटी इन द मूवीस (The cinema of isolation : A history of physical disability in the movies) में लिखते हैं कि 'अधिकांश फिल्मों में विकलांग पात्रों को उनके गैर विकलांग साथियों से अलग और अकेला करके प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति रही है। यह मात्र फिल्मों की कहानी में ही नहीं बल्कि विकलांग पात्र के अपने वातावरण से संवाद स्थापित करते समय भी परिलक्षित होता है। मिस–एन –सीन के सभी तत्वों का इस्तेमाल विकलांग पात्र के भौतिक एवं प्रतीकात्मक अलगाव को लक्षित करने के लिए किया जाता है। जिससे वह समाज से अलग दिखाई पड़े। ऐसे में दर्शकों का नज़रिया और महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि फ़िल्मकार विकलांग

आधारित फिल्मों में मिस-एन-सीन के तत्वों का इस्तेमाल गैर विकलांग के दृष्टिकोण से करते हैं। इसके कारण विकलांग पात्रों में अकेलेपन और अन्यता के भाव को बढ़ाया जाता है एवं उन्हें दया, भय, तिरस्कार इत्यादि से लबरेज वस्तुओं की तरह प्रदर्शित किया जाता है। फिल्मों के भीतर की ये स्थिति विकलांग दर्शकों के भीतर भी अलगाव एवं आत्म-घृणा को भर देती है'। वो आगे लिखते हैं कि 'फ़िल्मकारों है'।

भारतीय सिनेमा में विकलांग आधारित फिल्मों के भीतर इस प्रकार की प्रवृत्ति लोकप्रिय, स्टुडियो द्वारा नियंत्रित, ज़्यादा पूंजी लगा करके बनाई गई फिल्मों में देखने को मिलती है। इसके विपरीत न्यू वेव एवं पोस्ट न्यू वेव सिनेमा विकलांग आधारित फिल्मों में अपने दृष्टिकोण में ज़्यादा समावेशी है। मुख्यधारा के लोकप्रिय सिनेमा में विकलांग पात्र के चित्रण को निम्नलिखित प्रारूपों में बाटा जा सकता है ।

1. दयनीय - इस प्रकार के स्टीरियोटाइप के भीतर दिव्यांग पात्र की दुर्बलता पर ध्यान केंद्रित किया जाता है और उनका उपयोग गैर दिव्यांग चरित्र के बारे में अधिक जानकारी देने के लिए किया जाता है, जैसे कि वे(गैर दिव्यांग) कितने संवेदनशील हैं या किसी जरूरतमंद (दिव्यांग) के प्रति अपने व्यवहार में कितने अच्छे हैं।

2. हिंसा की एक वस्तु के रूप में - इस प्रकार के स्टीरियोटाइप का संदर्भ इतिहास में स्थित है-उदाहरण के लिए-नाजी का इच्छा मृत्यु कार्यक्रम। इस तरह के स्टीरियोटाइप दया, निर्भरता और यूजीनिक्स की धारणा को पुष्ट करते हैं। और यह स्थापित करने की कोशिश करते हैं कि दुर्बलता का प्राकृतिक समाधान हिंसक मृत्यु है।

3. भयावह और दुष्ट - इसके अंतर्गत दिव्यांग पात्रों का इस्तेमाल कथा में नकरात्मक किरदारों की तरह किया जाता है।

4. नकारात्मक वातावरण को प्रदर्शित करने में - दिव्यांग पात्रों के चित्रण के माध्यम से सिनेमा में दु:ख, खतरे और अभाव के वातावरण को बढ़ाया जाता है।

5. प्रेरक नायक- इस प्रकार के स्टीरियोटाइप के माध्यम से दिव्यांग और गैर दिव्यांग पात्रों के बीच की असमानता को और बढ़ाया जाता है। इसके अनुसार गैर दिव्यांग पात्रों के द्वारा किया गया साधारण कार्य जब दिव्यांग पात्र के द्वारा किया जाता है तो वो असाधारण हो जाता है। यह स्टीरियोटाइप दिव्यांग और गैर दिव्यांग पात्रों के बीच की खाई को और चौड़ा करता है। हिंदी सिनेमा में इस प्रकार के प्रेरक नायकों के कई उदाहरण हैं।

6. उपहास की वस्तु के रूप में - हास्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए दिव्यांग पात्रों के चित्रण से विकलांगता का उपहास किया जाता है। हिंदी सिनेमा ऐसी कई फिल्मों से भरा पड़ा है जहां सिनेमा में विकलांगता का मजाक उड़ाया जाता है। यह जानना भी महत्वपूर्ण है कि टेलीविजन स्क्रीन में 'रिकॉल वैल्यू' के रूप में विकलांगता का उपयोग और उपहास काफी सामान्य है। रमेश सिप्पी द्वारा निर्देशित लोकप्रिय फिल्म 'शोले' में ठाकुर (जिसके दोनों हाथ नहीं हैं) की छवि का उपयोग इसका सामान्य सा उदाहरण है। देश के सबसे बड़े सेल्युलर नेटवर्क 'एयरटेल' का एक विज्ञापन ठाकुर द्वारा 'टेक्स्ट मैसेज टाइप करने में असमर्थता का मजाक उड़ाता है'। मॉन्स्टर डॉट कॉम, नौकरी खोजने के अंतरराष्ट्रीय पोर्टल के विज्ञापन में, ठाकुर की छवि को क्रिकेट अंपायर के रूप में दिखाया जाता है, जो संकेत देने के लिए अपनी बाहें नहीं उठा सकता है। इसके पश्चात् स्क्रीन पर एक टैगलाइन उभर कर आती है कॉट इन द रोंग जॉब अर्थात् 'गलत काम में फस गए'।

7. स्वयं के सबसे खराब और एकमात्र दुश्मन - इस स्टीरियोटाइप को दयनीय स्थिति के विस्तार के रूप में देखा जा सकता है। प्रेरक नायकों की तरह, इन पात्रों से आशा की जाती है कि वे अपनी विकलांगता और उससे उपजी दुर्बलता को स्वयं दूर कर सकते हैं यदि वे खुद पर दया करना बंद कर दें। लेकिन वे चुनौती को स्वीकार नहीं करते और दिव्यांग एवं दुर्बल बने रहते हैं। जो इस चुनौती को स्वीकार कर लेता है वो अपनी विकलांगता से निकल जाता है। ये पात्र निरंतर स्वयं के शरीर के साथ संघर्षरत रहते हैं।

8. बोझ- इसके अंतर्गत दिव्यांग पात्र को गैर दिव्यांग पात्र के ऊपर निर्भर दिखाया जाता है। इस गैर दिव्यांग पात्र को सात्विक गुणों के साथ देखभाल करने वाले की तरह डिज़ाइन किया गया है। इस प्रकार दिव्यांग चरित्र का उपयोग अधिक महत्वपूर्ण सक्षम शारीरिक पात्रों के बारे में जानकारी प्रदान करने के लिए किया जाता है।

9. यौन रूप से असामान्य / नपुंसक - इसके अंतर्गत दिव्यांग पात्रों को नपुंसक और यौन रूप से असामान्य पात्रों की तरह चित्रित किया जाता है जिसके कारण सिनेमाई स्पेस मे उनको साथी (सहभागी) को व्यभिचारी होने का कारण प्रदान होता है। शोनाली बोस द्वारा निर्देशित 'मार्गरीटा विद अ स्ट्रॉ' (2015) ने विकलांगता की इस रूढ़िवादिता को प्रभावी ढंग से तोड़ा है।

10. समुदाय एवं सार्वजनिक स्थानों में भाग लेने में असमर्थता- इस प्रकार के स्टीरियोटाइप के अंदर सिनेमाई स्पेस में ऐसा विचार उत्पन्न किया जाता है जिसमे दिव्यांगजन अपनी दुर्बलता के कारण सार्वजनिक स्थानों एवं समुदायों मे अपनी भागीदारी नहीं दे पाते। फिल्म में भागीदारी दे रहे अन्य समुदायों में वे (दिव्यांग पात्र) नदारद दिखते हैं। उन्हें समुदायों में एवं सार्वजनिक स्थानों में चित्रित ही नहीं किया जाता है। ऐसी फिल्मों को बनाने की जरूरत है जो कैमरे के पीछे और सामने दिवयांग पात्रों की भागीदारों को सुनिश्चित करें।

सिनेमा को एक प्रभावी माध्यम होने के कारण ये उपस्थिति महत्वपूर्ण हो जाती है। रूढ़िवादी छवि को तोड़ते ओटीटी पर दिव्यांग पात्र ओटीटी प्लैटफ़ार्म के माध्यम से वितरण प्रणाली में एक प्रकार की स्वतन्त्रता देखने को मिली है। इस कारण से इन प्लैटफार्म पर स्टूडियो सिस्टम पर आश्रित एवं गैर आश्रित दोनों तरह की फिल्मों में प्रयोग देखने को मिलते है। स्टुडियो सिस्टम के भीतर भी कम बजट के मद्देनजर बेहतर प्रयोग हो रहे हैं। ओटीटी एक ऐसी व्यवस्था की तरह

कार्य कर रहा है जहां दर्शकों के सामने विकल्पों की संख्या को बढ़ा दिया गया है। इन विकल्पों के साथ ही दर्शकों के अनुभव और फिल्मकारों की सिनेमाई सामग्री दोनों का विकास हुआ है। कम और मध्यम बजट की फिल्मों को थिएटर में स्थान बनाने के लिए संघर्ष करना पड़ता था, परंतु ओटीटी के बाद से बिना स्टार वाली छोटी फिल्में भी ज़्यादा से ज़्यादा दर्शकों तक पहुँच रहीं हैं। इस कारण से दृश्य-श्रव्य सामग्री में बढ़ोतरी भी हुई है। ज़्यादा सामाग्री शोध को जटिल भी बना रही है। आइडैनटिटि (identity) के मुद्दे पर वर्तमान सामाजिक विज्ञान अनुसंधान के भीतर एक नई प्रवृत्ति जो मानव विकास के चरणों के अनुक्रम के साथ सामाजिक संस्था के सांस्कृतिक पैटर्न पर केन्द्रित है का जन्म हुआ है। इसके माध्यम से व्यक्तियों के व्यवहार और गतिविधियों को निश्चित सेट में रखा जाता है। इस संदर्भ में शोधकर्ता अपनी आधार सामाग्री को जुटाने के लिए आत्मकथा, पौराणिक कथा, ऐतिहासिक प्रतिबिंब, लोककथा एवं रचनात्मक कार्यों को एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ की तरह देखते हैं जो विशिष्ट प्रकार के सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन को समझने के लिए ज़रूरी हैं।

हम यहाँ ओटीटी किस प्रकार से दिव्यांग जन की रूढ़िवादी छवि को तोड़ रहा है इसे समझने के लिए ओटीटी पर स्ट्रीम हो रही तीन फिल्मों पर बात करेंगे। ये सभी फिल्में अपने दिव्यांग पात्रों को सोशल मोडेल ऑफ डिसबिलिटी(Social Model Of Disability) के आधार पर प्रस्तुत कर रही हैं न कि मेडिकल मोडेल ऑफ डिसबिलिटी (Medical Model Of Disability) के आधार पर। सोशल मोडेल ऑफ डिसबिलिटी के अनुसार विकलांगता शारीरिक रूप से अक्षमता के कारण नहीं बल्कि सामाजिक कारणों से उत्पन्न होती है। ये मोडेल दिव्यांग जनों के लिए जीवन जीने के विकल्पों को प्रतिबंधित करने वाली बाधाओं को चिन्हित कर उन्हें दूर करने के तरीकों को देखता है। जब ये बाधाएँ समाप्त कर दी जाती हैं तब दिव्यांग जन समाज में स्वतंत्रता और समानता के साथ स्वयं के जीवन पर नियंत्रण लिए हुए उसे व्यतीत कर सकते हैं। इसके विपरीत मेडिकल मोडेल विकलांगता के कारणों की खोज शरीर में ही करता है।

ये तीन फिल्में हैं -

1. ग्लित्च (glitch) - रिलीज़-दिसम्बर 2020
ओटीटी प्लैटफ़ार्म- अमज़ोन प्राइम (amazon prime)
निर्देशक - राज एवं डीके
लेखक- रेशु नाथ

ग्लित्च, अनपास्ड (un-paused) नामक फिल्म की 4 कहानियों में से प्रथम है। ये लघु फिल्म वर्ष 2030 में स्थापित है। कोविड-19 अब कोविड-30 के रूप में विकसित (mutate) हो चुका है। ये वर्क फ्रम होम से काफी आगे की स्थिति है। फिल्म का नायक 'आहान' एक हाइपोकॉन्ड्रिअक है, उसे कोविड वाइरस से एक किस्म का फोबिया है। आहान वर्चुअल माध्यम से फिल्म की नायिका 'आएशा' नामक एक चितिक्सक युवती से मिलता है। वाइरस से एक युद्ध ही आईशा का पेशा है। इसी कारण उसे वारीयर(warrior)कह कर संबोधित किया जाता है। आहान आईशा से प्रेम करने लगता है। एक हाइपोकॉन्ड्रिअक और चिकित्सक के बीच का ये कोन्फ्लिक्ट ही कथानक को आगे ले जाता है। आईशा सुन नहीं सकती अत: आहान विडियो कॉल पर आईशा से संवाद स्थापित करने के लिए साइन लेंगवेज़ (sign language) सीखता है। फिल्म कि पटकथा लेखक रेश नाथ का कहना है कि वो किसी भी प्रकार से आईशा की विकलांगता का महिमामंडन नहीं करना चाहती थी। उन्होंने आईशा को एक साधारण मनुष्य की तरह ही स्थापित करने पर जोर दिया। रेशु नाथ के अनुसार आईशा के हियरिंग इमपेयर्ड (hearing Impaired) होने के कारण ही अहान उससे संवाद स्थापित करने के लिए एक नयी भाषा सीखता है। आहान को ये प्रेरक शक्ति आईशा के लिए अपने प्रेम से प्राप्त होती है। रेशु नाथ का ये भी मानना है कि ओटीटी प्लैटफ़ार्म ने दर्शकों के भीतर नई किस्म कि रुचियों और संभावनाओं को जन्म दिया है। जिसने इन नए किस्म के पात्रों को जन्म दिया है

2. मिसमेच्ड (mismatched)- रिलीज़-नवम्बर 2020
ओटीटी प्लैटफ़ार्म-नेफलिक्स
निर्देशक - आकर्ष खुराना एवं निपुन अविनाश धर्माधिकारी
पटकथा लेखक -ग़ज़ल धालीवाल

मिसमेच्ड 'डिंपल' एवं 'ऋषि' के प्रेम सम्बन्धों पर आधारित एक कहानी है। फिल्म में 'अनमोल मल्होत्रा' नामक पात्र विकलांगता कि रूढिबद्ध छवि को तोड़ता है। अनमोल एक सड़क दुर्घटना के दौरान अपने चलने की शक्ति खो देता है और व्हील चेयर पर अपना जीवन व्यतीत करने के लिए विवश हो जाता है। अनमोल मल्होत्रा के चरित्र के माध्यम से दिव्यांगजनों को किस प्रकार की दिक्कतों का सामना करना पड़ता है इस पर जोर दिया गया है।इस सिरीज़ के एपिसोड 'पाँच' में एक प्रभावशाली दृश्य है जो इस प्रकार है -

अनमोल कम्प्युटर कोडिंग पर पाठ्यक्रम चलाने वाली एक संस्था में पढ़ता है। संस्था की कक्षा में देर से प्रवेश करने की स्थिति में उसका शिक्षक उसे अंदर आने से रोकता है। अनमोल शिक्षक से कहता है कि उसे कक्षा के अंदर आने दिया जाये क्योंकि वह शौचालय गया था। शिक्षक को अनमोल की यह बात झूठी लगती है। इस पर अनमोल सटीक शब्दवाली का इस्तेमाल करते हुए शिक्षक को बताता है कि इस संस्थान में दिव्यांगजनों के लिए मात्र एक शौचालय है, जो की संस्थान के दूसरे छोर पर स्थित है। उसमे साफ सफाई न रहने की स्थिति में उसे भी अक्सर बंद ही रखा जाता है। उसे बार-बार शौचालय न जाना पड़े अत: वो अब पानी भी कम पीने लगा है। अनमोल अपने डायलाग के अंत में कहता है कि 'मुझे देर से आने के लिए तो खेद है परंतु मुझे दिव्यांग होने के लिए किसी भी प्रकार का खेद नहीं है'।

फिल्म के पात्र अनमोल मल्होत्रा का ये कथन एक ऐसी स्थिति

को उजागर करता है जहां दिव्यांगजनो की सामूहिक भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए उनकी सार्वजनिक स्थानों पर अभिगम्यता को बढ़ाना होगा। अनमोल मल्होत्रा फिल्म में अपनी तरफ किसी भी तरह की दयनीय दृष्टि को न सिर्फ रोकता है बल्कि उसका खंडन भी करता है

3. अनकही- रिलीज़- अप्रैल 2021

ओटीटी प्लैटफ़ार्म-नेफ़्लिक्स

निर्देशक -कायोज ईरानी

पटकथा लेखक -उजमा खान

अनकही नेफलिक्स पर प्रदर्शित हो रही अजीब दास्तान नामक की चार कहानियों में से अंतिम है। ये सभी फिल्में समाज के हाशिये पर रहने वाले समूह पर केन्द्रित हैं। अनकही विकलांगता और उससे जुड़ी चर्चाओं को सामान्य रूप से प्रस्तुत किए जाने के विमर्श पर केन्द्रित है। अनकही का शाब्दिक अर्थ है न बोले जाने वाला, जो की इस फिल्म ने अपनी सिनेमाई स्पेस में संदर्भित भी किया है। इसी का उदाहरण है 'नताशा' और सुन नहीं सकने वाले(hearing impaired) फोटोग्राफर 'कबीर' के बीच का प्रेम प्रसंग। इस प्रेम प्रसंग में शब्द नहीं हैं परंतु ये मौन भी नहीं बल्कि इसमे संवाद सांकेतिक भाषा (साइन language) के माध्यम से स्थापित किया है। नताशा का संबंध अपने पति 'रोहन' से इस वजह से समाप्त होने की स्थिति तक पहुंच रहा है क्योंकि रोहन अपनी सुन न सकने वाली बेटी से संवाद स्थापित करेने के लिए सांकेतिक भाषा (sign language) नहीं सीख रहा है। इसी कारण नताशा का कबीर से एक संबंध विकसित होता है। फिल्म में कबीर को एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में दिखाया है जो अपनी विकलांगता के कारण किसी पे निर्भर नहीं है। इस फिल्म की महत्वता इस बात में भी है कि दिव्यांग जनों से संवाद स्थापित करने की जिम्मेदारी गैर दिवयांग पात्रों के ऊपर है।

ये सभी फिल्में निम्नलिखित कारणों से दिव्यांगजनों की रूढिबद्ध छवि (स्टीरियोटाइप) को तोड़ती हैं।

1. इन सभी फिल्मों में दिव्यांगजन आत्म निर्भर हैं वो किसी भी प्रकार से गैर दिव्यांग पात्र पर निर्भर नहीं हैं । दो फिल्मों (ग्लित्व एवं अनकही) में दिव्यांगजन नौकरी पेशा हैं। वो सामाजिक बोझ नहीं हैं।
2. दिव्यांगजन को सार्वजनिक स्थानों पर चित्रित किया गया है एवं उन्हे गैर दिव्यांग समूह में भागीदारी करते स्थापित किया है।
3. सभी दिव्यांग पात्र स्वयं के प्रति दयनीय नहीं है और दूसरों से दया कि स्थिति में उन्हें ऐसा करने से रोकते हैं। इसे मिसमेच्ड में ज़्यादा रेखांकित किया गया है।
4. इन दिव्यांग पात्रों से माध्यम से फिल्म के निर्देशक दिव्यांगजनों के लिए बाधा मुक्त बुनियादी सुविधाओं की वकालत करते हैं। इस बात को मिसमेच्ड (Mismatched) में ज़्यादा रेखांकित करके दिखाया है।
5. दिव्यांगजनों को प्रेरक नायक, उपहास और हिंसा कि वस्तु के रूप में नहीं स्थापित किया गया है। ये इस कारण संभव हुआ क्योंकि उनकी विकलांगता को रेखांकित करके नहीं प्रस्तुत किया।
6. दो फिल्में (ग्लित्व एवं अनकही) में दिव्यांगजनों को अपने शरीर के साथ किसी भी तरह से संघर्षरत नहीं दिखाया है।
7. दो फिल्मों (ग्लित्व एवं अनकही) में दिव्यांगजनों और गैर दिव्यांगजनों में प्रेम संबंध को स्थापित किया गया है।
8. न सुन पाने वाले पात्रों (hearing Impaired) से संवाद स्थापित करने की जिम्मेदारी का दायित्व गैर दिव्यांग पात्रों के पास है। वो उनसे (न सुन पाने वाले पात्रों से) संवाद स्थापित करने के लिए साइन लेगवेज़ (Sign Language) सीखते हैं। नई भाषा सीखने की प्रेरक शक्ति उन्हे दिव्यांग पात्र के प्रति प्रेम से प्राप्त होती है, न की दया से।
9. दो फिल्मों (ग्लित्व एवं अनकही) में दिव्यांग पात्रों के छोटे छोटे सुखों को रेखांकित एवं चित्रित किया है न की विकलांगता से उभरी दुर्बलता को।
10. मिस-एन-सीन के विभिन्न तत्वों के माध्यम से दिव्यांग पात्रों को सिनेमाई स्पेस में समावेशी (inclusive) रूप से प्रस्तुत किया है न की अलग (isolated) रूप से।
11. इन सभी फिल्मों कि कथा में विकलांगता एक अंतर्निहित विषय नहीं हैं।

लेख निष्कर्ष -

जागरूकता बढ़ाने और गलत सूचनाओं को रोकने में मीडिया एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इसके लिए ज़रूरी है कि दिव्यांगता को केंद्र में रख कर बनाई जा रही दृश्य-श्रव्य सामग्री का निर्माण कर रहे निर्देशक, लेखक एवं तकनीशियन विकलांगता और उससे जुड़ी अवधारणा के प्रति अपनी समझ को विकसित करें। भारत में लंबे समय तक हिन्दी सिनेमा के द्वारा दिव्यांग पात्रों को फ़िज़िकल मॉडल ऑफ डिसेबिलिटी के अनुरूप देखा और प्रस्तुत किया गया है। इसके विपरीत दिव्यांगजनों को सोशल मॉडल ऑफ डिसेबिलिटी के अनुरूप देखे जाने और प्रस्तुत किए जाने कि आवश्यकता है। इसके लिए फिल्म निर्माण के प्रथम चरण, पटकथा लेखन के समय ही कुछ विशेष बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित करना होगा जिसके माध्यम से दिव्यांगजनों को फिल्म में एक उत्पाद कि तरह नहीं बल्कि एक आम इंसान की तरह दिखाया जा सकता है। छायांकन और संपादन के स्तर पर निर्देशक को इस बात पर ध्यान देना होगा की कहीं जाने अंजाने दिव्यांग शरीर को घूरा (gaze) तो नहीं जा रहा। पिछले कुछ वर्षों में दिव्यांगजनों पर केन्द्रित फिल्म फेस्टिवल का आयोजन भी किया जा रहा है, ऐसे आयोजनों से दर्शकों के भीतर दृश्य - श्रव्य सामग्री के माध्यम दिव्यांगता को समावेशी रूप से देखे जाने की समझ का विकास होता है। ऐसे आयोजनो को भी बढ़ावा देने की ज़रूरत है। साथ ही

मीडिया एवं सिनेमा शिक्षा में दिव्यांग छात्रों की भागीदारी बढ़ाने से भविष्य में फिल्म एवं मीडिया उद्योग को समावेशी रूप प्रदान किया जा सकता है।

संदर्भ -

- ललित जोशी ,बॉलीवुड पाठ,नई दिल्ली,वाणी प्रकाशन,2012
- Ravi Vasudevan, New Cultural History and Experience of Modernity, Economic and Political Weekly of India, Nov 1 1995
- Chidanand Das Gupta, The Painted Face:Studies in Indian Popular Cinema, New Delhi,Roli Books,1991
- Gaston Roberge, Satyajit Ray, New Delhi,Manohar Publication, 2007
- Martin F.Norden, The Cinema of Isolation:A History Of Physical Disability In The Movies, Rutgers University Press, 1994
- विनीत कुमार, मंडी में मीडिया, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
- Herbert Schiller, Cyrano Jounal, The Packaged Consciousness, 1982
- Jayojeet Pal,Different Bodies : Essays on Disability in Film and Television, Mc Farland & Co Inc, USA, 2013
- VK Cherian, India's Film Society Movement:The Journey and Its Impact,Sage Publication, New Delhi, 2017
- Prachand Praveer,Cinema Through Rasa, New Delhi, DK Printworld, 2021
- अनुपम ओझा,भारतीय सिने सिद्धांत,नई दिल्ली,राधाकृष्ण पब्लिकेशन,2009
- https://indiane&press.com/article/entertainment/web-series/raj-and-dk-on-glitch we-didnt-want-to-make-anything-sad-or-dreary-108101/
- Gerard Quinn and Theresia Degener,Human Rights and Disability: The current use and future potential of United Nations human rights instruments in the context of disability, United Nations, Geneva 2002.
- https://home.kpmg/in/en/home/insights/2020/09/media-and-entertainment-report kpmg-india-2020–year-off-script.html
- https://indianexpress.com/article/entertainment/opinion-entertainment/why–2020 was-a-game-changer-for-streaming-aces-like-netfli&-and-amazon-prime-video 7105424/
- https://www.statista.com/statistics/792074/india-internet-penetration-rate/
- https://www.un.org/development/desa/disabilities/resources/disability-and-the media.html

annexure v

Questions to Reshu Nath, Writer of Glitch

1. What was your point of reference while you were developing the character of Alizah?
2. Why you choose your warrior to be Non-verbal since you never emphasized on disability of the character.
3. The way the consumption of differently abled characters takes place in Hindi cinema, haven't you thought that the audience will not be able to relate to the differently abled character that you have presented in your film?
4. Are you trying to suggest through your film that in future with more technology in place,society will become disable friendly?
5. How do you view OTT platforms as a medium of telling new stories,creating new characters and breaking stereotypes?
6. What is your opinion about the representation of disability in studio based Hindi cinema?How the stereotyping of disability can change?
7. Did the actors who performed in the film learned sign language?
8. Since you are the writer of the film,what were your thoughts after the final cut of the film?Was your imagination of the characters were put suitably on screen?

ISSN 2278 - 0327

भारतीय संस्कृति में योग परम्परा का इतिहास-एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

विनय कुमार भारती
शोधार्थी, योग विभाग
महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, पौड़ी गढ़वाल

डॉ. लीना झा
प्रोफेसर, योग विभाग
महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, पौड़ी गढ़वाल

सारांशिका – भारतीय संस्कृति का अध्ययन अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' की संकल्पना से पोषित भारतीय संस्कृति के आधार वेद, उपनिषद्, दर्शन और भगवद्गीता आदि ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों में भारतीय संस्कृति के मूलभूत सिद्धान्तों का सारगर्भित वर्णन किया गया है। इसके साथ-साथ मानव जीवन को सार्थक एवं उद्देश्यपूर्ण बनाने की सम्पूर्ण सत्य विद्याओं का वर्णन इन शास्त्रों में किया गया है। भारतीय संस्कृति में योग का अपना अत्यन्त विशिष्ट स्थान है इसीलिए इन सभी ग्रन्थों में योग विद्या का वर्णन बहुत सारगर्भित एवं विस्तृत रूप में किया गया है। वेद-उपनिषद् के वैदिक काल के उपरान्त मध्य काल में भी योग परम्परा भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रमुख अंग के रूप में प्रस्फुटित होती रही और हठयोग-भक्तियोग आदि योग परम्पराओं का विकास भारतीय समाज से लेकर सम्पूर्ण विश्व में होता रहा। मध्यकाल के उपरान्त आधुनिक काल में भी भारतीय ऋषियों एवं महापुरुषों के द्वारा सम्पूर्ण विश्व में योग परम्परा का प्रचार-प्रसार किया जा रहा है। इस प्रकार योग परम्परा सृष्टि के वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक अविरल रूप से प्रवाहित हो रही है। प्रस्तुत शोध पत्र के अध्ययन से सार रूप में स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति के आधार भूत ग्रन्थों में योग परम्परा का स्पष्ट उल्लेख करते हुए इसके माध्यम से आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त करने का उपदेश किया गया है। योग परम्परा के आदि प्रवर्तक के रूप में हिरण्यगर्भ का वर्णन शास्त्रों में किया गया है और वेद-उपनिषद् ग्रन्थों में योग परम्परा का स्पष्ट वर्णन किया गया है। मध्यकाल में हठयोग के रूप में योग परम्परा का उल्लेख करते हुए इसे भारतीय संस्कृति के प्रमुख अंग के रूप में वर्णित किया गया है। मध्यकाल में नाथ सिद्ध हठयोगियों के द्वारा योग परम्परा को नया आयाम प्रदान करते हुए समाज में इसका प्रचार-प्रसार किया गया। आधुनिक काल को विज्ञान के युग की संज्ञा दी जाती है और इस काल में वैज्ञानिक प्रयोग के आधार पर प्रमाणित तथ्यों पर ही विश्वास किया जाता है। इस आधुनिक काल में भी योग परम्परा सम्पूर्ण विश्व में भारतीय संस्कृति का प्रमुख प्रकाश स्तम्भ बनी हुई है। आधुनिक काल में अनेक भारतीय तपस्वी योग सिद्ध पुरुषों के द्वारा वैज्ञानिक स्तर पर योग के प्रायोगिक अंगों का मूल्यांकन प्रस्तुत करते हुए सम्पूर्ण विश्व के समक्ष भारतीय योग परम्परा के महत्व को वर्णित किया गया है।

कूट शब्दः योग, योग विद्या, योग परम्परा, वेद, उपनिषद्, गीता, हठयोग, भारतीय संस्कृति, वैदिक काल, मध्यकाल, आधुनिक काल।

योग साधना अनादिकाल से चली आ रही ऐसी विद्या है जिसका परम उद्देश्य मुक्ति की प्राप्ति है। विभिन्न प्राचीनतम् मूर्तियों, शिलालेखों एवं ग्रन्थों आदि का अवलोकन करने से यह ज्ञात होता है कि इन यौगिक साधनाओं की परम्परा बहु प्राचीन है। सिन्धु सभ्यता के प्रसिद्ध उत्खन्न से प्राप्त मूर्ति जिसे पशुपतिनाथ की संज्ञा दी गयी है। जिसे ध्यानस्थ शिव की मूर्ति भी कहा गया है।[1] यह प्रमाण भारतवर्ष में योग साधना की प्राचीन परम्परा को सिद्ध करते हैं। योगविद्या की प्राचीनता का वर्णन वेद की ऋचाओं में प्राप्त होता है। सृष्टि के आदि ग्रन्थ के रूप में वेद का वर्णन आता है। वेद अपौरुषेय हैं अर्थात् पुरुष विशेष के द्वारा इनकी रचना नहीं की गयी है अपितु समाधि की अवस्था में ऋषियों के अन्त:करण में ईश्वरीय ज्ञान के प्रकाश से वेदों का उद्भव हुआ। इस प्रकार वेद को ईश्वरवाणी की संज्ञा से भी सुशोभित किया जाता है। ईश्वरीय प्रेरणा ऋषियों के अन्त:करण से मुख की वाणी के रूप में प्रस्फुटित हुई और इस प्रकार क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्वेद की रचना हुई।

योग भारतवर्ष की एक प्राचीनतम् साधना पद्धति एवं सर्वसम्मत, सर्वभौम सिद्धान्त है। यह भारतीय जीवन पद्धति का महत्वपूर्ण अंग है। यह कब, कहाँ और किसके द्वारा सर्वप्रथम प्रकट किया गया, यह निर्विवाद नहीं है। जब हम इस ओर दृष्टि ले जाते हैं तो सर्वप्रथम विश्व के प्राचीनतम् ग्रन्थ वेद में योग शब्द की चर्चा मिलती है। वेद भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान-विज्ञान के मूल स्रोत हैं। वेद का मुख्य प्रतिपाद्य विषय यह योग विद्या व योग विज्ञान ही है, अन्य तो उस ज्ञान परम्परा व योग की ओर प्रेरित करने के लिए ही है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि योग विद्या का प्रारम्भ वेदों से ही हुआ है।[2] वस्तुत: योगविद्या का उद्गम वैदिक ज्ञानकोश की धरोहर है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में योगविद्या का वर्णन प्राप्तव्य हैं। इस संसार के सबसे प्राचीनतम् ग्रन्थ अर्थात् ऋग्वेद में योगविद्या का वर्णन करते हुए कहा गया है-

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चित:।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्महीं देवस्य सवितु: परिष्टुति:।। (ऋग्वेद)

इसका अभिप्राय यह है कि जीव को परमेश्वर की उपासना नित्य करनी उचित है अर्थात् उपासना समय में सब मनुष्य अपने मन को

उसी में स्थिर करें और जो लोग ईश्वर के उपासक अर्थात् बड़े-बड़े बुद्धिमान् उपासना योग के ग्रहण करने वाले हैं वे सबको जानने वाला सबसे बड़ा और सब विद्याओं से युक्त जो परमेश्वर है, उसके बीच में अपने मन को ठीक-ठीक युक्त करते हैं तथा अपनी बुद्धिवृत्ति अर्थात् ज्ञान को भी सदा परमेश्वर में ही स्थिर करते हैं। जो परमेश्वर इस सब जगत को धारण और विधान करता है जो सब जीवों के ज्ञानों तथा प्रज्ञा का भी साक्षी है, वही एक परमात्मा सर्वत्र व्यापक है कि जिससे परे कोई उत्तम पदार्थ नहीं है उस देव अर्थात् सब जगत के प्रकाशक और सबकी रचना करने वाले परमेश्वर की हम लोग सब प्रकार से स्तुति करें।[3] इस प्रकार ऋग्वेद में ईश्वर को सब विद्याओं से युक्त कहा गया है और ईश्वर में मन को स्थिर करने का उपदेश किया गया है। ईश्वर की उपासना के श्रेष्ठ साधन के रूप में योग विद्या का उपदेश किया गया है।

योग सम्बन्धी विचारधारा का सर्वप्रथम उल्लेख हमें ऋग्वेद में प्राप्त होता है, परन्तु ऋग्वेद में अपने पूर्वजों, ऋषियों एवं मार्ग प्रदर्शकों के प्रति समर्पण यह स्पष्ट करते हैं कि उनमें वर्णित सभ्यता का स्वरूप बहुत ही पहले निर्धारित हो चुका था। ऋग्वेद में हमें जिस सभ्यता बोध होता है वह ऋग्वेद की रचना के पूर्व ही फल-फूल चुकी थी और अब प्रौढ़ावस्था को प्राप्त हो रही है। वस्तुत: वैदिक मंत्रों की रचना योग की उच्चतम् भूमिकाओं का ही परिणाम है। ऋषियों ने विश्व में निहित सत्य का दर्शन करके उसे ही वैदिक मंत्रों में प्रकट किया। यही कारण है कि वेदों को अपौरुषेय और ऋषियों को मंत्रदृष्टा कहा। उससे यह सिद्ध होता है कि योग का प्रारम्भ ऋग्वैदिक काल से पूर्व ही हो गया था।[4] इस प्रकार यह समझा जा सकता है कि योग विद्या का प्रारम्भ सृष्टि के सृजन के साथ ही हुआ है। यह विद्या सृष्टि में आदिकाल से चली आ रही है। ऋषियों-मुनियों और सन्त महात्माओं के द्वारा इस विद्या को अपनाकर आत्मज्ञान प्राप्त किया गया। सृष्टि के आदिग्रन्थ अर्थात् वेदों की रचना में भी योग विद्या का महत्वपूर्ण योगदान रहा। ऋषियों ने योगाभ्यास के द्वारा स्वयं का सम्बन्ध ईश्वर के स्थापित करते हुए वेदों की रचना की है। वेदों में स्थान-स्थान पर योग विद्या का उपदेश किया गया है।

योग विद्या का वर्णन उपनिषद् शास्त्रों में भी विस्तारपूर्वक किया गया है। विभिन्न उपनिषद् योग विद्या के गूढ स्वरूप की सरल रूप में व्याख्या करते हैं। आध्यात्मिक ग्रन्थों में उपनिषदों का स्थान बहुत ही अग्रणी है। वैदिक शिक्षा का विस्तृत विवेचन उपनिषदों में किया गया है। इनमें उच्च कोटि का ज्ञान है। इन्हें वेदान्त के नाम से भी जाना जाता है। योग विद्या का उपनिषदों में बहुत अधिक वर्णन किया गया है। उपनिषदों की संख्या 108 से अधिक मानी गई है। इनमें कहीं-कहीं योग का वर्णन विशेष रूप से किया गया है। कुछ ऐसे उपनिषद् भी हैं जिनमें केवल योग विषय पर ही चर्चा है।[5] उपनिषद् साहित्य में योगांगों, प्राण, चक्र, नाड़ी, कुण्डलीनी शक्ति आदि योग के महत्वपूर्ण विषयों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में योगाभ्यास हेतु उचित स्थान का उपदेश करते हुए कहा गया है - *न तस्य रोगो न जरा न मृत्यु प्राप्तस्य योगाग्निमय शरीरम्।* अर्थात् योग की अग्नि में तपा हुआ शरीर न रोगी होता है, न जरावस्था (बुढ़ापा) को प्राप्त होता है और मृत्यु के भय से भी मुक्त हो जाता है। कठोपनिषद् में आचार्य यम और बालक नचिकेता के संवाद में योग विद्या के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। योग की अवस्था का वर्णन करते हुए आचार्य यम उपदेश करते हैं-

यद् पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टेति तमाहु: परमां गतिम्।। (कठोपनिषद् 2/3/10)

जब मन के साथ ज्ञान से पाँचों (ज्ञानेन्द्रियाँ) स्थिर (नियंत्रण में) हो जाती हैं, तब बुद्धि विशेष चेष्टा नहीं करती, स्थितप्रज्ञ हो जाती है। यह (जीवात्मा की) परमगति कही जाती है। उस स्थिर (जीवात्मा) में इन्द्रिय धारण (इन्द्रिय नियंत्रण) करने अर्थात् स्थितप्रज्ञ होने को ही योग कहते हैं। जीवात्मा उस समय प्रमादरहित हो जाता है, क्योंकि योग उत्पत्ति और लय का स्थान है। आत्मा के मोक्षाधाम की प्राप्ति और कर्मफल की समाप्ति का स्थान है।[6] इस प्रकार उपनिषद् शास्त्र में मन की स्थिर अवस्था को योग की संज्ञा के रूप में परिभाषित किया गया है। उपनिषद् शास्त्र के समान स्मृतियों में भी योग परम्पराओं का वर्णन किया गया है। योग के आदिवक्ता के रूप में हिरण्यगर्भ का वर्णन करते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य उपदेश करते हैं-

हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्य: पुरातन:। (याज्ञवल्क्य)

हिरण्यगर्भ ही योग के वक्ता हैं, इनसे पुरातन कोई वक्ता नहीं है।[7] हिरण्यगर्भ इस समस्त जगत की आत्मा अर्थात् सर्वशक्तिमान ईश्वर है। इसी विषय को स्पष्ट करते हुए महाकाव्य महाभारत में वर्णन किया गया है-

सांख्यस्य वक्ता कपिल: परमऋषि स उच्यते।
हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्य: पुरातन:। (महाभारत)

अर्थात् सांख्य के वक्ता कपिलाचार्य परमऋर्षि कहलाते हैं और योग के वक्ता हिरण्यगर्भ हैं, जिनसे पुराना और कोई वक्ता नहीं है।[8] हिरण्यगर्भ से क्या अभिप्राय: हो सकता है ? इस प्रश्न के उत्तर में सृष्टि के आदिग्रन्थ ऋग्वेद में हिरण्यगर्भ का वर्णन करते हुए कहा गया है-

हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रे भूतस्य जात: पतिरेक आसीत्। (ऋग्वेद)

अर्थात् हिरण्यगर्भ से ही सृष्टि एवं जगत् की उत्पत्ति हुई है। हिरण्यगर्भ ही समस्त जगत् एवं विद्याओं के उत्पत्तिकर्ता है। इसीलिए योगविद्या के उत्पत्तिकर्ता भी हिरण्यगर्भ ही हैं। हिरण्य का अर्थ स्वर्णमय प्रकाश पुंज से होता है तथा गर्भ का अर्थ उत्पत्ति स्थान से होता है। अर्थात् चेतन प्रकाश पुँज से इस सृष्टि की रचना हुई है और उसी चेतन तत्व से योग विद्या का ज्ञान उत्पन्न हुआ है। यहां पर चेतन प्रकाश पुँज से अभिप्राय: ईश्वर से ही लिया गया है। इस प्रकार ईश्वर से ही योग विद्या के ज्ञान का प्रकाश इस संसार में आया और आगे चलकर ऋषियों के माध्यम से योग परम्पराएं अस्तित्व में आयी।

जिस प्रकार मूलरूप से एक नदी आगे चलकर अनेक धाराओं में विभक्त हो जाती है और अंत में सभी धाराएं अलग-अलग रास्तों

से होकर सागर में विलीन हो जाती है। ठीक उसी प्रकार योग विद्या समय के साथ अनेक परम्पराओं के रूप में विकसित हुई। योग की इन परम्पराओं में राजयोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग और हठयोग का प्रमुख स्थान रहा। इन परम्पराओं में भिन्न-भिन्न मार्गों के द्वारा आत्मा को परमात्मा के साथ संयुक्त करने के उपदेश किया गया। सांसारिक दु:ख और क्लेशों से ग्रस्त आत्मा को परमात्मा के साथ संयुक्त कर आनन्द और जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति प्राप्त करने के मार्ग के रूप में योग परम्पराएं विकसित हुई।

वैदिक परम्परा में विवश्वान, मनु, इक्ष्वाकु, योगेश्वर कृष्ण तथा कालान्तर में महर्षि पतंजलि मुख्य हुए हैं। महर्षि पतंजलि ने योग की विभिन्न धाराओं को व्यवस्थित रूप देकर एक महानदी का रूप दिया एवं एक स्वतंत्र ग्रन्थ 'योग सूत्र' की रचना की जो योग दर्शन के रूप में जाना जाता है। महर्षि पतंजलि की इस परम्परा को उनके सूत्रों की व्याख्या करके अनेक विद्वानों ने गति दी। व्यास भाष्य, वाचस्पति मिश्र की तत्ववैशारदी, विज्ञानभिक्षु का योग वार्तिक, योगसार संग्रह, शंकर का भाष्य विवरण, भास्वती टीका, भोजराज का योग मार्तण्ड, सदा शिवेन्द्र का योग सुधाकर आदि प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

नाथ परम्परा में आदिनाथ शिव को योग का आदि प्रवक्ता माना जाता है। उनके द्वारा माता पार्वती को जो योग का उपदेश दिया गया उसे मत्स्येन्द्रनाथ ने भी सुना। शिव के आदेशानुसार मत्स्येन्द्रनाथ ही योग विद्या के प्रचारक हुए। इनके शिष्य गोरखनाथ महान् योगी हुये हैं। उनके शिष्य गैवीनाथ, चर्पटीनाथ आदि हुए हैं। इसी परम्परा में घेरण्ड ऋषि, स्वात्माराम योगी हुए हैं, उन्होंने हठयोग के सिद्धान्तों का प्रसार किया। इन सब ने हठयोग की परम्परा को गुरु-शिष्य परम्परा के द्वारा अक्षुण्ण बनाए रख। हठयोग प्रदीपिका, शिव-संहिता, गोरक्षसंहिता, घेरण्ड संहिता आदि इस परम्परा के महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं।[9]

योग के समन्वय के सम्बन्ध में कुछ कहने से पूर्व हमें यह स्पष्ट करना होगा कि क्या वास्तव में सभी योगों का लक्ष्य एक ही है? यदि हठयोग की चर्चा करें तो उनका लक्ष्य समाधि है और वही राजयोग की अंतिम परिणति समाधि है, भक्तियोग का लक्ष्य पूर्ण समर्पण यानि परमात्मा से एकता, ज्ञानयोग परम् ज्ञान की उपलब्धि को, अपना लक्ष्य मानता है। कर्मयोग का लक्ष्य कर्म में होकर भी अकर्ता का भाव होना यानि कर्म के बन्धन से मुक्ति, कुण्डलिनी योग का भी लक्ष्य समाधि की दशा को प्राप्त करना है क्योंकि परमशक्ति का अनुभव कर पाना ही कुण्डलिनी योग है, मंत्रयोग के माध्यम से मन के पार जाकर सांसारिक विषयों से अनासक्त हो जाना ही मंत्रयोग का लक्ष्य है।

उपयुक्त सभी योगों का लक्ष्य एक ही है- मुक्ति। सभी योग के मार्गों और पन्थों का गंतव्य एक ही है। व्यक्ति के व्यक्तित्व अलग-अलग होने से योग के मार्ग बदल सकते हैं लेकिन उनकी अंतिम परिणति में हम पाते हैं कि सभी मार्ग से उस परमसत् को जाना जा सकता है क्योंकि यदि ऐसा न होता तो मुक्ति का कोई भी उपाय न हो सकेगा। हम एक उदाहरण द्वारा यह समझ सकते हैं कि सभी योग वास्तव में समन्वित है। उदाहरण- पर्वत का एक शिखर है। अनेक मनुष्य भिन्न-भिन्न दिशाओं से उस पर्वत के शिखर तक पहुंचना चाहते हैं, सभी की दिशाओं में भिन्नता है। वे मनुष्य एक-दूसरे के विपरित यात्रा करते हैं और वे कहते हैं कि वह मार्ग गलत हो सकता है, मेरा मार्ग सही है। लेकिन जब सभी मनुष्य शिखर पर पहुंचते हैं तो पाते हैं कि मार्ग भिन्न होने से शिखर भिन्न नहीं हो जाता, बल्कि शिखर एक ही है, अनुभूति एक ही है परन्तु मार्ग भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। यह जो शिखर है वह समाधि, मोक्ष, कैवल्य एवं परमज्ञान आदि के नाम से अभिव्यक्त हो सकता है लेकिन अनुभूति एक है। जिसने भी सत्य को जाना है उसके व्यक्तित्व के कारण बाहरी आवरण भिन्न मालूम पड़ता है परन्तु सभी के आन्तरिक बोध एक है।[10]

गीता वह विद्या है जो आत्मा को ईश्वर से मिलने के लिए अनुशासन तथा भिन्न-भिन्न मार्गों का उल्लेख करती है। गीता का मुख्य उपदेश है- योग। इसलिये गीता को योग-शास्त्र कहा जाता है। जिस प्रकार मन के तीन अंग है-ज्ञानात्मक, भावनात्मक और क्रियात्मक। इसीलिए इन तीन अंगों के अनुरूप गीता में ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग का समन्वय हुआ है। आत्मा बन्धन की अवस्था में चली आती है। बन्धन का नाश योग से ही संभव है। योग आत्मा के बन्धन का अंत कर उसे ईश्वर की ओर मोड़ती है। गीता में ज्ञान, कर्म और भक्ति को मोक्ष का मार्ग बताया गया है। साधारणत: कुछ दर्शनों में ज्ञान के द्वारा मोक्ष अपनाने का आदेश दिया गया है, शंकर का दर्शन इसका उदाहरण है। कुछ दर्शनों में कर्म के द्वारा मोक्ष को अपनाने की सलाह दी गई है, रामानुज का दर्शन इसका उदाहरण है, कुछ दर्शनों में कर्म के द्वारा मोक्ष को अपनाने की सलाह दी गई है। मीमांसा दर्शन इसका उदाहरण है। परन्तु गीता में तीनों का समन्वय हुआ है।[11]

योगपद्धति प्राचीन है, परन्तु इसका अभ्यास सरल नहीं है। केवल आत्मानुशासन से ही व्यक्ति अनुभवगम्य आत्मा (जीवात्मा) के स्तर से ऊपर उठकर शिव के साथ एकरूप हो सकता है। हमें अपने आकर्षण जाल में फँसाने वाले बाह्य जगत् के त्याग एवं इस आनन्दावस्था को प्राप्त करने के लिये शारीरिक तप एवं आत्मिक अनुशासन- दोनों ही मार्गों पर चलना पड़ता है। रहस्यात्मक अक्षर जैसे 'ओउम्' मंत्र पर ध्यान इस दशा की उपलब्धि में योगी का सहायक है। योगी को बाह्य जगत का विस्मरण हो जाता है और वह अगोचर के साथ एकरूप हो जाता है। नाथ-योगी अपनी रचनाओं में इस साधना का परामर्श देते हैं। मंत्र के ध्यान एवं निरन्तर जप से व्यक्ति 'अजपा जप' की स्थिति तक पहुँच जाता है: जिसका तात्पर्य यह है कि साधक आन्तरिक जीवन के क्षेत्र में प्रवेश कर गया है। उस दशा में मंत्र की पुनरावृत्ति प्रयास के बिना स्वत: होती है। ऐसे हठयोगी का, हठयोग की सहायता से, प्राणवायु एवं अपानवायु पर नियंत्रण हो जाता है एवं वह चमत्कार करने में समर्थ होता है। यह कहना उपयुक्त नहीं है कि हाडिपा एवं गोरक्षनाथ जैसे योगियों ने केवल कुछ तांन्त्रिक शक्तियों की प्राप्ति के लिये ही प्राणवायु आदि पर नियंत्रण की साधना की थी। उनका चरम लक्ष्य इससे बहुत

उच्च था। वह लक्ष्य था शिव की प्राप्ति और हठयोग जिसका साधन था।[12]

योग मनुष्य को बर्हिमुख से अन्तर्मुखी बनाता है। इन्द्रियों के द्वार बाह्य संसार की ओर हैं और मनुष्य की इन्द्रियों एवं मन की स्वाभाविक प्रवृत्ति बाहरी संसार के साथ संयुक्त होने की है। परन्तु योग के अभ्यास और वैराग्य को धारण करते हुए मन और इन्द्रियों पर संयम स्थापित करते हुए इन्द्रियों और मन को अन्तर्मुखी बनाया जाता है। इस प्रकार ज्ञेय से ज्ञाता की ओर आना ही योग है। मनुष्य के अन्दर निहित आत्मतत्व का बोध करना ही योग है। स्वयं को स्वयं के साथ संयुक्त कर लेना ही योग है और स्वयं की क्षमता और योग्यता का सही ज्ञान प्राप्त करना ही योग है। योग के अर्थ को किसी एक आयाम के साथ जोड़कर परिभाषित नहीं किया जा सकता है, अपितु योग एक बहुआयामी विद्या है। जिससे मनुष्य की भौतिक और आत्मिक उन्नति होती है एवं मनुष्य आत्मतत्व का बोध करता हुआ परमात्मा के साथ संयुक्त होने में सक्षम बनता है, यही योग का मूल लक्ष्य होता है।

इस मूल लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समय-समय पर योग की अलग-अलग परम्पराओं का विकास हुआ। योग की प्रमुख परम्पराओं में हठयोग का अत्यन्त विशिष्ट स्थान है। हठयोग परम्परा को विकसित करने का श्रेय नाथ सिद्ध पुरुषों को दिया जाता है अर्थात् मानव कल्याणार्थ नाथ सिद्धों के द्वारा हठयोग परम्परा को विकसित किया गया। इस परम्परा के आदि प्रवक्ता के रूप में आदिनाथ शिव का वर्णन करते हुए उपदेश किया गया है-

श्री आदिनाथाय नमोऽस्तु तस्मै येनोपदिष्टा हठयोगविद्या।
विभ्राजते प्रोन्नतराजयोगमारोढुमिच्छोरधिरोहिणीव।।(हठप्रदीपिका 01/01)

उन सर्वशक्तिमान् आदिनाथ को नमस्कार है जिन्होंने हठयोग-विद्या की शिक्षा दी, जो राजयोग के उच्चतम शिखर पर चढ़ने की इच्छा रखने वाले अभ्यासियों के लिऐ सीढ़ी के समान है।[13] सामान्यरूप से देखने पर प्रतीत होता है कि हठयोग से अभिप्राय: बलात् या बलपूर्वक, जिद्दपूर्वक और जबरदस्ती की गयी क्रियाओं से होता है। किन्तु शास्त्रों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वास्तव में ऐसा कदापि नहीं है अपितु हठ शब्द के भीतर एक गहरा अर्थ अर्न्तनिहित होता है। ह शब्द से अभिप्राय: हकार और ठ शब्द से अभिप्राय: ठकार से होता है और हकार-ठकार अथवा दो विपरित शक्तियों का अनुशासित रूप में संयुक्त होना ही 'हठयोग' कहलाता है। हठयोग के अर्थ को स्पष्ट करते हुए सिद्धसिद्धान्त नामक ग्रन्थ में उपदेश किया है-

हकारेण किर्तित: सूर्यश्ठकारेण चन्द्र उच्यते।
सर्याचन्द्रमसो योगद हठयोग निगधते।। (सि0 सि0 प0 1/69)

इसमें हकार को सूर्य कहा गया है तथा ठकार को चन्द्र। यह हकार एवं ठकार का योग ही हठसाधना या प्राणसाधना कहलाता है।[14] इस प्रकार हठयोग साधना सूर्य और चन्द्र नाड़ी के संयोग की अवस्था होती है जिसमें प्राण का प्रवाह सुषुम्ना नाड़ी में होने लगता है और मूलाधार में सुप्तावस्था में विद्यमान कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होकर उर्ध्वगमन करने लगती है। कुण्डलिनी शक्ति के उर्ध्वगमन करने से शक्ति केन्द्र अर्थात् चक्रों का भेदन होने लगता है और यह शक्ति ब्रह्मरन्ध्र में पहुंचकर ब्रह्म के साथ एकत्व को प्राप्त होती है। यही आत्मा और परमात्मा के मिलन की अवस्था होती है। इस अवस्था में साधक का अज्ञान नष्ट हो जाता है और दु:खों से पूर्ण निवृत्ति प्राप्त होने के साथ परमानन्द की अनुभूति होती है।

नाथ सिद्धों के अनुसार मानव देह में प्राण शक्ति और चित्त शक्ति नामक दो महत्वपूर्ण शक्तियां विद्यमान है। मानव शरीर में विद्यमान इन शक्तियों को शरीर-मन, प्राण-अपान, सूर्य-चन्द्र और पिंगला-ईड़ा आदि विभिन्न नामों से संबोधित किया जाता है। मानव शरीर की क्रमश: बांयी नासिका और दाहिनी नासिका में स्थित सूक्ष्म नाड़ियाँ इन शक्तियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। सामान्यतया इन दोनों में से एक शक्ति ही क्रियाशील रहती है और एक शक्ति के क्रियाशील होने की स्थिति में दूसरी शक्ति निष्क्रिय अवस्था में हो जाती है। किन्तु जब योग साधक हठयोग के साधनों जैसे षट्कर्म, आसन, प्राणायाम और मुद्रा-बन्धों आदि का अभ्यास नियमित रूप से एवं दृढ़तापूर्वक अभ्यास करता है तो इन दोनों नाड़ियों में समानरूप से प्राण का प्रवाह होने लगता है और इन दोनों नाड़ियों के मिलन से प्राण का प्रवाह मध्यस्थ सुषुम्ना नाड़ी में होने लगता है। जिससे इस मार्ग में विद्यमान कुण्डलीनी शक्ति जाग्रत होकर अन्य ऊर्जा केन्द्रों अर्थात् चक्रों को जाग्रत करती हुई नाद के साथ परम शिव के साथ एकाकार हो जाती है और योग साधक पूर्णानन्द में निर्मग्न हो जाता है जो इस भौतिक संसार से परे आध्यात्मिक उन्नति की उच्चतम् अवस्था होती है। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर साधक को कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता है और वह सदैव के लिए जीवन-मरण के चक्र से मुक्त होकर कैवल्य को प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर हो जाता है। मानव जाति के कल्याण हेतु इस हठयोग परम्परा का प्रारम्भ नाथ सिद्धों के द्वारा किया गया।

हठयोग परम्परा का प्रारम्भ महासिद्ध आदिनाथ शिव से माना जाता है। आदिनाथ शिव तंत्र के प्रवर्तक माने जाते हैं। आदिनाथ शिव की इस परम्परा का विस्तारमध्यकाल में योगियों के द्वारा किया गया। भारतवर्ष में मध्यकाल को हठयोग के परम उत्कर्ष का काल माना जाता है। इस काल में हठयोगियों के द्वारा हठयोग साधना के माध्यम से विभिन्न सिद्धियों को प्राप्त करते हुए अपने दिव्य चमत्कारों के प्रभाव से अमरता प्राप्त की गयी। विभिन्न ग्रन्थों में सिद्ध हठयोगियों का वर्णन प्राप्त होता है। हठयोग के महत्वपूर्ण ग्रन्थ हठप्रदीपिका के रचना काल भी 1360 ई0 से 1650 ई0 के मध्य स्वीकार किया गया है। इसी प्रकार हठयोग के प्रमुख ग्रन्थ घेरण्ड संहिता की रचना का समय भी मध्यकाल ही स्वीकार किया गया है। हठप्रदीपिका ग्रन्थ में योगेन्द्र स्वात्माराम सूरी हठयोगियों की परम्परा का उल्लेख किया है।

श्रीआदिनाथ, मत्स्येन्द्र, शाबर, आनन्दभैरव, चौरङ्गी, मीन, गोरक्ष, विरूपाक्ष, बिलेशय, मन्थान, भैरवयोगी, सिद्धि, बुद्ध, कन्थडि, कोरण्टक, सुरानन्द, चर्पटी, कानेरी, पूज्यपाद, नित्यनाथ, निरंजन,

कपाली, बिन्दुनाथ, काकचण्डीश्वर, अल्लाम, प्रभुदेव, घोड़चोली, टिण्टिणि, भानुकी, नारदेव, खण्ड, कपालिक आदि सभी महान सिद्धगण हठयोग की शक्ति से मृत्यु पर विजय पाकर ब्राह्माण्ड में विचरण करते हैं।[15] इस प्रकार हठप्रदीपिका ग्रन्थ में हठयोग को योग सिद्धि प्राप्त करने के एक प्रमुख साधन के रूप में वर्णित करते हुए उपदेश किया गया है कि मध्यकाल के हठयोगी इस योग परम्परा का अनुपालन करते हुए मृत्यु से ऊपर उठकर अमरता को प्राप्त हुए। इन योगियों के द्वारा गुरु-शिष्य परम्परा के द्वारा हठयोग की विद्या को आगे बढ़ाया गया। आदिनाथ शिव द्वारा प्रेणित हठयोग परम्परा को योगी मत्स्येन्द्रनाथ ने ग्रहण किया और महायोगी मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य के रूप में गुरु गोरक्षनाथ ने हठयोग की इस प्राचीन योग परम्परा को आगे बढ़ाया और इसके उपरान्त चौरंगीनाथ, जालंधरनाथ, कणेरीनाथ आदि नाथ सिद्धों के द्वारा हठयोग परम्परा का जनकल्याण हेतु लोक में प्रचार-प्रसार किया गया। मध्यकाल में हठयोग परम्परा के नाथ सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का उपदेश सर्वसाधारण जनता से लेकर राजा-महाराजाओं के चित्त पर बहुत गहरा प्रभाव दिया। हठयोग परम्परा से प्रभावित होकर राजा गोपीचन्द ने गृह त्याग का कठिन निर्णय लिया और इसी प्रकार पश्चिमी भारत में उज्जयिनी के राजा भर्तृहरि भी समग्र राजपाठ त्याग कर नाथयोगी हो गये।[16] इतिहास के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि मध्यकाल में हठयोग परम्परा अपनी उत्कर्ष अवस्था में रही और जन साधारण से लेकर राजा और महाराजाओं के लिए अनुकरण करने करते हुए मुक्ति मार्ग प्राप्त करने का एक प्रमुख साधन बनी।

कालचक्र के आगे बढ़ने के साथ भारतीय समाज में समय और परिस्थितियों के अनुरूप बहुत सारे परिवर्तन आये और मध्यकाल से आगे आधुनिक काल का वर्णन आता है।इतिहासकार 12वीं शताब्दी तक के काल को वैदिक काल अथवा आदिकाल, 13वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी के काल को मध्यकाल और 17वीं शताब्दी से आगे के काल को आधुनिककाल के रूप में विभाजित करते हैं। जबकि कुछ इतिहासकार मध्यकाल को क्रमश: प्रारम्भिक मध्ययुगीन काल और गतमध्ययुगीन काल में विभाजित करते हैं। प्रारम्भिक मध्ययुगीन काल 6वीं से लेकर 13वीं शताब्दी तक और गत मध्ययुगीन काल को 13वीं से 16वीं शताब्दी तक मानते हैं। इसके उपरान्त 17वीं शताब्दी से आधुनिक काल प्रारम्भ हो जाता है। आधुनिक काल ने सम्पूर्ण विश्व के समक्ष बहुत सारी नई चुनौतियां प्रस्तुत की। मनुष्य के जीवन में भौतिक सुख-सुविधाओं की भरमार होने लगी तो वहीं दूसरी ओर शारीरिक-मानसिक आधि-व्याधियों ने आधुनिक काल के मनुष्यों को व्यथित बनाया। किन्तु इस समय में भी भारतीय समाज में हठयोग की परम्परा का अस्तित्व लगातार बना रहा। गुरु-शिष्य परम्परा के साथ ही हठयोग के गुप्त रहस्य और हठयोग साधना भारतीय समाज में लगातार अपना अस्तित्व बनाए रखा। विशेष रूप सेसमय-समय पर भारत की देवभूमि पर दिव्यात्माओं का प्रादुर्भाव निरन्तर होता रहा है। श्रीमद्भगवद् गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश करते हैं-

परित्राणय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म-संस्थाप-नार्थय, सम्भवामि युगे युगे। (गीता04/08)

साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिए, पापकर्म करने वालों का विनाश करने के लिए और धर्म की अच्छी तरह से स्थापना करने के लिए मैं युग-युग में प्रकट हुआ करता हूँ।[17] आधुनिक काल में भी इसी प्रकार महापुरुषों की दिव्यात्माओं के पुरुषार्थ और ज्ञान के प्रभाव से हठयोगविद्या का प्रकाश सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करता रहा। भारतवर्ष की तपोभूमि में ऐसे योगी महापुरुषों का समय-समय पर आगमन होता रहा जिन्होंने योग विद्या का प्रचार-प्रसार सम्पूर्ण विश्व में किया। योगाचार्य के रूप में स्वामी दयानन्द सरस्वती का उल्लेख, जिन्होंने अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश', 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' आदि के माध्यम से योग की गलत धारणाओं का खण्डन करके स्पष्ट दिशानिर्देश दिया। महर्षि दयानन्द की योग साधना से प्रेरणा लेकर बालक नरेन्द्र को आचार्य रामकृष्ण ने दीक्षा देकर विवेकानन्द बनाया, जिन्होंने योग परम्परा को आगे बढ़ाया। श्री अरविन्द, स्वामी शिवानन्द, स्वामी कुवलयानन्द आदि ने परम्परा को आगे बढ़ाया। स्वामी शिवानन्द के शिष्यों ने विदेशों में प्रचार किया। स्वामी कुवलयानन्द जी ने वैज्ञानिक तथ्यों एवं तकनिकों के आधार पर योग के प्रायोगिक अंगों के मूल्यांकन पर बल दिया। कैवल्यधाम नामक संस्था स्थापित करके अपने कार्यों को आगे बढ़ाया। योगी श्यामाचरण लहड़ी तथा उनके शिष्य परमहंस योगानन्द द्वारा क्रियायोग की सरल विधि देकर लोक कल्याणार्थ योग का प्रचार-प्रसार किया गया। स्वामी सत्यानन्द ने बिहार योग विद्यालय की स्थापना की जो अब बिहार योग भारती के नाम से मुंगेर में डीम्ड विश्वविद्यालय है।[18]

स्वामी विवेकानन्द वेदान्त के विख्यात और प्रभावशाली अध्यात्मिक गुरु थे। उन्होंने अमेरिका स्थित शिकागो में सन् 1893 में आयोजित विश्व धर्म महासभा में भारत की ओर से सनातन धर्म का प्रतिनिधित्व किया था। भारत में विवेकानन्द को एक देशभक्त संत के रूप में माना जाता है और उनके जन्मदिन को राष्ट्रीय युवा दिवस के रूप में मनाया जाता है। भारत का अध्यात्मिकता से परिपूर्ण वेदान्त दर्शन अमेरिका और यूरोप के हर एक देश में स्वामी विवेकानंद के कारण पहुँचा। उन्हें प्रमुख रूप से उनके भाषण की शुरुआत ''मेरे अमेरिकी भाईयों एवं बहनों'' के साथ करने के लिए जाना जाता है। उनके सम्बोधन के इस प्रथम वाक्य ने सबका दिल जीत लिया था। स्वामी विवेकानन्द के गुरु श्री रामकृष्ण परमहंस थे। विवेकानन्द का दर्शन आधुनिक वेदान्त एवं राजयोग है। उनका साहित्यिक कार्य राजयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग इत्यादि है। उनका सर्वश्रेष्ठ कथन-'उठो, जागों और तब तक नहीं रुको जब तक मंजिल प्राप्त न हो जाये'।

शिवानन्द का योग वेदान्त आधारित है क्योंकि इनकी साधना में मन तथा आत्मा के स्वरूप की श्रेष्ठतम् पुष्टि की गई है। वेदान्त की

मुख्य साधना 'दृश्यमार्जन' है अर्थात् पदार्थों और उनके रूपों को नित्यानित्यवस्तुविवेक से देखकर सत् को असत् से अलग करना। वेदान्त के मननादिरूप अभ्यास से ऐसी विचारप्रणाली बंधती है और मन को ऐसा अभ्यास पड़ जाता है कि सद्सद् का ज्ञान (विचार की अपेक्षा न रख) अपने-आप ही होने लगता है और सत् की जो सर्वत्र व्याप्त समसत्ता है वह अनुभूत होती है। वेदान्त की साधना इसी ज्ञान-धारणा पर निर्भर करती है कि अनेकत्व जो कुछ देखने में आता है वह सब मिथ्या है और चिन्मय ब्रह्म का जीवन या ईश्वर रूप में धनीभूत होकर कर्म करना भी मिथ्या है और अद्वितीय सत्य केवल वही परब्रह्म है जो इन सब के परे है।[19]

स्वामी धीरेन्द्र ब्रह्मचारी जी ने बीसवीं सदी में हठयोग परम्परा के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका वहन करते हुए हठयोग काल में सृजित योगाभ्यासों का सामान्य जनमानस में प्रचार-प्रसार किया और योग चिकित्सा के नव आयामों को प्रमुखता से स्थापित करने का प्रयास किया। जिस प्रकार योगी स्वात्माराम जी ने हठयोग के योगांगों में आसन को प्रथम स्थान दिया ठीक उसी प्रकार स्वामी धीरेन्द्र ब्रह्मचारी जी ने योगासनों को योग शिक्षा का प्रमुख अंग माना और 'यौगिक सूक्ष्म व्यायाम' नामक पुस्तक की रचना की। स्वामी जी आधुनिक तकनिकों का प्रयोग करते हुए योग शिक्षा को सम्पूर्ण विश्व में प्रचारित करने के लिए संकल्पबद्ध थे। हठयोग परम्परा के प्रचार-प्रसार की कड़ी में स्वामी जी ने राष्ट्रीय चैनल दूरदर्शन पर आकर व्यापक स्तर पर योग शिक्षा का प्रचार-प्रसार किया। स्वामी जी के प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं ओजस्वी वाणी से आकर्षित होकर बहुत तेजी से जन मानस योग विद्या को अपनी दिनचर्या का अंग बनाया।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने केवल स्थूल शरीर के रस-रक्त, नस-नाड़ी, धमनी, तन्तु, शिरा, मांसपेशी, धातु और हड्डियों का विज्ञान प्राप्त किया है। प्राचीन वैज्ञानिक व्यक्ताव्यक्तज्ञ महर्षियों ने स्थूल शरीर के आधारभूत एक सूक्ष्म शरीर और उसके आधारभूत एक कारण शरीर को भी प्रत्यक्ष किया है। इसके अन्दर अन्न, प्राण, मन, बुद्धि और आनन्दमय पांच कोषों को भी प्रत्यक्ष किया है और हिमालय की कन्दराओं में अज्ञात-वास करने वाले विश्वात्मा महर्षियों द्वारा प्राचीन ज्ञान-विज्ञान और यौगिक साधनों का वैसा ही क्रियात्मक शिक्षण अधिकारी साधकों को आज भी मिल रहा है।[20]

इस प्रकार आधुनिक काल में तपस्वी योग सिद्ध पुरुषों के द्वारा योग परम्परा का प्रचार-प्रसार सम्पूर्ण विश्व में किया गया। इन महान योगी पुरुषों ने भारतीय संस्कृति के प्रमुख आधार स्तम्भ योग परम्परा का अभ्यास स्वयं के व्यक्तिगत जीवन करते हुए सिद्धियों को प्राप्त किया और विशिष्ट प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त करने के उपरान्त इन सन्त पुरुषों के द्वारा विश्व धरातल पर भारतीय योग परम्परा को प्रस्तुत किया गया। इस प्रकार भारतीय संस्कृति के प्रमुख आधार स्तम्भ के रूप में योग परम्परा का अविरल प्रभाव अनादि काल से आधुनिक काल तक निरन्तर बना हुआ है।

संदर्भ सूची

1. घारु नरेश कुमार, नाथ सम्प्रदाय में योग का स्वरूप, प्रथम संस्करण, 2010-11, पृष्ठ संख्या 74
2. कुमार डा0 कामाख्या, योग महाविज्ञान, प्रथम संस्करण 2007, स्टैण्डर्ड पब्लिकेशन (इण्डिया), पृष्ठ संख्या 26
3. परिव्राजक, स्वामी सत्यपति, योगदर्शनम्, दर्शन योग महाविद्यालय तृतीय संस्करण, 2006, पृष्ठ संख्या 07
4. कुमार डा0 कामाख्या, योग महाविज्ञान, प्रथम संस्करण 2007, स्टैण्डर्ड पब्लिकेशन (इण्डिया), पृष्ठ संख्या 32
5. कुमार डा0 कामाख्या, योग महाविज्ञान, प्रथम संस्करण 2007, स्टैण्डर्ड पब्लिकेशन (इण्डिया), पृष्ठ संख्या 54
6. गुरुदत्त आचार्य, ईश, केन, कठ उपनिषद्, हिन्दी साहित्य सदन, सन् 2000,पृ0 सं0 109
7. तीर्थ स्वामी ओमानन्द,पातंजल योग प्रदीप, गीता प्रेस गोरखपुर उनतीसवाँ संस्करणसं0 2065, पृ0 सं0 140
8. तीर्थ स्वामी ओमानन्द,पातंजल योग प्रदीप, गीता प्रेस गोारखपुर उनतीसवाँ संस्करण सं0 2065, पृ0 सं0 140
9. कुमार डा0 कामाख्या, योग महाविज्ञान, प्रथम संस्करण 2007, स्टैण्डर्ड पब्लिकेशन (इण्डिया), पृष्ठ संख्या 31
10. यादव प्रो0 राजशेखर, योग का सैद्धान्तिक अध्ययन एवं प्रायोगिक अभ्यास,आर0 के0 डिस्ट्रीब्युटर प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या 36
11. सिन्हा प्रो0 हरेन्द्र प्रसाद्, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन पंचम संस्करण 1993, पृष्ठ संख्या 68
12. शास्त्री स्वामी द्वारिकादास,सिद्धसिद्धान्तपद्धतिः, सन् 2014, चौखम्बा सुभारती प्रकाशन, प्रथम अध्याय, पृष्ठ संख्या 18
13. जी स्वामी दिगाम्बर, झा डा. पिताम्बर, स्वात्माराम-कृत हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम प्रकाशन द्वितीय संस्करण 2001, पृष्ठ संख्या 01
14. शास्त्री स्वामी द्वारिकादास,सिद्धसिद्धान्तपद्धतिः, सन् 2014, चौखम्बा सुभारती प्रकाशन, प्रथम अध्याय, पृष्ठ संख्या 28
15. जी स्वामी दिगाम्बर, झा डा. पिताम्बर, स्वात्माराम-कृत हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम प्रकाशन द्वितीय संस्करण 2001, पृष्ठ संख्या 04
16. शास्त्री स्वामी द्वारिकादास, सिद्धसिद्धान्तपद्धतिः, सन् 2014, चौखम्बा सुभारती प्रकाशन, प्रथम अध्याय, पृष्ठ संख्या 01
17. श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस गोरखपुर, सत्रहवाँ पुनर्मुद्रण सं0 2072, पृष्ठ संख्या 65
18. कुमार विकास, योग (The Yoga Science) प्रथम संस्करण 2018, चौखम्बा सुभारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 03
19. यादव प्रो0 राजशेखर, योग का सैद्धान्तिक अध्ययन एवं प्रायोगिक अभ्यास, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या 85
20. ब्रह्मचारी धीरेन्द्र, यौगिक सूक्ष्म व्यायाम, धीरेन्द्र योग प्रकाशन द्वितीय संस्करण सन् 1980, भूमिका पृष्ठ संख्या द

ISSN 2278 - 0327

भारत में मानवाधिकारों व सामाजिक न्याय की स्थिति : दलितों के सन्दर्भ में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० जितेन्द्र कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
जे०एस०हिन्दू (पी०जी०) कॉलेज, अमरोहा

सारांश

मानवाधिकार व सामाजिक न्याय एक सभ्य समाज की आधारशिला है। यह सामाजिक व राजनीतिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं में से एक है। व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास तब तक नहीं कर पाता जब तक कि उसे मानवाधिकारों की पूर्ण व समान उपलब्धता न हो। राजनीतिक व्यवस्था चाहे किसी प्रकार की हो, राज्य का सर्वोत्तम लक्ष्य अपने-अपने नागरिकों के मानवाधिकारों का संरक्षण करना है। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में तो यह अत्यन्त अनिवार्य है। इसी के मद्देनजर भारत में भी प्राचीन काल से ही जब राजतंत्रात्मक व्यवस्था थी, मानवाधिकार किसी न किसी रूप में अवश्य उपस्थित थे पर यह सभी वर्गों को समान रूप से उपलब्ध नहीं थे। दलित वर्ग जिन्हें प्राच्य शास्त्रों में शूद्र कहा गया है, की स्थिति सामाजिक न्याय के सन्दर्भ में अत्यन्त दयनीय थी। दलित वर्ग में दमित, उत्पीड़ित व हाशियाकरण के शिकार वे सभी स्त्रियाँ व पुरुष शामिल हो जाते हैं जो किसी जाति, धर्म, वर्ग या क्षेत्र से जुड़े हो। इस दमित वर्ग के लोग रोम में दास, स्पार्टा में क्रीत, अमेरीका में नीग्रो कहलाते थे, जबकि भारत में इनको दलित वर्ग की संज्ञा दी गयी। मनु द्वारा उद्भवित वर्ण व्यवस्था ने कालांतर में जाति का रूप धारण कर लिया। वर्ण तथा जाति जिसका नाम चाहे कुछ भी रहा हो, शोषण का रूप समान था। आधुनिक काल में हुए समाज सुधार, राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन तथा शिक्षा के विस्तार ने इन दलित वर्गों के मानवाधिकार व सामाजिक न्याय की आवाज को बुलन्द किया।

मूल शब्द- मानवाधिकार, सामाजिक न्याय, दलित, अस्पृश्यता।

प्रस्तावना

मानवाधिकारों का विचार मानव इतिहास के आरम्भिक चरण से ही रहा है। हालांकि समयानुसार यह अवधारणा परिवर्धित व परिवर्तित होती रही है। मानव अधिकार वे अधिकार होते हैं जो मानव व्यवहार के मानकों को स्पष्ट करते हैं। एक मानव होने के नाते प्रत्येक मानव ऐसे बहुत से मानव अधिकारों का हकदार है जो उसके व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में मददगार हो। इन सभी अधिकारों का राज्य द्वार संरक्षण भी आवश्यक है। वस्तुत: अधिकारों की लड़ाई तो मनुष्य के पैदा होते ही आरम्भ हो जाती है। जब एक बच्चा अपनी माँ के दूध के लिए रोता है तो अधिकारों की प्रारम्भिक नींव रख दी जाती है। अत: मानवाधिकार मनुष्य को प्राप्त वे न्यूनतम अधिकार है जो प्रत्येक व्यक्ति को जन्म से ही प्राप्त होते हैं। ये अधिकार सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं जिनके बिना न तो व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है और न ही समाज के लिए कोई उपयोगी कार्य कर सकता है। इन अधिकारों के बिना एक सभ्य, सुखी मानव- जीवन के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। लोकतांत्रिक संविधान, निष्पक्ष न्यायपालिका तथा स्वतंत्र व सार्वजनिक कल्याण के लिए प्रतिबद्ध मीडिया इन अधिकारों के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

प्रसिद्ध फ्रांसीसी दार्शनिक व सामाजिक समझौता सिद्धांत के समर्थक जीन जैंक्स रूसो ने लिखा था कि 'मनुष्य स्वतंत्र पैदा हुआ है पर सर्वत्र ही जंजीरों में जकड़ा हुआ है।' अपनी इस स्वतंत्र चेतना में रूसों ने शोषण, असमान, गरीबी में कैद मानव की स्वतंत्रता, समानता व भातृत्व पूर्ण जीवन प्राप्त करने की आकांक्षा को मुखर आवाज दी थी। ब्रिटेन के प्रसिद्ध आदर्शवादी विचारक थॉमस हिल ग्रीन ने कहा है- 'मानवीय चेतना स्वतंत्रता चाहती है, स्वतंत्रता अधिकारों में निहित है तथा अधिकार राज्य की मांग करते हैं।'

एच०जे० लॉस्की के अनुसार- 'अधिकार, सामाजिक जीवन में वे शर्तें हैं जिनके बिना मनुष्य का सर्वांगीण विकास असंभव है। संयुक्त राष्ट्र संघ की मानवाधिकरों की सार्वभौमिक घोषणा (10 दिसम्बर, 1948) के अनुच्छेद 1 व 2 में मानवाधिकरों को इस प्रकार परिभाषित किया गया है, 'सभी मनुष्य समान अधिकार व सम्मान लेकर पैदा होते हैं और उन्हें सार्वभौमिक घोषणा में वर्णित सभी अधिकार व स्वतंत्रताएँ बिना जाति, धर्म, लिंग, भाषा, क्षेत्र, राजनीतिक या अन्य विचारधारा, राष्ट्रीय या सामाजिक मूल, सम्पत्ति, जन्म या अन्य स्थितियों के भेदभाव के स्वत: मिल जाते हैं।'

सामाजिक न्याय

सामाजिक न्याय की संकल्पना बहुत व्यापक है जिसके अन्तर्गत 'सामान्य हित' के मानक से संबंधित सब कुछ आ जाता है जो दमित व दलित हितों की रक्षा से लेकर निर्धनता व निरक्षरता के उन्मूलन तक सब पहलुओं को शामिल करता है। यह न केवल विधि के समक्ष

समानता के सिद्धांत का पालन करने और सामाजिक व आर्थिक समता से संबंधित है बल्कि इसका संबंध उन कुत्सित सामाजिक कुरीतियों जैसे–दरिद्रता, बीमारी, भुखमरी, अस्पृश्यता आदि के दूर करने से भी है जिसकी चपेट में तीसरी दुनिया के अधिकांश देश हैं। सामाजिक न्याय का संबंध उन निहित स्वार्थों को समाप्त करने से है जो लोकहित सिद्धि के मार्ग में अड़चन पैदा करते हैं तथा यथास्थिति बनाए रखने के पक्ष में है। इस दृष्टि से दुनिया के पिछड़े व विकासशील देशों में सामाजिक न्याय का आर्दश राज्य के लिए यह आवश्यक बना देता है कि वह पिछड़े और समाज के कमजोर वर्गों की हालत सुधारने के लिए ईमानदारी से प्रयास करें।

सामाजिक न्याय की अवधारणा का अभिप्राय यह है कि नागरिक, नागरिक के बीच सामाजिक स्थिति के आधार पर भेद न किया जाए व प्रत्येक व्यक्ति को विकास के पूर्ण व समान अवसर उपलब्ध हो। समाज के कमजोर व शोषित वर्गों का किसी भी रूप में शोषण न हो। सामाजिक न्याय की मांग है कि समाज में सुविधाहीन वर्गों को अपनी सामाजिक–आर्थिक असमर्थताओं पर काबू पाने और अपने जीवन स्तर में सुधार करने के योग्य बनाया जाए। समाज में शोषित वर्गों को ऊपर उठाए बिना, हरिजनों पर अत्याचार रोके बिना, अनुसूचित जातियों, जनजातियों व पिछड़े वर्गों का विकास किए बिना सामाजिक न्याय की स्थापना नहीं हो सकती।

अवधारणात्मक रूप से 'दलित' शब्द आधुनिक युग की देन है। दलित का शब्दिक अर्थ है–दलन किया हुआ। इसके तहत वह हर व्यक्ति आ जाता है जिसका शोषण व उत्पीड़न हुआ है। हिन्दी के विभिन्न शब्दकोषों में दलित का अर्थ लिखा है– मसला हुआ, मर्दित, दबाया हुआ, रौंदा या कुचला हुआ, विनष्ट किया हुआ। डॉ. भीमराव अम्बेडकर के आन्दोलन के बाद यह शब्द हिन्दू समाज व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर स्थित हजारों वर्षों से अस्पृश्य समझी जाने वाली तमाम जातियों के लिए सामूहिक रूप से प्रयुक्त होता है। यहां उस ऐतिहासिक सन्दर्भों को जानना जरूरी है, जिसके परिणामस्वरूप दलित शब्द का प्रादुर्भाव हुआ। सर्वप्रथम 1891 में भारत में जनगणना करते वक्त अंग्रेजी शासन ने जाति को आधार बनाया। इस जनगणना के पश्चात् ब्रिटिश सरकार सभी कामगार जातियाँ जो हिन्दू समाज व्यवस्था के निम्न पायदान पर धकेली हुई थी, का उल्लेख करने के लिए 'पददलित जातियां' (डिप्रेस्ड क्लासेज) शब्द का इस्तेमाल करने लगी। इन्ही पददलित जातियों को महात्मा गांधी जहाँ 'हरिजन' कहते थे वहीं अम्बेडकर 'उत्पादक जातियाँ'। सन् 1919 में मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड द्वारा राजनीतिक निकायों में प्रतिनिधित्व देने के लिए अस्पृश्यों, आदिवासियों व पिछड़े वर्ग को 'दलित वर्ग' के अन्तर्गत शामिल किया गया। इसी आधार पर 1921 की जनगणना में 'दलित वर्ग' के अन्तर्गत अस्पृश्यों, आदिवासी व अन्य पिछड़ा वर्ग को भी शामिल किया गया। लेकिन सवर्णों के प्रतिरोध के कारण सन् 1931 की जनगणना में आदिवासी समुदायों व अन्य पिछड़ा वर्ग को दलित वर्ग से अलग कर दिया गया। इस तरह व्यापक सामाजिक– सांस्कृतिक आधार वाले दलित वर्ग को अस्पृश्यों का पर्याय बना दिया गया। अंतत: भारत सरकार अधिनियम, 1935 की एक अनुसूचि में अस्पृश्यों को 'अनुसूचित जातियों' के रूप में चिन्हित कर दिया गया। वर्तमान में इन्हीं अनुसूचित जातियों को दलित वर्ग कहा जाता है।

भारत में दलितों की सामाजिक स्थिति: ऐतिहासिक सन्दर्भ में ऋग्वेद के दसवें अध्याय में पहली बार शूद्रों का उल्लेख किया गया, जिसका काल इतिहासकारों द्वारा प्राय: 1500 ई.पू. निश्चित किया गया है। दसवें अध्याय में ब्रह्मा के शरीर के विभिन्न भागों से अलग–अलग वर्णों की उत्पत्ति की बात कही गई है। तदनुसार सिर से ब्राह्मण की उत्पत्ति बताई जिसका कार्य था अध्ययन तथा अध्यापन। क्षत्रिय की उत्पत्ति भुजाओं से हुई जिसका कार्य समाज की रक्षा करना था वैश्य की उत्पत्ति जंघा से जिसका कार्य व्यवसाय था तथा पैरों से शूद्रों की उत्पत्ति कही गई, जिनका कार्य उपरोक्त वर्णों की सेवा करना था। ऋग्वेदिकोत्तर काल में अधिकाधिक अपात्रताऐं इस समुदाय पर थोपी जाती रही। प्राचीनकाल में भारत आने वाले यूनानी तथा चीनी यात्रियों ने इस वर्ण का अपने संस्मरणों में बड़ा ही हृदयविदारक विवरण प्रस्तुत किया है। उन्होनें लिखा है कि इस समुदाय के लोगों को बस्ती में प्रवेश के समय टीन का टुकड़ा बजाकर अपने आने की सूचना देनी पड़ती थी। स्मृति साहित्य में ये प्रावधान मिलता है कि यदि ये लोग वैदिक मंत्रों का उच्चारण सुन लें तो उनके कानों में खौलते हुए शीशे डाल देने चाहिए। यदि सवर्ण जाति के लोगों का स्पर्श ऐसे लोगों की परछाई से भी हो जाए तो उनके सात जन्मों के पुण्य कर्म नष्ट हो जाते हैं। धीरे–धीरे यह व्यवस्था भेदभाव, छुआछूत, शोषण और अत्याचार पर आधारित व्यवस्था बन गयी। मुस्लिम और ब्रिटिश शासकों ने इस व्यवस्था को स्थायित्व प्रदान किया। उन्होंने इसमें हस्तक्षेप से परहेज किया और इस व्यवस्था का उपयोग अपने प्रभुत्व को बनाये रखने के लिए भी किया। यह व्यवस्था इतनी जकड़न वाली हो गयी कि न तो कबीर, नानक, महात्मा फुले, सन्त ज्ञानेश्वर, महात्मा गांधी आदि ही इसे तोड़ पाये और न भारत का संविधान और न आजादी के बाद बनाये गये अनेकानेक कानून इसका पूर्ण खात्मा कर पाये।

संवैधानिक व वैधानिक अवलोकन–

भारतीय इतिहास में दलितों की दयनीय प्रस्थिति को दृष्टिगत रखते हुए संविधान निर्माताओं ने सामाजिक न्याय एवं मानवाधिकार को सम्बल प्रदान किया। साथ ही सभी के लिए सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय का प्रावधान किया गया। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए संविधान के अनुच्छेद 14 से 18 में समानता के अधिकार का वर्णन किया गया है, अनु. 14 में कानून के समक्ष सभी व्यक्ति समान है तथा राज्य को प्रतिबन्धित किया गया कि वह सभी नागरिकों के लिए समान कानून बनाए। अनु. 16 में राज्य द्वारा प्रदत्त सेवाओं एवं

नौकरियों में भेदभाव को समाप्त करने का प्रावधान किया गया तथा अनु. 16(4) में सामाजिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से दलित वर्गों के लिए विशेष अधिकार उपलब्ध कराए गए हैं। अनु. 17 द्वारा अस्पृश्यता का उन्मूलन करते हुए अनुसूचित जातियों के साथ किये जाने वाले भेदभाव को अवैध ठहराया गया है तथा इस हेतु उचित दण्ड की व्यवस्था की गयी है। अनु. 21 के अन्तर्गत भारतीय नागरिक को जीवन का अधिकार प्रदान किया गया है, यहां जीवन का अर्थ केवल पशुवत् जीवन नहीं वरन् मानवीय गरिमा के साथ जीवन यापन माना गया है। अनुच्छेद 29(1) में राज्य द्वारा पोषित या राज्य निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, वंश, जाति, भाषा या इनमें से किसी आधार पर वंचित नहीं किया जाएगा। यह अनुच्छेद अल्पसंख्यक वर्गों के हितों की उद्घोषणा करता है। संविधान का अनु. 38 सामाजिक न्याय की बात बुनियादी अधिकार एवं आवश्यकताओं के आधार पर करता है जो दलित मानवाधिकार एवं सामाजिक न्याय को बढ़ावा देता है। इसमें कहा गया है कि राज्य जनहित में ऐसी सामाजिक व्यवस्था सुनिश्चित करेगा, जिससे सभी को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्राप्त हो सके। अनु. 46 में राज्य को यह निर्देश दिया गया है कि वह अनुसूचित जातियों सहित समाज के कमजोर वर्गों को शैक्षणिक व आर्थिक रूप से विकसित और प्रोत्साहित करने में विशेष ध्यान देगा। अनु. 75 में संघ द्वारा कुछ राज्यों को अनुदान देने की व्यवस्था की गई है। संसद उन राज्यों को विशेष केन्द्रीय अनुदान देगी जो अनुसूचित जाति और जनजातियों के कल्याण या अनुसूचित क्षेत्रों में प्रशासनिक स्तर की उन्नति के प्रयोजन के लिए भारत सरकार के अनुमोदन से हाथ में ली गयी योजनाओं को क्रियान्वित कर रहे हैं। संविधान के 16वें अध्याय में अनु. 330 से 342 तक अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए आरक्षण के लिये विशेष प्रावधान किये गये हैं। इन वर्गों के लिए अलग से आयोग और विशेषाधिकारी नियुक्त करने का भी प्रावधान है ताकि वह इससे सम्बन्धित व्यवस्थाओं की तरफ विशेष ध्यान दे सके।

भारत के मानवाधिकार व सामाजिक न्याय की स्थिति : दलितों के सन्दर्भ में-

भारत में दलित मानवाधिकारों एवं सामाजिक न्याय हेतु अनेकानेक विधान भी पारित किये गये हैं। संविधान के अनुच्छेद 17 को वास्तविक रूप देने हेतु अस्पृश्यता (उन्मूलन) अधिनियम 1955 पारित किया गया, जिसे 1976 में संशोधित कर नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955 में परिवर्तित कर दिया गया। इसमें मुख्य रूप से धर्म के आधार पर भेदभाव, सामाजिक भेदभाव, अस्पताल या किसी भी सार्वजनिक स्थान पर छुआछूत के कारण भेदभाव, माल बेचने या सेवा करने में भेदभाव आदि के लिये दण्ड का प्रावधान किया गया है। इसे निजी कम्पनियों या संस्थाओं पर भी लागू किया गया है और जाति के कारण जबरदस्ती काम कराने को भी दण्डनीय बनाया गया है, इस कानून में मुकदमों की सुनवाई सरकारी तौर पर किये जाने का प्रावधान है और स्वयं को निर्दोष साबित करने का भार भी दोषी पर डाला गया है। 1989 में अनुसचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम बनाया गया। इसमें अधिक कठोर प्रावधान रखे गये। जिनके अन्तर्गत जाति के आधार पर अपमानित करना, उसे नीचा दिखाना, बेगार कराना, सम्पत्ति को क्षति पहुंचाना आदि जैसे कृत्य भी दण्डनीय अपराध घोषित किये गये हैं तथा इसके लिए कम से कम 6 माह या अधिकतम 5 वर्ष तक की सजा दी जा सकती है। इसमें अनुसूचित जातियों के प्रति कर्तव्यों की उपेक्षा करने पर लोक सेवक के लिये भी दण्ड का प्रावधान किया गया है। इस अधिनियम में राज्य सरकार को निवारक कार्यवाही करने तथा सामाजिक जुर्माना लगाने का भी अधिकार दिया गया है तथा इसके अन्तर्गत अपराधों पर विचार के लिए विशेष न्यायालय की स्थापना का प्रावधान किया गया है। इस कानून के अन्तर्गत अत्याचार पीड़ित व्यक्ति के लिए मुआवजे का भी उपबन्ध है और इसके लिए केन्द्र सरकार को नियम बनाने के अधिकार दिये गये हैं। अधिकांश राज्यों में दलित वर्ग बन्धुआ मजदूरी प्रथा और बाल मजदूरी प्रथा से उत्पीडित रहा है। अत: बन्धुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम 1976, बाल मजदूरी (निषेध एवं नियमन) अधियिम 1986 तथा मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 जैसे कानून भी इस सम्बन्ध में प्रासांगिक है। इस प्रकार भारतीय राज्य में दलितों को सामाजिक न्याय प्रदान करने हेतु अनेक संवैधानिक एवं वैधानिक प्रावधान तो किये गये हैं साथ ही संस्थानात्मक तंत्र भी विकसित किये गये हैं।

भारत में मानवाधिकार व सामाजिक न्याय: दलितों के विशेष सन्दर्भ में व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य

सैद्धान्तिक आधार पर संवैधानिक एवं वैधानिक प्रावधान होते हुए भी दलितों की यथार्थ स्थिति में कोई आमूलचूल परिवर्तन नहीं हुआ है। व्यावहारिक स्थिति पर दृष्टि डाली जाये तो स्पष्ट होता है कि 1955 के अस्पृश्यता उन्मूलन अधिनियम लागू हो जाने के पश्चात् भी अस्पृश्य व्यवहार के हजारों मामले दर्ज किये जाते हैं। सुखदेव थोराट ने इन मामलों की संख्या में निरन्तर वृद्धि को इंगित किया है। थोराट ने इन मामलों की संख्या 50 के दशक में 480, 60 के दशक में 1903, 70 के दशक में 3240, 80 के दशक में 3875 तथा 90 के आधे दशक में 1672 बतायी। 21वीं सदी से इस तरह के मामलों में तीव्रता आयी है, राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो द्वारा दर्ज मामले इसकी पुष्टि करते हैं, वर्ष 2006 में अनुसूचित जाति के विरूद्ध अत्याचार के 27070 मामले दर्ज किये गये। 2007 में 30031, 2008 में 33615, 2009 में 33594, 2010 में 32712 तथा 2011 में 33719 मामले दर्ज किये गये। ये आंकड़े विभिन्न सरकारी प्रतिवेदनों के आधार पर प्रस्तुत किये गये हैं, जबकि वस्तुस्थिति इससे भिन्न है। इन मामलों से कहीं

अधिक दलित वर्ग प्रतिदिन अस्पृश्यता के व्यवहार को सहन करता है। 21वीं शताब्दी जिसे संचार, प्रौद्योगिकी एवं विकास की सदी कहा जाता है, में भी दलितों की स्थिति में कोई सुधार नहीं आया है। मानवाधिकारों के आइने में आज भी इनका जीवन गरिमाहीन एवं पशुतुल्य है। भारत में दलित कुल जनसंख्या का 16.48 प्रतिशत है जो देश की आबादी के छठे भाग से भी ज्यादा है परन्तु विडम्बना यह है कि वे भारत के कुल भू-भाग के छठे भाग के भी मालिक नहीं है। जो जमीन उनके पास है वह भी सिंचाई एवं उपजाऊ भूमि के आधार पर निम्न स्तर की है। भूमि पर अधिकार नहीं होने के कारण अधिकांश दलित मजदूरी एवं सफाई से जुड़े निम्न स्तर के कार्यों यथा झाड़ू लगाना, मैला ढोना, मरे जानवरों को हटाना एवं उनका चमड़ा उतारना, उसे साफ करना आदि में संलग्न है।

आज भी देश के अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में दलितों को सार्वजनिक कुंओं से पानी नहीं भरने दिया जाता है और ना ही मंदिरों में प्रवेश करने दिया जाता है। कई गांवों में आज भी नाई दलितों के बाल नहीं काटते तथा दलित दूल्हों को घोड़ी पर नहीं बैठने दिया जाता है, यहां तक कि शिक्षा के केन्द्र विद्यालयों में भी दलित छात्र-छात्राओं के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता है। उनके बैठने के लिए अन्तिम पंक्ति निर्धारित होती है तथा बैठने के लिए उन्हें दरी या टाट-पट्टी नहीं दी जाती है। परम्परागत सामाजिक असमानता एवं छुआछूत का दंश दलितों की सवर्णों पर छाया नहीं पड़ना, सूर्योदय एवं सूर्यास्त के बाद ही घरों से निकलने की अनुमति होना, यद्यपि कम हुआ है, तथापि संस्तरीकरण के रूप में दलित आज भी गांव एवं कस्बे में दक्षिणी छोर पर रहने को मजबूर है।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की एक रिपोर्ट के अनुसार दलितों की यथार्थ प्रस्थिति को निम्न प्रकार देखा जा सकता है-

- 37 प्रतिशत दलित गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करते हैं।
- 1000 पर 83 दलित बच्चे अपने प्रथम जन्म दिन के पूर्व मृत्यु के शिकार हो जाते हैं।
- 45 प्रतिशत दलित पढ़ना-लिखना नहीं जानते।
- दलित महिला को दोहरा विभेदीकरण झेलना पड़ता है, एक तो जाति का दूसरा लैंगिक।
- केवल 27 प्रतिशत दलित महिलाएं ही अपने बच्चों को किसी चिकित्सकीय संस्था में जन्म दे पाती हैं।
- लगभग एक तिहाई दलितों को आधारभूत सुविधाएं भी उपलब्ध नहीं है।
- 33 प्रतिशत गांवों में आज भी यह स्थिति है कि स्वास्थ्य कार्यकर्ता दलितों के यहां जाने से इन्कार कर देते हैं।
- 27.6 प्रतिशत गांवों में दलितों को पुलिस थानों में प्रवेश करने से रोका जाता है।
- 37.8 प्रतिशत सरकारी स्कूलों में खाने के दौरान दलित बच्चों को सवर्ण बच्चों से अलग बैठना पड़ता है।
- 23.5 प्रतिशत गांवों में दलितों को उनके घरों पर डाक नहीं पहुँचायी जाती।
- 48.4 प्रतिशत गांवों में भेदभाव एवं छुआछूत के कारण दलितों को जल स्रोतों का उपयोग नहीं करने दिया जाता।
- भारत में लगभग आधे दलित बच्चे कुपोषण का शिकार हैं, 21 प्रतिशत बच्चों का वजन सामान्य से बहुत कम होता है तथा 12 प्रतिशत अपने 5वें जन्मदिन से पूर्व ही मृत्यु के शिकार हो जाते हैं।

रिपोर्ट में यहां तक कहा गया है कि 'ऐसे मामलों की एक बड़ी संख्या है जिनको कि अनुसूचित जाति और जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के तहत पंजीकृत किया जाना चाहिए किन्तु कई बार अनभिज्ञता के कारण और कई बार इच्छुक पार्टियों के दबाव में वे मामले पंजीकृत ही नहीं किये जाते। यहाँ तक कि ऐसे मामलों की सीमित संख्या में जांच अक्सर असावधानीपूर्ण ढंग से देरी के साथ होती है।'

निष्कर्ष

स्वतंत्रता के उपरान्त राज्य द्वारा संवैधानिक प्रावधानों के आधार पर राष्ट्रीय एवं प्रान्तीय स्तर पर अनेक प्रयास किये गये हैं। तथापि इन प्रयासों के बावजूद भी दलितों की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है। भारत में दलित मानवाधिकार एवं सामाजिक न्याय की व्यावहारिक स्थिति के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये प्रयास नगण्य ही रहे। परिणामों की नगण्यता के बावजूद भी कुछ सकारात्मक प्रभाव दिखायी दिये जैसे दलितों में भी मानवाधिकरों के प्रति जागरूकता बढ़ी है, दलित अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते दिखाई दिए। ये परिवर्तन तीव्र रूप से रोजगार के क्षेत्र में आयी तकनीकी क्रान्ति के फलस्वरूप हुए जिसने भारतीय समाज की कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था को प्रभावित किया है।

अन्ततः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यदि भारत में दलितों की स्थिति में सुधार करना है तो बुद्धिजीवी वर्ग को आगे आना होगा। यही वर्ग है जो न्यायपूर्ण, समतावादी, लोकतांत्रिक व्यवस्था पर आधारित सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था को व्यावहारिक रूप प्रदान करने में अपनी भूमिका निर्वहित कर सकता है। इसे न केवल दलितों के मानवाधिकारों की वकालत करनी चाहिए वरन् मानवाधिकारों के प्रति दलित वर्ग को जागरूक एवं अभिवृत्त भी करना चाहिए। सार्वजनिक मंचों, संचार माध्यमों, संगोष्ठियों एवं सम्मेलनों में दलितों के साथ हो रहे दुर्व्यवहार पर बहस छेड़ी जानी चाहिए। बहस एवं विमर्श से निकले निष्कर्षों के आधार पर राज्य एवं सत्तात्मक संस्थाओं द्वारा कानून, अधिनियम, जनकल्याणकारी योजनाओं एवं कार्यक्रमों का निर्माण तथा क्रियान्वयन करने पर बल दिया जाना चाहिए। इससे न केवल मानवाधिकारों को विस्तार मिलेगा वरन्

सामाजिक न्याय प्राप्त करने में भी सहायता प्राप्त होगी।

सन्दर्भ सूची

1. प्रदीप त्रिपाठी, मानवाधिकार और भारतीय संविधान, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2002.
2. जे.सी. जौहरी, ह्यूमन राइट्स एण्ड न्यू वर्ल्ड आर्डर: टुवार्डस परफेक्सन ऑफ द डेमोक्रेटिक वे ऑफ लाइफ, अनमोन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1996.
3. अरूण कुमार पिल्लई, भारत का राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग: गठन, कार्य और भावी परिदृश्य, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1999.
4. संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्बन्ध में बुनियादी तथ्य, संयुक्त राष्ट्र संघ प्रकाशन, 2000.
5. भारत का संविधान, द्विभाषी संस्करण, कानून प्रकाशन, जोधपुर, 2007.
6. 1955 का अधिनियम संख्यांक 22, सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955.
7. 1989 का अधिनियम संख्यांक 33, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989.
8. सुखदेव थोराट, दलित इन इण्डिया सर्च फॉर ए कॉमन डेस्टिनी, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2009.
9. नेशनल क्राइम रिकोर्ड ब्यूरो, भारत सरकार, नई दिल्ली http://ncrb.nic.in/ cii2006/cii-2006/CHAP5.pdf ,oa http://ncrb.nic.in/CD-CII2011/cii-2011/Chapter%207.pdf.
10. एन.एच.आर.सी. रिपोर्ट, ऑन दी प्रिवेन्सन एण्ड एस्ट्रोसीटिज अगेन्स्ट सिड्यूल कास्ट्स (http://nhrc.nic.in/publications/reportKBSaxena.pdf)
11. Baxi Upendra (ed.), Right to be Human, Lancer International, New Delhi, 185 (1987).
12. Bajwa G.S., Human Rights in India : International and Violations, Anmol Publishers, New Delhi (1985).
13. Omvedt Gail, Dalit Visions : The Anti-Caste Movement in Colonial India, Sage Publications, New Delhi (1995).
14. Shah Ghanshyam, Social Movements in India, Sage Publications, New Delhi (1998).
15. Majumdar D.N., Races and Culture of India, Asia Publishing House, Bombay (1958).
16. Shyamlal, Caste and Political Mobilisation: The Bhangis, Panchsheel Prakashan, Jaipur (1981).
17. Bhat Anil, Caste, Class and politics, Manohar Book, New Delhi (1975).

ISSN 2278 - 0327

श्रीमद्भगवद्गीता का अभिप्रेरणात्मक पक्ष : (नेतृत्व वर्ग के संदर्भ में)

कुलदीप
शोधार्थी
संस्कृत पालि एवं प्राकृत विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

नेतृत्व का अर्थ एवं परिभाषा

अंग्रेजी शब्द Lead से Leader तथा Leadership बना है। शब्दकोश की दृष्टि से Lead के कई अर्थ हैं यथा आगे होना,उच्च होना, सर्वोत्तम होना, प्रसिद्ध होना या मार्गदर्शन देना आदि।[1] Leader वह व्यक्ति हैं जो Lead करता है तथा Ship का अर्थ है किसी स्थिति या परिस्थिति से है अर्थात् Leadship किसी व्यक्ति की वह योग्यता है जो दूसरों को राह दिखाने का कार्य करती है।

संस्कृत कोश में नेता का अर्थ नयतीति (नी+तृच्) ले जाने वाला, जो आगे-आगे चले, नेतृत्व करना, संचालन करना आदि अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[2]

नेतृत्व करना (To Lead) का अर्थ दो तरह से स्पष्ट किया गया है, प्रथम अर्थ में नेतृत्व का अर्थ 'सर्वोत्तम होना' है, अग्रणी होना या प्रसिद्ध होना है। द्वितीय अर्थ में दूसरों को मार्ग दिखाना, किसी संगठन का प्रधान बनना, समादेश देना है।[3]

लोक प्रशासन में नेता को परिभाषित करते हुए कहा है कि नेतृत्व से तात्पर्य किसी व्यक्ति विशेष के उस गुण से है, जिसके द्वारा वह अन्य व्यक्तियों का नेता के रूप में संचालन करता है। नेतृत्व के बिना छोटे-बड़े किसी भी संगठन की स्थिति वही है जो समुद्र में नाविक के बिना नाव की होती है। संगठन में नेतृत्व की बढ़ती हुई आवश्यकता के फलस्वरूप ही आज प्रशासकीय और व्यवसायिक संगठनों के अधिकारी विद्वान्, शिक्षण संस्थानों के विचारक, राजनीतिज्ञ नेतृत्व में अधिकाधिक रुचि लेने लगे हैं।[4]

पाश्चात्य विद्वान् टैरी के अनुसार- नेतृत्व में क्रिया है जिसके माध्यम से कोई व्यक्ति उद्देश्य के लिए व्यक्तियों की स्वेच्छा से कार्य करने के लिए उन्हें प्रभावित करता है।[5]

बर्नाड के अनुसार- व्यक्तियों के व्यवहार को उत्तमत्ता की ओर निर्देशित करता है, जिसके द्वारा वे किसी संगठित प्रयत्नों में संलग्न लोगों या उनकी क्रियाओं का मार्गदर्शन करते हैं।[6]

वर्तमान समय में नेतृत्व प्रबंधन सीखने-सिखाने पर सर्वाधिक चिंतन-मनन व शोध हो रहे हैं। प्राचीन भारतीय वाङ्मय के अध्ययन से भी हमें इस संबंध में दिशा प्राप्त होती है। श्रीमद्भगवद्गीता मानव जीवन में आने वाली हताशा-निराशा का निराकरण कर मार्ग प्रशस्त करने वाला अनूपम ग्रंथ है। इसमें 18 अध्याय तथा 700 श्लोक हैं।

भक्तियोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग का वर्णन होने के साथ-साथ श्रेष्ठ व्यक्ति बनकर श्रेष्ठ नेतृत्व करने संबंधी मार्गदर्शन भी गीता से प्राप्त होता है। गीता का अध्ययन कर मनुष्य एक कुशल नेतृत्वकर्ता बन सकता है। एक अच्छे कुशल नेतृत्वकर्ता में क्या-क्या गुण विद्यमान हो सकते हैं या होने चाहिए जिससे व्यक्ति अच्छा नेतृत्व कर सके उन सभी गुणों का वर्णन गीता में मिलता है जैसे-

1. व्यावहारिक आचरण-

नेतृत्व की संपूर्ण अवधारणा व्यक्तियों के एक-दूसरे के प्रभाव पर केंद्रित हैं। एक कुशल नेता के नेतृत्व का व्यवहार अनुकरणीय होना चाहिए। गीता में कहा गया है कि-

यद्यदाचरित श्रेष्ठस्तश्रदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरूते लोकस्तदनुवर्तते।।[7]

श्रेष्ठ मनुष्य जैसा व्यवहार या आचरण करता है अन्य लोग भी वैसा ही अनुकरण करते हैं, वह जो कुछ प्रमाण देता है, दूसरे मनुष्य उसी के अनुसार आचरण करते हैं। अर्थात् वह जैसा आदर्श उपस्थित करता है उसी का लोग अनुगमन करने लगते हैं। गीता में इस बात को स्पष्ट रूप से कहा गया है कि महापुरुष ही मार्ग बनाने वाले होते हैं वे जो रास्ता दिखाते हैं अन्य लोग उनका अनुगमन करते हैं। अतः कुशल नेतृत्वकर्ता का आचरण अनुकरणीय होना चाहिए।

2. निर्णयात्मक बुद्धि-

एक अच्छे नेता में अपने समूह या समाज के व्यक्तियों से ज्यादा मेधा होनी चाहिए, जिससे उचित मार्गदर्शन बना रहे। मनुष्य और पशु में मूल अंतर बुद्धि का है और जब वह बुद्धि ही नष्ट हो जाती है तो मनुष्यत्व कहां रहा। क्रोध से बुद्धि का नाश हो जाता है। एक योग्य नेतृत्व करने वाले व्यक्ति में सहनशीलता तथा क्रोध का अभाव होना चाहिए। गीता में कहा गया है कि- जब कोई मनुष्य अपने मन में इंद्रियों के विषयों का ध्यान करने लगता है उसके मन में उनके प्रति अनुराग पैदा हो जाता है, अनुराग से इच्छा उत्पन्न होती है और इच्छा से क्रोध उत्पन्न हो जाता है। क्रोध में मूढ़ता उत्पन्न होती है मूढ़ता में स्मृति नष्ट हो जाती है, स्मृति के नष्ट हो जाने से बुद्धि का नाश हो जाता है और बुद्धि के नाश से व्यक्ति ही नष्ट हो जाता है-

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।।[8]

अतः एक कुशल नेता और अनुशासित मन तथा संयमित बुद्धि वाला होना चाहिए।

3. नियत कर्तव्य कर्म-

सुयोग्य नेतृत्व करने वाले नेता को नियतकर्तव्य कर्म में सदैव प्रवृत्त रहना चाहिए। क्योंकि नियत कर्म न करने से प्रयोजन पूर्ण नहीं होते। गीता में कहा है कि-

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धध्येदकर्मणः।। [9]

अर्थात् व्यक्ति को नियत कर्म करते रहना चाहिए। कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना ही श्रेष्ठ है। कर्म किए बिना शरीर को चलाना भी पूर्ण नहीं हो सकता, अर्थात् कर्म अकर्म से अधिक अच्छा है, बिना कर्म के तो शारीरिक जीवन भी बना नहीं रह सकता।

4. आत्मविश्वास एवं उत्साहित करने की योग्यता-

एक अच्छे नेता में आत्मज्ञान पर आधारित आत्मविश्वास होना चाहिए, तभी वह अपने उद्देश्य की प्राप्ति कर सकता है। अपने व्यक्तियों को उत्साहित करने की योग्यता का होना एक अच्छे नेता में नितांत जरूरी हैं। जब अर्जुन ने हताश-निराश होकर धनुष-बाण रख दिए तो श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उत्साह दिलाया, आत्मविश्वास जगाया तथा प्रेरित करते हुए कहा कि- अर्जुन तू तो पुरुषार्थी है, महापराक्रमी है तू सब कुछ कर सकता है।[10] इस प्रकार नेतृत्व का स्वभाव मूढ़ मनः स्थिति में संबल देकर अवसाद की स्थिति से बाहर लाने का होना चाहिए।

5. सामूहिक लक्ष्य की भावना-

नेतृत्व की दृष्टि से गीता बताती है कि नेतृत्व करना है तो सामूहिक कार्य करना होगा। तुम दूसरों की चिंता करो और वह तुम्हारी चिंता करे। तब परस्पर सामंजस्य से ही सफलता प्राप्त होगी। हमें स्मरण रहना चाहिए कि हम में से कोई भी पूर्ण नहीं है, परंतु अनेक विशेषताओं के लोग मिलकर पूर्णता प्राप्त करके पूर्ण लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं-

देवान् भावयताऽनेन् ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तःश्रेयः परमवाप्स्यथ।।[11]

6. प्रभावी संप्रेषण एवं मधुर संबंध-

संगठन की गतिविधियों में सामंजस्य एवं संतुलन बनाए रखने के लिए प्रभावी संप्रेषण एवं मधुर संबंधों का होना आवश्यक है। जहां ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति का सम्मिलन होता है वहां निश्चित तौर पर सफलता मिलती है, अर्थात् जहां पर विचार देने वाला, दिशा देने वाला योगेश्वर कृष्ण हैं तथा जहां क्रियान्वयन करने वाला ऐसा धनुर्धर पार्थ हैं तब श्री विजय निश्चित रूप से होती है-

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिमम्।। [12]

इस तरह विचारात्मक और क्रियात्मक दोनों तरह की शक्तियों के मिलने से ही लक्ष्य भेदा जा सकता है।

निष्कर्ष

एक सफल नेता बनने के लिए एक नेता में श्रमशीलता, अनुशासन प्रिय, वस्तुनिष्ठ व्यवहार, स्व-नियंत्रण, सही निर्णय लेने की क्षमता आदि का होना आवश्यक है। सही नेतृत्व दुनिया की हमेशा की जरूरत है, चाहे वह राजनीति हो, व्यवसाय हो, विज्ञान हो या अन्य क्षेत्र, नेतृत्व सही दिशा में किया गया हो तभी वह सार्थक होता है और इसके लिए आवश्यक है भगवद्गीता का अध्ययन। अतःगीता के अध्ययन के पश्चात् ही व्यक्ति में प्रभावी नेतृत्व का विकास सुनिश्चित होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. संस्कृत-हिन्दी-अंग्रेजी शब्दकोश, डॉ. उमाप्रसाद पाण्डे, पृ. सं. 503
2. शब्दकल्पद्रुम, राधाकान्तदेव, पृ. सं. 822
3. लोक प्रशासन, द्वारका प्रसाद सावले, पृ. सं. 185
4. आधुनिक लोक प्रशासन, डॉ. उमेश कुमार, पृ. सं. 160
5. लोक प्रशासन, डॉ. द्वारका प्रसाद सावले, पृ. सं. 185
6. लोक प्रशासन, डॉ. द्वारका प्रसाद सावले, पृ. सं. 185
7. गीता 3/21
8. गीता 2/63
9. गीता 3/8
10. तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत।
    सेनयोरूभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः।।
    गीता 2/10
11. गीता 3/11
12. गीता 18/78

ISSN 2278 - 0327

शिवस्तोत्रों का दार्शनिक विवेचन

ताहसीन फातिमा
शोधछात्रा
जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, सारण

''*ॐ नमःशम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवय च शिवेतराय च*''[1]

इस संहिता मन्त्र के द्वारा भूतभावन शिव के नामाविधावस्थाओं का परिचय प्राप्त होता है। शिवसम्पूर्ण विश्व के विधान हैं। कहा भी गया है- ''अनादिनिधनोदेवः'' इति शिव के दार्शनिकस्वरूप के अथवा स्तोत्रों के दार्शनिकस्वरूप के विवेचन के अवसर पर हम सूत्रवत ही ही उसकी समीक्षा अथवा विवेचन प्रस्तुत करने की चेष्टा करेंगे। वृहद् रूप से चर्चा का अर्थविस्तार रूप देना होगा। शिवपरमभट्टारक 'षटत्रिंशतकलावतंस' वर्णसमाम्नात हैं। यह सृष्टि भी वर्णत्मिका है। कवर्ग चवर्ग टवर्ग तवर्ग पवर्ग को मिलाकर 25 की संख्या होती है। य-र-ल-व-श-ष-स-ह ये आठ वर्ण हुए। क्ष-त्र-ज्ञ ये संयुक्तवर्ण है। इस सभी की योग से षट् त्रिंशत संख्या पूर्ण होती है। यही षट्त्रंशत शब्दात्मिका शब्द सृष्टि है। परमभट्टारक शिव भी षट्त्रंशत् कलावतंश, होकर प्रकाशस्वरूप शिवता को प्राप्त हो विश्व का कल्याण करते है। वे ही विश्व का सृजन, पालन एवं संहार भी करते हैं। शाक्तानन्द तरंगिणी में लिखा भी है-

''अकारः सर्ववर्णग्यिः प्रकाशः परमः शिवः।''[2]

तथा च- ''अथ ओंश्चस्वयम्भुवा।''[3] कहा जाता है कि परमभट्टारक शिव षट्त्रंशत्कलावर्तसित माता पार्वती के साथ परमपदवी को प्राप्त करते हैं। 'कलते कलयते कल्यते कालसमाम्नात' इति ''काली''। वही काली त्रिकारात्मिका भी होती है। मानव जीवन नैराश्यवाद से परे है। मानव जीवन में तो चार्वाक दर्शन एक अलग ही परिभाषा से पारिभाषित करता है-

''*यावत् जीवेत सुखं जीवत ऋणं कृत्वा घृतं पीबते। परिवर्तिनि संसारमृतः को वा नजायते।।*''[4]

जो लोग मानव जीवन को सारतथ्यहीन एवं व्यर्थ मानते हैं उनका कथन कही से भी उचित नहीं है। जिस जीवन को व्यतीत कर, जिस शरीर से सारहीनता का आरोप आरोपित किया जाता है। वह कथमापि सत्य नहीं है, कारण कि त्रिवर्ग का सार धर्म ही है। कहा भी गया है - 'त्रिवर्गसारः प्रतिभातिभामिनी।' वहीं परधर्म और काम अपनी अपनी सत्ता को प्रतिष्ठापित करने के लिए त्रिवर्ग का विरोध भी करते हैं। आगमशब्द सृष्टि दो प्रकार की सृष्टि मानता है। 'परापश्यन्ती' प्रभृति शकसृष्टि में मूलरूप से निवास करती है। वहीं अर्थसृष्टि पदार्थादि रूप में शिव से प्रारम्भ कर क्षिव्यन्ततत्त्वजातों में प्रादुर्भूत है। यह सर्वतो भावेन ज्ञात है कि अगम षटत्रिशत् तत्त्वात्मक है। अत एव यह सम्पूर्ण विश्व शकमयीपार्वती (शिवा) शिव में विलसित है। यही तत्त्व यत्र तत्र शिवोपासना ग्रन्थों में स्तुतियों में नानाविध उपमानोपमेय रूप में प्रदर्शित हैं वहाँ वर्णसमाम्नाय से स्वरवर्ण शक्ति रूपा तथा व्यंजितवर्ण शिव रूप में विलसित हैं। वर्णों का अकार विश्वात्मा शिव का ही दूसरा स्वरूप है। कहा भी गया है -

''*अकारसर्ववर्ण्यार्ग्यः प्रकाशः परमशिवः*।।

अपि च-

''*दूसराः शक्तिरूपा उकारश्चव्यापकः विश्वरूपः*''।

यही कारण है कि अ, इ, ऊ ये तीनों वर्ण सभी वेदों के सारभूत 'ओम' प्रणव से ही उत्पन्न है। तन्त्रागम के अनुसार शब्द की उत्पत्ति में यही दृष्टि उसे स्वीकार करते हैं, कि यदि हम सूर्य के समक्ष दर्पण को दिखाते हैं। ऐसी स्थिति में उस दर्पण में प्रविष्ट सूर्य की किरणों से उभयकिरनसंकलनस्वरूपतेजोबिन्दुविशेषकुडयादि में भी प्रविष्ट हो जाता है, जैसे अदृष्ट की स्थिति में अपने को संहृतकरविश्व की सृष्टि करने की इच्छा से प्रकाश स्वरूपबह्म अपनी ही शक्ति को अवलोकित करने हेतु उस वस्तु के अन्तर्गत अपने ही तेजरूप का अवलोकन करने के लिए शुक्लविन्दुमान ग्रहण करता है। उसमें प्रविष्ट बिन्दु रक्तरूपा शक्तिकहलाती है। उस शक्ति के समिश्रण से बिन्दु उच्छून्न हो जाती है। वही बिन्दु समदृष्टि रूप से एक व्यष्टि रूप से तथा दो समष्टि रूप से व्यहृत होती है। समष्टिरूपा रक्त अग्निबिन्दुद्वयात्मिका विसर्ग रूप में व्यवहृत होती है। इस प्रकार कामाख्य बिन्दूविसर्गहार्धकला से परिपूर्ण त्र्यम्बक होकर विश्व से संरक्षण में तल्लीन रहता है। इसी त्र्यम्बक से प्रायोजित प्रकाशविमर्शमयी पराशक्ति पंचभूतात्मिका निरन्तर वृद्धि द्वारा पंचदश संख्याकमात्रात्मिका तिथ्याभिमानदेवतास्वरूपिणी प्रख्यापित होती है। प्रकाशाख्य एक ही परमेश्वर और उसकी शक्तिविमर्शाख्या जो पांच रूपों में प्रख्यायित है। वहीं अ,इ, उ, ऋ, लृ इति पांच रूपों में व्यवस्थित है। पुनश्च आ, ई, ऊ, ॠ, ॡ के संकलन से दश होती है। अतः ए, ओ, ऐ, औ,अः को मिलाकर पंचदश संख्या होती है। विसर्ग के साथ सोलह, नव स्वर मिलाकर पच्चीस हुए। य, र, ल, व चार, श, ष, स, ह चार क्षकार से मिलकर कुल चौतिस और षोडश मिलकर पंचाशत मातृकाएं सम्पन्न हुई। इस अखिल ब्रह्ममाण्ड

के निग्रहानुग्रहसमर्थ शिव प्रणियों पर करुणाविष्ट हो सृष्टिलीला करते रहते हैं। अपने निर्गुणस्वरूप का त्यागकर अपने सगुणस्वरूप को धारण करते हैं। ऋतियाँ कहती हैं कि सृष्टि के पूर्व न कारण ही का और न कार्य ही था, अपितु निर्विकल्प निर्विकार शिव ही थे। यही कारण है, कि जो वस्तु सृष्टि के पूर्व में थी वही जगत की कारण हुई, जो जगत का कारण है। वही परब्रह्म है। इस सिद्धान्त के अनुसार परब्रह्म ही शिव सत्य सुन्दर है। वह शिवनित्य, शाश्वत एवं अजन्मा है। इस परब्रह्म का आदि और अन्त नहीं है। स्तोत्रों में वर्णित नामों में हजारों नाम वाला यह शिव उमामहेश्वर, अर्धनारीश्वर, हरिहर, मृत्युंजय, पंचभव, पशुपति, कृतिवास, दक्षिणामूर्ति, योगीश्वर, नटराजप्रभृति नामों से जाने जाते हैं। शिव महिम्नस्तोत्र साक्षात् भगवान् विष्णु द्वारा विरचित है। भीष्मपितामह के आराधना पर स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने भगवान् शिव के विषय में कहा है -हिरण्यगर्भ, इन्द्र एवं अन्य महर्षिगण ही केवल शिवतत्त्व को जानने में समर्थ हो सकते है। मैं तो भगवान् शिव के रंचमात्र भी गुणों का वर्णन नहीं कर सकता ऐसी स्थिति में हम तुच्छजीव भगवान् शिव के महिमा का गुणगान अनधिकार चेष्टा ही कहा जाएगा। इसका समाधान श्रीमद् पुष्पदन्ताचार्य शिव महिम्नस्तोत्र में करते हैं-

''महिम्नः पारन्तेपरमविदुषो यद्यसदृशीः
स्तुतिर्ब्रह्मादिनामपितदवसन्नास्त्वयि गिरः।''

इत्यादि स्तोत्रों में वर्णित तत्त्वों का दार्शनिक विवेचन क्रम यही है कि महाकालेश्वर का शृंगार चिताभष्म से होता है। जिसका दर्शन शुभप्रद होता है। वहीं मालवा में ही दो लिंग ऊंकारेश्वर और ममलेश्वरजो एक ही लिंग के दो स्वरूप हैं। ''पराल्यां वैद्यनाथश्च'' कहने मात्र से वैद्यनाथ की स्थिति का आभास होता है। पाली ग्राम आन्ध्रप्रदेश के हैदराबाद नगर से नजदीक स्थित है। शिव पुराण में वर्णित है कि ''वैद्यनाथः चिताभूमौ'' इससे सन्थाल परगना के भागलपुर नगर में स्थित वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग का भान होता है। इस तरह स्तोत्रों में वर्णित शिव स्वस का दार्शनिकस्वरूप जितना भी भेदन किया जाय कम ही होगा।। शिवमस्तु।।

सन्दर्भ सूची -

1. यजुर्वेदसंहिता से साभार गृहीत।
2. शाक्तानन्द तरंगिणी से साभार
3. उपर्युक्त
4. चार्वक दर्शन

ISSN 2278 - 0327

महाभारत में वास्तु : एक अध्ययन

सोनाली
शोधछात्रा, वास्तुविभाग
श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

व्यापक अर्थों में किसी विशिष्ट विषय या पदार्थ समूह से सम्बन्धित वह समस्त ज्ञान जो ठीक क्रम से संग्रह करके रखा गया हो, शास्त्र कहलाता हैं। जैसे भौतिकशास्त्र, वास्तुशास्त्र, शिल्पशास्त्र आदि। इस अर्थ में यह 'विज्ञान' का पर्याय हैं।

शास्त्र शब्द शासु अनुशिष्टौ से निष्पन्न हैं जिसका अर्थ अनुशासन या उपदेश करना हैं।

हमारे यहां शास्त्र की परिभाषा इस प्रकार की गई हैं-

शास्ति च त्रायते च। शिष्यते अनेन।

(अर्थात् जो शिक्षा अनुशासन प्रदान कर हमारी रक्षा करती हैं, मार्गदर्शन करती हैं, कभी कभी हमारी उँगली पकड़कर हमें चलाती हैं, उसे शास्त्र कहा गया हैं।)

किन्तु धर्म के सन्दर्भ में, शास्त्र ऋषियों और मुनियों आदि के बनाए हुए वे प्राचीन ग्रंथों को कहते हैं जिनमें लोगों के हित के लिए अनेक प्रकार के कर्तव्य बतलाए गए हैं और अनुचित कृत्यों का निषेध किया गया हैं। दूसरे शब्दों में शास्त्र वे धार्मिक ग्रंथ हैं जो लोगों के हित और अनुशासन के लिए बनाए गए हैं। हिन्दुओं में वे ही ग्रंथ शास्त्र माने गए हैं जो वेदमूलक हैं। इनकी संख्या 18 कही गई हैं-

(शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, ज्योतिष, छंद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वेद, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद और अर्थशास्त्र।)

भारतीय संस्कृति का मूलाधार वेद हैं। वेद से ही हमें अपने धर्म और सदाचार का ज्ञान प्राप्त होता हैं। हमारी परिवारिक, समाजिक, वैज्ञानिक एवं दार्शिनक विचारधाराओं के स्रोत भी वेद ही हैं।

वेदों में शिक्षादि छ: अंग कहे गये हैं। वेदों का सम्यक् ज्ञान कराने के लिए इन छ: अंगों की अपनी अपनी विशेषता हैं। उसी क्रम में ज्योतिष वेद पुरुष का नेत्र हैं। महर्षि पाणिनि ने ज्योतिष को वेद पुरुष का नेत्र कहते हुए कहा हैं-

ज्योतिषामयनं चक्षु:।

यदि हम वेदादि की बात करें तो ज्योतिष का सम्यक् ज्ञान हमें वेदों, वेदों के वाद पुराणों के वाद महाकाव्यों और अन्य संस्कृत शास्त्रों में मिल जाता हैं। इसी के साथ ही अन्य शास्त्रों और ज्योतिष का परम्पर घनिष्ठ सम्बन्ध हैं।

वास्तुशास्त्र, सामुद्रिकादि, रत्नविज्ञान, मनोविज्ञान, धर्मशास्त्र, व्रतोपवासदान आदि उपासनाशास्त्र, स्वरोदयशास्त्र, संग्रामविजय, शकुनशास्त्र, नक्षत्रविज्ञान, गणितशास्त्र, भैषज्यशास्त्र, गोविज्ञान, प्रश्नविद्या, अंगविद्या, मुहूर्तशास्त्र, यात्राविज्ञान, शरीरविज्ञान, स्वप्नशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, भूगोलशास्त्र, जलविज्ञान, भौतिकविज्ञान, कृषिशास्त्र, प्रतिष्ठाविज्ञान, कर्मकाण्ड, परलोकविद्या तथा अध्यात्मशास्त्र आदि अनेक क्षेत्र हैं, जिनकी जानकारी के लिए ज्योतिषविद्या का सम्यक् ज्ञान अति आवश्यक है, इन सब विषयों का ज्योतिषशास्त्र में अद्भुत समन्वय हैं। अत: ज्योतिषशास्त्र की परम उपादेयता हैं। ज्योतिष केवल फलादेश करता है यह धारणा नितान्त अज्ञानमूलक हैं।

भारत वर्ष में रामायण-महाभारतग्रन्थ भारतीय संस्कृति के संवाहक हैं। संस्कृत के प्राय: सभी महाकाव्य के उपजीव्यग्रन्थ हैं। भारतीय विद्वानों ने पुराणों के बाद इनका काल स्वीकार किया हैं। यहां सबसे पहले रामायण का फिर महाभारत का रचना काल माना हैं। इनके काल में वास्तु का स्वरूप कैसा है प्रस्तुत किया हैं-

सबसे पहले बात आती है वास्तु क्या है? (What is vastu?)

Vastu shastra is a traditional Hindu system of architecture which literally translated to "Science architecture". These are texts found on the Indian subcontinent that describe principles of design, layout, measurements, ground preparation space arrangement and spatial geometry.

संस्कृत में कहा जाए तो- *गृहस्थ क्रियास्सर्वा न सिद्धयन्ति गृहं विना।* वास्तु विद्या, प्रासादनिर्माण भूमिपरीक्षण आदि बहुत से विषय ज्योतिष शास्त्र में विवेचित रहते हैं। भूमि के नीचे कहां पर कितनी गहराई में जल स्थित हैं, कहां धन गड़ा हुआ हैं और कहां शल्य गड़ा हुआ हैं- इसके ज्ञान के अद्भुत उपाय ज्योतिष में सन्निहित हैं।

वास्तु का जो ज्ञान हमें ज्योतिष के वास्तुशास्त्रों में मिलता हैं वैसा ही महाभारत जैसे महाकाव्य में उपलब्ध होता हैं। और वह क्या हैं यह जानने के लिए हमें महाभारत में जाना पड़ेगा। जैसा कि हम सब जानते हैं कि उस काल में विश्वकर्मा और मयासुर जैसे महान् वास्तुशास्त्र हुए जिनको शिल्पियों में श्रेष्ठ कहा गया हैं।

यदि हम महाभारत के सभापर्व के प्रथमोध्याय में जाए तो वहां प्रथम श्लोक में ही स्वयं मयासुर ने अपनी प्रसन्नता करते हुए

कहा हैं-

अहं हि विश्वकर्मा नै दानवानां महाकविः।
सोऽहं वैत्वत्कृते कुर्ते कि चिदिच्छामि पाण्डव।।[1]

इस संकेत से ही हम जान जाते हैं कि महाभारत महाकाव्य जो 'जयसंहिता' से भी प्रसिद्ध हैं उसमें वास्तु विद्या के अनेक उदाहरण मिल जाते हैं। इस काल में स्थापत्य कला और वास्तुविद्या का उन्नतं स्वरूप देखने को मिलता हैं।

महाभारतसंहिता में वर्णित हैं कि पाण्डवों का राजप्रसाद ऐसा था जहां स्थल में जल का और जल में स्थल का भ्रम होता था। यह मयासुर द्वारा रचित भवननिर्माण कला का अद्वितीय उदाहरण था। द्वारिका पुरी जिसका निर्माण विश्वकर्मा ने किया उन्होंने ही मयासुर के साथ मिलकर श्रीकृष्ण के कहने पर खाण्डवप्रस्थ को इन्द्रप्रस्थ बनाया। खाण्डवप्रस्थ जोकि मयासुर द्वारा ही निर्मित था। जब उसको इन्द्रप्रस्थ में बदला गया तो उसमें महल, उद्यान, सरोवर यथा स्थान सजाया। इससे ही उनके ज्ञान, विज्ञान के अनुसंधान का शुभ सामने आता हैं और वास्तुकला का अपूर्व अनूष्ठा श्रेष्ठ उदाहरण यहां मिलता हैं।

विषय में हमने जहां जल, स्थल की बात की तो उस राज्य में उस स्थान को 'मयसभा' नाम से जाना जाता था जिसे मयासुर ने बताया था। हस्तिनापुर-मिथिला-वरणशीलादिनगरों का भी वहां उल्लेख मिलता हैं।

सभापर्व के सप्तमोध्याय जिसमें इन्द्रसभा का वर्णन हैं-

शुक्रस्य तु सभा दिव्या भास्वरा कर्मनिर्मिता।
स्वयं शक्रे कौख्य निर्जितार्कसमप्रभा।।[2]

यहां नारद जी स्वयं कहते हैं कि इन्द्र की तेजोमयी दिव्यसभा सूर्य के समान प्रकाशित होती हैं। जोकि विश्वकर्मा के प्रयत्नों से उसका निर्माण हुआ हैं। उसकी लम्बाई डेढ़ सौ और चौड़ाई सौ योजन की हैं। वह आकाश में विचरने वाली और इच्छा के अनुसार तीव्र या मन्द गति से चलने वाली है। उसमें जीर्णता, शोक, थकावट आदि का प्रवेश नहीं हैं। वहां भय नहीं हैं वह मङ्गलमयी और शोभा सम्पन्न हैं। वह रमणीय सभा दिव्य वृक्षों से सुशोभित होती हैं।

इसके बाद बात यमराज की सभा कि की जाए तो अष्टमोध्याय में वर्णन मिलता हैं जोकि विश्वकर्मा द्वारा बनाई गई थी। तत्पश्चात् वरूणसभा जोकि जल के भीतर रहकर बनाई गई थी।

इस प्रकार बहुत सी सभाओं का, भवननगर इत्यादि का वर्णन महाभारत में मिलता हैं जो वास्तुविद्या से निर्मित थे।

1000 से 2000वर्ष पुराने इस काल में दुर्गनिर्माण जोकि राजधानी की रक्षा के लिए होता था। दुर्ग के छः भेद विषये में वहां उल्लेखित हैं-

धन्वदुर्गं महीदुर्गं गिरिदुर्गं तथैव च।
मनुष्यदुर्गमब्दुर्गं वनदुर्गं च तानि षट्।।[3]

उस राल में नगर के चारों ओर प्रकारनिर्माण भी होता था और उस प्रकार को जल से भरा जाता था। सुरक्षा की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण होता था।

यह था महाभारत काल में नगर, भवन, प्रासाद, उद्यान आदि का वास्तुविद्या से निर्माण पर छोटा सा बिन्दू किन्तु यहां विचारणीय बात यह आती है के उस काल में राज्य को समृद्ध बनाने के लिए यदि यह वास्तु विद्या कार्य में लाई गई तो वर्तमान काल में उपलब्ध क्या कोई वास्तुशास्त्र का ग्रन्थ नहीं जो एसी राजधानियों का निर्माण करवाने में सहायक हो? क्या किसी ने ऐसा कोई प्रयास नहीं किया? क्या स्वकीय भवन निर्माण तक ही वास्तुविद्या अब सीमित रह चुकी हैं। नहीं ऐसा नहीं हैं मयमतम् या विश्वकर्मशास्त्र जो अभी उपलब्ध है उनमें सब दिया हैं और उसके अनुसार कार्य भी हुए हैं उसमें एक उदाहरण हमें संसद भवन का मिल जाता हैं जो कि British architected win Lutyers and Herbert Baker ने M.P में स्थित Chousath Yogini Temple को देख के बनाया हैं किन्तु उसमें वृताकार भूखण्ड का सिद्धान्त जो कि विश्व कर्मावास्तुशास्त्र में उपलब्ध हैं। यदि हम वास्तु शास्त्र में जायें तो ओर भी वास्तुतत्त्व से सम्बन्धित उदाहरण हैं जिसमें एक उदाहरण 'गाय' से सम्बन्धित हैं। गाय सृष्टिमातृका कही जाती हैं। वास्तुग्रन्थ 'मयमतम्' में कहा गया हैं कि भवननिर्माण का शुभारम्भ करने से पूर्व उस भूमिपर ऐसी गाय को लाकर बाँधना चाहिये जो सवत्सा हो। नवजात बछड़े को जब गाय दुलारकर चाटती हैं तो उसका फेन भूमि पर गिरकर उसे पवित्र बनाता हैं और वहां होने वाले समस्त दोषों का निवारण हो जाता हैं। यही मान्यता वास्तुप्रदीप, अपराजितपृच्छा आदि ग्रन्थों में भी हैं। महाभारत के अनुशासनपूर्व में कहा गया हैं कि गाय जहां बैठकर निर्भयतापूर्वक साँस लेती हैं तो वह स्थान के सारे पापों को खींच लेती हैं-

निविष्टं गोकुलं यत्र श्वासं मुञ्चति निर्भयम्।
विराजयति तं देशं पापं चास्यापकर्षति।।[4]

यह तो आती शास्त्रों और महाकाव्य की बात, धर्मानुसार शास्त्र जो कहता हैं वह सत्य हैं यदि ऐसा हैं तो जहां भी गाय होगी वह स्थान पापों से युक्त नहीं होगा शुद्ध होगा। तो क्या जो लोग वर्तमान समय में गाय रखते हैं उनकी सेवा करते हैं उनके पाप कर्म भी नष्ट हो चुके होंगें? यह विचारणीय विषय हैं। अतः अधिक शास्त्रों में न जाकर महाभारत जैसे विशाल आकाश में यह विषय केवल मात्र वास्तुविद्या का छोटा सा बिन्दू हैं जिसको रूप देना अभी बाकी हैं।

सन्दर्भ सूची -

1. सभापर्व,प्रथमोऽध्यायः,6श्लोकः
2. सभापर्व,सप्तमोध्याय,श्लोक-01
3. महाभारतशान्तिपर्व अध्याय87 श्लोक05
4. महाभारतअनुशासनपर्व

ISSN 2278 - 0327

आर्षार्वाचीन सन्तान साधनोपायों की समीक्षा

विकास शर्मा
शोध छात्र
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, वेदव्यास परिसर

सन्तान एक मनोवैज्ञानिक संबल है कहीं, तो कहीं यह एक परम्परागत आवश्यकता है। कारण कुछ भी हो, नव दम्पती के लिये सन्तान एक जीवन का अभिन्न अंग है। भारतीय परम्परा में सन्तान सम्बन्धित विचार अनन्त है। सन्तान प्राप्ति एक मनोवैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक आवश्यकता होने के कारण इसे प्राप्त करने के लिये भी अनेक प्रकार के उपाय भी उपदिष्ट है। वर्तमान प्रसङ्ग में सन्तान प्राप्ति के परम्परागत उपायों के साथ साथ आधुनिकविज्ञान सम्पोषित अन्यमार्गों का समीक्षात्मक अध्ययन सर्वथा प्रासङ्गिक है जो संक्षिप्त रूप में इस शोध पत्र में प्रस्तुत है।

पुनर्जन्म सिद्धान्त तथा पुरुषार्थ सिद्धान्तों का ग्रहण प्राय: सम्पूर्ण वैदिक परम्परा करता है। इस वाङ्मय की कोई ऐसी कृति नहीं होगी या कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं होगा जिनका आधार स्तम्भ ये दोनों सिद्धान्त नहीं होंगे। सन्तान विमर्श करने के प्रारम्भ में इन सिद्धान्तों का विमर्श अपरिहार्य ही है। यह विमर्श का अन्तिम निष्कर्ष यहीं है कि दम्पती के केवल मिलने का फल मात्र सन्तान नहीं है बल्कि *' आत्मा वै जायते पुत्र:'* आदि वैदिक वचनों के अनुसार अनश्वर आत्मा का मोक्षप्राप्ति तक की यात्रा में अग्रसरण विधि अथवा आगे बढ़ने का क्रम ही सन्तान है। यह गूढ कालक्रम में रूढ रूप का ग्रहण लिया तथा एक सामाजिक पक्ष के रूप में उभर कर सामने आया कि सन्तान, मुख्य रूप से पुरुष सन्तान, एक अनिवार्य जीवन घटक है।

साहित्यावलोकन करने पर बहुश: ऐसे वचन प्राप्त होते हैं जो सन्तान की आवश्यकता व अनिवार्यता पर बल देते है। वाल्मीकि रामायण भारतीय संस्कृति में आदि काव्य के नाम से प्रसिद्ध है। इस काव्य के बालकाण्ड में राजा दशरथ के सन्तानाभाव के कारण दु:खी रहने की बात वर्णित है। राजा दशरथ के पास सब कुछ था केवल सन्तान को छोड़कर। सन्तानाभाव से उत्पन्न दु:ख इतना अधिक है कि सब कुछ रहने का कोई आनन्द या सुख है ही नहीं।

तस्य चैवं प्रभावस्य धर्मज्ञस्य महात्मन:।
सुतार्थं तप्यमानस्य नासीद् वंशकर: सुत:।।[1]
मम लालप्यमानस्य सुतार्थं नास्ति वै सुखम्।
तदर्थं हयमेधेन यक्ष्यामीति मतिर्मम।।[2]

इसी प्रकार से बृहत्पराशरस्मृति में

अपुत्रस्य वृथा जन्म।[3]

प्रजापतिस्मृति में –

अपुत्रस्य गतिर्नास्तिस्वर्गो नैव च नैव च ।[4]

व्यवहारनिर्णय में–

आचारहीन: पुत्रस्तुमूत्रोच्चारसम: स्मृत:।[5]

मनुस्मृति में–

एक एवौरस: पुत्र:पित्र्यस्य वसुन: प्रभु:।[6]

औशनस्मृति में–

एष्टव्यं बहव: पुत्रा:शीलवन्तो गुणान्विता:।[7]

व्यवहारनिर्णय में –

कोऽर्थ: पुत्रेण जातेनयो न विद्वान्न धार्मिक:।[8]

पूर्वाङ्गिरास्मृति में –

न पुत्रवानपत्नीक:किन्तु सोऽयमपुत्रवान् ।[9]

पूर्वाङ्गिरास्मृति में –

नापुत्रस्य तु लोकोऽस्तिपुत्रिणस्तु त्रिविष्टपम् ।[10]

बृहत्पराशरस्मृति में –

पितु: पुत्रेण कर्तव्यापिण्डदानोदकक्रिया: ।[11]

आचार्यों की सन्तान प्रशंसापूर्वक वचनों से स्पष्ट है कि भारतीय परम्परा में अथवा आत्मा की यात्रा को मान्यता देने वाले समाज में सन्तान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जो महत्त्वपूर्ण है उसे प्रत्येक व्यक्ति प्राप्त करने की इच्छा रखना स्वाभाविक बात है।

आज के समय में सन्तान प्राप्ति के अनेक उपाय देखने को मिलते है। इस प्रकार के उद्धरण वैदिक काल से ही प्रचलित है। वैदिक वाङ्मय में अदिति के पुत्रकामा होने पर पुत्राप्ति किस प्रकार अन्योपायों से हुआ इसका वर्णन प्राप्त होता है।[12] महाभारत के कौरव सन्तान जहां पर वर्णन घड़े में रखे गर्भ का वर्णन मिलता है, अनूर के जन्म के प्रसङ्ग में वर्णित अण्डे का प्रकरण हो इस प्रकार से अनेक स्थानों में सन्तान प्राप्ति के भिन्न भिन्न प्रकारों का विवरण प्राप्त होता है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में अनेक प्रकार के उपाय देखने को मिलते है। मुख्य रूप से आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में आईवीएफ तथा आईयूआई नामक पद्धति सफल तथा बहु प्रचलन में है। इन पद्धतियों से प्राचीन पद्धति अलग नजर नहीं आते है। इन पद्धतियों का विवरण एक पत्र में व्यापकता की दृष्टि से सम्भव नहीं है।

प्राचीन साहित्य में अण्डविकास हेतु घड़े आदि में वीर्यादि को

रखने का वर्णन सार्वत्रिक नहीं रहा। इसका तात्पर्य यहीं हुआ कि जहाँ जहाँ जिन जिन दम्पती को सन्तान प्राप्ति में कठिनाई हुई हो व सन्तान प्राप्ति में सफलता नहीं प्राप्त हो रही हो उन सन्दर्भों में वर्णित प्राप्त होता है।

प्राच्य तथा पाश्चात्य पद्धतियों में समरूपता दिखना स्वाभाविक विषय है। मानव जीवन व मानव शरीर का निर्माण तथा प्रवृत्तियाँ पूरे विश्व में एक जैसे ही है। स्थान भेद के कारण प्रत्येक स्थान के लोगों में अपनी अपनी दृष्टिकोण होता है। यह दृष्टिकोण विचारधारा पर तथा स्थानीय रहन सहन के कारण उत्पन्न है न कि ईश्वर की सृष्टि की असमानता के कारण।

इस सन्दर्भ में प्रायोगिक अध्ययन वस्तुतः प्राच्य और पाश्चात्य सिद्धान्तों की समरूपता नहीं एकरूपता सिद्ध करने में सहयोगी हो सकते है। स्थान वेद से विज्ञान का भेद न होने के कारण स सन्दर्भ का कोई भी अध्ययन निस्संकोच ही विज्ञान की एकरूपता तथा सर्वव्यापकता को सिद्ध कर सकता है।

सन्दर्भ सूची -

1. श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम्, बालकाण्डः, अष्टमसर्गः, श्लोकः 1
2. श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम्, बालकाण्डः, अष्टमसर्गः, श्लोकः 8 https://www.ramcharit.in/valmiki-ramayana-balakanda-sarga-chapter-8-slokas-with-hindi-meaning/
3. बृहत्पराशरस्मृतिः, 10/316
4. प्रजापतिस्मृतिः,श्लोकः 188
5. व्यवहारनिर्णयः,पृ.419
6. मनुस्मृतिः, 9/ 163
7. औशनसस्मृतिः,श्लोकः 242
8. व्यवहारनिर्णयः,पृ.419
9. पूर्वांगिरसस्मृतिः,श्लोकः 319
10. पूर्वांगिरसस्मृतिः, श्लोकः 316
11. बृहत्पराशरमृतिः, 7/ 49
12. तैत्तिरीयसंहिता, 1-1-9, 1-3